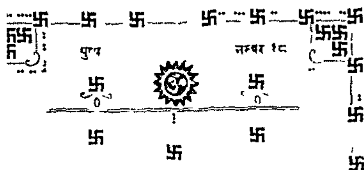


श्री आध्यात्मिक पाठ संग्रह

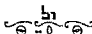
[भक्ति, पूजा, वैराग्य, अध्यात्म आदि विषयके
चुने हुए पद्य पाठ भजन स्तोत्र आदिका
अपूर्व सङ्कलन]



सम्पादक —
श्री पं. श्रेयांसकुमारजी जैन शास्त्री न्यायतीर्थ
किरतपुर (बिजनौर)



प्रकाशक—
श्री मगनमल हीरालाल पाटनी
दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट
श्री पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला
मारोठ (मारवाड़)



प्रथमबार १०००	मई १९५१ श्री वीर नि० स० २४७७	मूल्य ७)



मुद्रक—
नेमीचन्द बाकलीवाल
एम० ये० मिल्स, प्रेस मदनगञ्ज

— श्री —

प्रकाशकीय



आज हमें यह अपूर्व सुंदर संग्रह ग्रंथ प्रकाशन करते हुए हर्ष हो रहा है, यों तो अभी समाजमें अनेकों संग्रह ग्रंथ बहुत काफी मात्रामें प्रचलित हैं, लेकिन यह उन सबसे ही अपनी अपूर्वता रखता है, अध्यात्मरसिक मुमुक्षुके लिये यह पुस्तक एक प्रकारकी गाइड बुकके रूपमें काम आवेगी, अपने समयका सदुपयोग करनेके लिये इसमें भक्ति, पूजा, वैराग्य, अध्यात्म आदि विषयोंके अनेक चुने हुए छोटे २ पद्य, पाठ, भजन, स्तोत्र आदि भी हैं तो अनेक बड़े २ समयसार, प्रवचन सार जैसे महान् ग्रंथराजोंका सरल पद्यानुवाद भी है ताकि हरएक मुमुक्षु अपनी २ रुचिके अनुसार सब प्रकारकी सामग्री इसमें प्राप्त करके समयका पूर्ण उपयोग कर सके।

मेरी बहुत समयसे ऐसी इच्छा थी कि एक ऐसे ग्रंथका संग्रह करके प्रकाशन किया जावे कारण अध्यात्मरसिक पुरुषके लिये अपनी रुचिके अनुकूल सामग्री इकट्ठी करनेके लिये अनेकों पुस्तकोंको टटोलना पड़ता था और उन सबको अपने साथ २ रखना असंभव जैसा ही था। अत. यह एक ऐसी पुस्तक होगी जिस एक ही में मुमुक्षु अपनी रुचिके अनुसार सर्व प्रकारकी सामग्री प्राप्त कर सकेगा।

इसके संग्रह करनेमें बहुत समय व परिश्रम उठाना पड़ा है। अनेक ग्रंथोंको चुन २ कर मैंने श्री प० श्रेयांसकुमारजी को दिये और

[illegible] पद्य स्तोत्र [illegible] दोनों ने [illegible] विषयको [illegible]

[illegible] पद्य आदि [illegible], पूजन [illegible] इस प्रकरणमें [illegible] है।

(२) दूसरे [illegible] प्रकरणमें संसार [illegible], भोगोंसे विराग [illegible] मुख्यता वाले पद्यादिकों का [illegible] है।

(३) तीसरे अध्यात्म प्रकरणमें अपनी आत्माके [illegible] मुख्यता वाले एवं सात्विक विषयके [illegible] पद्य, स्तोत्र एवं ग्रन्थादिका संग्रह है।

उपरोक्त प्रकरणोंमें कई स्थानों पर संस्कृत श्लोक भी संग्रह किये गये हैं लेकिन समझने में सरलता हो इसलिये उनका हिन्दी भाषामें टीका भी साथमें साथ लगा दी गई है। इस ग्रन्थमें आये हुए अनेक पद्यादिकों की कविके नाम सहित एक २ पद्यके प्रथम चरणकी सूची बनवाकर लगाई गई है ताकि किसी भी विषयके किसी भी कविके किसी भी पदको ढूंढनेमें कोई असुविधा न हो। तथा प्रत्येक कविके द्वारा रचित कविता स्तोत्र आदि किन किन पृष्ठोंपर छपे हैं इसकी भी सूची बनवाकर लगादी गई है। इस ग्रन्थकी ५०० प्रतियोंका तो तीनों प्रकरणोंका एक पुस्तकके रूपमें प्रकाशन किया गया

है तथा ४०० प्रतियोंका हरएक प्रकरणका एक २ अलग २ पुस्तकके रूपमें प्रकाशन किया है ताकि जिज्ञासुओंको सुविधा रहे।

इस ग्रंथके तीनों प्रकरणोंमें ३२ आचार्यो व कवियों की ५४ पुस्तकों में से ८०४ स्तोत्र आदिका पद्य भाग ७७५ में संग्रह किया गया है, इसमें बहुत सी पुस्तकें जैसे जीलत विलास, बुध विलास आदिके इसी प्रकार अमृतचन्द्राचार्यके समयसार पर रचे गये कलश, बनारसीदासजी द्वारा रचित समयसार कलशाका पद्यानुवाद आदिको पूराका पूरा इस ग्रंथमें नहीं लिया गया है, बल्कि उनमें से चुन २ कर ग्राम ५ पद्यादि हा पुस्तकका आकार बहुत बढ़ जानेके भयसे लिये गये हैं अत जो पाठक विशेष रुचिवान हों, वे विशेष अध्ययनके लिये उन ग्रंथराजों की स्वाध्याय करें।

अन्तम में संग्रहके कर्ता श्री पं० श्रेयामकुमारजी शास्त्रीको उनके परिश्रमकी सराहना करते हुए धन्यवाद देता हूँ तथा प्रेसके मैनेजर बाबू नेमीचंदजी बाकलीवाल भी धन्यवादके पात्र हैं।

इस ग्रंथके छपनेमें कुछ अशुद्धियां रह गई हैं उनके लिये हम पाठकोंसे क्षमा मांगते हैं तथा निवेदन करते हैं कि वे शुद्धिपत्र द्वारा शुद्ध करके ग्रंथका उपयोग करें।

भवदीय —

नेमीचंद पाटनी

प्रधानमंत्री

श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

मारोठ (मारवाड़)

[illegible] न पृष्ठों पर हैं

॥ ॐ ॥

विषय-सूची

भक्तिप्रकरण पृष्ठ १ से १४१

वैराग्य प्रकरण पृष्ठ १४२ से ३२२



विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ

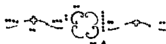
पृष्ठ

पृष्ठ

अध्यात्म प्रकरण पृष्ठ ३२५ से ७७५



पृष्ठ





आध्यात्मिक पाठ संग्रह

भक्ति प्रकरण



णमोकार महामन्त्र

णमो अरहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरीयाण,
णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण ।

चत्तारि मगल–अरहत मगल, सिद्ध मगल, साहू मगल,
केवलि-पण्णत्तो धम्मो मगल ।

चत्तारि लोगुत्तमा–अरहत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

चत्तारि सरण पव्वज्जामि–अरहन्त-सरण पव्वज्जामि,
सिद्धसरण पव्वज्जामि, साहू-सरण पव्वज्जामि,
केवलि पण्णत्तो धम्मो सरण पव्वज्जामि ।

दौलत विलास

दर्शनस्तुति (दौलतरामजी)

दोहा

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन ।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरिरजरहसविहीन ॥१॥

पद्धरि छन्द

जय वीतराग विज्ञानपूर ।
जय मोहतिमिरको हरन सूर ॥
जय ज्ञान अनंतानंत धार ।
दृग सुख वीरज मण्डित अपार ॥२॥
जय परम शांत मुद्रा समेत ।
भविजनको निज अनुभूति हेत ॥
भवि भागनवश जोगे वशाय ।
तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय ॥३॥
तुम गुण चिंतत निज पर विवेक ।
प्रगटै विघटैं आपद अनेक ॥
तुम जग भूषण दूषण वियुक्त ।
सब महिमा युक्त विकल्प मुक्त ॥४॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप ।
परमात्म परम पावन अनूप ॥
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन ।

स्वाभाविक परिणति मय अछीन ॥५॥
अष्टादश दोषविमुक्त धीर ।
स्वचतुष्टमय राजत गँभीर ॥
मुनि गणधरादि सेवत महन्त ।
नवकेवललब्धिरमा धरन्त ॥६॥
तुम शासन सेय अमेय जीव ।
शिव गये जाहिं जैहैं सदीव ॥
भवसागरमें दुख छार वारि ।
तारनको अवरन आप टारि ॥७॥
यह लखि निजदुखगद हरण काज ।
तुम ही निमित्त कारण इलाज ॥
जाने तातैं म शरण आय ।
उचरो निज दुख जो चिर लहाय ॥८॥
म भ्रम्यो अपनपो विसरि आप ।
अपनाये विधिफल पुण्य पाप ।
निजको परको करता पिछान ।
परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ९ ॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि ।
ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ॥
तन परिणतिमें आपो चितार ।
कबहूं न अनुभयो स्वपदसार ॥१०॥

तुमको बिन जाने जो कलेश ।
पाये सो तुम जानत जिनेश ॥
पशु नारक नर सुरगति मँझार ।
भव धर धर मर्यो अनन्त बार ॥११॥
अब काल लब्धि बलतैं दयाल ।
तुम दर्शन पाय भयो खुश्याल ॥
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व ।
चाख्यो स्वातमरस दुख निकन्द ॥१२॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ ।
बिछुरै न कभी तुव चरण साथ ।
तुम गुणगणको नहि छेव देव ।
जग तारनको तुव बिरद एव ॥१३॥
आतमके अहित विषय कषाय ।
इनमें मेरी परिणति न जाय ॥
मैं रहूँ आपमें आप लीन ।
सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन ॥१४॥
मेरे न चाह कछु और ईश ।
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश ॥
मुझ कारजके कारन सु आप ।
शिव करहु, हरहु मम मोहताप ॥१५॥
शशि शांतिकरन तप हरन हेत ।

स्वयमेव तथा तुम कुशल दत ॥
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय,
त्यों तुम अनुभवतें भव नशाय ॥१६॥
त्रिभुवन तिहुँकाल मँझार कोय ।
नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय ॥
मो उर यह निश्चय भयो आज ।
दुख जलधि उतारन तुम जिहाज ॥१७॥

❀ दोहा ❀

तुम गुणगणमणि गणपती, गनत न पावहिं पार ।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नम त्रियोग मँझार ॥१८॥

॥ इति ॥

(१)

जिनवर आनन-भान[1] निहारत, [2]भ्रमतमघान नसाया है ॥ टेक
वचन किरन प्रसरनतें भविजन, [3]मनसरोज सरसाया है ।
भवदुखकारन सुखविसतारन, कुपथ सुपथ दरसाया है ॥१॥
विनसाइ [4]कज जलसरसाई, निशिचर [5]समर दुराया है ।
[6]तस्कर प्रबल कषाय पलाये, जिन [7]धनबोध चुराया है ॥२॥
लखियत [8]उड़ु न कुभाव कहूँ अब, मोह उलूक लजाया है।

---

१ मुखरूपी सूर्य। २ अज्ञानरूपी अंधकार समूह।
३ हृदयकमल। ४ काई दूसरे पक्षमें-अज्ञानरूपी राह।
५ रामद्वेष। ६ चोर। ७ ज्ञानरूपी धन। ८ तारे।

हम कौरको शान नश्या निज, परिणति चकवी पाया है।३
कर्मंद उरजराप बध गिर भवि अलि गुंजन पाया है।
दौल उजास निजातम अनुभव, उर जग अन्तर छाया है॥४॥

(२)

निरखत जिनचन्द्र वदन, स्वपदसुरुचि आई ॥निरखत०॥टेक॥
प्रगटी निज आनकी, पिछान ज्ञान भानकी,
कला उदोत होत काम 'जामिनी पलाई ॥निरखत०॥१॥
शास्वत आनन्द स्वाद, पायो विनस्यो विषाद,
आनमें अनिष्ट इष्ट, कल्पना नसाई ॥ निरखत० ॥ २ ॥
साधी निजसाधकी, समाधि मोहव्याधिकी,
उपाधिको विराधिकैं, आराधना सुहाई ॥ निरखत० ॥ ३ ॥
धन दिन छिन आज सुगुनि, चिंते जिनराज अब,
सुधरे सब काज दौल, अचल रिद्धि पाई ॥निरखत०॥ ४ ॥

(३)

जयत आनन्द-जननि दृष्टि परी माई ।
तबतें संशय विमोह भरमता विलाई ॥ जयत० ॥ टेक ॥
मैं हूँ चितचिह्न भिन्न, परतैं पर जड स्वरूप
दोउनकी एकता सु, जानी दुखदाई ॥ जयत० ॥ १ ॥

१ आभा। २ चकवा। ३ कमलरूपा कमलाके कोप बने हुए थे उनसे। ४ भव्यजीवरूपा भौंरा। ५ मुख। ६ रात्रि।

रागादिक यथ हेत, वधन बहु निपति देत।
मरग हित जान तासु, हेतु ज्ञानताई ॥ जवतें० ॥ २ ॥
मव सुखमय शिव है तसु, कारन निज 'भ्रारन इमि,
तत्त्वकी निचारन जिन,-वानि सुधि करार्इ ॥ जवतें० ॥३॥
विषयचाहज्वालत द,-ह्यो अनवकालतें सु,-
धाबुस्यात्पदाकगाह,-तें प्रशान्ति आर्इ ॥ जवतें० ॥ ४ ॥
या विन जगजालमें न, शरन तीनकालमें सँ,-
भाल चित भजो सदीव दौल यह सुहाई ॥ जवतें० ॥ ५ ॥

(४)

पासअनादिनिया मेरी, हरन पास परमेशा हैं।
चिद्विलास सुखराशप्रकाशवितरन त्रिभौनदिनेशा हैं॥टेक॥
दुर्निवार कदर्पसर्पको दर्पनिदरन खगेशा हैं।
दुठ शठ कमठ-उपद्रव प्रलय-समीर-सुवर्णनगेशा हैं॥पा०॥१॥
ज्ञान अनंत अनंत दर्श बल, सुख अनंत पदमेशा हैं।
स्वानुभूति-रमनी-वर भवि-भव-गिर पवि शिवसदमेशा हैं

१ निर्जरा। २ स्याद्वादरूपी अमृतके अवगाहन करनेसे। ३ अनादि अविद्यारूपी फाँसी। ४ पार्श्वनाथ भगवान। ५ तीन लोकके सूर्य। ६ कामदेव रूपी सर्पको। ७ गरुड़ पक्षी। ८ दुष्ट, शठ ऐसे कमठके उपद्रवरूपी प्रलयकालकी आँधी को सहन करने वाले सुमेरुपर्वत हो। ९ लक्ष्मीके ईश। १० स्वानुभवरूपी स्त्री के पति। ११ भव्योंके संसार रूपी पर्वतके नष्ट करनेको वज्रके समान। १२ मोक्ष महलके स्वामी।

ऋषि मुनि यति अनगार सदा तिस, सेवत [1]पादसरोजा है।
वचनचन्द्रते अमृत गिरामृत, नाशन जन्म कलेशा है ॥पाम०॥
नाममंत्र जे जपै भव्य तिन, अघ अहि नशत [3]अशेषा है।
सुर अहमिन्द्र खगेन्द्र चन्द्र ह्वै, अनुक्रम होहिं जिनेशा है॥
लोक अलोक ज्ञेय-ज्ञायक पै, रत निजभावचिदेशा है।
रागविना सेवकजन तारक [4]मारक मोह न द्वेषा है। पाम०।
भद्र समुद्र विवर्द्धन अद्भुत पूरनचन्द्र सुवेशा है।
दौल नमै पद तासु जासु, शिवथल [5]समेदअचलेशा है ॥पा०॥

(५)

मैं हरियायक नाम जपत, छूट जाय भवसागरिया। ॥सोंव० टेक।
[6]दुरित दुरत पुन पुरत [7]फुरत गुन, आतमकी निधि आगरिया।
विघटत है परदाह चाह झट गटकत समरस गागरिया॥
कटत कलङ्क कर्म [10]कलसायन प्रगटत शिवपुर [11]डागरिया।
फटत घटाघन मोह छोह हट, प्रगटत भेदज्ञान धरिया॥
कृपाकटाक्ष तुमारीहीतें, जुगलनागविपदा टरिया।
[12]धार भये सो मुक्तिरमावर, दौल नमै तुव पागरिया ॥मैं०॥

---

१ चरण कमल। २ वचनरूपी अमृत। ३ सब। ४ मारने वाले। ५ सम्मेदशिखर। ६ पाप। ७ छिपते हैं। ८ स्फुरित होता है। ९ पीते हैं। १० कालिमा। ११ मोक्षका रास्ता। १२ रागद्वेष। १३ तुम्हारा नाम धारण करके।

(६)

म आयो, जिन शरण तिहारी ।
मैं चिरदुखी विभावभावतैं, स्वाभाविक निधि आप बिसारी ।१
रूप निहार धार तुम गुन सुन, वैन होत भवि शिवमगचारी ।
यों मम कारजके कारन तुम, तुमरी सेव एक उर धारी ॥२
मिल्यौ अनन्त जन्मतैं अवसर, अब विनऊँ हे भवसरतारी ।
परमें इष्ट अनिष्ट कल्पना, दौल कहै झट मेट हमारी । मैं०।३।

(७)

हे जिन तेरे मैं शरणै आया ।
तुम हो परम दयाल जगतगुरु, मैं भवभव दुख पाया ।।टेक।।
मोह [1]महादुठ घेर मोहि प्रभु, [2]भवकानन भटकाया ।
नित निज ज्ञानचरननिधि विसरयौ, तनधनकर अपनाया ।१
[3]निजानन्दअनुभवपियूष तज, [4]विषयहलाहल खाया ।
मेरी भूल मूल दुखदाई, निमित [5]मोहविधि थाया । हे०।२।
मो दुठ होत शिथिल तुमरे ढिग, और न हेतु लगाया ।
शिवस्वरूप शिवमगदर्शक तुम, सुयश मुनीगन गाया । हे०।३।
तुम हो सहज निमित जगहितके, मो उर निश्चय भाया ।
भिन्न होहुँ विधितैं सो कीजे, दौल तुम्हैं सिर नाया । हे०।४।

(८)

ह जिन मेरी, ऐसी बुधि कीजै ॥ हे जिन० ॥ टेक ॥

१ महा दुष्ट । २ संसाररूपी वन । ३ अमृत । ४ विष ।
५ कर्म ।

रागद्वेषदावानलतें बचि समतारसमें भीजै ॥ह जिन० ॥ १ ॥
परमें त्याग अपनपो निजमें लाग न कबहूँ छीजे ॥ २ ॥
कर्म कर्मफलमाहिं न राचै, ज्ञानसुधारस पीजै ॥ह० ॥ ३ ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरननिधि, ताकी प्राप्ति करीजे ॥ह०॥४॥
मुझ कारजके तुम कारन वर, अरज दौलकी लीजै ॥ह०॥ ५॥

(९)

शिवमगदरसावन रावरो दरस ॥ शिव० ॥ टेक ॥
[3]परपद चाह दाह गद नाशन, तुम वचभेषज पान सरस ।१
गुणचिंतवत निज अनुभव प्रगटै, विघटै, विधिठग दुविध तरस ।
दौल अवाची संपति सांची, पाय रहै थिर राच सरस ॥३

(१०)

मोहि तारो जी क्यों ना, तुम तारक त्रिजगत्रिकालमें ॥टेक॥
मैं भवउदधि पर्यो दुख भोग्यो, सो दुख जात कह्यो ना ।
जामनमरन अनन्ततनो तुम, जाननमांहि छिप्यो ना ।मो०।
विषय विरसरस विषम भख्यो मैं, चख्यो न ज्ञान सलोना ।
मेरी भूल मोहि दुख देवै, कर्मनिमित्त भलो ना ॥मोहि०॥
तुम पदकंज धरे हिरदै जिन, सो भवताप तप्यो ना ।
सुरगुरुहूके [6]वचनकरनकर, तुम जसगगन [7]नप्यौ ना ।मो०

१ अपनापन । २ आपको । ३ पुद्गल सम्बन्धी चाहरूपी दाहरूपी रोग नाश करनेके लिये । ४ जिसका वर्णन न हो सके । ५ चरणकमल । ६ वचनरूपी किरणोंसे । ७ मापा नहीं गया ।

कुगुरु कुदेव कुश्रुत सेये मैं, तुम मत हृदय धर्यौ न ।
परमनिराग ज्ञानमय तुम जाने बिन काज सर्यौ न ॥
मोसम पतित न और दयानिधि, पतितउधार तुम्हीं न ।
दौलतनी अरदास यही है, फिर भवबासमा दीन ॥

(१८)

थारा तो बनामें सरधान भरे छे,
म्हारे छबिनिरखत हिय सरसे ॥
तुमधुनिघन परचहनदहन,
वर समता-रसझर बरसै ॥ थारा० ॥ १ ॥
रूपनिहारत ही बुधि ह्वै सो,
निजपरचिह्न जुदे दरसै ।
मैं चिदंक अकलंक अमल थिर,
इन्द्रियसुखदुख जड़ फरसै ॥ थारा० ॥ २ ॥
ज्ञाननिरागसुगुनतुम तिनकी
प्रापतिहित सुरपति तरसै ।
मुनि बडभाग लीन तिनमें नित,
दौल धवल उपयोग रसै ॥ थारा० ॥ ३ ॥

१ पापी । २ पापियोंका उद्धार करनेवाला । ३ आपका वचनरूप मेघ । ४ परपदार्थोंकी चाहरूपी अग्निको बुझानेवाला है । ५ चैतन्य स्वरूप । ६ इन्द्रिय जन्य सुख दुःख जड़का स्पर्श करते हैं मेरा नहीं, मुझे सुख दुःख नहीं होते । ७ निशुद्ध, निर्मल ।

(१२)

त्रिभुवन आनँदकारी जिन छवि, थारी नैन निहारी ॥टेक॥
ज्ञान अपूरब उदय भयौ अब, या दिनकी बलिहारी।
मो उर मोद बढ्यौ जु नाथ सो, कथा न जात उचारी ॥१॥
सुन घनघोर मोरमुद ओर न, ज्यों निधि पाय भिखारी।
जाहि लखत झट झरत मोहरज, होय सो भवि अविकारी ॥२॥
जाकी सुन्दरता सु पुरन्दर, शोभ लजावनहारी।
निज अनुभूति सुधाछवि पुलकित, वदन मदन अरिहारी ॥३॥
शूल दुकूल न बाला माला, मुनिमनमोद प्रसारी।
अरुन न नयन सैन भ्रम ना नहिं, लंक सम्हारी ॥ ४ ॥
तातैं विधिविभाव क्रोधादि न, लखियत हे जगतारी।
पूजत पातकपुंज पलावत, ध्यावत शिवविस्तारी ॥त्रि०॥५॥
कामधेनु सुरतरु चिंतामनि, इकभव सुखकरतारी।
तुम छवि लखत, मोदतैं जो सुख, सो तुमपद दातारी ॥६॥
महिमा कहत न लहत पार सुर, गुरहूकी बुधिहारी।
और कहै किम दौल चहै इम, देहु दशा तुमधारी ॥त्रि० ॥७

(१३)

निज छवि लखत यह बुधि भयी ॥ जिन० ॥ टेक ॥
मैं न रहूं चिन्मय तन, जड़ फरसरसमयी ॥जिन०॥१॥

१ हृदय। २ पार नहीं। ३ इन्द्रकी शोभा। ४ त्रिशूल। ५ वस्त्र। ६ कमर। ७ पापोंका समूह। ८ बृहस्पतिकी भी। ९ चैतन्यस्वरूप।

अशुभशुभफल कर्म सुखदुख, पररत्ता सब गयी।
रागदोष निभार चालित, नानता थिर थया ॥जिन०॥३॥
परिग्रहन आकुलता दहन, विनशि समता नया।
दौल पूरवअलभ आनँद, लयौ भवथिति जयी॥जिन॥४॥

(१८)

आज मैं परम पदारथ पायौ, प्रभुचरनन चित लायौ॥टेक॥
अशुभ गये शुभ प्रगट भए हैं, सहज कल्पतरु छायौ॥१॥
ज्ञानशक्ति तप ऐसी जाकी, चेतनपद दरसायौ॥आज०॥२॥
अष्टकर्म रिपु जोधा जान शिव अंकुर जमायौ॥आज०॥३॥

भागचन्द भजनमाला

दर्शनस्तुति

॥ दोहा ॥

विश्वभावव्यापी, तदपि एक विमल चिद्रूप।
ज्ञानानन्दमयी सदा, जयवन्तौ जिनभूप॥१॥

॥ छन्द ॥

सफलीं मम लोचन[1] द्वंद, देखत तुमको जिनचन्द॥
मम तनमन शीतल एम, अमृतरस सींचत जेम॥२॥
तुम बोध अमोघ अपारा, दर्शन पुनि सर्व निहारा।
आनन्द अतिन्द्रिय राजै, बल अतुल स्वरूप न त्याजै॥३॥

[1] दोनों नेत्र।

स्यादिक स्वगुन अनन्ता, अन्तर्लक्ष्मी भगवन्ता ।
बाहिज विभूति बहु सोहै, वर्णन समर्थ कवि को है ॥४॥
तुम वृच्छ अशोक सुगठ, सब शोक हरनको दच्छ ।
तहाँ चञ्चरीक गुंजार, मानों तुम स्तोत्र उचार ॥५॥
शुभ रत्नमयूख विचित्र, सिंहासन शोभ पवित्र ।
तहँ वीतराग छवि सोहै, तुम अन्तरीक्ष मन मोहै ॥६॥
वर कुन्द कुन्द अवदात, चामरव्रज सर्व सुहात ।
तुम उपर मघवा ढारैं, धर भक्ति भाव अघ टारैं ॥७॥
[4]मुक्ताफल माल समेत, तुम उपर छत्रत्रय सेत ।
मानो तारान्वित चन्द, त्रय मूर्ति धरी दुति वृन्द ॥८॥
शुभ दिव्य पटह बहु बाजैं, अतिशय युत अधिक विराजैं ।
तुमको जस घोंक मानैं, त्रैलोक्यनाथ यह जानैं ॥९॥
हरिचन्दन [5]सुमन सुहावे, दशदिशि सुगन्धि महकावे ।
[6]अलिपुञ्ज विगुञ्जत जावैं, शुभ वृष्टि होत तुम सामैं ॥१०॥
भामण्डल दीप्ति अखण्ड, छिप जात कोट मार्तंड ।
जग लोचनको सुखकारी, मिथ्यातम पटल निवारी ॥११॥
तुमरी दिव्यध्वनि गाजै, बिन इच्छा भविहित काज ।
जीवादिक तत्त्व प्रकाशी, भ्रमतमहर सूर्यकलासी ॥१२॥
इत्यादि विभूति अनन्त, बाहिज अतिशय अरहन्त ।

१ भौंरे । २ किरण । ३ इन्द्र । ४ मोती । ५ पुष्प
६ भौंरोंका समूह ।

निरखत मन भ्रमतम भागा। हित अहित ज्ञान उर जागा ॥१३॥
तुम सब लायक उपगारी। मैं दीन दुखी संसारी।
तातैं सुनिये यह अरजी। तुम शरण लियो जिनवरजी ॥१४॥
मैं जीव द्रव्य बिन अंग। लागो अनादि विधि संग।
ता निमित्त पाय दुख पाये। हम मिथ्यातादि महा ये ॥१५॥
निजगुण कबहूँ नहिं भाये, सब परपदार्थ अपनाये।
रति अरति करी सुखदुखमें, ह्वै करि निजधर्म विमुख मैं ॥१६॥
पर-चाह-दाह नित दाहो। नहिं शांत सुधा अवगाहो।
पशु नारक नर सुरगनमें, चिर भ्रमत भयो भ्रमतममें ॥१७॥
कीनें बहु जामन मरना। नहिं पायो साचो शरना।
अब भाग उदय मम आयो। तुम दर्शन निर्मल पायो ॥१८॥
मन शांत भयो उर मेरो। बाढ्यो उछाह शिवकेरो।
पर विषय रहित आनन्द। निज रस चाख्यो निरद्वन्द ॥१९॥
मुझ काजतनें कारज हो। तुम देव तरन तारन हो।
तातैं ऐसी अब कीजे। तुम चरनभक्ति मोहि दीजे ॥२०॥
दृग ज्ञान-चरन परिपूर। पाऊँ निश्चय भवचूर।
दुखदायक विषय कषाय। इनमें परनति नहिं जाय ॥२१॥
सुरराज समाज न चाहों। आतम समाधि अवगाहों।
पर इच्छा तो मनमानी। पूरो सब केवलज्ञानी ॥२२॥

ॐ दोहा ॐ

गनपति पार न पावहीं, तुम गुनजलधि विशाल।
भागचन्द तुव भक्ति ही, करै हमैं वाचाल ॥२३॥

दर्शन स्तुति

❀ गीतिका ❀

तुम परम पावन देख जिन अरि रज रहस्य विनाशनं।
तुम ज्ञान दृग जलवीच त्रिभुवन कमलवत प्रतिभासनं॥
आनन्द निजज अनन्त अन्य अचिंत संतत परनये।
बल अतुल कलित स्वभावतें नहिं खलित गुन अमिलित थये॥
सब राग रुष हनि परम श्रवन स्वभाव घन निर्मल दशा।
इच्छारहित भवहित खिरत, वच सुनत ही भ्रमतम नशा॥
एकान्त-गहन-सुदहन स्यात्पद, बहन मय निजपर दया।
जाके प्रसाद विषाद बिन, मुनिजन सपदि शिवपद लहा॥
भूषन वसन सुमनादिविन तन, ध्यानमय मुद्रा दिपै।
नासाग्र नयन सुपलक हलय न, तेज लखि खगगन छिपै॥
पुनि वदन निरखत प्रशम जल, वरषत सुहरषत उर धरा।
बुधि स्वपर परखत पुन्यआकर, कलिकलिल दुरखत जरा।
इत्यादि बहिरन्तर असाधारन, सुविभव निधान जी।
इन्द्रादिवंद पदारविंद, अनिंद तुम भगवान जी॥
मैं चिर दुखी परचाहतें, तुम धर्म नियत न उर धरो।
परदेवसेव करी बहुत, नहिं काज एक तहाँ सरो॥४॥
अब भागचन्द्र उदय भयो, मैं शरन आयो तुम तने।
इक दीजिये वरदान तुम जस, स्वपददायक बुध भने॥
परमाहिं इष्ट अनिष्ट-मति तजि, मगन निज गुनमें रहों।
दृग-ज्ञान-चरन सपूर्ण पाऊँ, भागचन्द न पर चहों॥५॥

(३) राग प्रभाती।

प्रभु तुम मूरत दृगसों निरखे हरखै मोरो जीयरा ॥ टेक ॥
[1]भुजत कषायानल पुनि उपजै, ज्ञानसुधारस सीयरा ॥ १ ॥
वीतरागता प्रगट होत है, शिवथल दीसै नीयरा। प्रभु०।२।
भागचन्द तुम चरन कमलमें, वसत सन्तजन हीयरा। प्रभु०।३।

(४) राग ठुमरी।

वीतराग जिन महिमा थारी, वरन सकै को जन त्रिभुवनमें।
तुमरे अनंत चतुष्टय प्रगट्यो, निःशेषावरनच्छय छिनमें।
मेघ पटल विघटनतें प्रगटत, जिमि [2]मार्तंड प्रकाश गगनमें॥
अप्रमेय ज्ञेयनके ज्ञायक, नहिं परिनमत तदपि ज्ञेयनमें।
देखत नयन अनेक रूप जिमि, मिलत नहीं पुनि निज विषयनमें॥
निज उपयोग आपने स्वामी, गाल दिया निश्चल आपनमें।
है असमर्थ बाह्य निकसनको, लवन घुला जैसैं [3]जीवनमें॥
तुमरे भक्त परम सुख पावत, परत अभक्त अनन्त दुखनमें।
जैसो मुख देखो तैसो है, भासत जिम निर्मल दरपनमें॥
तुम कषाय विन परम शांत हो, तदपि दक्ष कर्मारिहतनमें।
जैसे अतिशीतल तुषार पुनि, [4]जार देत [5]द्रुम भारि [6]गहनमें॥
अब तुम रूप जथारथ पायो, अब इच्छा नहिं अन कुमतनमें।
भागचन्द अमृतरस पीकर, फिर को चाहै विष निज मनमें॥

१ नष्ट होजाती है। २ सूर्य। ३ जल। ४ जला देता है
५ वृक्ष। ६ वनमें।

(५) राग जंगला ।

तुम गुनमनिनिधि हो अरहन्त ॥टेक॥

पार न पावत तुमरो गनपति चार ज्ञान धरि संत ॥१॥

ज्ञान कोप मद लोभ रहित तुम अलख अमूर्ति अनंत ॥२॥

हरिगन अर्चत तुम 'पदवारिज परमेष्ठि भगवंत ॥३॥

भागचन्द्र परमन्दिरम, यसद्ध सदा जयवंत ॥४॥

(६) राग मारु ।

स्वामी तुमगुन अपरंपार, चन्द्रोज्ज्वल अविकार ॥टेक॥

जब तुम गर्भमाहि आय, तब सब सुरगन मिलि आये ।

रतन नगरीमें वरषाये, अमित अमोघ सुढार ॥स्वा०॥१

जन्म प्रभु तुमने जब लीना, न्हवन मंदिरपै हरि कीना ।

भक्त करि 'सची सहित भीना बोला जयजयकार ॥स्वा०॥२

जगत छनभगुर जब जाना, भय तब नगनवृती बाना ।

स्तवन लौकांतिक सुर ठाना, त्यागराजको भार ॥स्वा०॥३

घातिया प्रकृति जबै नासी, चराचर वस्तु सबै भासी ।

धर्मकी वृष्टि करी स्वामी, केवलज्ञान भंडार ॥स्वा०॥४

अघाता प्रकृति सुविघटाई, मुक्तिकाता तब ही पाई ।

निराकुल आनंद असहाई, तीनलोक सरदार ॥स्वा०॥५

पार गनधर हू नहि पावै, कहां लगि भागचन्द गावै ।

तुम्हारे चरणांबुज ध्यावै, भवसागरसों तार ॥स्वामी०॥६॥

१ चरणकमल । ८ इन्द्र । ९ इन्द्राणी ।

(७) राग मल्हार।

बरसत ज्ञान सुनीर हो श्री जिनमुखघनसों ॥टेक॥
शीतल होत सुबुद्धिमेदिनी मिटत भवातपपीर ॥बर०॥१॥
स्याद्वाद नय दामिनि दमकै, होत निनाद गँभीर ॥बर०॥२॥
करुनानदी बहै चहुँ दिशितैं, भरी सो दोई तीर ॥बर०॥३॥
भागचन्द अनुभवमन्दिरको, तजत न संत सुधीर ॥बर०॥४॥

(८) राग धनाश्री।

प्रभु थाक लखि मम चित हरषायो ॥टेक॥
सुन्दर चिंतारतन अमोलक, रंकपुरुष जिमि पायो ॥प्र०॥१॥
निर्मलरूप भयो अब मेरो, भक्तिनदीजल न्हायो ॥प्र०॥२॥
भागचन्द अब मम करतलमें अविचल शिवथल आयो ॥३॥

(९) राग जाड़ा।

मैं तुम शरन लियो, तुम साँचे प्रभु अरहन्त ॥टेक॥
तुमरे दर्शन ज्ञान-मुकुरमें दरशज्ञान झलकत ।
अतुल निराकुल सुख आस्वादन, वीरज अरज अनंत ॥मैं०॥१॥
रागद्वेष विभाव नाश भये, परम समरसी संत ।
पद देवाधिदेव पायो किये, दोष क्षुधादिक अंत ॥मैं०॥२॥
भूषण वसन शस्त्र कामादिक, करन विकार अनन्त ।
तिन बिन तुम परमौदारिक तन, मुद्रा सम शोभंत ॥मैं०॥३॥
तुम बानीतैं धर्मतीर्थ जग-माहिं त्रिकाल चलंत ।

१ निचला । २ हथेलीमें । ३ दर्पण ।

निजकल्याणहेतु इन्द्रादिक, तुम पदसेव करत ॥मैं०॥४॥
तुम गुन अनुभवतें निज-पर-गुन, दरसत अगम अचिंत।
भागचन्द निजरूपप्राप्ति अब, पावैं हम भगवंत ॥मैं०॥५॥

(१०) राग दीपचन्दी सोरठी।

लखिके स्वामी रूपको, मेरा मन भया चंगा जी ॥टेक॥
विषम नष्ट गरुड़ लखि जैसे, भगत भुजंगा जी ॥ल०॥१॥
शीतल भाव भये जन ध्यायो, भक्ति सुगंगा जी ॥ल०॥२॥
भागचन्द अब मेरे लागो, निजरसरंगा जी ॥ल०॥३॥

(११) साधु स्तुति।

ऐसे जैनी मुनिमहाराज, सदा उर मो बसो ॥टेक॥
तिन समस्त परद्रव्यनिमाहीं, अहंबुद्धि तजि दीनी।
गुन अनंत ज्ञानादिक मम पुनि, स्वानुभूति लखि लीनी ॥१॥
जे निजबुद्धिपूर्व रागादिक सकल विभाव निवारैं।
पुनि अबुद्धिपूर्वकनाशनको, अपने शक्ति सम्हारैं ॥ऐ०॥२॥
कर्म शुभाशुभ बंध उदयमें, हर्ष विषाद न राखैं।
सम्यग्दर्शनज्ञानचरनतप, भावसुधारस चाखैं ॥ऐ०॥३॥
परकी इच्छा तजि निजबल सजि, पूरव कर्म खिरावैं।
सकल कर्मतैं भिन्न अवस्था, सुखमय लखि चित चावैं ॥४॥
उदासीन शुद्धोपयोगरत सबके दृष्टा ज्ञाता।
बाहिजरूप नगन समताकर, भागचन्द सुखदात ०॥५॥

१७ राग-खमाच ।

श्रीगुरु हैं उपगारी ऐसे वीतराग गुनधारी वे ॥ टेक ॥
स्वानुभूति रमनी सग कीडैं, ज्ञानसम्पदा भारी वे ।श्री०।१।
ध्यान पींजरामें जिन रोको, चित खग चचलचारी वे ।श्री०।२।
तिनके चरनसरोरुह ध्यावै, भागचन्द अघटारी वे ।श्री०।३।

१८ राग-परलिगड़ा

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं ॥ टेक ॥
आप तरैं अरु परको तारैं, निष्प्रेही निर्मल हैं ॥एसे०॥१॥
तिलतुषमात्र संग नहिं जिनके, ज्ञान ध्यान-गुन-बल हैं ।ऐ०।२।
शांत दिगम्बर मुद्रा जिनकी, मन्दरतुल्य अचल हैं ।ऐ०।३।
भागचन्द तिनको नित चाहै, ज्यौं कमलनिको अल हैं ।ऐ०।४।

(१९) गुरु-स्तुति राग सारग

श्रीमुनि राजत समता सग । कायोत्सर्ग समायत अग ।।टेक।।
करतैं नहिं कछु कारज तातैं, आलम्बित भुज कीन अभग ।
गमन काज कछु हू नहिं तातैं, गति तजि छाके निज रसरग ॥
लोचनतैं लखिवौ कछु नाहीं, तातैं नासा दृग अचलग ।
सुनिवे जोग रह्यो कछु नाहीं, तातैं प्राप्त इकत सुचग ॥
तहँ मध्याह्नमाहिं निज ऊपर, आयो उग्र प्रताप पतग ।
कैधौं ज्ञान पवनबल प्रज्वलित, ध्यानानलसौं उछलि फुलिंग ॥
चित्त निराकुल अतुल उठत जहँ, परमानन्द पियूषतरग ।
भागचन्द ऐसे श्रीगुरुपद, वदत मिलत स्वपद उत्तग ।श्री०।

(१४)

धन धन जैनी साधु अबाधित, तत्त्वज्ञानविलासी हो ।।टेक।।
दर्शन-बोधमई निजमूरति, जिनको अपनी भासी हो ।
त्यागी अन्य समस्त वस्तुमें अहंबुद्धि दुखदा सी हो।।धन०।।
जिन अशुभोपयोगकी परनति, सत्तासहित विनाशी हो ।
होय कदाच शुभोपयोग तो, तहँ भी रहत उदासी हो ।धन०।
छेदत जे अनादि दुखदायक, दुविधि बंधकी फांसी हो ।
मोह क्षोभरहित जिन परनति, विमल मयंककलासी हो ।।
विषय-चाहदव दाह बुझावन, साम्य सुधारस-रासी हो ।
भागचन्द ज्ञानानन्दी पद, साधत सदा हुलासी हो ।धन०।

(१५) राग परज

सम आराम विहारी, साधुजन सम आराम विहारी ।।टेक।।
एक कल्पतरु पुष्पन सेती, जजत भक्ति विस्तारी ।
एक कंठबिच सर्प नाखिया, क्रोधदर्पजुत भारी ।।
राखत एक वृत्ति दोउनमें, सबहीके उपगारी ।।सम०।।१।।
सारंग हरिबाल चुखावै, पुनि मराल मंजारी ।
व्याघ्रबालकरि सहित नन्दिनी, व्याल नकुलकी नारी ।।
तिनके चरनकमल आश्रयतें, अरिता सकल निवारी ।सम०।
अक्षय अतुल प्रमोद विधायक, ताको धाम अपारी ।
काम धरा विच गढ़ी सो चिरतें,आतमनिधि अविकारी ।।
खनत ताहि लैकर करमें जे, तीक्षण बुद्धि कुदारी ।।सम०।।

निज शुद्धोपयोगरस चाखत, पर ममता न लगारी।
निज सरधान ज्ञान चरनात्मक, निश्चय शिवमगचारी॥
भागचन्द ऐसे श्रीपति प्रति, फिर फिर ढोक हमारी॥मम०॥

(४६) साधुस्तुति (दौलतरामजी)

जिन रागदोषत्यागा वह सतगुरू हमारा॥ जिन०॥टेक॥
तज राजरिद्ध तृणवत निज काज सँभारा॥ जिन०॥१॥
रहता है वह वनखण्डमें, धरि ध्यान कुठारा।
जिन मोह महातरुको, जड़मूल उखारा॥ जिन०॥२॥
सर्वांग तज परिग्रह दिगअम्बर धारा।
अनतज्ञानगुनसमुद्र चारित्र भँडारा॥ जिन०॥ ३॥
शुक्लाग्निको प्रजाल्यके वसु कानन जारा।
ऐसे गुरूको दौल है, नमोऽस्तु हमारा॥ जिन०॥ ४॥

(१७)

कबधौं मिलें मोहि श्रीगुरु मुनिवर, करि हैं भवदधि पारा हो॥टे०
भोगउदास जोग जिन लीनों, छाड़ि परिग्रह भारा हो।
इन्द्रियदमन वमन मद कीनों, विषय कषाय निवारा हो॥
कंचन काच बराबर जिनके, निंदक वंदक [२]सारा हो।
दुर्धर तप तपि सम्यक् निज घर, मनवचतनकर धारा हो॥
ग्रीषम गिरि हिम सरितातीरें, पावस तरुतर ठारा हो।
करुणाभीन चीन त्रस थावर ईर्यापथ समारा हो॥कब०॥

१ वनमें। २ 'लान' ऐसा भी पाठ है।

[1]मार मार [2]व्रत धार शील दृढ़, मोह महामल टारा हो।
मास छमास उपास वास वन, प्रासुक करत अहारा हो॥
आरत[3]रौद्र[4] लेश नहिं जिनकें, धर्म शुक्ल चित धारा हो।
ध्यानारूढ़ गूढ़ निज आतम, शुधउपयोग विचारा हो॥
आप तरहिं औरनको तारहिं, भवजलसिंधु अपारा हो।
दौलत ऐसे जैनजतिनको, नितप्रति धोक हमारा हो॥

(१८)

धनि मुनि जिनकी, लगी [5]लौ शिव ओरनै[6] ॥ध्रु०॥टेक॥
सम्यग्दर्शनज्ञानचरन निधि, धरत हरत भ्रमचोरनै ॥१॥
यथाजातमुद्राजुत[7] सुन्दर, सदन [8]विजन गिरिकोरनै।
तृनकंचन अरि स्वजन गिनत सम, निंदन और [9]निहोरनै॥
भवसुखचाह सकल तजि बल सजि, करत द्विविधतप घोरनै।
परम विरागभाव पवितैं[10] नित, चूरत करम कठोरनै॥
छीन शरीर न हीन चिदानन, मोहत मोह झकोरनै।
जग तप हर [11]भवि कुमुद निशाकर, मोदन दौल चकोरनै॥

१ कामदेवको मारकर। २ धर तप तपि समकित गहि निज चित, धरि मनवचतन सारा हो। मासमास उपवास वासवन ऐसा भी पाठ है। ३ आर्त्तध्यान। ४ रौद्रध्यान। ५ लगन। ६ "नै" विभक्ति सब जगह 'को' के अर्थमें है। ७ नग्न दिगम्बर। ८ निर्जन। ९ प्रार्थना करनेको। १० परम वैराग्यके भावरूपी वज्रसे। ११ भव्यरूपी कमलिनीको चन्द्रमा।

(१९) साधु-स्तुति (द्यानतरायजी)

धनि धनि ते मुनि गिरिवनवासी ॥टेक॥
मार मार जगजार जारते, द्वादश व्रत तप अभ्यासी ॥ध०॥१॥
कौडी लाल पास नहिं जाके जिन छेदी आसापासी ।
आतम आतम, पर-पर जानै, द्वादश तीन प्रकृति नासी ॥२॥
जा दुख देख दुखी सब जग ह्वै, सो दुख लख सुख ह्वै तासी ।
जाको सब जग सुख मानत है, सो सुख जान्यो दुखरासी ॥३॥
बाहज भेष कहत अंतर गुण, सत्य मधुर हितमितभासी ।
द्यानत ते शिवपथपथिक हैं, पाँव परत पातक जासी ॥४॥

(२०) साधु-स्तुति (भूधरदासजी)

वे मुनिवर कब मिलि हैं उपगारी ॥टेक॥
साधु दिगम्बर नगन निरम्बर, संवरभूषणधारी ॥वे०॥१॥
कंचन काँच बराबर जिनके, ज्यों रिपु त्यों हितकारी ।
महल मसान मरन अरु जीवन, सम [2]गरिमा अरु [3]गारी ॥२॥
सम्यग्ज्ञान प्रधान पवन बल, तप [4]पावक [5]परजारी ।
शोधत जीव सुवर्ण सदा जे, काय-कारिमा टारी ॥३॥
जोरि जुगल कर भूधर विनवै, तिन पद ढोक हमारी ।
भाग उदय दरसन जब पाऊँ, ता दिनकी बलिहारी ॥वे०॥४॥

१ कामदेव । २ महिमा, बड़ाई । ३ गाली । ४ अग्नि ।
५ जलाई ।

अथ भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति राग मरहठा दोहा।

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज।
आप तिरहिं पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषिराज॥ते०॥१
मोह महारिपु जानिकैं छाड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार॥ते०॥२
रोग उरग बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान।
कदलीतरु संसार है, त्याग्यो सब यह जान॥ते०॥३
रत्नत्रयनिधि उर धरैं, अरु निरग्रंथ त्रिकाल।
मार्यो कामखवीसको, स्वामी परमदयाल॥ते०॥४
पंच महाव्रत आदरैं पाँचों समिति समेत।
तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पदहेत॥ते०॥५
धर्म धरैं दशलाक्षणी, भावैं भावना सार।
सहैं परीषह बीस द्वै, चारित-रतन भँडार॥ते०॥६
जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर।
शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर॥ते०॥७
पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार।
तरुतल निवसैं तब यती, बाजै झंझा ब्यार॥ते०॥८
शीत पड़ै कपि-मद गलै, दाहै सब वनराय।
ताल तरंगनि के तटैं, ठाड़े ध्यान लगाय॥ते०॥९
इह विधि दुद्धर तप तपैं, तीनोंकाल मँझार।
लागे सहज सरूप में तनसौं ममत निवार॥ते०॥१०

परत भोग न चितवैं, आगम नाहिं नाहिं ।
चहुँगतिके दुखसों डरें, सुरति लगी शिवमाहिं ॥११॥
रंग महलमें पौढ़ते, कोमल सेज बिछाय ।
ते पच्छिम निशि भूमिमें, सोवैं संवरिकाय ॥१२॥
गजचढ़ि चलते गरवसों, सेना सजि चतुरंग ।
निरखि निरखि पग वे धरैं, पालैं करुणा अंग ॥१३॥
वे गुरु चरण जहां धरैं, जगमें तीरथ जेह ।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, भूधर मांगै एह ।।न०॥१४॥

(२२) (बुधजनजी)

मुनि वन आये बना ॥मुनि०॥टेक॥
शिवनगरी ब्याहनकौं उमगे, मोहित भविक जना ॥मु०॥१॥
रत्नत्रय सिर सेहरा बांधें, सजि संवर वसना ।
संग बराती द्वादश भावन, अरु दशधर्मपना ।मु०॥२॥
सुमति नारि मिलि मंगल गावत, अजपा गीत घना ।
राग दोषकी आतिशबाजी, छूटत अगनि-कना ॥मु०॥३॥
दुर्विधि कर्मका दान बटत है, तोषित लोकमना ।
शुक्ल ध्यानकी अगनि जलाकरि, होमैं कर्मघना ॥४॥
शुभ बेरया शिव बनरि वरी मुनि, अद्भुत हरष बना ।
निज मंदिरमें निश्चल राजत बुधजन त्याग घना ॥५॥

१ शास्त्रस्तुति (प० बनारसीदासजी)

जिनादश जाता जिनेन्द्रा विख्याता,

निशुद्ध प्रबुद्धा नमों लोकमाता ।
दुराचार दुनहरा शंकरानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवाणी ।१।
सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला,
सुधातापनिर्नाशिनी मेघमाला ।
महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ।२।
अखैवृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा,
कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ।
चिदानन्द-भूपालकी राजधानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ।३।
समाधानरूपा अनूपा अक्षुद्रा,
अनेकान्तधा स्याद्वादाङ्कमुद्रा ।
त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी बखानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ।४।
अकोपा अमाना अदम्भा अलोभा,
श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञानशोभा ।
महापावनी भावना भव्यमानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ।५।
अतीता अजीता सदा निर्विकारा
विषैवाटिकाखण्डिनी खड्गधारा ।

पुरापापनिक्षेपकर्त्री कृपाणी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ।६।
अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा,
अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा ।
निशंका निरंका चिदंका भवानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ।७।
अशोका मुदेका विवेका विधानी,
जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी ।
समस्तावलोका निरस्तानिदानी,
नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ।८।
जैनवाणी जैनवाणी सुनहिं जे जीव,
जे आगम रुचिधरैं जे प्रतीति मन माहिं आनहिं ।
अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहिं ॥
जे हितहेतु बनारसी, देहिं धर्म उपदेश ।
ते सब पावहिं परम सुख, तज संसार क्लेश ॥

(२) शास्त्रस्तुति

वीर-हिमाचलतें निकसी,
गुरु गौतमके मुख-कुण्ड ढरी है;
मोह महाचल भेद चली,
जगकी जड़ता तप दूर करी है।
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली,

वह भग-तरगनिमो उछरी है,
ता शुचि शारद गगनदी प्रति,
मैं अंजुलि कर शीश धरी है ॥१॥
या जग मन्दिरमे अनिवार,
अज्ञान अँधेर छयो अतिभारी,
श्रीजिनकी धुनि दीप शिखा सम,
जो नहि होत प्रकाशन हारी,
तो किस भाँति पदारथ पाँति,
कहा लहते? रहत अविचारी,
या विधि सन्त कहैं धनि हैं,
धनि हैं जिन वेन बडे उपकारी ॥२॥

(३)

केवलि कन्ये, वाङ्मय गगा,
जगदम्बे, अघ नाश हमारे
सत्य स्वरूपे मगल-रूपे,
मन मन्दिरमें तिष्ठ हमारे ॥१॥
जम्बूस्वामी गौतम गणधर,
हुए सुधर्मा पुत्र तुम्हारे,
जगतें स्वय पार ह्वै करके,
दे उपदेश बहुत जन तारे ॥२॥
कुन्दकुन्द अकलकदेव अरु,

विद्यानंदि आदि मुनि सारे,
तव कुल कमुद चंद्रमा ये शुभ,
शिवामृत द स्वर्ग सिधारे ॥३॥
तूने उत्तम तत्त्व प्रकाशे,
जगके भ्रम मद क्षय कर डारे,
तेरी ज्योति निरख लज्जावश,
रवि शशि छिपते नित्य विचारे ॥४॥
भव भय पीडित, व्यथित चित्त जन,
जब जो आये शरण तिहारे,
छिन भरमें उनके भव तुमन,
करुणा करि सकट सब टार ॥५॥
जब तक विषय कषाय नशै नहि,
कर्म शत्रु नहिं जाय निवारे,
तब तक 'ज्ञानानन्द' रहै नित,
सब जीवनते समता धारे ॥६॥

(४) शास्त्र भक्ति (शिखरिणी छन्द) ।

अकेला ही हूं मैं कर्म सब आये सिमटिके ।
लिया है मैं तेरा शरण अब माता सटकिके ॥
भ्रमावत है मोको कर्म दुख देता जनमका ।
करो भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥१॥

१ यह भक्ति शास्त्र वाचनेके बाद बोलना चाहिये ।

दुखी हूआ भारी, भ्रमत फिरता हूँ जग में।
सहा जाता नाहीं, अकल घबराती भ्रमनमें ॥
करूं क्या माँ मोरी, चलत वश नाहीं मिटन का।
करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥२॥
सुनो माता मोरी, अरज करता हूँ दरदमें।
दुखी जानों मोकों, डरप कर आयो शरनमें ॥
कृपा ऐसी कीजे, दरद मिट जावे मरनका।
करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥३॥
पिलावो जो मोकों, सुबुधिकर प्याला अमृतका।
मिटावो जो मेरा, मरब दुख सारा फिरनका ॥
परों पायों तेरे, हरो दुख सारा फिकरका।
करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥४॥

सवैया।

मिथ्या-तम नाशवेको ज्ञानके प्रकाशवेको
आपा पर भासवेको भानुसी बखानी है।
छहों द्रव्य जानवेको बन्धविधि भानवेको,
स्वपर पिछानवेको परम प्रमानी है ॥ ५ ॥
अनुभौ बतायवेको जीवके जतायवेको,
काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है।
जहाँ तहाँ तारवेको पारके उतारवेको,
सुख विस्तारवेको येही जिनवानी है ॥ ६ ॥

॥ दोहा ॥

यह जिनवानीकी स्तुती, अल्पबुद्धि परमान ।
'पन्नालाल' विनती करे, दे माता मोहि ज्ञान ॥७॥
हे जिनवानी भारती, तोहि जपौं दिनरैन ।
जो तेरा शरना गहै, सो पावै सुख चैन ॥८॥
जा वानीके ज्ञानतें, सूझे लोकालोक ।
सो वानी मस्तक चढ़ो, सदा देत हौं धोक ॥९॥

(५)

नित पीजौ धीधारी, [1]जिनवानि [2]सुधासम जानके ।नि०।टेक।
[3]वीरमुखारविंदतें प्रगटी, जन्मजरा [4]गदटारी ।
गौतमादिगुरु उर-घट व्यापी, परम सुरुचिकरतारी ।।नि०॥१॥
[5]सलिलसमान [6]कलिलमलगंजन, बुधमनरंजनहारी ।
भंजन विभ्रमधूलि प्रभंजन, मिथ्याजलदनिवारी ॥नि०॥२॥
[7]कल्यानकतरु उपवनधरिनी, [8]तरनी भवजलतारी ।
[9]बंधविदारन [10]पैनी छैनी, मुक्तिनसैनी सारी ॥नि०॥३॥
स्वपरस्वरूप प्रकाशनको यह, भानुकला अविकारी ।

---

१ जैनशास्त्रोंको । २ अमृत समान । ३ महावीर स्वामीके मुखकमलसे । ४ रोग । ५ जलके समान । ६ पापरूपी मैल को नष्ट करने वाली । ७ "भवआतपहि उपावन धरनी" ऐसा भी पाठ है । ८ नौका । ९ कर्मबंध । १० तीखी छैनी ।

मुनि-मन-कुमुदिनि मोदन शशिभा, शमसुखसुमन सुवारी॥४
जाको सेवत सेवत निजपद, नसत अविद्या सारी।
तीनलोकपति पूजन जाको, जान त्रिजगहितकारी॥नि०॥५॥
कोटि जीभसौं महिमा जाकी कहि न सकै पविधारी।
दौल अल्पमति केम कहै यह अधम उधारनहारी॥नि०॥६॥

(६) राग चर्चरी।

साँची तो गंगा यह वीतरागवानी,
अविच्छिन्न धारा निज धर्मकी कहानी॥साँची०॥टेक॥
जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी,
जहाँ नहीं संशयादि पंककी निशानी॥साँची०॥१॥
सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी,
संतचित मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी॥साँची०॥२॥
जाके अवगाहनतैं शुद्ध होय प्रानी
भागचन्द्र निहचै घटमाहिं या प्रमानी॥साँची०॥३॥

(७) राग ईमन

महिमा है अगम जिनागमकी ॥ टेक ॥
जाहि सुनत जड़ भिन्न पिछानी, हम चिन्मूरति आतमकी ।म०।१।

१ मुनियोंकी मनरूपी कुमुदिनीको प्रफुल्लित करनेके लिये चन्द्रमाका प्रकाश। समतासुखरूपी पुष्पोंको। ३ अच्छी वाटिका। ४ अनुभव करते हैं। ५ तीनभुवनके राजा इन्द्रादिक। ६ वज्रधारी इन्द्र। ७ राजहंसोंका समूह

रागादिक दुख कारन जानि, त्याग बुद्धि दीनी भ्रमकी।
ज्ञान,ज्योति जागी उर अंतर, रुचि बाढ़ी पुनि शमदमकी।म०।२
कर्म बंधकी, भई निर्जरा, कारण परंपरा-क्रमकी।
भागचन्द शिवलालच लागौ, पहुँच नहीं है जहँ जमकी।म०।३॥

(८) राग दीपचन्दी कानेर।

जानके सुज्ञानी, जैनवानीकी सरधा लाइये ॥टेक॥
जा बिन काल अनंते भ्रमता, सुख न मिलै कहुँ प्रानी।१।
स्वपर विवेक अखंड मिलत है, जाहीके सरधानी।जा०।२।
अखिल प्रमान सिद्ध अविरुद्धत, स्यात्पद शुद्ध निशानी।३।
भागचन्द सत्यारथ जानी, परमधरमरजधानी।जा०॥४॥

(९) सावनी।

धन्य धन्य है घड़ी आजकी, जिनधुनि श्रवण परी।
तत्त्वप्रतीत भई अब मेरे, मिथ्यादृष्टि टरी ॥टेक॥
जडतैं भिन्न लखी चिन्मूरति, चेतन स्वरस भरी।
अहंकार ममकार बुद्धि पुनि, परमें सब परिहरी ॥ध०॥१॥
पापपुण्य विधिबंध अवस्था, भासी अतिदुखभरी।
वीतराग विज्ञानभावमय, परनति अति विस्तरी ॥ध०॥२॥
चाह-दाह विनसी बरसी पुनि, समतामेघझरी।
बाढ़ी प्रीति निराकुल पदसों, भागचन्द हमरी ॥धन्य०॥३॥

द्यानत विलास

(१) राग सोरठ

रुल्यो चिरकाल, जगजाल चहुँगतिविषैं,

आज निनराज तुम शरन आयो ॥टेक॥ सखो दुरग घोर, नहि छोग आर रुहत, तुममों कछु छिप्यो नहिं तुम बतायो ॥रू०॥१॥ तु हीं ससारतारक नहीं दूसरो, ऐसो मुह भेद न किन्हा सुनायो ।रूल्यो०॥२॥ सकल सुर असुर नरनाथ वदत चरन । नाभिनन्दन निपुन मुनिन ध्यायो ॥रू०॥३॥ तु हीं अरह त भगवन्त गुणवन्त प्रभु खुले मुझ भाग अब दरश पायो ॥रूल्यो०॥४॥ सिद्ध हीं शुद्ध हीं बुद्ध अविरुद्ध हीं, इश जगदीश बहु गुणनि गायो ।रूल्यो०॥५॥ सर्व चिन्ता गद बुद्धि निर्मल भई, जब हि चित जुगल चरननि लगायो ॥रूल्यो०॥६॥ भयो निहचिन्त द्यानत चरन शर्न गहि, तार अब नाथ तेरो कहायो ॥रूल्यो०॥७॥

(७०)

अरहत सुमर मन बावरे ! ॥टेक॥ ख्याति लाभ पूजन तजि भाइ, अन्तर प्रभु लौं लाव रे ॥अरहन्त०॥१॥ नरभव पाय अकारथ खोवै, विषयभोग जु बढाव रे । प्राण गये पछित है मनुवा, छिन छिन छीजै आव रे ॥अरहत०॥२ जुवती तन धन सुत मित परिजन, गज तुरग रथ चाव रे यह ससार सुपनकी माया, आँख मीचि दिखराव ॥अरहन्त०॥३॥ ध्याव ध्याव रे अब है दावरु, नाहीं मगल गाव रे । द्यानत बहुत कहा लौं कहिये, फेर न कछू उपाव रे ॥अरहन्त०॥४॥

(७६)

प्रभु तेरी महिमा कहिय न जाय ॥टेक॥ थुति करि सुखी दुखी निंदातैं, तेरैं समता भाय ॥प्रभु०॥१॥ जो तुम ध्यावै, थिर मन लावै, सो किंचित् सुख पाय। जो नहिं ध्यावे ताहि करत हो, तीन भवनको राय ॥ प्रभु० ॥ २ ॥ अजन चोर महाअपराधी, दियो स्वर्ग पहुँचाय। कथा-नाथ श्रेणिक समदृष्टी, कियो नरक दुखदाय ॥प्रभु०॥३॥ सेर असेर कहा चलै जयकी, जो तुम करो सु न्याय। द्यानत सेवक गुन गहि लीजै, दोप सबै छिटकाय ॥प्रभु०॥४॥

समयसार नाटक (प० बनारसीदासजी)

सम्यग्दृष्टीकी स्तुति ॥ सवैया २३ सा ॥

भेद विज्ञान जग्यो जिन्हके घट, सीतल चित्त भयो जिम चदन। केलि करे शिवमारगमें, जगमाहि जिनेश्वरके लघुनदन ॥ सत्य स्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकदन। शात दशा तिनकी पहिचानि, करे कर-जोरि बनारसि वदन ॥६॥

सवैया ३१ सा

स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त, साचे साचे बैन कहे साचे जैनमती है। काहूके विरुद्धी नाहि परजाय बुद्धी नाहि, आतमगवेषी न गृहस्थ है न यती है॥ रिद्धि सिद्धि वृद्धि दीसे घटमें प्रगट सदा, अतरकी लच्छिसौं

अनाची लखपती है। दाम भगवतके उदास रहै जगतसौं सुखिया सदा ऐसे जीव समकिती है ॥७॥ जाके घट प्रगट विवेक गणधरकोसो, हिरदै हरष महा मोहको हरतु है। साचा सुख माने निज महिमा अडोल जाने, आपु ही में आपनो स्वभाव ले धरतु है॥ जैसे जलकर्दम कतकफल भिन्न कर, तैसे जीव अजीव विलछन करतु है। आतम सकति साधे ग्यानको उदो आराधे, सोई समकिती भव सागर तरतु है ॥८॥ धरम न जानत बखानत भरमरूप, ठौर ठौर ठानत लराई पक्षपातकी। भूल्यो अभिमानमें न पाव धरे धरनीमें, हिरदेमें करनी विचारे उतपातकी॥ फिरे डावाडोलसौ करमके कलोलनिमें, ह्वै रही अवस्था ज्यू बभूल्या कैसे पातकी। जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुवाती भारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥९॥

कवि वर्णन सवैया २३ सा

चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्धसमान सदा पद मेरो। मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महातम घेरो॥ ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहूँ गुण नाटक आगमकेरो। जासु प्रसाद सधे सिवमारग, वेगि मिटे भववास बसेरो ॥११॥

समयसार नाटक ग्रंथकी महिमा।

॥ सवैया ३१ सा ॥

मोक्ष चलिबे शकौन करमको करैनौन, जाके रस भौन

दूध लोन ज्यों धुलत है। गुणको गरथ निरगुणको सुगम पंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है। याहीके जु पच्छी ते उडत ज्ञान गगनमें, याहीके विपच्छी जगजालमें रुलत है। हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥१५॥

जिनवाणीका वर्णन।

॥ सवैया २३ सा ॥

जोग धरे रहे जोग सु भिन्न, अनंत गुणातम केवलज्ञानी।
तासु हृदे द्रहसो निकसी, सरिता सम ह्वै श्रुत सिंधु समानी।
याते अनंत नयातम लच्छण, सत्य सरूप सिद्धांत बखानी।
बुद्धि लखे न लखे दुरबुद्धि, सदा जगमाहि जगे जिनवाणी ॥३॥

तीर्थंकरके देहकी स्तुति।

॥ सवैया ३१ सा ॥

जाके देह द्युतिसों दशो दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं। जाको रूप निरखि थकित महा रूपवंत, जाके वपु वाससों सुवास और लुके हैं। जाकी दिव्यध्वनि सुनि श्रवणको सुख होत, जाके तन लच्छन अनेक आय ढिग ढुके हैं। तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुण, निश्चय निरखि शुद्ध चेतनसों चुके हैं ॥२५॥

शुद्ध परमात्म स्तुतिका दृष्टान्त कहकर निश्चय अर व्यवहारको निर्णय करे हैं ॥

॥ कवित्त छन्द ॥

तनु चेतन व्यवहार एकसे, निहचै भिन्न भिन्न है दोइ ।
तनुकी स्तुति विवहार जीवस्तुति, नियत दृष्टि मिथ्या पुति सोइ।
जिन सो जीव जीव सो जिनवर, तनु जिन एक न माने कोइ ॥
ता कारण तनकी जो स्तुति, सो जिनवरकी स्तुति नहि होइ ॥

जिन स्वरूप यथार्थ कथन ।

॥ दोहा ॥

जिनपद नाहि शरीरको, जिनपद चेतन माहि ।
जिन वर्णन कछु और है, यह जिनवर्णन नाहि ॥२७॥

तीर्थंकरकी निश्चय गुण स्वरूप स्तुति कथन ।

॥ सवैया ३१ सा ॥

जामें लोकालोकके स्वभाव प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान शकति विमल जसी आरसी । दर्शन उद्योत लियो अंतराय अंत कियो, गयो महामोह भयो परम महारसी ॥ सन्यासी सहज जोगी जोगसु उदासी जामें, प्रकृति पच्यासी लग रही जरि छारसी । सोहै घट मंदिरमें चेतन प्रगटरूप, ऐसो जिनराज ताहि वंदत बनारसी ॥२९॥

॥इति श्री समयसार नाटकका प्रथम जीवद्वार समाप्त भया॥१॥

द्वितीय अजीवद्वार प्रारंभ ।

ज्ञान अजीवकु पण जाने है तातें संपूर्ण ज्ञानकी अवस्था निरूपण करे है ।

॥ सवैया ३१ सा ॥

परम प्रतीति उपजाय गणधरकी सी, अंतर अनादि की विभावता विदारी है । भेदज्ञान दृष्टिसों विवेककी, शकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है ॥ करम को नाश करि अनुभौ अभ्यास धरि, हियेमें हरखि निज शुद्धता सँभारी है । अंतराय नाश गयो शुद्ध परकाश भयो ज्ञानको विलास ताको वंदना हमारी है ॥२॥

अथ पुण्यपाप एकत्व करण चतुर्थद्वार प्रारम्भ ॥४॥

पाप पुण्य द्वार विषे प्रथम ज्ञानरूप चंद्रके कलाकू नमस्कार करे हैं । ॥ कवित्त ॥

जाके उदै होत घट अंतर, बिनसे मोह महा तम रोक । शुभ अर अशुभ करमकी दुविधा, मिटे सहज दीसे इक थोक ॥ जाकी कला होत संपूरण प्रतिभासे सब लोक अलोक । सो प्रबोध शशि निरखि, बनारसि सीस नमाय देत पग धोक ॥१॥

अथ पंचम आश्रवद्वार प्रारम्भ ॥५॥

आश्रव सुभटको नाश करनहार ज्ञान सुभट है तिस ज्ञान कू नमस्कार करे हैं ॥ सवैया ३१ सा ॥

जे जे जगवासी जीव थावर जंगमरूप, ते ते निज बस करि राखे बल तोरिकें । महा अभिमानी ऐसो आस्रव

अगाध जोधा, गेपि रण थंभ ठाडो भयो मूढ मोरिके ॥
आयो तिहिं थानक अचानक परम धाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिके। आस्रव पछाग्यो रणथंभ तोडि डारयो तोहि निरख बनारसी नमत कर जोरिकै ॥२॥

अथ छट्टो संवरद्वार प्रारंभ ॥६॥

संवर द्वारके आदिमे ज्ञानकूं नमस्कार करे हैं।

॥ सवैया ३१ सा ॥

आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो, आस्रव महातम अखंड अंडवत है। ताको विस्तार गिलिवेको परगट भयो ब्रह्मंडको विकाशी ब्रह्मंडवत है॥ जामे सब रूप जो सबमें सब रूपसो प सबनिसो अलिप्त आकाश खंडवत है। सोहे ज्ञानभानु शुद्ध संवरको भेष धरि, ताकी रुचि रेखको हमारी दंडवत है ॥१॥

अथ सप्तम निर्जराद्वार प्रारंभ ॥७॥

निशंकितादि अष्टांग सम्यक्तकी महिमा कहे है,

छप्पय छन्द ॥

जो परगुण त्यागत, शुद्ध निज गुण गहत ध्रुव।
विमल ज्ञान अंकुरा, जास घट महि प्रकाश हुव॥
जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धारि बहावत।
जो नव बंध निरोधि, मोक्ष मारग मुख धावत॥
निशंकितादि जस अष्ट गुण, अष्ट कर्म अरि संहरत।

सो पुरुष विचक्षण तासु पद, बनारसी वंदन करत ॥५६॥

अथ अष्टम बंधद्वार प्रारम्भ ॥८॥

सम्यक्ती [भेदज्ञानी] कू नमस्कार करे है।

॥ सवैया ३१ सा ॥

मोहमद पाइ जिन्ह ससारी विकल कीने, याहीते अजानवान बिरद वहत है। ऐसो बंधवीर विकराल महा जाल सम, ज्ञान मद करे चंद राहु ज्यों गहत है॥ ताको बल भजिवेकों घटमें प्रगट भयो उद्धत उदार जाको उद्दिम महत है। सो है समकित सूर आनन्द अंकूर ताहि, निरखि बनारसी नमो नमो कहत है॥२॥

अथ नवमो मोक्षद्वार प्रारम्भ ॥ ९ ॥

॥ सवैया ३१ सा ॥

भेदज्ञान आरामों दुफारा करे ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचे। अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै, करम भरमको खजानो खोलि खरचे॥ योंही मोक्षमग धावे केवल निकट आवे, पूरण समाधि लहै परम को परचे। भयो निरदौर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसि अरचे॥३॥

अथ दशमो सर्वविशुद्धिद्वार प्रारम्भ ॥ १० ॥

❀ दोहा ❀

जो निश्च निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अन्त।

सो चिद्रूप बनारसी, जगत माहि जैवत ॥२॥
अथ उपदेश्य साध्य साधक द्वार प्रारम्भ ॥१२॥

॥ सोरठा ॥

जाके मुक्ति समीप, भई भवस्थिति घट गई।
ताको सतगुरु सीप, सुगुरु मेघ मुक्ता वचन ॥३॥

॥ दोहा ॥

ज्यों जल वर्षा मेघ, मेघ अखंडित सार।
त्यों सद्गुरु वाणी खिरै, जगत जीव हितकार ॥४॥
शब्द माहि सद्गुरु कहै, प्रगटरूप निजधर्म।
सुनत विचक्षण श्रद्दहै, मूढ न जाने मर्म ॥१२॥
जैसे काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको। दोउ फिरैं पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पथिकको पूछे पथ पुरको॥ सो तो कहे तुमारो नगर ये तुमारे ढिग, मारग दिखावे समझावे खोज पुरको। एते पर सुष्ट पहचाने पै न माने दुष्ट, हिरदे प्रमाण तैसे उपदेश गुरुको ॥१३॥ जैसे काहू जगलमें पावसको समै पाइ, अपने सुभाय महामेघ वरखत है। आमल कषाय कटु तीक्षण मधुर खार, तैसा रस बाढे जहाँ जैसा दरखत है॥ तैसे ज्ञानवंत नर ज्ञानको बखान करे, रस कोउ माही है न कोउ परखत है। वोही धुनि सुनि कोउ गहे कोउ रहे सोइ, काहूको विषाद होइ कोउ हरखत है ॥१४॥

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारंभ ॥

॥ सवैया ३१ सा ॥

जाके मुख दरससौं भगतके नैन नीकों, थिरताकी
वानी बढ़े चंचलता विनसी । मुद्रा देखें केवलीकी मुद्रा
याद आवे जहाँ, जाके आगे इन्द्रकी विभूति दीसे तिनसी ॥
जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदमें, सोइ शुद्ध मति होइ
हुतिजो मलिनसी । कहत बनारसी सुमहिमा प्रगट जाकी,
सो है जिनकी छवि सु विद्यमान जिनसी ॥२॥ जाके उर
अंतर सुदृष्टिकी लहर लसि, विनसी मिथ्यात मोह निद्राकी
समारषी । सैलि जिन शासनकी फैलि जाके घट भयो,
गरवको त्यागि षट दरबको पारषी ॥ आगमके अच्छर परे
हैं जाके श्रवणमें, हिरद भंडारमें समानी वाणी आरषी ।
कहत 'बनारसी' अलप भव थिति जाकी, सोइ जिन प्रतिमा
प्रवाणे जिन सारषी ॥३॥

॥ सवैया ३१ सा ॥

जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अथवा सु
काउसर्ग मुद्रा थिर पाल है । षत सपरस कर्म प्रकृतीके
उदे आये, विना डग भर अंतरिच्छ जाकी चाल है ॥ जाकी
थिति पूरव करोड आठ वर्ष घाटि, अंतर मुहूरत जघन्य जग
जाल है । सो है देव अठारह दूषण रहित ताको, बनारसि
कहै मेरी वंदना त्रिकाल है ॥१०७॥

एकीभाव स्तोत्र

(कविवर भूधरदास-कृत हिंदी-पद्यानुवाद)

वादिराज मुनिराजके, चरन-कमल चित लाय,
भाषा एकीभावकी, करूं स्व-पर सुखदाय ।
जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी ।
सो मुझ कर्म-प्रबन्ध करत भव-भव दुख भारी ॥
ताहि तिहारी भक्ति-जगत-रवि जो निरवारै ।
तो अब और कलेश कौन सो नाहि विदारै ॥१॥
तुम जिन जोति-स्वरूप दुरित-अँधियार निवारी ।
सो गनेश-गुरु कहैं तत्त्व-विद्या-धनधारी ॥
मेरे चित-घर माहि बसौ तेजोमय यावत ।
पाप-तिमिर अवकाश तहाँ सो क्योंकर पावत ॥२॥
आनँद आँसू वदन धोय तुमसों चित सानै ।
गदगद सुरसौं सुयश-मंत्र पढि पूजा ठानै ॥
ताके बहुविधि व्याधि-व्याल चिरकाल निवासी ।
भाजैं थानक छोड़ देह-बाँबइ के वासी ॥३॥
दिविते आवनहार भये भवि-भाग उदयबल ।
पहले ही सुर आय कनकमय कीय महीतल ॥
मन-गृह ध्यान-दुवार आय निवसो जगनामी ।
जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी ॥४॥

प्रभु सब जगके बिना हेतु बान्धव उपकारी।
निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी॥
भक्ति-रचित मम चित्त-सेज नित बास करोगे।
मेरे दुख-सन्ताप देखि किम धीर धरोगे?॥५॥
भव-वनमें चिरकाल भ्रमो कछु कहिय न जाई।
तुम थुति-कथा-पियूष-वापिका भागन पाई॥
शशि तुषार घनसार-हार शीतल नहिं जा सम।
करतन्हौन वा माहिं क्यों न भवताप बुझै मम॥६॥
श्रीविहार परिवाह होत शुचि-रूप सकल जग।
कमल कनक आभाव सुरभि श्रीराम धरत पग॥
मेरो मन-सरवंग परस प्रभुको सुख पावै।
अब सो कौन कल्यान जो न दिन २ ढिग आवै॥७॥
भव तज सुखपद बसे काममद सुभट सँहारे।
जो तुमको निरखत, सदा प्रिय दास तिहारे॥
तुम बचनामृत पान भक्ति—अञ्जुलिसों पीवै।
तिन्हें भयानक क्रूर रोग रिपु कैसे छीवै॥८॥
मानथम्भ पाषान आन पाषान पटन्तर।
ऐसे और अनेक रतन दीखैं जग—अन्तर॥
देखत दृष्टि प्रमान मान-मद तुरत मिटावै।
जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै॥९॥
प्रभुतन पर्वत परस पवन उरमें निवहै है।

तासों तत्छिन सकल रोग रज बाहिर ह्वै है ॥
ताके ध्यानाहूत बसो उर अम्बुज माहीं ।
कौन जगत उपकार करन समरथ सो नाहीं ॥१०॥
जनम-जलधि दुख सहे भव तें तुम जानो ।
याद किये मुझ हिये लगैं आयुधसे मानो ॥
तुम दयाल, जगपाल स्वामि मैं शरन गही है ।
जो कछु करनो होय करो परमान वही है ॥११॥
मरन समय तुम नाम मंत्र जीवकतैं पायो ।
पापाचारी स्वान प्रान तज अमर कहायो ॥
जो मणिमाला लेय जपै तुम नाम निरन्तर ।
इन्द्र सम्पदा लहै कौन संशय इस अन्तर ॥१२॥
जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधै ।
अनवधि सुखकी सार भक्ति कूं ची नहि लाधै ॥
सो शिव वांछक पुरुष मोक्ष पट केम उघारै ।
मोह मुहर दिढ करी मोक्ष-मन्दिरके द्वारै ॥१३॥
शिवपुर-केरो पंथ पाप तमसों अति छायो ।
दुख-सरूप बहु कूप-खाडसों विकट बतायो ॥
स्वामी, सुखसों तहाँ कौन जन मारग लागैं ।
प्रभु प्रवचन-मणिदीप जोनके आगैं आगैं ॥१४॥
कर्म पटल भू माहि दबी आतम-निधि भारी ।
देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहि उघारी ॥

तुम सेवक तत्काल ताहि निहचै करि धारै ।
धृति-कुदालसौं खोद बंध भू कठिन विदारै ॥१५॥
स्याद्वाद-गिरि उपज मोक्ष-सागरलौं धाई ।
तुम चरणाम्बुज-परस भक्ति-गंगा सुखदाई ।
मो चित निर्मल थयो न्हौन-रुचि-पूरव तामैं ।
अब वह हो न मलीन कौन, जिन, संशय यामैं ॥१६॥
तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चिंतन तेरो ।
मैं भगवान समान, भाव यों वरतै मेरो ॥
यदपि झूठ है, तदपि तृप्ति निश्चल उपजावै ।
तुव प्रसाद सकलंक जीव वाँछित फल पावै ॥१७॥
वचनजलधि तुम देव सकल त्रिभुवनमें व्यापै ।
भंग-तरंगिनि विकथ वाद-मल मलिन उथापै ।
मन-सुमेरुसौं मथैं ताहि जे सम्यग्ज्ञानी ॥
परमामृतसौं तृपत होहिं ते चिरलौं प्रानी ॥१८॥
जो कुदेव छबि हीन वसन-भूषन अभिलाखै ।
बैरीसौं भयभीत होय, सो आयुध राखै ॥
तुम सुन्दर सर्वंग, शत्रु समरथ नहिं कोई ।
भूषन-वसन गदादि ग्रहन काहेको होई ? ॥१९॥
सुरपति सेवा करै, कहा प्रभु, प्रभुता तेरी ।
सो सलाघना लहै, मिटै जगसौं जगफेरी ॥
तुम भवजलधि जिहाज तोहि शिवकन्त उचरिये ।

तुही जगतजन पाल,नाथ, थुतिकी थुति करिये।२०।
वचन-जाल जड रूप, आप चिन्मूरति झाँई ।
तातैं थुति आलाप नाहि पहुँचे तुम ताँई ॥
तौ भी निर्फल नाहि भक्ति रस भीने वायक ।
सन्तनको सुरतरु समान वाछित वर-दायक ॥२१॥
कोप कभी नहि करो, प्रीति कबहू नहि धारो ।
अति उदास वचाह चित्त, जिनराज, तिहारो ॥
तदपि आन जग बहै वैर तुम निकट न लहिये ।
यह प्रभुता जगतिलक कहाँ तुम बिन सरदहिये।२२।
सुर तिय गावैं सुजस सर्व गति ज्ञान-सरूपी ।
जो तुमको थिर होय नमैं भवि आनँद-रूपी ।
ताहि छेमपुर चलन बाट बाकी नहि हो, है, ॥
श्रुतके सुमरन माहि सो न कबहू नर मोहै॥२३॥
अतुल चतुष्टय रूप तुम्हें जो चितमैं धारै ।
आदरसों तिहुँकाल माहिं जग थुति विस्तारै ॥
सो सुकृत शिव-पथ भक्ति रचना कर पूरै ।
पचकल्यानक ऋद्धि पाय निहचै दुख चूरै॥२४॥
अहो जगतपति पूज्य, अवधिज्ञानी मुनि हारे ।
तुम गुन कीर्तन माहिं, कौन हम मद विचारे ॥
थुति छलसा तुम विषै देव आदर विस्तारे ।
शिव सुख पूरनहार कलप-तरु यही हमारे॥२५॥

वादिराज मुनिते अनु वैयाकरणी सारे,
वादिराज मुनिते अनु तार्किक विद्यारे।
वादिराज मुनिते अनु हैं काव्यनके ज्ञाता
वादिराज मुनिते अनु है भविजनके त्राता।
मूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषा सूत्र मँझार।
भक्तिमाल 'भूधर' करी, करो कंठ सुखकार ॥

भक्तामर स्तोत्र

(कवि गिरिधर शर्माकृत हिन्दी पद्यानुवाद)

है भक्त - देव - नत - मौलि - मणिप्रभाके,
उद्योत-कारक, विनाशक पापके हैं,
आधार जो भव पयोधि पड़े जनोंके,
अच्छी तरा नम उन्हीं प्रभुके पदोंको ॥१॥
श्री आदिनाथ विभुकी स्तुति मैं करूगा,
की देवलोकपतिने स्तुति है जिन्होंकी
अत्यन्त सुन्दर जगत्त्रय चित्तहारी,
सुस्तोत्रसे, सकल शास्त्र रहस्य पाके ॥२॥
हूँ बुद्धिहीन, फिर भी बुध पूज्यपाद।
तैयार हूँ स्तवनको निर्लज्ज होके
है और कौन जगमें तज बाल को, जो,
लेना चहे सलिल-संस्थित चन्द्र बिम्ब ॥३॥

होवे बृहस्पति समान सुबुद्धि तो भी,
है कौन जो गिन सके तव सद्गुणों को ?
कल्पान्तवायु-वश सिन्धु अलंघ्य जो है,
है कौन जो तिर सके उसको भुजासे ? ॥४॥
हूँ शक्तिहीन फिर भी करने लगा हूँ,
तेरी प्रभो, स्तुति, हुआ वश भक्तिके मैं
क्या मोहके वश हुआ शिशुको बचाने,
है सामना न करता मृग सिंहका भी ? ॥५॥
हूँ अल्पबुद्धि, बुध मानवकी हँसीका,
हूँ पात्र, भक्ति-तव है मुझको बुलाती,
जो बोलता मधुर कोकिल है मधूमें,
है हेतु आम्र-कलिका बस एक उसका ॥६॥
तेरी किये स्तुति, विभो, बहु जन्मके भी,
होते विनाश सब पाप मनुष्यके हैं,
भौंरे समान अतिश्यामल ज्यों अँधेरा,
होता विनाश रविके करसे निशाका ॥७॥
यों मान, की स्तुति शुरू मुझ अल्पधीने,
तेरे प्रभाव वश, नाथ, यही हरेगी,
सल्लोकके हृदयको, जल बिन्दु भी तो,-
मोती समान नलिनी दलपे सुहाता ॥८॥
दुर्दोष दूर तव हो स्तुतिका बनाना,

तेरी कथा तक हरे जगके अघोंको,
हो दूर सूर्य, करती उसकी प्रभा ही,
अच्छे प्रफुल्लित सरोजनको मगों में ॥९॥
आश्चर्य क्या, भुवनरत्न, भले गुणोंसे,
तेरी किये स्तुति बने तुझसे मनुष्य !
क्या काम है जगतमें उन मालिकोंका,
जो आत्म तुल्य न करें निज आश्रितोंको? ॥१०
अत्यन्त सुन्दर, विभो, तुझको विलोक,
अन्यत्र आँख लगती नहिं मानवोंकी,
क्षीराब्धिका मधुर सुन्दर वारि पीके,
पीना चह जलधिका जल कौन खारा? ॥११॥
जो शान्तिके सुपरमाणु, प्रभो, तनूमें,
तेरे लगे, जगतमें उतने वही थे,
सौन्दर्य-सार जगदीश्वर चित्तहर्ता,
तेरे समान इससे नहिं रूप कोई ॥१२॥
तेरा कहाँ मुख सुरादिक नेत्ररम्य,
सर्वोपमान विजयी, जगदीश, नाथ !
त्यों ही कलंकित कहाँ वह चन्द्रबिम्ब,
जो हो पडे दिवसमें द्युतिहीन फीका ॥१३॥
अत्यन्त सुन्दर कलानिधिकी कलासे,
तेरे मनोज्ञ गुण, नाथ, फिरें जगोंमें,

हैं आसरा त्रिजगदीश्वरका जिन्होंको,
रोकै उन्हें त्रिजगमें फिरते न कोई ॥१४॥

देवाङ्गना हर सकीं मनको न तेरे,
आश्चर्य नाथ, इसमें कुछ भी नहीं है
कल्पान्तके पवनसे उड़ते पहाड़,
पै मन्दराद्रि हिलता तक है कभी क्या ? ॥१५॥

बत्ती नहीं, नहि धुआँ, नहि तैल पूर,
भारी हवा तक नहीं सकती बुझा है,
सारे त्रिलोक नित है करता उजेला
उत्कृष्ट दीपक विभो, द्युतिकारि तू है ॥१६॥

तू हो न अस्त, तुझको गहता न राहु
पाते प्रकाश तुझसे जग एकसाथ
तेरा प्रभाव करता नहि बादलोंसे,
तू सूर्यसे अधिक है महिमा-निधान ! ॥१७॥

मोहान्धकार हरता, रहता उगा ही,
जाता न राहु मुखमें, न छुपे घनोंसे
अच्छे प्रकाशित करे जगको, सुहावे
अत्यन्त कान्तिधर, नाथ, मुखेन्दु तेरा ॥१८॥

क्या भानुसे दिवसमें, निशिमें शशीसे,
तेरे, प्रभो, सुमुखसे तम नाश होते,
अच्छी तरा पक गया जग-बीच धान,

है काम क्या जल भरे इन बादलोंसे ॥१९॥
जो ज्ञान निर्मल, विभो, तुझमें सुहाता,
भाता नहीं वह कभी पर-देवतामें,
होती मनोहर छटा मणि-मध्य जो है,
सो काचमें नहि, पडे रवि बिम्बके भी॥२०॥
देखे भले, अयि विभो, पर-देवता ही,
देखे जिन्हें हृदय आ तुझमें रमे ये,
तेरे विलोकन किये फल क्या प्रभो जो,
कोई रमे न मनमें पर-जन्ममें भी ? ॥२१॥
माएँ अनेक जनतीं जगमें सुतोंको,
हैं किन्तु वे न तुझसे सुतकी प्रसूता,
सारी दिशा धर रहीं रविका उजेला,
पे एक पूरब-दिशा रविको उगाती ॥२२॥
योगी तुझे परम-पूरुष हैं बताते,
आदित्य-वर्ण मलहीन तमिस्र हारी,
पाके तुझे, जय करें सब मौतको भी,
है और ईश्वर नहीं वर मोक्ष मार्ग ॥२३॥
योगीश, अव्यय, अचिन्त्य, अनङ्गकेतु,
ब्रह्मा, असंख्य परमेश्वर, एक, नाना,-
ज्ञान स्वरूप, विभु, निर्मल, योगवेत्ता,
त्यों आद्य, सन्त तुझको कहते अनन्त॥२४॥

तू बुद्ध है विबुध-पूजित-बुद्धिवाला,
कल्याण-कर्तृवर शंकर भी तुही है,
तू मोक्ष-मार्ग विधि-कारक है विधाता
है व्यक्त, नाथ, पुरुषोत्तम भी तुही है ॥२५॥
त्रैलोक्य आर्ति-हर नाथ, तुझे नमूं मैं,
हे भूमि के विमल रत्न, तुझे नमूं मैं,
हे ईश सर्व जगके, तुझको नमूं मैं
मेरे भवोदधि विनाश, तुझे नमूं मैं ॥२६॥
आश्चर्य क्या गुण सभी तुझमें समाये
अन्यत्र क्योंकि न मिली उनको जगा ही,
देखा, न, नाथ, मुख भी तब स्वप्नमें भी,
पा आसरा जगतका मद दोषने तो ॥२७॥
नीचे अशोक तरुके तन है सुहाता
तेरा विभो, विमल रूप प्रकाश-कर्ता,
फैली हुई किरणका, तमका विनाशी,
मानो समीप घनके रवि-बिम्ब ही है ॥२८॥
सिंहासन-स्फटिक रत्न-जड़ा उसीमें,
भाता, विभो, कनक-कान्त शरीर तेरा,
ज्यों रत्न-पूर्ण उदयाचल शीर्ष जा,
फैला स्वकीय किरणें रवि-बिम्ब सोहे ॥२९॥
तेरा सुवर्ण-सम देह, विभो, सुहाता,

है, श्वेत कुन्द-सम चामरके उड़ेसे,
सोह सुमेरुगिरि, काचन कान्तिधारी,
ज्यों चन्द्रकान्ति-धर निर्झरके वहेसे ॥३०॥
मोती मनोहर लगे जिनमें, सुहाते,
नीके, हिमांशु सम सूरज-ताप हारी,
हैं तीन छत्र शिरपै अति रम्य तेरे,
जो तीन लोक परमेश्वरता बताते ॥३१॥
गम्भीर नाद भरता दश ही दिशा में,
सत्संगकी त्रिजगको महिमा बताता,
धर्मेशकी कर रहा जय घोषणा है,
आकाश बीच बजता यशका नगारा ॥३२॥
गन्धोद बिन्दु युत मारुतकी गिराई,
मन्दारकादि तरुकी कुसुमावलीकी,
होती मनोरम महा सुरलोकसे है,
वर्षा, मनो तव लसे वचनावली है ॥ ३३ ॥
त्रैलोक्यकी सब प्रभामय वस्तु जीती,
भामण्डल प्रबल है तव, नाथ, ऐसा ।
नाना प्रचण्ड रवि-तुल्य सुदीप्ति धारी,
है जीतता शशि सुशोभित रातको भी ।३४॥
हैं स्वर्ग-मोक्ष पथ-दर्शनकी सु नेता,
सद्धर्मके कथनमें पटु हैं जगोंके,

दिव्यध्वनि प्रकट अर्थमयी, प्रभो, है,
तेरी, लहे सकल मानव बोध जिससे ॥३५॥
फूले हुए कनकके नव पद्मक से,
शोभायमान नखरी किरण-प्रभासे,
तूने जहाँ पग धर अपने, विभो, हैं,
नीके वहाँ विबुध पङ्कज कल्पते हैं ॥ ३६ ॥
तेरी विभूति इस भाँति, विभो, हुई जो,
सो धर्मके कथनमें न हुई किसीकी,
होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्र हर्ता,
होता न तेज रवि तुल्य कहीं ग्रहोंका ॥३७॥
दोनों कपोल झरते मदसे सने हैं,
गुंजार खूब करती मधुपावली हैं-
ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे,
पावें न किंतु भय, आश्रित लोक तेरे॥३८॥
नाना करीन्द्र-दल-कुम्भ विदारके, की
पृथ्वी सुरम्य जिसने गज मोतियोंसे;
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करे न उसपै,
तेरे पदाद्रि जिसका शुभ आसरा है ॥३९॥
झालें उठें, चहुँ उड़ें जलतें अँगारे,
दावाग्नि जो प्रलय वह्नि समान भासे,
संसार भस्म करने हित पास आवे,

त्वत्कीर्ति गान शुभ वारि उसे शमावे ॥४०॥
रक्ताक्ष क्रुद्ध पिक कण्ठ समान काला,
फुङ्कार सर्प फणको कर उच्च धावे,
निःशक हो जन उसे पगसे उलाँघे,
त्वन्नाम नाग-दमनी जिसके हिये हो ॥४१॥
घोडे जहाँ हिनहिने, गरजे गजाली,
ऐसे महाप्रबल सैन्य धराधिपोंके
जाते सभी बिखर हैं तव नाम गाये,
ज्यों अन्धकार, उगते रविके करोंसे ।४२॥
बर्छे लगे बह रहे गज रक्तके हैं,
तालाबसे, विकल हैं तरणार्थ योद्धा,
जीते न जाँय रिपु, समर बीच ऐसे,
तेरे प्रभो, चरण सेवक जीतते हैं ॥ ४३ ॥
हैं काल नृत्य करते मकरादि जन्तु
त्यों वाडवाग्नि अति भीषण सिन्धुमें है,
तूफानमें पड गये जिनके जहाज,
वे भी, प्रभो, स्मरणसे तव, पार होते ॥४४॥
अत्यन्त पीडित जलोदर भारसे हैं,
है दुर्दशा, तज चुके निज जीविताशा,
वे भी लगा तव पदाब्ज-रज सुधाको,
होते, प्रभो, मदन तुल्य सुरूप देही ॥ ४५ ॥

सारा शरीर जकड़ा दृढ़ साँकलोंसे,
बेड़ी पड़े छिल गई, जिनकी सुजाँघें,
त्वन्नाम मंत्र जपते जपते उन्होंके,
जल्दी स्वयं झड़ पड़ें सब बन्ध-बेड़ी ॥४६॥
जो बुद्धिमान इस स्तवको पढ़ें,
होके विभीत उनसे भय भाग जाता,
दावाग्नि सिंधु अहिका, रण-रोगका, त्यों,
पंचास्य, मत्त गजका सब बन्धनोंका ॥४७॥
तेरे मनोज्ञ गुणसे स्तव-मालिका ये,
गूँथी, प्रभो, विविधवर्ण सुपुष्पवाली;
मैंने सभक्ति, जनकण्ठ धरें इसे जो;
सो 'मानतुङ्ग' सम प्राप्त करें सुलक्ष्मी ॥४८॥

महाकवि बुधजन कृत

छहढाला

मंगलाचरण, सोरठा।
सर्व द्रव्यमें सार, आतमको हितकार हैं,
नमहु ताहि चितधार, नित्य निरंजन जानके।

पहिली ढाल

चौपाई (१५ मात्रा)

आयु घटत [1]तेरी दिन रात, होय [2]निचीत रह्यो क्यो भ्रात?
जोवन, धन, तन, [3]किंकर, नारि, सब है जल [4]बुद्बुद उनहारि।
पूरन आयु बधै [5]छिन नाहिं, दिये कोटि धन तीरथ माँहिं,
इन्द्र चक्रपति हू कहा करैं, आयु अन्तते वे हू मरैं ॥ १ ॥
यो संसार असार महान, सार आपमें [6]'आपा' जान
सुखतैं दुख, दुखतैं सुख होय, [7]समता चारों [8]गति नहिं कोय ।२
अनन्तकाल गति गति दुख लह्यो, बाकी काल अनन्तो कह्यो
सदा अकेलो 'चेतन' एक, तो माँही गुन बसत अनेक।४
'तू' न किसीका, कोई नहिं [12]तोय, तेरौ सुखदुख तेरो होय,
यातैं 'तो' को 'तू' उर धार, पर द्रव्यनितैं [13]न्यारा।५।
हाड माँस तन लिपटी चाम, रुधिर मूत-मल-पूरित [14]धाम,

१ अपनी आत्मा या मनको समझानेके लिए, [illegible] भिन्न, 'तेरी' कहकर सम्बोधन किया गया है। [2] निश्चिन्त। ३ सेवक आदि। ४ पानीका बुलबुला, उनहारि=समान, अर्थात् ये सब पानीके बुदबुदेके समान नष्ट होनेवाले हैं। ५ बढ़-[illegible], छिन=क्षण, अर्थात् निश्चित आयुसे एक क्षण भी ज्यादा नहीं [illegible] सकते। ६ आत्मामें अपनापन। ७ [illegible] ८ स्वर्ग, नरक, मनुष्य और तिर्यंच गति। ९ [illegible] ११ आत्मा। १२ तेरा। १३ आत्मासे भिन्न शरीर आदि संसारके सभी पदार्थ। [illegible] १४ मूत्र मलसे भरा घर।

मातृ भि न रहै, राय होय, याको तज मिले 'शिवलोय ॥६॥
हित अनहित तन-कुल जन माहि, खोटी 'बानि हरो क्यों नाहि ?
यात पुद्गल-करमन जोग, प्रनवें दायक सुख दुख रोग ॥७॥
पाँचो इन्द्रिनके तज फैल, चित्त निरोधि,लागि शिव गैल
तोमें तेरी तू करि सैल, कहा रह्यो ह्व कोल्हू बैल ।८।
तजि कषाय, मनकी चल चाल, ध्यावो अपना रूप 'रसाल
झरें करम-बन्धन दुख-दान, बहुरि प्रकाशै केवलज्ञान ॥९॥
तेरा जनम हुवो नहिं जहाँ, ऐसो 'खेतर नाहीं कहाँ,
याही जनम भूमिका रचो, चलो निकसि तो ''विधितैं बचो ।
सब व्यौहार क्रियाका 'ज्ञान, भयो अनन्ती बार प्रधान,
'निपट कठिन अपनी ' पहचान, ताकौं पावत होत कल्यान
धरम सुभाव आप ' सरधान, धर्म न शील, न न्हौन न दान,
'बुधजन' गुरुकी ''सीख विचार, 'गहो धाम आतम हितकार

१ मा भी स्थिर नहीं रहता, क्षय हो जाता है। २ मात। ३ बुरी आदत। ४ इन्द्रियोंके काम या दासता छोड़कर। ५ चित्तको वश करके मोक्ष मार्गमें लग। ६ तू अपनी आत्मामें आप सैर कर। ७ क्या मूढ़मूढ़का कोल्हूके बैलकी तरह अपने ज्ञानपर मि यावकी पट्टी बाँधे हुए दूसरोंके लिए मसारमें घूम रहा है। ८ मनोहर। ९ क्षेत्र। १० इस जन्म मरणकी दुःख पूर्ण भूमिमें रच रहा है। ११ आठ कर्मोंसे। १२ सम्यग्दर्शन रहित आचरण क्रिया या चारित्रका ज्ञान। १३ अत्यन्त। १४ स्वरूप। १५ धर्मका स्वरूप आत्माका श्रद्धान है। १६ शिक्षा। १७ ग्रहण करो।

दूसरी ढाल।

जोगीरासा (नरेन्द्र छन्द)

सुन, रे [1]जीव, कहत हूँ तोकौं, तेरे हितके [2]काज,
हूं निश्चल मन, जब तू धारै, तब कछु-इक तो [3]लाजै।
जो दुखतैं थावर-[4]तन पायो, बरन सकूँ सो नाहीं,
ठारै [5]बार मुवो अरु जीयो, एक साँसके माहीं ॥ १ ॥
काल अनन्तानन्त रह्यो यौं, पुनि [6]विकलत्रय हूवो,
बहुरि असैनी निपट अज्ञानी, छिन छिन जीयो, [7]मूवो।
ऐसे जनम गयो करमन वश, तेरो वश नहिं चाल्यो,
पुण्य उदय सैनी पशु हूवो, तब हू ज्ञान न [8]भाल्यो ॥ २ ॥
जबर मिल्यो तिन तोहि सतायो, निबल मिल्यो, तैं खायो,
मात तिया-सम भोगी [9]पापी, तातैं नरक [10]सिधायो।
कोटिक बीछू काटत जैसें, ऐसी भूमि तहाँ है,
रुधिर-राध-[11]परवाह बहत है, दुरगंध निपट जहाँ है ॥ ३ ॥
घाव करत असि-[13]पत्र अगमें, शीत-उष्ण तन [14]गालै,

---

1 हे मेरी अन्तरात्मा, सुन। 2 लिए। 3 कुछ तो शरम आयेगी। 4 पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वृक्षादि वनस्पति-शरीर। 5 अठारहबार। 6 दो इन्द्रिय, ते-इन्द्रिय और चौ-इन्द्रिय जीव। 7 पैदा हुआ, और मरता रहा। 8 फिरभी ज्ञान नहीं पाया। 9 यहां तक पापी कि, माताके साथ भी स्त्री-जैसा भोग करनेवाला,- फिर और और पापोंकी तो गिनती ही क्या? 10 गया। 11 खून और पीपकी नदी। 12 बहुत ही अधिक। 13 तलवार-जैसी धारवाले पत्ते। 14 सरदी-गरमी ऐसी कि शरीर गल गल जाता है।

काट काट करवत[1] कर गहि, कोई पावक[2] जाल।
यथायोग[3] सागर थिति भुगत, दुखको अन्त न आव,
कर्म विपाक [4]ऐसाही हुवै तो मानुष-गति तब पावै ॥४॥
मात उदरमें रहै [5]गोल हुवै, निकसत ही [6]बिललावै,
डमा, दाँत, गला, विसफोटक, डाकिनितैं बच [7]जावै।
तो जोवनमें भामिनिके सँग, निशि दिन भोग [8]रचावै,
अन्धा हुवै [9]धंधे दिन खोवै, [10]बूढ़ा नार हलावै ॥ ५ ॥
जम पकरै, तब जोर न चालै, सैनासैन [11]बतावै,
मन्द कषाय होय तो भाई, भवनत्रिक-[12]पद पावै।

1 करौंत या आरा। 2 आग, जालै=जलाता है। 3 यथायोग्य
अर्थात् जिस नरकमें जितने सागरकी आयु हो, उसको पूरा भोगता
है। 4 ऐसा ही कोई प्रबल शुभ कर्मका उदय आवै, तब। 5
गर्भावस्थामें माँके पेटमें सिमटा हुआ उल्टा टँगा रहता है। 6
छटपटाता है। 7 बचपनमें इन सब आपत्तियोंसे बच जाय
तब कहीं। 8 तो यौवनमें रातदिन स्त्रीके साथ भोग विलासमें
लीन हो जाता है। 9 रोजगार-धंधेमें। 10 अंतमें बूढ़ा हो
जाता है, तब शरीर शिथिल हो जानेसे धर्म-ध्यान कुछ भी करते
नहीं बनता। 11 अंतिम दशामें जब मरनेका समय आता है
तब (समाधि मरणसे सद्गति प्राप्त करना तो दूर रहा) जबान बन्द
हो जानेसे अधूरे सांसारिक कामोंकी पूर्तिके लिए इशारे करते
दुर्लभ मनुष्य जन्मसे हाथ धोकर दूसरी पर्यायमें चला जाता है।
12 भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क।

परकी सम्पति लखि अति झूरै, कै रति काल गमावै,
आयु अन्त माला मुरझावै, तब लखि-लखि पछतावै ॥६॥
चय तहाँतैं थावर होवै, रुलै है काल अनन्ता।
या विधि पंच परावृत पूरत, दुखको नाहीं अन्ता।
काल लब्धि, जिन गुरु किरपातैं, आप 'आप' को जानै,
तब ही 'बुधजन' भवदधि तरिकैं, पहुँचि जाय शिव 'थानै'॥७॥

तीसरी ढाल

(पद्धरि छन्द)

या विधि भव-वन माहिं जीव
वश मोह गहल सूतै सदीव
उपदेश तथा सहजै प्रबोध,
तब ही जागै ज्यों उठत जोध ॥ १ ॥
जब चिंतवत अपने माहिं आप,
हूँ चिदानन्द, नहिं पुण्य-पाप।
मेरो नाहीं है राग भाव
ये तो विधि-वश उपजै विभाव ॥ २ ॥
हूँ नित्य निरंजन, सिद्ध समान,

१ कुढ़ता है। २ या भोगविलासमें समय गँवाता है। ३ मरने पर। ४ पंच परिवर्तन-द्रव्य, क्षेत्र काल, भव और भाव। ५ काल लब्धिकी प्राप्ति होनेपर। ६ मोक्ष स्थान। ७ मोहनीय कर्म वश। ८ गाफिल। ९ ज्ञान। १० आत्मामें भिन्न रागद्वेष आदि विभाव। ११ ये तो कर्मोंके वश विपरीत भाव उत्पन्न हुए हैं। १२ रागद्वेषरहित शुद्धात्मा। १३ कर्ममलरहित सिद्ध।

ज्ञानावरणी[1] आच्छाद ज्ञान,
निश्चय शुद्ध इक, व्योहार भेद,[2]
गुन गुनी, अंग अंगी, अछेद[3] ॥ ३ ॥
मानुष, सुर, नारक, पशु प्रजाय,
शिशु बाल, वृद्ध, बहुरूप काय,
धनवान, दरिद्री, दास, राव,
ये तो विडम्बना,[4] मुझ न भाव ॥ ४ ॥
रस, फरस, गन्ध, वरनादि नाम,
मेरे नाहीं, मैं ज्ञानधाम,[5]
हूं एक रूप, नहिं होत और,
मुझमें प्रतिबिम्बित सकल ठौर ॥ ५ ॥
तन पुलकित, उर हरषित सदीव,
ज्यों भई रंक घर [6]रिधि अतीव,
जब प्रबल अप्रत्याख्यान थाय,[7]
तब चित[8] परनति ऐसी उपाय ॥ ६ ॥
सो सुनो भविक, चित धारि कान,

---

१ ज्ञानावरणी कर्मने मेरा अनंत ज्ञान ढक रक्खा है। २ निश्चयसे आत्माका शुद्ध रूप ही सत्य है उसमें कोई भेद नहीं। भेद सिर्फ व्यवहारनयकी अपेक्षासे है। ३ गुण=आत्माका ज्ञान दर्शन गुणी=आत्मा, अछेद=अभेद। अर्थात् निश्चयनयसे गुण और गुणीमें कोई भेद नहीं। ४ असत्य। ५ ज्ञानका स्थान, ज्ञानमय। ६ रिद्धि। ७ अप्रत्याख्यानावरण कषायके उदय होनेपर। ८ आत्माकी परणति।

बरनत हूँ ताको विधि विधान,
मन करै काज, घर माहिं वास,
ज्यों भिन्न कमल जलमें निवास[१] ॥ ७ ॥
ज्यों सती अङ्ग माहीं सिंगारि,
अति करत प्यार ज्यों नगरि-नारि,
ज्यों धाय लडावत आन बाल,
त्यों भोग करत नाहीं खुशाल ॥ ८ ॥
जहँ उदय मोह चेष्टित प्रभार,
नहिं होय रंचहू त्याग भाव,
तहँ करै मन्द खोटी कषाय,
घरमें उदास है, अथिर[२] ध्याय ॥ ९ ॥
मनकी रचा जुत-न्याय नीति,
जिन शासन गुरुकी दिढ़ प्रतीति,
बहु रुलैं[३] अर्ध पुद्गल प्रमान,
अन्तरमुहूर्त ले परम थान[४] ॥१०॥
ते धन्य जीव, धनि भाग सोय,
जाके ऐसी परतीति जोय,
ताकी महिमा ह्व स्वर्ग लोय,
'बुधजन' भाषे मोतें न होय ॥११॥

१ सांसारिक सब काम करता हुआ भी, मरीच पर परणतिसे अपनको भिन्न समझता है। २ अनित्य जानकर। ३ भ्रमण करता है। ४ मोक्ष।

चौथी ढाल

(सोरठा)

उग्यो आतम सूर, दूर भयो मिथ्यात तम,
अब प्रगटे गुन भूर, तिनमें कछु इक कहत हूँ ॥१॥
शंका मनमें नाहिं, तत्त्वारथ-सरधानमें,
निरवांछा चित माहिं, परमारथमें रत रहै ॥२॥
नेक न करत गिलान, [1]बाह्य मलिन मुनि-तन लखैं,
नाहीं होत अजान, तत्त्व-कुतत्त्व विचारमें ॥३॥
उरमें दया विशेष, गुन प्रगटैं औगुन ढकैं
शिथिल धर्मतें देख, जैसे-तैसे दिढ़ करैं ॥४॥
साधरमी पहिचान, करैं [2]हेत [3]गोवत्स सौं,
महिमा होत महान, धर्म-काज ऐसे करैं ॥५॥
मद नहिं जो नृप तात, मद नहिं भूपति-मानको,
मद नहिं [4]विभौ लहात, मद नहिं सुन्दर रूपको ॥६॥
मद नहिं जो विद्वान, मद नहिं तनमें जो मल्ल,
मद नहिं जो परधान, मद नहिं सम्पति-कोषको ॥७॥
हूवो आतम-ज्ञान, तजि रागादि-[5]विभाव पर,
ताकैं ह्वैं क्यों मान, जात्यादिक [6]वसु अथिरको ॥८॥

१ बाह्य, बाहरी। २ स्नेह-प्रेम। ३ गाय और बछड़े समान साधर्मी भाइयोंसे प्रेम रखता है। ४ वैभव। ५ राग द्वेष आदि विभाव, जो आत्मासे भिन्न हैं। ६ आठ, इससे जाति आदि आठ अथिर मद नहीं होते।

वन्दत है अरहन्त, जिन मुनि जिन सिद्धान्त को,
नत न दख महन्त, कुगुरु कुदेव [१]कुग्रन्थको ॥९॥
कुत्सित आगम देव, कुत्सित गुरु पुनि [२]सेवका,
परशंसा षट भेव करैं न समकितवान है ॥१०॥
प्रगट इसा सुभाव, करा अभाव मिथ्यात्वका,
वन्दे ताके पाँव, 'बुधजन' मन-वच-कायतैं ॥११॥

पाँचवीं ढाल

(चाल छन्द)

तिर्यंच मनुष दोउ गतिमें, व्रत धारक सरधा चितमें;
सो अगलित नीर न पीवै, निशि भोजन तजत सदीवै ॥१॥
मुख अभख वस्तु नहिं लावै, जिन-भक्ति त्रिकाल रचावै,
मन-वच-तन कपट निवारै, कृत कारित मोद सँवारै ॥२॥
जैसा उपशमत कषाया, तैसा तिन त्याग कराया,
कोउ सात विसनको त्यागै, कोउ अणुव्रतमें मन पागै ॥३॥
त्रस जीव कभू नहिं मारै, विरथा थावर न सँहारै,
परहित बिन झूठ न बोलै, मुख साँच बिना नहिं खोलै ॥४॥

१ सम्यग्दृष्टि मिथ्या देव-गुरु शास्त्रको नमस्कार नहीं करता। २ कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रकी सेवा नहीं करता। ३ अनछना पानी नहीं पीता। ४ मिथ्यात्व-पोषक काम स्वयं करने, दूसरेसे कराने और दूसरेके किये हुए कामके अनुमोदन करनेसे आपको बचाते रहता है। ५ जिसकी जैसी कषायें शान्त हुई हैं, वह वैसा त्याग करता है।

जल [1]मृतिका बिन सब सबहू, निन दियो लेय नहिं कबहू,
ज्यौं ही वनिता जिन नारी, लघु बहिन, बड़ी महतारी।।५
तिसनाका जोर सकोचे, ज्यादा परिग्रहको सोचे,
दिशकी मरजादा लावे, बाहर नहिं पाँव हिलावे ॥६।
ताहमें पुर, सर, [3]सरिता, नित राखत अघतें डरता,
सब अनरथदंड न करि हैं, छिन छिन निज धर्म सुमरि हैं ।।७
दर्व थान, काल, सुध भावें, ममता सामायिक ध्यावें,
पोषह एकाशा हो हैं, निष्किंचन मुनि ज्यों सोहैं ।।८।।
परिग्रह परिमान विचारें, नित नेम भोगका धारें,
मुनि आवन [4]बिरिया जावे, तब जोग असन मुख लावे।।९
यें उत्तम किरिया करता, नित रहैं पापतें डरता,
जब निकट मृत्यु निज जाने, तब हो सब ममता भाने ।।१०
ऐसे पुरषोत्तम केरा, 'बुधजन' चरननका चेरा,
वे निश्चय सुर पद पावें, थोरे दिनमें शिव जावें ।।११।।

छठी ढाल

(चाल "अहो जगतगुरु देव")

अथिर ध्याय परजाय, भोगतें होय उदासी,
नित्य निरंजन जोति, आतमा घटमें भासी ।।१।।
सुत दारादि बुलाय, सबनितें मोह निवारा -
त्यागि शहर धन धाम, वासबन बीच विचारा ।।२।।

१ मिट्टी । २ स्त्री । ३ नदी । ४ समय । ५ छोड़े ।

भूषन वसन उतारि, नगन ह्वै आतम [illegible]
गुरु ढिंग दीक्षा धारि, शीश-कच लौंच जु [illegible]
त्रस-थावरको घात, त्याग, मन-वच-तन [illegible]
झूठ वचन परिहार, गहैं नहिं जल बिन [illegible]
चेतन जड तिय भोग, तजत, गति [illegible]
अहि कंचुकि ज्यौं जान, चित्ततैं परि[illegible]
गुपति पलनके काज, कपट मन वच-[illegible]
पाँचों सुमति सँभारि, परीषह सहि [illegible]
छाँडि सकल जंजाल, आप करि [illegible]
अपने हितसौं आप, करी [illegible]
ऐसी निश्चल काय, ध्यानमें [illegible]
मानौं पाथर रची, किधौं [illegible]
चार घातिया नाशि, [illegible]
दे जिन मत आदेश, भविक [illegible] ॥९॥
बहुरि अघाते तोरि, समय [illegible] पाया
अलख अखंडित जोति, [illegible] ॥१०॥
काल अनन्तानन्त, [illegible] है,
अविकारी अविनाश, अचल [illegible] है ॥११॥
ऐसी भावन भाय, [illegible] है,
ते ऐसे ही होय दुष्ट कर्मनकौं हरि हैं ॥१२॥
तिनके उर विश्वास, [illegible] नाहीं

न मोगालु होय, मरे दुःख नरकन माँही ॥१३॥
सुख-दुःख पर विपाक, अर मत कलपे जीया,
कठिन-कठिनकर मीत, जनम मानुष तैं लीया ॥१४॥
सो विथा मत खोय, जोय आपा पर, भाई,
गई न लाभ फेरि, उदधिमें डूबी राई ॥१५॥
भला नरकका वास, सहित समकित जे पाता,
बुरे बने जे देव, नृपति, मिथ्यामत-माता ॥१६॥
नहीं खरच धन होय, नहीं काहूतें लरना,
नहीं दीनता होय, नहीं घरका परिहरना ॥१७॥
समकित सहज सुभाव, 'आप' का अनुभव करना,
या बिन जप-तप वृथा, कष्टके माहीं परना ॥१८॥
कोटि बातकी बात, अरे 'बुधजन' उर धरना,
मन वच-तन सुध होय, गहो जिनमतका सरना ॥१९

॥ दोहा ॥

ठारासै पचास, अधिक नव संवत जानो,
तीज सुकल वैशाख, 'ढाल षट्' शुभ उपजानो ॥२०

श्रीवृहत्स्वयम्भूस्तोत्रसे (श्री समंतभद्राचार्यकृ

शतह्रदोन्मेष चलं हि सौख्यं,
तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः ।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं,
तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥ १३

अर्थ—निश्चयसे इन्द्रिय विषयोंका सुख बिजलीकी चमकके समान क्षणभर भी स्थिर रहने वाला नहीं है। तृष्णारूपी रोगके बढ़ानेका एक मात्र कारण है। इन्द्रिय-विषयोंके सेवनसे तृप्ति न होकर उल्टी तृष्णा बढ़ जाती है। तृष्णाकी बढ़वारी निरंतर संताप उत्पन्न करती है और वह ताप इस संसारको अनेक दुःखोंकी परंपरासे पीड़ित रखता रहता है। ऐसा आपने (पीड़ित जनताको उसके दुःखका सच्चा निदान बताते हुए) उपदेश दिया है॥१३॥

(४) श्री अभिनन्दननाथ भगवानकी स्तुति

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान्
दयावधूं क्षान्तिसखीमशिश्रियत् ।
समाधितन्त्रस्तदुपोपपत्तये
द्वयेन नैर्ग्रन्थ्यगुणेन चायुजत् ।१६।

अर्थ—आपके जन्म लेते ही लोकमें सुखादि गुणोंकी बढ़वारी हो जानेसे आप 'अभिनन्दन' इस सार्थक नामके धारी हो। आपने क्षमासखी वाली दयावधूको अपनाया है। हे जिनेन्द्र ! आप आत्मध्यानमें लीन हैं और उस आत्मध्यानकी प्राप्तिके लिये ही आपने बाह्य आभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहको छोड़कर अपनेको निर्ग्रंथपनेके गुणसे सुशोभित किया है ॥ १६ ॥

अचेतने तत्कृतबन्धजेऽपि च,
ममेदमित्याभिनिवेशिकग्रहात् ।
प्रभङ्गुरे स्थावरनिश्चयेन च,
क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद् भवान् ।१७।

अर्थ—अचेतन (जड़) शरीरमें और शरीर सम्बंधसे पैदा होने वाले सुख दुःखादिक तथा स्त्री पुत्रादिकमें 'यह मेरा है मैं इनका हूँ' इस प्रकारके मिथ्या अभिप्रायको लिये हुए होनेसे तथा क्षणभंगुर पदार्थोंमें नित्य बने रहनेका निश्चय कर लेनेके कारण जगतके प्राणी कष्ट उठा रहे हैं उन्हें आपने जीवादि पदार्थोंका यथार्थ स्वरूप बतलाकर सच्चे मार्गपर लगाया है ॥ १७ ॥

क्षुधादि दुःख प्रतिकारतः स्थिति
र्न चेन्द्रियार्थप्रभवाल्पसौख्यतः ।
ततो गुणो नास्ति च देहदेहिनो-
रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥१८॥

अर्थ—भूख प्यास आदिके दुःखोंको मिटानेके लिये भोजन पानादिका सेवन करनेसे और इन्द्रियके विषयभोगों से उत्पन्न होने वाले अति थोड़े एवं अतृप्तिकारी क्षणिक सुखके सेवनसे इस शरीरधारी जीवकी स्थिति शरीरमें सदा नहीं रहती और न तृप्ति ही होती है। ऐसी दशामें क्षुधादि दुःखोंके इस क्षणस्थाई प्रतिकार और इन्द्रियविषयजन्य

अल्पसुखके सेवनसे न तो वास्तवमें इस शरीरका कोई उपकार बनता है और न शरीरधारी जीवका ही कुछ भला होता है। इस प्रकार हे भगवन्! आपने मिथ्या भ्रमके चक्करमें पड़े हुए जगतको रहस्यकी यह सब बात समझाई है ॥ १८ ॥

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो,
भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्धदोषवित्,
कथं सुखे संसजतीति चाब्रवीत्।१९

अर्थ—अत्यन्त आसक्तिके वशसे विषयसेवनमें अत्यन्त लोलुपी भी मनुष्य इस लोकमें राजदण्डादिके भयसे दुष्कर्मोंमें प्रवृत्ति नहीं करता, फिर जो मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें होनेवाले विषयासक्तिके भयंकर परिणामों को भले प्रकार जानता है वह कैसे विषयसुखमें आसक्त हो सकता है? नहीं हो सकता, ऐसा आपने जगतको उपदेश किया है ॥ १९ ॥

स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्
तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं,
ततो भवानेव गतिः सतां मतः ॥ २० ॥

अर्थ इन्द्रिय भोगोंमें आसक्तपना और तृष्णाकी बढ़वारी दोनों ही इस लोलुपी प्राणीके लिये दुःखदाई हैं। इन्द्रिय विषयजन्य थोड़ेसे सुखके मिलनेपर भी इस प्राणी की स्थिति सुखमय नहीं होती, प्रत्युत उसका संताप बढ़ जाता है। इस प्रकार जगतके लोगोंका उपकार करने वाला चूंकि आपका शासन है, इसलिये हे अभिनन्दन प्रभो! आप ही जगतके शरणभूत हैं, ऐसा सत्पुरुषोंने माना है ॥ ३० ॥

(७) श्री सुपार्श्वनाथ भगवानकी स्तुति

स्वास्थ्य यदात्यन्तिकमेष पुंसां,
स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुरात्मा।
तृषोऽनुषङ्गान्न च तापशान्ति
रितीदमाख्यद्भगवान्सुपार्श्वः ॥३१॥

अर्थ—जो कर्मादिमलसे छूटकर अपने अनन्तज्ञानादि स्वरूप आत्मामें अत्यन्त अविनाशी स्थिति है यही जीवात्माओंका निजी (सच्चा) प्रयोजन है। क्षणभंगुर इन्द्रिय सुखोंका भोग निजी प्रयोजन नहीं है। क्योंकि भोगों भोगनेसे भोगाकांक्षाकी बढ़वारी होती जाती है और उस चाहकी दाह शांत नहीं होती है। यह स्वार्थका स्वरूप परम शोभनीक शरीरके अङ्गोंके धारक श्री सुपार्श्व बतलाया है॥ ३१ ॥

अजङ्गम जंगमनेययन्त्र,
यथा तथा जीवधृत शरीरम्।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च
स्नेहो वृथात्रेति हित त्वमाख्य ॥३२॥

अर्थ —जैसे जड़ यत्र (हाथी, घोड़ा, मशीन आदि) जगमपुरुष द्वारा चलाया जाता है उसीप्रकार जीवके द्वारा धारण किया हुआ यह जड़ शरीर है साथ ही यह शरीर अति घिनावना है, दुर्गंधमय है, नाशवान् है, दुःखोंका कारण है। इस शरीरमें राग करना वृथा है ऐसी हितकी शिक्षा आपने दी है॥ ३२॥

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं
हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहंक्रियार्तः
संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥

अर्थ—(अतरंग और बहिरंग) दोनों कारणोंसे प्रगट होता हुआ कार्य जिसका चिह्न है ऐसे इस दैवकी शक्ति अलंघ्य है अर्थात् कोटिके टाले नहीं टलती। (ऐसे कार्य करनेमें जिसकी कुछ भी सामर्थ्य नहीं है ऐसा) असमर्थजीव कार्योंके संयोगको पाकर (व्यर्थ ही) अहंकारसे पीड़ित होता है। ऐसा आपने यथार्थ कहा है।

भावार्थ—आचार्यश्रीने इस स्तुतिमें ससार, देह, भोगोंकी असारता दिखलाते हुए आत्मरुचि कराई है। जो पुरुष शरीरकी अनुकूलता एवं भोगोंकी सामग्री इकट्ठा

करनेमें अपनी शक्तिसे लगाये हुये हैं उनको समझाया है कि बाह्य संयोगरूप परद्रव्योंको तेरे पास लानेमें तेरा किञ्चित् भी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि हरएक कार्यकी प्रगटताम दो कारण होते हैं एक तो अतरग अर्थात् उपादान कारण दूसरा बहिरग अर्थात् निमित्तकारण अत जो बाह्य संयोगरूप परद्रव्य तेरे निकट प्रगट हुए हैं, वे अपनेर उपादानकारणसे तेरे नजदीक प्रगटे हैं, उनकी प्रगटताके कालमें तेरे पूर्वबद्ध पुण्यपापरूप कर्म निमित्तमात्र हैं, इसप्रकार सब द्रव्योंकी सहजस्वाभाविक व्यवस्था अलघ्य है, फिर भी यह जीव व्यर्थ ही अहकारसे दु.खी होता रहता है कि मैंने इस बाह्यसामग्रीको इकट्ठा किया, इसको दूर किया ॥ ३३ ॥

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,
नित्य शिव वाञ्छति नास्य लाभ ।
तथापि बालो भयकामवश्यो,
वृथा स्वय तप्यत इत्यवादी. ॥३४॥

अर्थ—ससारी प्राणी मौतसे सदा डरता रहता है परतु उस मृत्युसे छुटकारा नहीं, नित्य ही कल्याण या मोक्ष चाहता है परतु इच्छा द्वारा उसका लाभ नहीं होता। फिर भी यह मूढ प्राणी भय और इच्छाके वशीभूत हुआ अपने आप व्यर्थमें ही दु खी होता रहता है) ऐसा आपने उपदेश दिया है ॥ ३४ ॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता,
मातेव बालस्य हितानुशास्ता ।

गुणावलोकस्य जनस्य नेता
मयाऽपि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ।३५

अर्थ—आप जीवादि निश्व तत्त्वोंके संशयादि रहित ज्ञाता हैं। जैसे माता बालक को हितकारी शिक्षा देती है उसी तरह आप अज्ञानी भव्य जीवोंको आत्महितका उपदेश देने वाले हैं। और आप ही सम्यग्दर्शनादि गुणोंके खोजी भव्यजनको गुणोंकी प्राप्तिका यथार्थ मार्ग दिखाने वाले हैं। इसीसे मैं भी इस समय भक्तिपूर्वक आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुआ हूँ। अर्थात् आपकी स्तुति करनेसे मुझे भी आत्मीय गुणोंकी प्राप्तिका मार्ग सूझ पड़ा है ॥३५॥

(१०) श्री शीतलनाथ भगवानकी स्तुति

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो,
न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः ।
यथा मुनेस्तेऽनघ वाक्यरश्मयः,
शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ।४६

अर्थ—हे निर्दोष श्रीशीतल भगवन्! आप प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनिकी परम शांत जलसे भरी हुई वचनरूपी किरणें भेदज्ञानी पंडितोंके लिए संसारताप नाश करनेके हेतु जैसी शीतल (सुख शांति देने वाली) होती हैं, वैसी चंदन तथा चन्द्रमाकी किरणें शीतल नहीं हैं, न गंगाका पानी शीतल

करनेमें अपनी शक्तिको लगाये हुए हैं उनको समझाया है कि बाह्य संयोगरूप परद्रव्योंका तेरे पास लानेमें तेरा किंचित् भी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि हरएक कार्यकी प्रगटताम दो कारण होते हैं एक तो अंतरंग अर्थात् उपादान कारण दूसरा बहिरंग अर्थात् निमित्तकारण अत जो बाह्य संयोगरूप परद्रव्य तेरे निकट प्रगट हुए हैं, वे अपने२ उपादानकारणसे तेरे नजदीक प्रगटे हैं, उनकी प्रगटताके कालमें तेरे पूर्वबद्ध पुण्यपापरूप कर्म निमित्तमात्र हैं, इसप्रकार सब द्रव्योंकी सहजस्वाभाविक व्यवस्था अलंघ्य है, फिर भी यह जीव व्यर्थ ही अहंकारसे दुःखी होता रहता है कि मैंने इस बाह्यसामग्रीको इकट्ठा किया, इसको दूर किया ॥ ३३ ॥

विभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,
नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः ।
तथापि बालो भयकामवश्यो,
वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥

अर्थ—संसारी प्राणी मौतसे सदा डरता रहता है परंतु उस मृत्युसे छुटकारा नहीं, नित्य ही कल्याण या मोक्ष चाहता है परंतु इच्छा द्वारा उसका लाभ नहीं होता। फिर भी यह मूढ प्राणी भय और इच्छाके वशीभूत हुआ अपने आप व्यर्थमें ही दुःखी होता रहता है। ऐसा आपने उपदेश दिया है ॥ ३४ ॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता,
मातेव बालस्य हितानुशास्ता ।

गुणावलोकस्य जनस्य नेता,
मयाऽपि भक्त्या परिणूयतेऽद्य ।३५

अर्थ—आप जीवादि निश्व तत्त्वोंके मयपादि रहित ज्ञाता हैं। जैसे माता बालक को हितकारी शिक्षा देती है उसी तरह आप अज्ञानी भव्य जीवोंको आत्महितका उपदेश देने वाले हैं। और आप ही सम्यग्दर्शनादि गुणोंके खोजी भव्यजनको गुणोंकी प्राप्तिका यथार्थ मार्ग दिखाने वाले हैं। इसीसे मैं भी इस समय भक्तिपूर्वक आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुआ हूँ। अर्थात् आपकी स्तुति करनेसे मुझे भी आत्मीय गुणोंकी प्राप्तिका मार्ग सूझ पड़ा है ॥३५॥

(१०) श्री शीतलनाथ भगवानकी स्तुति

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो,
न गाङ्गमम्भो न च हारयष्टयः।
यथा मुनेस्तेऽनघ वाक्यरश्मयः,
शमाम्बुगर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ।४६

अर्थ—हे निर्दोष श्रीशीतल भगवन् ! आप प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनिकी परम शांत जलसे भरी हुई वचनरूपी किरणें भेदज्ञानी पंडितोंके लिए संसारताप नाश करनेके हेतु जैसी शीतल (सुख शांति देने वाली) होती हैं, वैसी चंदन तथा चन्द्रमाकी किरणें शीतल नहीं हैं, न गंगाका पानी शीतल

करनेमें अपनी शक्तिको लगाये हुवे हैं उनको समझाया है कि बाह्य संयोगरूप परद्रव्योंको तेरे पास लानेमें तेरा किञ्चित् भी सामर्थ्य नहीं है क्योंकि हरएक कार्यकी प्रगटतामें दो कारण होते हैं एक तो अतरंग अर्थात् उपादान कारण दूसरा बहिरंग अर्थात् निमित्तकारण अत जो बाह्य संयोगरूप परद्रव्य तेरे निकट प्रगट हुए हैं, वे अपने२ उपादानकारणसे तेरे नजदीक प्रगटे हैं, उनकी प्रगटताके कालमें तेरे पूर्वबद्ध पुण्यपापरूप कर्म निमित्तमात्र हैं, इसप्रकार सब द्रव्योंकी सहजस्वाभाविक व्यवस्था अलंघ्य है, फिर भी यह जीव व्यर्थ ही अहंकारसे दुःखी होता रहता है कि मैंने इस बाह्यसामग्रीको इकट्ठा किया, इसको दूर किया ॥ ३३ ॥

विभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,
नित्यं शिवं वाञ्छति नास्य लाभः ।
तथापि बालो भयकामवश्यो,
वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥३४॥

अर्थ—संसारी प्राणी मौतसे सदा डरता रहता है परंतु उस मृत्युसे छुटकारा नहीं, नित्य ही कल्याण या मोक्ष चाहता है परंतु इच्छा द्वारा उसका लाभ नहीं होता। फिर भी यह मूढ प्राणी भय और इच्छाके वशीभूत हुआ अपने आप व्यर्थमें ही दुःखी होता रहता है। ऐसा आपने उपदेश दिया है ॥ ३४ ॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता,
मातेव बालस्य हितानुशास्ता।

गुणावलोकस्य जनस्य नेता
मयाऽपि भक्त्या परिणु[illegible]

अर्थ—आप जीवादि निश्व तत्त्वोंके [illegible] ज्ञाता हैं। जसे माता बालक को हितकारी [illegible] हैं उसी तरह आप अज्ञानी भव्य जीवोंके [illegible] उपदेश देने वाले हैं। और आप ही [illegible] गुणोंके खोजी भव्यजनको गुणोंकी [illegible] दिखाने वाले हैं। इसीसे मैं भी [illegible] आपकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुआ हूँ। [illegible] करनेसे मुझे भी आत्मीय गुणोंकी [illegible] पडा है ॥४५॥

(१०) श्री शीतलनाथ [illegible] स्तुति

न शीतलाश्चन्दन[illegible]
न गाङ्ग[illegible]।
यथा मुनेस्तेऽनघ [illegible]
शमाम्बुगर्भाः [illegible]श्चिताम् ।४६

अर्थ—हे निर्दोष [illegible]! आप प्रत्यक्ष ज्ञानी मुनिकी परम [illegible] रूपी किरणें भेदज्ञानी पंडितोंके [illegible] करनेके हेतु जैसी शीतल (सुख शांति [illegible] हैं वैसी चंदन तथा चन्द्रमाकी किरणें [illegible] गंगाका पानी [illegible]

है और न मोतियोंके हारकी मालाएँ ही शीतल हैं। अर्थात् ये शीतल पदार्थ मात्र शारीरिक तापको भले ही हरलें, परंतु इनमेंसे कोई भी समागतापजन्य दुःखको मिटानेमें समर्थ नहीं है यह शक्ति तो आपके वचनरूपी किरणोंमें ही है। अतः सभी दुःखशांति प्रदान करनेके कारण साधक नामधारी आप ही हो ॥ ४६॥

सुखाऽभिलाषाऽनलदाहमूर्छितं,
मनो निजं ज्ञानमयाऽमृताऽम्बुभिः ।
व्यदिध्यपस्त्वं विषदाहमोहितं,
यथा भिषग्मन्त्रगुणैः स्वविग्रहम् ॥४७

अर्थ—जैसे वैद्य विष दाहसे मूर्छित हुए अपने शरीरको विषके दूर करनेवाले मंत्रोंके गुणोंसे विष रहित कर देता है उसी प्रकार आपने इन्द्रिय विषय सुखोंकी चाहरूपी अग्निकी जलनसे मूर्छाको प्राप्त (हेयोपादेयके ज्ञानसे शून्य) हुए अपने मनको ज्ञानमय अमृतजलाके सिंचनसे मूर्छा रहित करके शांत किया है ॥ ४७ ॥

स्वजीविते कामसुखे च तृष्णया,
दिवा श्रमार्ता निशि शेरते प्रजाः ।
त्वमार्य नक्तंदिवमप्रमत्तवान्
जागरेवाऽऽत्मविशुद्धवर्त्मनि ॥४८॥

अर्थ—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हैं और [illegible] [illegible] [illegible] हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धनादिको बिलकुल छोड कर [illegible] [illegible] [illegible] करने वाले [illegible] [illegible] ही रहे हैं। [illegible] [illegible] और अपने जीवनके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] होकर [illegible] मार्गमें [illegible] देते हैं और [illegible] [illegible] [illegible] रहते हैं [illegible] नहीं [illegible] [illegible] [illegible] कर जाते हैं। साथ ही श्रद्धादिक इन्द्रियोंके कारके मनको प्रमाद रहित होकर रातदिन आत्महित करनेमें सावधान रहना चाहिये ॥ ४८ ॥

> अपत्यवित्तोत्तरलोकतृष्णया,
> तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते ।
> भवान्पुनर्जन्म-जरा-जिहासया,
> त्रयीं प्रवृत्तिं समधीरवारुणत् ॥ ४९ ॥

अर्थ—कितने ही (अज्ञानी) तपस्वी जन संतान धन तथा परलोक के सुखकी तृष्णाके वशीभूत होकर धार्मिक क्रियाकाण्डरूप कर्म करते हैं परन्तु आपने ममता धारकर पुनर्जन्म और बुढ़ापेको दूर इच्छासे मन वचन काय तीनोंकी प्रवृत्ति को ही

अर्थात् सामारिक सुखोंके इच्छुक धार्मिक अनुष्ठान करने पर भी ससारमें ही भ्रमते रहते हैं क्योंकि जैसा उनका लक्ष्य है वैसा ही फल प्राप्त करते हैं। जन्म-जरा मरण के न चाहने वालोंको आपके समान निवृत्ति धारणकर आत्महित करने में ही तन्मय रहना चाहिये ॥ ४९ ॥

> त्वमुत्तमज्योतिरज क्व निर्वृत,
> क्व ते परे बुद्धिलवोद्धव क्षता ।
> तत स्वनि श्रेयसभावनापरै -
> र्बुधप्रवेकैर्जिन शीतलेड्यसे ॥ ५० ॥

अर्थ—हे श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्र ! कहाँ तो आप परमोत्कृष्ट केवलज्ञानके धनी, पुनर्जन्मसे रहित तथा परम सुखी ? और कहाँ वे दूसरे तनिकसी बुद्धिके अहंकारसे नाशको प्राप्त होनेवाले ? कितना महान् अंतर है ! इसीलिये अपने आत्मकल्याणकी प्राप्तिकी भावनामें तत्पर गणधरादिक देवोंके द्वारा आप पूजे जाते हैं॥ ५० ॥

(१२) श्री वासुपूज्य भगवानकी स्तुति

> शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु,
> त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्रपूज्य ।
> मयाऽपि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र,
> दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्य ॥५६॥

अर्थ—हे मुनिनाथ! आप वसुपूज्य राजाके पुत्र श्री वासुपूज्य स्वामी! मगलमय गर्भ, जन्म, तप आदि कल्याणरूपी क्रियाओंके अवसर पर पूजाको प्राप्त हुए हैं, इन्द्रादि देवोंके द्वारा पूजे जाते हैं और मुझ तुच्छ बुद्धिके द्वारा (समन्तभद्रसे) भी पूज्य हैं क्योंकि दीपककी ज्योतिसे क्या सूर्य नहीं पूजा जाता है? अपि तु पूजा ही जाता है।

विशेषार्थ—प्रभो! कहाँ आप अनन्तगुणके धनी और कहाँ मैं अल्पबुद्धि! तथापि भक्तिवश पूजा करता ही हूँ। जैसे लोग दीपककी अति तुच्छ लौसे सूर्यकी पूजा करते हैं वैसे मैं आपकी भक्ति कर लूँ तो कोई अचरजकी बात नहीं है॥ ५६॥

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथाऽपि ते पुण्यगुणस्मृतिर्न,
पुनाति चित्त दुरिताञ्जनेभ्यः॥५७॥

अर्थ—हे भगवन्! आपमें राग भावका अभाव है अत आपकी पूजा करनेसे आपको कोई प्रयोजन नहीं है। इसी तरह आपमें द्वेष भावका अभाव है इसलिये आपकी निन्दा करनेसे भी आपको कोई प्रयोजन नहीं है। यह सब ठीक है किन्तु फिरभी आपके पवित्र गुणोंका

स्मरण पापरूपी मैलका नाश करके हमारे चित्तको पवित्र कर ही देता है।

विशेषार्थ—वीतराग भगवान अपने पुजारीके ऊपर प्रसन्न नहीं होते तथा अपने शत्रुके ऊपर कुपित नहीं होते, फिर उनकी भक्तिसे क्या लाभ ? आचार्यश्रीने इसका समाधान किया है कि आपके पवित्र गुणोंके स्मरणसे चित्तकी निर्मलता एवं विशुद्धि होती है अतः आपकी पूजा वन्दना हम अपने ही हितके लिये करते हैं ॥ ५७ ॥

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य,
सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य,
न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ ॥५८॥

अर्थ—हे नाथ ! आपकी स्तुति पूजन करते हुए आरम्भादिक द्वारा कुछ पापका उपार्जन अवश्य होता है, किन्तु वह हानिकारक इस कारण नहीं कि पुण्यकर्मकी बहुलतामें वह कुछ कार्यकारी नहीं रहता, जिस तरह कि शीतल तथा कल्याणकारी जलसे भरे हुए समुद्र-जलको एक विषकी बूंद खराब नहीं कर सकती ॥५८॥

यद्वस्तु बाह्यं गुणदोषसूते
र्निमित्तमभ्यन्तरमूलहेतोः ।

अध्यात्मवृत्तस्य तदङ्गभूत-
मभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो बाह्य-सामग्री पुण्य तथा पापभावकी उत्पत्तिका निमित्तकारण होती है वह उन कारणमें होने वाले शुभाशुभादि-परिणाम लक्षण मूलकारणकी (उपादानकारणकी) मात्र सहकारी कारण है। वस्तुतः आपके मतमें तो अंतरंग शुभ व अशुभ परिणाममात्र ही पुण्य-पाप बंध करनेको समर्थ हैं अर्थात् जीवोंके अंतरंग परिणाम ही पुण्य तथा पाप-बन्धके मूलकारण हैं; बाहरी पदार्थ शुभ व अशुभ परिणामोंके होनेमें केवल सहकारी कारण हैं ॥ ५९ ॥

बाह्येतरोपाधिसमग्रतेयं,
कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां,
तेनाऽभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥६०॥

अर्थ—आपके दर्शनमें कार्योत्पत्तिमें बाह्य (निमित्त) और आभ्यन्तर (उपादान) दोनों कारणोंकी समग्रता (पूर्णता) ही द्रव्यगत (द्रव्यमें प्राप्त हुआ) निजस्वभाव है। संसारी जीवों के लिये मोक्षका उपाय भी अन्य और कोई नहीं है। इसीसे हे परमऋद्धिसम्पन्न ऋषि वासुपूज्य ! आप गणधरादि ज्ञानीजनोंके द्वारा पूजा वन्दना किये जानेके योग्य हैं।

भावार्थ—जो द्रव्य स्वयं कार्यरूप परिणमा हो उस

जाता है तथा उसी समय द्रव्य अपनी स्वयंकी योग्यतासे तदनुकूल परिणमता है और अन्य संयोगरूप द्रव्य उपस्थित होता है उसको निमित्तकारण कहा जाता है, ऐसी स्वतंत्र कारणकार्यकी व्यवस्था ही द्रव्यगत निजस्वभाव है अर्थात् दोनोंके स्वतंत्र परिणमन होते हुवे भी कार्योत्पत्तिके समय दोनोंकी समग्रता द्रव्यगत निजस्वभाव है। अतः जिसने अपने अंतरमें निश्चयरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग प्रगट किया हो उससे आपकी भक्ति पूजा वंदना आदि होते ही हैं, इसके सिवाय मोक्षका उपाय कोई अन्य नहीं है, इसीसे आप ज्ञानीजनों द्वारा पूजा वन्दना किये जाने योग्य हैं ॥६०॥

आगेकी स्तुतियोंसे

य एव नित्यक्षणिकादयो नया,
मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः ।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः,
परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः ॥ ६१ ॥

अर्थ—जो नित्य अनित्य, सत् असत् आदिक नय हैं वे परस्परमें यदि एक दूसरेकी अपेक्षा नहीं रखकर सर्वथा एकान्तरूपसे वस्तुका कथन करनेवाले हैं तो वे अपना और दूसरे दोनोंका नाश करने वाला होनेसे स्व पर वैरी हैं इसीलिये दुर्नय हैं। हे प्रत्यक्षज्ञानी विमलनाथ भगवन्! आपके दर्शनमें वे ही नय परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेसे अपना व दूसरे दोनों का भला करनेवाला होनेसे स्वपर उपकारी हैं और इसीलिये तत्त्वरूप सुनय हैं ॥६१॥

...परिदहन्ति न शान्तिरासां
निर्यन्त्रिगार्थविभवं परिवृद्धिरेव।
...तापपरितापकरं निमित्त
...भवान् विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ।८२

...—तृष्णारूपी अग्निकी ज्वालाएँ (निरन्तर हृदयको)
...करती रहती हैं। इन्द्रियविषयोंकी प्राप्तिसे इन
...शान्ति नहीं होती, उल्टी बढ़वारी ही होती है;
...वस्तु स्वभाव ऐसा ही है। सेवन किये हुए इन्द्रियोंके
...(कुछ क्षणोंके लिये) मात्र शरीरके सतापको (सुज
...) मिटानेमें निमित्त पड़ जाते हैं (मनकी दाह शान्त
...समर्थ नहीं होते), ऐसा समझकर इन्द्रियविजेता
... आपने इन्द्रिय-विषयोंके सुखसे उदासीनता धारण
...। अर्थात् चक्रवर्तीके वैभवसे मुँह मोड़कर जिनदीक्षा
... करली ॥ ८२ ॥

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा,
...वेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः ।
...किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायसपथे,
... नमिजिनम् ।११६

अर्थ—स्तुति करते समय जिसकी स्तुति की जाती है
... हो या न हो तथा उस स्तुतिसे फलकी
प्राप्ति भी होती हो या न होती हो, परतु भक्ति मान पूर्वक

स्तुति करनेवाले साधुजनके द्वारा की गई आपकी स्तुति शुभ परिणामोंका कारण अवश्य है। अर्थात् स्तुतिकारकी भावसहित स्तुति स्वयं परिणामोंको निर्मल करनेमे प्रधान निमित्त होती है। जब जगतमें इस प्रकार स्वाधीनतासे मोक्षमार्ग सुलभ है तब, हे सदैव इन्द्रादि द्वारा पूज्य नमिनाथ स्वामी! ऐसा कौन ज्ञानीजन है जो अपने परिणामों की उज्जवलताके लिये आपकी स्तुति न करेगा? अर्थात् अवश्य करेगा आपकी स्तुति करेगा ॥११६॥

हार्दिक भावना

मैं वो दिन कब पाऊँ, घरको छोड वन जाऊँ ॥ मैं वो० ॥
अतर बाहिर त्याग परिग्रह, नग्न स्वरूप बनाऊँ ॥ मैं वो० ॥
सकल विभावमय परिणति तज स्वाभाविक चित लाऊँ ॥
पर्वत गुफा नगर सुन्दर घर, दीपक चाद मनाऊँ ॥मैं वो०॥
भूमि सेज आकाश चदोवा, तकिया भुजा लगाऊँ ॥मैं वो०॥
उपल जान मृग राज खुजावत, एसा ध्यान लगाऊँ ॥मैं०॥
क्षुधा तृषादिक सहूँ परीषह, बारह भावन भाऊँ ॥ मैं वो० ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, दशलक्षण उर लाऊँ ॥ मैं वो ॥
चार घातिया कर्म नाशकर, केवलज्ञान उपाऊँ ॥ मैं वो० ॥
घात अघाति लई शिव 'मक्खन' फेर न जगमे आऊँ ॥मैं॥

पूजा प्रकरण



देवशास्त्रगुरु पूजा

[1]ॐ जय जय जय। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

[2]णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।

णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः। (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

[3]चत्तारि मंगलं–अरहंतमंगलं, सिद्धमंगलं, साहूमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरहंतलोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरहंतसरणं

---

१ हे जिनेन्द्रभगवन्! आप जयवंत होओ २। आपके लिये हमारा नमस्कार हो ३। २ मैं अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोकवर्ती सर्वसाधु इन पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करता हूँ। ३ प्रथम अरहंत भगवान, दूसरे सिद्ध परमेष्ठी, तीसरे साधु परमेष्ठी और चौथे केवली भगवानका कहा हुआ धर्म ये चार ही इस संसारमें मंगल (पापके नाश करनेवाले और सुख के देने वाले) हैं, ये चार ही सर्वोत्तम हैं और इन चार ही की शरण में जाता हूँ।

पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा । (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा,
ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा,
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥ २ ॥

अपराजितमंत्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः ॥ ३ ॥

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥४॥

चाहे पवित्र हो या अपवित्र हो, चाहे अच्छे स्थान पर हो अथवा बुरी जगह हो, पंच परमेष्ठीके वाचक नमस्कार मंत्रका ध्यान करनेसे जीव सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १ ॥ चाहे पवित्र हो या अपवित्र हो अथवा कैसी भी अवस्थामें हो, इन सभी अवस्थाओंमें जो जीव परमात्माका स्मरण करता है वह उस समय बाह्य और भीतरसे पवित्र है ॥ २ ॥ यह मंत्र अपराजित है और विघ्नोंका नाश करने वाला है तथा सभी मंगलोंमें प्रथम मंगल माना गया है ॥ ३ ॥ यह पंच णमोकार मंत्र सब पापोंका नाशक है और सभी मंगलोंमें मुख्य मंगल है ॥ ४ ॥

[1]अर्हमित्यक्षरं ब्रह्मवाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहं ॥ ५ ॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनं ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहं ॥६॥
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)
[2]उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाममहं यजे ॥
ॐ ह्रीं श्रीभगवज्जिनसहस्रनामेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[3]श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हं ।

१ 'अर्हं' ऐसे जो अक्षर अरहंत परमेष्ठीके वाचक हैं और सिद्धचक्रको उत्पन्न करनेके लिये उत्तम बीजके समान हैं अतः मैं त्रियोगसे नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥ आठ कर्मरहित, मोक्ष लक्ष्मी के स्थान और सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्म, वीर्य इन आठ गुणों सहित सिद्धसमूहको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ २ मैं निर्मल मंगलगानके शब्दोंसे गुञ्जायमान इस जिनमंदिरमें जिनेन्द्रदेवकी जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल तथा अर्घके द्वारा पूजन करता हूँ। ३ मैं तीन लोकके नाथ, स्याद्वाद विद्याके नायक, अनंतचतुष्टयके धारक, जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करके जिन भगवानकी पूजन विधि कहता हूँ, जोकि पूजन मूलसंघीय (श्रीकुन्दकुन्दस्वामीका

श्रीमूलसङ्घसुदृशां सुकृतैकहेतु-

जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥८॥

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय,

स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय ।

स्वस्ति प्रकाशसहजोर्जितदृङ्मयाय,

स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥९॥

स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय,

स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय ।

स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय,

स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥१०॥

परम्परा वाले) सम्यग्दृष्टि जीवोंको पुण्यबंधका प्रधान कारण है ॥ ८ ॥ तीनलोकके गुरु तथा कषायोंको जीतनेवाले मुनीश्वरोंके स्वामीके लिये स्वाभाविक अनन्तज्ञानादिरूप महिमाओंमें भले प्रकार स्थित भगवानके लिए, स्वाभाविक प्रकाशसे (अनन्तज्ञानसे) वृद्धिगत, केवलदर्शनसहित जिनेन्द्रके लिए और उज्ज्वल, मनोहर तथा अद्भुत आत्मीय वैभवके धारण करनेवाले श्री जिनेन्द्रदेवके लिए मंगल होवे ॥ ९ ॥ उछलते हुए निर्मल केवलज्ञानरूपी अमृतके प्रवाहवाले एवं स्वभाव और परभावके प्रकाशक और तीन लोकको जानने वाले केवलज्ञानके स्वामी तथा त्रिकालवर्ती सभी पदार्थोंमें ज्ञानद्वारा व्याप्त हुए जिनेन्द्र भगवानके लिए मंगल होवे ॥१०॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूप,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकाम ।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्यवल्गन्,
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञ ॥११॥
अर्हं पुराणपुरुषोत्तमपावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ,
पुण्य समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ १२ ॥

ॐ ह्रीं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलि क्षिपेत् ।

श्री वृषभो न स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजित ।
श्री सभव स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दन ।
श्री सुमति स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभ ।
श्री सुपार्श्व स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभ ।

१ अपने भावोंकी परम शुद्धताको प्राप्त होनेका अभिलाषी मैं यथानुरूप द्रव्योंकी शुद्धि प्राप्त करके अनेक प्रकारके अवलम्बना का आश्रय लेकर परमपूज्य पुरुष अरहंतादिका पूजन करता हूँ ॥ ११ ॥ हे अर्हन, हे पुरातन प्राचीन पुरुष, हे उत्तम पुरुष ! यह अकेला मैं मैं इन समस्त पवित्र द्रव्योंको तथा समग्र पुण्यको दैदीप्यमान, निर्मल केवलज्ञानरूपी अग्निमे एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूं ॥ १२ ॥

२ अनन्तज्ञानादिरूप आभ्यंतर लक्ष्मी तथा ८ प्रातिहार्य, ३४ अतिशय और समवशरणादि बाह्यलक्ष्मीसे सुशोभित श्री ऋषभनाथजी आदि चौबीस तीर्थङ्कर हमारे मंगलके लिये होओ ।

श्री पुष्पदंत स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतल ।
श्री श्रेयांस स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्य ।
श्री विमल स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनंत ।
श्री धर्म स्वस्ति, स्वस्ति श्री शांति ।
श्री कुंथु स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथ ।
श्री मल्लि स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रत ।
श्री नमि स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथ ।
श्री पार्श्व स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्धमान ।

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

आगे प्रत्येक श्लोकके अन्तमें पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।

[1]नित्याप्रकम्पाद्भुतकेवलौघा,
स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः,
स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं,
संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि ।

---

[1] अविनाशी, अचल, अद्भुत केवलज्ञानके धारक, दैदीप्यमान मनःपर्ययज्ञानधारी, दिव्य अवधिज्ञानके बलसे जागृत, ऐसे महर्षि हमारे लिए क्षेम करें ॥ १ ॥ कोष्ठस्थधान्योपम, एकबीज, संभिन्नसंश्रोतृत्व पदानुसारित्व इन चार प्रकारकी बुद्धि ऋद्धि धारक ऋषिगण हमारे लिए मंगल करें ॥ २ ॥

चतुर्विध बुद्धिबल दधाना,
स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न ॥२॥

[1]संस्पर्शन संश्रवण च दूरा
दास्वादनघ्राणविलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहत,
स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न ॥ ३ ॥

[2]प्रज्ञाप्रधाना श्रमणा समृद्धा,
प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्व ।
प्रवादिनोऽष्टागनिमित्तविज्ञा,
स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न ॥ ४ ॥

[3]जघावलिश्रेणिफलाम्बुतन्तु ।
प्रसूनबीजाङ्कुरचारणाह्वा ।
नभोऽगणस्वरविहारिणश्च,
स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो न ॥ ५ ॥

---

१ दिव्य मतिज्ञानके बलसे दूरसंस्पर्शन, दूरसंश्रवण, दूर आस्वादन, दूर आघ्राण तथा दूरविलोकन ऋद्धि धारण करनेवाले परमर्षि हमारे लिए मंगल करें। २ प्रज्ञाश्रमणत्व, प्रत्येकबुद्धता, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व प्रवादित्व और अष्टागनिमित्तज्ञता ऋद्धिधारी मुनिवर हमारे लिए क्षेम करें । ३ जंघा, श्रेणि, फल जल, तन्तु, पुष्प, बीज, अंकुर, अग्निशिखापर चलनेवाले चारण ऋद्धि धारक ऋषिराज तथा आकाशरूपी आंगनमें विहार करनेवाले मुनिराज हमारी कुशलता करें ।

[1]अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि,
लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं,
स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥६॥

[2]सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं,
प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः,
स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥७॥

[3]दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं,
घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः,
स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥

[4]आमर्षसर्वौषधयस्तथाशी-
र्विषविषा दृष्टिविषविषाश्च।

१ अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा ऋद्धि में कुशल तथा मनोबल, वचनबल और कायबल ऋद्धिधारक योगिराज सदैव हमारे लिए क्षेम करें। २ सकामरूपित्व, वशित्व, ईशित्व, प्राकाम्य, अन्तर्धान, आप्ति और अप्रतिघात ऋद्धिप्रधान मुनिवर हमारी कुशलता करें। ३ दीप्त, तप्त, महोग्र, महाघोर, तपोघोर, पराक्रमघोर और ब्रह्मचर्य ऋद्धिधारी ऋषिपुंगव हमारे लिए मंगल प्रदान करें। ४ आमर्षौषधि, सर्वौषधि, आशीर्विषविष, दृष्टिविषविष, क्ष्वेलौषधि, विडौषधि, जल्लौषधि, मलौषधि ऋद्धिधारक ऋषिवर हमारा कल्याण करें।

सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशा,
स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो नः ॥ ९ ॥
[1]क्षीरं स्रवन्तोऽत्र घृतं स्रवन्तो,
मधुस्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः ।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च,
स्वस्ति क्रियासु परमर्षयो नः ॥ १० ॥

इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधान ।

अथ देवशास्त्रगुरुपूजा भाषा

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्तजू ।
गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुरपंथ जू ॥
तीन रतन जगमांहि सो ये भवि ध्याइये,
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये ॥ १ ॥
पूजौं पद अरहन्तके, पूजौं गुरुपद सार ।
पूजौं देवी सरस्वती, नितप्रति अष्ट प्रकार ॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (इत्याह्वानन)
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (इति स्थापन)
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्
(इति सन्निधिकरणम्)

[1] क्षीरस्रावी, घृतस्रावी, मधुस्रावी, अमृतस्रावी, अक्षीण-संवास और अक्षीणमहानस ऋद्धिधारी ऋषीश्वर हमारे लिये कल्याण प्रदान करें ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपदप्रभा ।
अतिशोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देखि छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्र घटभरि अग्र तसु बहुविधि नचूं ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥१॥

मलिन वस्तु हर लेत सब, जलस्वभाव मलछीन ।
जासों पूजौं परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥१॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा ।

जे त्रिजग उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे ।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन सरस चन्दन घसि सचूं ।
अरहन्त श्रुतसिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥
चन्दन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन ॥जासों०॥२॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व० ।

यह भवसमुद्र अपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई ।
अतिदृढ़ परमपावन जथारथ भक्तिवर नौका सही ।
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल पुंज धरि त्रयगुण जचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥
तंदुल सालि सुगन्ध अति, परम अखंडित बीन ।जासों०।३।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

जे विनयवंत सुभव्य उर अंबुज प्रकाशन भान हैं ।

जे एक शुद्ध चारित्र भाषित त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥
लहि कुन्द कमलादिक पहुप भव भव कुवेदनसे बचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ।
विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन ।जासों०।४।
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य कामबाणविध्वंसनाय पुष्प नि० स्वाहा ।
अतिसबल मदकंदर्प जाको क्षुधाउरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुड समान है॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित, नैवेद्यकरि घृतमें पचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥
नानाविधि संयुक्त रस, व्यंजन सरस नवीन ॥जासों०॥५॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्य क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि० स्वाहा ।
जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोहतिमिर महाबली ।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं ।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥
स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन ॥जासों०।६
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीप नि० स्वाहा ।
जो कर्मईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै ।
वर धूप तासु सुगन्धताकरि सकल परिमलता हँसै ॥
इह भांति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलनमाहिं नहीं पचूं ।

अरहन्त श्रुतसिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥
अग्निमाहि परिमलदहन, चंदनादि गुणलीन ॥जासों०॥७॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० स्वाहा।
लोचन सु रसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं।
मोप न उपमा जाय वरणी सकलफलगुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥
जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण रस लीन ॥जासों०॥८॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० स्वाहा।
जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निर्मल फल विविध, बहु जनमके पातक हरूं॥
इहभांति अर्घ चढ़ाय नित भविकरत शिवपंकति मचूं।
अरहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु निरग्रंथ नित पूजा रचूं॥
वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन ॥जासों०॥९
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं नि० स्वाहा।

❀ अथ जयमाला ❀

— दोहा —

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतन करतार।
भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार॥

— पद्धरि छन्द —

कर्मनकी त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोष

राशि। जे परम सुगुण हैं अनँत धीर, कहनतके छ्यालिस गुण गँभीर ॥ २ ॥ शुभ समवसरण शोभा अपार, शतइन्द्र नमत कर सीसधार। देवाधिदेव अरहत देव, वंदों मनवच तनकरि सुसेव ॥ ३ ॥ जिनकी धुनि ह्वै ओंकाररूप, निर अक्षरमय महिमा अनूप। दश अष्ट महाभाषा समेत, लघु-भाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥ सो स्याद्वादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे बारह सु अंग। रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों बहुप्रीति ल्याय ॥ ५ ॥ गुरु आचारज उव झाय साध, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध। संसारदेह वैराग धार, निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥ गुण छत्तिस पचिस आठवीस, भवतारन तरन जिहाज ईस। गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचन काय ॥ ७ ॥

सोरठा—कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरे।
द्यानत सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

• इति देवशास्त्रगुरुकी भाषापूजा समाप्त •

श्री बीस तीर्थंकरपूजा भाषा।

दीप अढाई मेर पन, अरु तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस॥

ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठ ठ ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरा ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् ।

इन्द्र फणींद्र नरेंद्र वंद्य, पद निर्मल धारी ।
शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि सम नीरसों (हो) पूजों तृषा निवार ।
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मँझार ॥
श्री जिनराज हो भव, तारणतरण जिहाज ॥१॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं ॥

तीनलोकके जीव पाप आताप सताये ।
तिनको साता दाता, शीतल वचन सुहाये ॥
बावन चंदनसों जजूं (हो) भ्रमनतपन निरवार । सी०।२।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो भवातापविनाशनाय चन्दनं नि

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी ।
तातैं तारे बड़ी भक्ति-नौका जगनामी ॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुणसार । सी० ।३।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व० ।

भविक सरोज विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो ।
जति श्रावक आचार, कथनको तुमही बड़े हो ॥
फूलसुवास अनेकसों (हो) पूजों मदन प्रहार । सी० ॥४॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं०

काम नाग विषधाम, नाशको गरुड कहे हो।
क्षुधा महादवज्वाल, तासको मेघ लहे हो॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो) पूजों भूखविडार। सीमधर०॥५॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य०॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमांहि भरयो है।
मोह महातम घोर, नाश परकाश करयो है॥
पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योति करतार। सी० ॥६॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीप०॥

कर्म आठ सब काठ, भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनि कर प्रकट, सरव कीनो निरवारा॥
धूप अनूपम खेवतैं (हो), दुःख जलैं निरधारा सी०॥७॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूप० ॥७॥

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं।
सबको छिनमें जीत, जैनके मेरु खरे हैं॥
फल अति उत्तमसों जजौं (हो) वाछितफलदातार। सी० ॥८॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फल निर्व०।

जल फल आठों दर्व, अरघकर प्रीति धरी है॥
गणधर इंद्रनहूतैं, थुति पूरी न करी है॥
द्यानत सेवक जानके (हो) जगतें लेहु निकार। सी० ॥९॥
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्व०

❀ अथ जयमाला आरती ❀

— सोरठा —

ज्ञानसुधाकरचंद, भविकखेतहित मेघ हो।
भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों॥

— चौपाई १६ मात्रा —

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमंधर जुगमंधर नामी।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे॥१॥
जात सुजात केवलज्ञानं, स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषिभानन दोषं, अनन्तवीरज वीरजकोषं॥२॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं, चन्द्रानन चन्द्रानन वर हैं॥३॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता, श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजें, नेमि प्रभु जस नेमि विराजें॥४॥
वीरसेन वीरं जग जानें, महाभद्र महाभद्र बखानें।
नमों जसोधर जसधरकारी, नमों अजितवीरज बलधारी॥५॥
धनुष पांचसै काय विराजै, आव कोडिपूरब सब छाजै।
समवसरण शोभित जिनराजा, भवजल तारनतरन जिहाजा॥६॥
सम्यक रत्नत्रयनिधिदानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी।
शतइन्द्रनिकरि वंदित सोहैं, सुरनर पशु सबके मन मोहैं॥७॥

— दोहा —

तुमको पूजे वदना, करै धन्य नर मोय ।
द्यानत सरधा मन धरे, सो भी धरमी होय ॥

ॐ ह्रीं विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

❀ इति श्रीबीस तीर्थंकरपूजा समाप्त ❀

अथ श्रीसिद्धपूजा

(कवि जौहरीमलजी कृत)

तीनलोक ईश तनवातवलै शीश तहाँ,
राजै जगदीश जु समूह सिद्धरूप है ।
एकरूप वसुरूप गुण हैं अनन्त,
अवगाहन जघन्य उत्कृष्ट जु स्वरूप है ।
पद्मासन खड्गासन लोकालोक ज्ञायक,
जे अजर अमर जु अमूरति अनूप है ।
आय तिष्ठ इष्टदेव मैं करूँ पदाब्जसेव,
चढ़ मैं निराल ऐसे सिद्ध शिवभूप है ॥

ॐ ह्रीं श्री णमोसिद्धाणं सिद्ध परमेष्ठिन् सिद्धसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं ।

ॐ ह्रीं श्री णमोसिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् सिद्धसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं श्री णमोसिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन् सिद्धसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं ।

निजमनमणिमय भृङ्गार समरस नीर भरा,
पूजूं दुख त्रिविध निवार जामन मरण जरा।
श्री सिद्धसमूह अनन्त गुणातम शुद्ध सही,
तुम ध्यावत मुनिजन संत पावत मोक्षमही ॥१॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल नि०।

निज सहजहि शुद्ध स्वभाव, चंदन घसि लायो।
पद तुम पदधारि चाव, भव तप विनसायो ॥श्री०॥२॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दन नि०।

निर्मल निज सहज स्वभाव, तंदुल शुद्ध लिये।
गुण अक्षय पद दरसाव, तुम पद भेंट किये ॥श्री०॥३॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिनेऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०।

चेतन निज भाव सुसार, पुष्प सुगन्ध भरें।
मनमथ के नाशनहार, तुम पद भेंट धरें ॥श्री०॥४॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्प नि०।

आतमरसपूरितमिष्ट, शुद्ध नैवेद्य लिये।
पूजूं परमातम इष्ट, दोष क्षुधादि गये ॥श्री०॥५॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य नि०।

शुद्ध चेतनमें रुचिभार, दीप प्रकाश रचौं।
पूजूं निजगुण दरसार, भाव स्वरूप रचौं ॥श्री०॥६॥
ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०।

कर्मनकी घातक रूप, धूप सुगंध करी।
सेवत हूँ हे शिवभूप! आठों कर्म जरी ॥श्री०॥७॥
ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिनेऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि०।

रत्नत्रय शुद्ध स्वभाव, निजगुण फल लीने।
पूजत शिवफल सरभाव, आतमरस भीने ॥श्री०॥८॥
ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०।

चिंतामणि मम शुद्धभाव, आठों द्रव्य लिये।
पूजत अरिगण शु नभाव, निजगुण प्रकट किये ॥श्री०॥९॥
ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिनेऽनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं नि०।

❀ अथ जयमाला ❀

— छन्द —

इंद्र फणिंद्र नरेन्द्र तीनूं कर पूजा पाई।
ऐसे तीरथनाथ नमें तुम त्रिभुवन राई।
सिद्ध शुद्ध पद ध्याय मुक्तिलक्ष्मीसे पावे।
सुख सत्ता चतन्य बोध निजगुण प्रगटावे॥

— नारायण छन्द —

सु वीतराग शांतरूप बोधके निधान हो।
निरामय सु निर्भय निरंश हो सुधाम हो।
प्रसन्न हो समग्र सिद्ध आपही विशुद्ध हो।
करो विशुद्ध मोहि नाथऽनतज्ञान बुद्ध हो ॥प्र०॥१
तुम्हीं निमोह हो निराग साम्यभाव रूप हो।
अपूर्वाक पूर्ण बुद्ध आप हो स्वरूप हो ॥प्र०॥२
अगद निष्कषाय हो जु कर्म पाप ना रहौ।
जो संगसे प्रसंग नाहिं शुद्धरूप आप ही ॥प्र०॥३
अनंत सौख्यके समुद्र नतज्ञान धीर हो।
दु कर्मको निवारि आप कामखंड वीर हो ॥प्र०॥४
कलंककर्म धूलिको समीरके समान हो।
नहीं जो शोक ना विकार ना अमान हो ॥प्र०॥५
सुज्ञाननेत्र तेज दरश लोक या अलोकको।
जो भिन भिन जान जीवद्रव्य आदि थोकको ॥प्र०॥६
जु मोह हीन अगना सदा उदय स्वरूप हो।
जु वर्ण गंध रूप नाहिं आप ही अरूप हो ॥प्र०॥७
मुनीन्द्र इन्द्र या नरेन्द्र पादवृन्द पूजि है।
सुशुद्ध सिद्ध ध्यायके जु दुष्टकर्म धूजि है ॥प्र०॥८
भये जु जन्म मरण नाशिके जु त्रिपुरारि हो।
सुशुद्ध ज्ञान माहि आप ही सु सार हो ॥प्र०॥९

जु और चाह नाहिं मोहि सिद्धपद दीजिये।
जु आप हो कल्याणरूप मो कल्याण कीजिये ॥ प्र०।१०

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाण सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

यह सिद्धसमूहतनी जयमाल जो भवि पढ़ि निज ध्यान धरं।
वसु कर्म नशाय शिवपद पाय 'जोहरि' परमानन्द करं ॥

॥ इत्याशीर्वाद ॥ (पुष्पाञ्जलि)

❀ इति श्रीसिद्धपूजा समाप्त ❀

अथ सिद्धपूजा भाषा (न० २)

—:: छप्पय .—

स्वय सिद्ध जिनभवन रतनमय बिंब विराजैं।
नमत सुरासुर भूप दरस लखि रवि शशि लाजैं॥
चार सतक पचास आठ भुवलोक बताये।
जिनपद पूजन हेत धारि भवि मगल गाये॥
मगलमय मगलकरण, शिवपद दायक जानिकैं।
आह्वानन करिकैं नम सिद्ध सकल उर आनिकैं॥

ॐ ह्रीं अनतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर सवौषट।

ॐ ह्रीं अनतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापनं।

ॐ ह्रीं अनतगुणविराजमानसिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

— चाल नन्दीश्वरकी —

उज्जल जल शीतल लाय जिन गुण गावत हैं।
सब सिद्धनकों सु चढ़ाय पुण्य बढ़ावत हैं॥

सम्यक्त्व सु चायक जान यह गुण पडयतु है ।
पूजौं श्रीसिद्धमहान वलि वलि जइयतु हैं ॥१॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

कर्पूर सुकेशर सार चन्दन सुखकारी ।
पूजा श्रीसिद्ध निहार आनंद मन भारी ॥
मन लोकालोक प्रकाश केवलज्ञान जग्यो ।
यह ज्ञानसुगुणमनमाह निज रस माहि पगौं ॥२॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

मुक्ताफलकी उनहार अक्षत धोय धरे ।
अक्षय पद प्रापति जान पुण्य भंडार भरे ॥
जगमें सु पदारथ सार ते सब दरसाव ।
सो सम्यक दरशन सार इह गुण मन भावे ॥३॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिनेऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

मंदार सु गुलाब अनूप फल अनेक कहे ।
श्रीसिद्ध सु पूजत भूप नइविन पुण्य लहे ॥
तहाँ वीर्य अनन्तो सार यह गुन मन आनौ ।
ससारसमुन्दर पार तारक प्रभु जानौ ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

फैनी गोझा पक्वान, मोदक सरस बने।
पूजौं श्रीसिद्ध महान भूख निवा जु हने॥
झलके सब एकहि बार ज्ञेयक हैं जितने।
यह सूक्ष्मता गुणसार सिद्धनको तितने॥ ५॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

दीपक की ज्योति जगाय, सिद्धनकों पूजो।
कर आरति सन्मुख जाय निरभय पद हूजो॥
नहु घाटि न बाधि प्रमाण गुरुलघु गुण राखौ।
हम शीस नवावत आन, तुम गुण मुख भाखौ॥६॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥

वर धूप सु दशविध लाय, दस दिस गंध वरे।
वसु करम जरावत जाय मानौं नृत्य करै॥
इक सिद्धमें सिद्ध अनंत सत्ता सब पावैं।
यह अवगाहन गुण मत सिद्धनके गावैं॥ ७॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिनेऽष्टकर्मदहनाय धूप निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

ले फल उत्कृष्ट महान सिद्धनको पूजौं।
लहि मोक्ष परम शुभथान प्रभु सम नहिं दूजौं॥
यह गुण बाधाकर हीन, बाधा नाश भई।
सुख अव्याबाध सुचीन, गिरसुंदर सु लई॥ ८॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने महामोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल फल आदि समान थाल अरघ कर जोरी ।
तुम गुनियों ईनदयाल विनती है मोरी ॥
करमादि दुष्ट महान इनको दूर करो ।
तुम सिद्ध महागुण दान मम सब दुःख हरो ॥९॥

ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने सर्वसुखप्राप्तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

— अथ जयमाला ॥ दोहा । —

नमौं सिद्ध परमातमा, अद्भुत परम रसाल ।
तिन गुण अगम अपार हैं, सरस रचौं जयमाल ॥ १ ॥

— छन्द पद्धरी —

जय जय श्रीसिद्धनको प्रणाम । जय शिवसुखसागरके सुधाम ॥ जय बलि बलि जात सुरेश जान । जय पूजत तनमन हरष आन ॥ २ ॥ जय क्षायक गुण सम्यक्त्व लीन । जय केवलज्ञान सुगुण नवीन ॥ जय लोकालोक प्रकाशवान । जय केवल अतिशय दिव्य ज्ञान ॥ ३ ॥ जय सर्व तत्त्व दरस महान । सोइ दरसनगुण ताजो सुजान ॥ जय वीर्य अनन्तो है अपार । जाकी पटतर दूजो न सार ॥ ४ ॥ जय सूक्ष्मता गुण हिय धार । सब ज्ञेय लखें इक हि सु बार ॥ इक सिद्धमें सिद्ध अनन्त जान । अपनी अपनी सत्ता प्रमान ॥ ५ ॥ अवगाहन गुण अतिशय

गिराल। तिनके पद यहाँ नमत भाल॥ कछु घाटि न वाध कहै प्रमाण। सो अगुरुलघु गुण धर महान ॥ ६ ॥ जय बाधारहित विराजमान, सोइ अव्याबाध कह्यो बखान। ए वसु गुण हैं निरहार सत। निहचै जिनवर भाखे अनंत ॥७॥ सब सिद्धनके गुण यह गाय। इन गुणकर शोभित हैं जिनाय॥ तिनको भविजन मन वचन काय। पूजत वसुविधि अति हरष लाय ॥८॥ सुरपति फणपति चक्री महान। बलहरि प्रतिहर मनमथ सुजान॥ गणपति मुनिपति मिलि धरत ध्यान। जय सिद्ध शिरोमणि जग प्रधान ॥ ९ ॥

— सोरठा —

ऐसे सिद्ध महान, तिन गुण-महिमा अगम है।
वरनन कह्यो बखान, तुच्छबुद्धि करि लाल जू ॥१०॥
ॐ ह्रीं णमोसिद्धाणं श्रीसिद्धपरमेष्ठिने सर्वसुखप्राप्तये महार्घं नि०।

— दोहा —

रुखाकी यह वीनती सुनो सिद्ध भगवान।
मोहि बुलावो आप ढिग यही अरज उर आन॥
❀ इत्याशीर्वाद । इति श्री सिद्धपूजा सम्पूर्ण ❀

श्री जिनेंद्रपूजा

— छप्पय —

मोहकर्म निन हरयो, करयो रागादिक नष्टित।

द्वेष मल परिहर्यो, जागि क्रोधहिं किय भिष्टित ॥
मानमूढ़ता हरिय, दरिय माया दुखदायिन ।
लोभ लहरगनि गरिय, ग्ररिय श्रगटी जू रमायिन ॥
कमल पद अमलनि हूव, भवसमुद्र - तारनतरन ।
त्रयकाल चरन वंदत 'भविक' जयजिनंद तुह पयसरन ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् । इत्याह्वाननम्
ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः । स्थापनम् ।
ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणं

नीर छीरसागरको निर्मल पवित्र अति,
सुंदर सुवास भर्यो सुरपै अनाइये ।
गगरी तरंगनकी स्वच्छ सुमनोज्ञ जल,
कंचन कलश बग भरके मंगाइये ॥
और हू विशुद्ध अनु आनिये उछाह सेती,
जानिये विवेक जिन चरन चढ़ाइये ।
भौंदुख समुद्रजल अंजुलिकी दीजे,
इहाँ तीनलोक नायकी हजूर ठहराइये ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि स्वाहा ॥२॥

परम सुशीतल सुवास भरपूर भरो,
अति ही पवित्र सब दूषन दहतु है ।
महा वनराजनके वृक्षन सुगन्ध करें,
सगतिके गुण यह विरद लहतु है ॥

बावन सु चदन सुपावन करन जग,
चदै जिनचर्ण गुण ताहीतें लहतु है ।
मोह दुखदाहके निवारिवेको महा हिम,
चदनतें पूजौं जिन चित्त यों कहतु है ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनेंद्राय ससारतापविनाशनाय चदन नि० स्वाहा ॥३॥

शशिकीसी किर्णं कैधौं, रूपाचलरर्ण कैधो,
मेरुतट किर्णं कैधौं फटिक प्रमाने हैं ।
दूधकेसे फैन कैधौं चिंतामणि रणु कैधौं,
मुक्ताफल ऐन कैधो, हीरा हेरि आने हैं ॥
ऐसे अति उज्ज्वल हैं तदूल पवित्र पुज,
पूजत जिनेश पाद पातक पराने हैं ।
अच्छे गुण प्रापति प्रकाश तेज पुज होय,
अच्छे निज दर्स अच्छ इच्छते अघाने हैं ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० स्वाहा ॥४॥

जगतके जीव जिन्हें जीतके गुमानी भयो,
ऐसो कामदेव एक जोधा जो कहायो है ।
ताके शर जानियत फूलनिके वृन्द बहु,
केतकी कमल कुन्द केवरा सुहायो है ॥
मालती सुगन्ध चारु बेलिकी अनेक जाति,
चपक गुलाब जिनचरण चढ़ायो है

तेरी ही शरण जिन जोर न बसाय याको,
सुमनसौं पूजे तोहि मोहि ऐसो भायो है ॥५॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा ॥५॥

परम पुनीत जान सेवनक पुंज आन,
तिन्हें पुनि पहिचान जिनयोग्य जानिये।
अन्न औ विशुद्ध तोय ताको पकवान होय,
कहिये नैवेद्य सोई शुद्ध देख आनिये॥
पूजत जिनेन्द्रपाय पातक पराने जाय,
मोक्षलच्छि ठहराय सत्य यों बखानिये।
क्षुधाको न दोष होय ज्ञानतनपोष होय,
परम सतोष होय ऐसी विधी ठानिये ॥६॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा ॥६॥

दीपक अनाये चहुँगतिमें न आवे कहूँ,
वतिका बनाय कर्मवति न बनत है।
घृतकी सनिग्धतासों मोहकी सनिग्ध जाय,
ज्योतिके जगाय जगाजोतिमें सनत है।
आरती उतारतें आरत सब जाय टर,
पाय ढिग धरे पापप्रकृति हनत है।
वीतरागदेव जूकी सेव कीजे दीपकसों,
दीपक प्रताप शिवगामी यों भनत है॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

परम पवित्र हेम आनिये अधिक प्रेम,
जाति धूपदान जिमि शुद्ध निपजाइकें ।
तहि जे विशुद्ध वनी तेनपुज महाधनी,
मानो धरी रत्नरनी ऐसी छवि पाइकै ॥
तामें कृष्णागरुरी जु कनिकादि खेव कीजे,
वहै कर्मराठनिके पुजगहि ताइकें ।
पूजिये जिनेन्द्र-पांय धूपके विधान सेती,
तीनलोकमाहिं जो सुनाम वाम छायकै ॥८॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनेंद्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि० स्वाहा ॥८॥

श्रीफल सुपारी सेव दाडिम बदाम नेव,
सीताफल मगतरा शुद्ध सदा फल है ।
चिंही नामपाती औ बिजोरा आम अम्रतसे,
नारंगी जंभीरी कर्णफल जे कमल है ।
ऐसे फल शुद्ध आनि पूजिये जिनंद जान,
विहूँलोकमधि महा सुकृतको थल है ।
फल सेती पूजे शुद्ध मोक्षफल प्राप्ति होय,
द्रव्य भाव सेये सुखसंपति अचल है ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० स्वाहा ॥९॥

जल सुविशुद्ध आन चंदन पवित्र जान,
सुमन सुगंध ठान अक्षत अनूप है ।

निरखि नवेद्यके विशेष भेद जान सबै,
दीपक सँवारि शुद्ध और गंध धूप है ॥
फलले विशेष भाय पूजिये जिनंद पाय,
वसु भेद ठहराय अरथ स्वरूप है ।
करम कलंक पंक हरिके भयो अटंक,
सेवक जिनंद 'भैया' होत शिवभूप है ॥१०॥

— दोहा —

शुचि करके निज अगरो, पूजहु श्रीजिनपाय ।
दर्वित भावतविधि सहित, करहु भक्ति मन लाय ।
ॐ ह्रीं श्रीजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं नि- स्वाहा ॥१०॥

❀ अथ जयमाला ❀

— दोहा —

श्रीजिनदेव प्रणामकर, परमपुरुष आराध ।
कहीं सुगुण जयमालिका, पंच करणरिपु साध ।

— पद्धरि छन्द —

जय जय सु अनंत चतुष्ट नाथ । जय जय प्रभु मोक्ष प्रसिद्ध साथ ॥ जय जय तुम केवलज्ञान भास । जय जय केवल दर्शन प्रकाश ॥ २ ॥ जय जय तुम बल जु अनंत जोर । जय जय सुख जास न पार ओर ॥ जय जय त्रिभुवनपति तुम जिनंद । जय जय भवि कुमदनि पूर्ण चंद ॥ ३ ॥ जय जय तमनाशन प्रगट भान । जय जय जितइंद्रिन तू प्रधान ॥

जय जय चारित्र सु यथाख्यात । जय जय अघनिशि नाशन प्रभात ॥ ४ ॥ जय जय तम मोह निवार वीर। जय जय अरिजीतन परम धीर ॥ जय जय मनमथमर्दन मृगेश। जय जय जमजीननरो रसेश ॥ ५ ॥ जय जय चतुरानन हो अतत्त्व। जय जय जगजीवन सम्ल रत्त ॥ जय जय तुम क्रोधरपाय जीत। जय जय तुम मान हरयो अजीत ॥ ३ ॥ जय जय तुम मायाहरन सूर। जय जय तुम लोभनिवार सूर ॥ जय जय शत इन्द्रन वदनीक। जय जय अरि मकल निरदनीक॥७॥ जय जय जिनवर देवाधिदेव। जय जय तिहुँवन मनि करत सेव ॥ जय जय तुम ध्यावहिं भविक जीव। जय जय सुख पावहिं ते सदीव ॥८॥

— घत्ता —

ते निजरसरत्ता तज परसत्ता, तुम मम निज ध्यावहिं घटमें।
ते शिवगति पावैं बहुर न आवैं, वसैं सिंधुसुखके तटमें ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनेन्द्राय महासुखप्राप्तये पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

❀ इति ❀

❀ अथ परमात्माकी जयमाला लिख्यते ❀

— दोहा —

परम देव परनामकर, परम सुगुरु आराधि।
परम सधर्म चितार चित्त, कहूँ माल गुणसाधि।

— चौपाई —

एकहि तत्र असंख्य प्रदेश। गुण अनंत चेतनता भेश॥ शक्ति अनंत लसै जिह माहि। जो मम और दूसरो नाहि॥२॥ दर्शन ज्ञानरूप व्यवहार। निश्चय सिद्ध समान निहार॥ नहि करता नहिं धरिहै कोय। सदा सर्वदा अविचल सोय॥३॥ लोकालोक ज्ञान जो धरै। कबहुँ न मरण जनम अवतरै॥ सुख अनंतमय जास सुभाव। निर्मोही नहु कीने राव॥४॥ क्रोध मान माया नहिं पास। महंत जहाँ लोभको नास॥ गुणथानक मारगना नाहिं। केवल आपु आपुही माहिं॥५॥ परका परस रंच नहि जहाँ। शुद्ध सरूप कहावै तहाँ॥ अविनाशी अविचल अविकार। सो परमातम है निरधार॥६॥

— दोहा —

यह निश्चय परमात्मा, ताको शुद्ध विचार।
जामें पर परस नहीं, "भैया" ताहि निहार॥७॥

❀ इति परमात्माकी जयमाला ❀

निर्वाणक्षेत्र पूजा

— सोरठा —

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं॥१॥

ॐ ह्रीं चतुर्वि[illegible] [illegible]
सर्वौषट् ।
ॐ ह्रीं चतुर्विंश[illegible] [illegible]
[illegible] ।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशति[illegible] [illegible]
भवत भवत वषट् ।

— [illegible] —

शुचि क्षीरदधि सम [illegible] [illegible]र्में भरों ।
ससारपारउतारस्वामी [illegible] विनती करों ॥
सम्मेदगढ़ गिरनार [illegible] [illegible] कैलासको ।
पूजा सदा चौबीस [illegible]भूमि निवासको ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिन[illegible] जल नि० स्वाहा ॥१॥
केशर कपूर सुगंध [illegible] शीतल विस्तरों ।
भवतापको सताप मेट्यो, [illegible] विनती करों ॥स०॥२॥
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिजिन[illegible] [illegible] नि० स्वाहा ॥२॥
मोतीसमान अखंड[illegible] [illegible] आनँदधरि तरों ।
औगुन हरो गुन करो[illegible] [illegible] विनती करों ।स०।३।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिजिन[illegible] [illegible] नि० स्वाहा ॥३॥
शुभ फूलरास सुवास[illegible] [illegible] सब मनकी हरों ।
दुखधामकाम विनाश [illegible] विनती करों ।स०।४।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशति[illegible] पुष्प नि० स्वाहा ॥४॥
नेवज अनेक प्रकार [illegible] [illegible] भय परिहरों ।

यह भूखदूख टार प्रभुजी, जोरकर विनती करौं ।स०।५।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्य नि० स्वाहा ॥५

दीपकप्रकाश उजास उज्जल, तिमिरसेती नहिं डरौं ।
संशयविमोहविभ्रमतमहर, जोरकर विनती करौं। स०।६।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीप नि० स्वाहा ॥६।

शुभरूप परम अनूप पावन, भावपावन आचरौं ।
सब करमपुंज जलाय दीज्यौ, जोरकर विनती करौं ।स०।७।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूप नि० स्वाहा ॥७।

यह फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चारगतिसौं निरवरौं ।
निहचै मुकतिफल देहु मोको, जोरकर विनती करौं। स०।८।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो फल नि० स्वाहा ॥८।

जल गंध अच्छत फूल चरू फल, दीप धूपायन धरौं ।
'द्यानत'करो निरभय जगतसौं, जोरकर विनती करौं। स०।९

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ नि० स्वाहा ॥९

❀ अथ जयमाला ❀

— सोरठा —

श्रीचौबीसजिनेश, गिरिकैलाशादिक नमौं ।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं ॥१॥

— चौपाई १६ मात्रा —

नमौं ऋषभ कैलाशपहार, नेमिनाथ गिरनार निहार ।

वासुपूज्य चंपापुर वंदौं, सनमति पावापुर अभिनंदौं ॥२॥
वंदौं अजित अजितपददाता, वंदौं संभव भवदुखघाता।
वंदौं अभिनन्दन गणनायक, वंदौं सुमति सुमतिके दायक।३
वंदौं पदमप्रभु कृति पदमाकर, वंदौं सुपास आशपासाहर।
वंदौं चन्द्रप्रभ प्रभुचन्दा, वंदौं सुविधि सुविधिनिधि कंदा।४
वंदौं शीतल अघतपशीतल, वंदूं श्रियास श्रियास महीतल।
वंदौं विमल विमल उपयोगी, वंदूं अनंत अनंत सुख भोगी।५
वंदौं धर्म धर्मविस्तारा, वंदौं शांति शांतिमनधारा।
वंदौं कुन्थु कुन्थुरखवाल, वंदौं अर अरिहर गुणमाल।६
वंदौं मल्लि काममलचूरन, वंदौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन।
वंदौं नमि जिन नमित सुरासुर, वंदौं पास पास भ्रमजगहर
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेदमहागिरि भूपर।
एक बार वंदे जो कोई, ताहि नरकपशुगति नहि होई ॥८॥
नरपति नृप सुरशक्र कहावे, तिहुँजग भोग भोगि शिव पावैं।
विघनविनाशन मंगलकारी, गुणविलास वंदौं भवतारी ॥९॥

— घत्ता —

जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावैं गावैं भगति करै।
ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुणको बुध उचरै।१०

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशति तीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्य पूर्णार्घं नि० स्वाहा।

❀ इति निर्वाणक्षेत्र पूजा समाप्त ❀

अथ श्रीचन्द्रप्रभजिनपूजा

— अडिल्ल —

शुभ अतिसय चौंतीस प्रातिहारिज अधिकाही,
अनन्तचतुष्टयजुक्त दोष अष्टादस नाहीं।
आह्वानन विधि करूँ नाय सिर सुधकरि मनही,
लोक मोहतमहरनदीप अदभुत समि जिनही॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठ ठ।
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

— गीता छन्द —

हिममयल निरगत तोय सीतल मधुर सुगंधकरी परें
भरि भृङ्ग जिनवर चरण आगैं धार दे भवसृति हरैं।
श्रीचन्द्रप्रभ दुतिचंदको पदकमल नखगमि लगि रह्यौ
आतङ्कदाह निवारि मेरी, अरज सुनि मैं दुख सह्यौ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०

भवताप दाह दहत मोरू एक छिन न विसारही।
घनसार मलय घसी जिनेसुर पूजिहूँ दुखटारही॥श्री०॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वा

संसार उदधि अपार तारन भक्ति प्रभु तुमरी सही।

---

१ पर्वत।

शुभ मालिपुञ्ज जिनाग्रकरि हूँ लहूँ वसुगुण वसुमही॥श्री०॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षत नि० स्वाहा।
अति सुभट मार प्रचण्ड सरतें हने सुर नर पसु सबै।
शुभ कुसुमन्यौं पद पूजिहू जिन हरो मनमथ दुरगबै॥श्री०॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्प नि०।
यह छुधा मोकू दहै नितही, नैंक सुख नहिं पावही।
चरु मिष्टतें पद पूजिहूँ जिन छुधारोग नसावही॥श्री०॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् नि०।
अति मोहतम मम ज्ञान ढास्यो, स्वपर पद नहिं चेतही।
तुम चरण पूजू रतन दीपक, करो तमको छेव ही॥श्री०॥६
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीप नि०।
शुभ मलय अगर सुगन्ध सौरभ, धरी अलि बहु आवहीं।
जिन चरन आगें धूप खेये, कर्म वसु जरि जावहीं॥श्री०॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूप नि०।
शुभ मोखमग अंतराय रोक्यौं, मोहि निरफल जानिकैं।
जिन मोक्ष द्यो तुम चरण पूजू, फल मनोहर आनिकैं॥श्री०॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फल नि०।
जल गंध तंदुल पुष्प चरु ले,-दीप धूप फलौघ हा।
कन थाल अर्घ बनाय सिनसुख, "रामचन्द" लहूँ मही॥श्री०
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घं निर्वपामीति स्वा०

❀ पंचकल्याणक अर्घ ❀

— दोहा —

चैत असित पंचमि चये, वैजयंततैं इंद ।
उदर सुलछना अवतरे, जजूं त्रिविध गुणवृंद ॥ १ ॥
ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

अमित पोह एकादशी, जनमे जुत त्रय ज्ञान।
वासव उत्सवकरि जजे, जजूं जनम कल्यान ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्मकल्याणसहिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

चंद्रपुरी साम्राज्य तजि कृष्ण इकादशी पोह ।
धरयो उग्र तप वनविषै जजूं नाशहित द्रोह ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपकल्याणसहिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि० ।

फाल्गुण सप्तमि कृष्ण ही घाति हने लहि ज्ञान ।
भव्यातम बोधे घने जजहुं ज्ञानकल्यान ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां ज्ञानकल्याणसहिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि० ।

सुक्ल फागुण सप्तमी, शेष कर्म हनि मोख ।
गये समेदाचल थकी, जजूं गुणनके कोख ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षकल्याणमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं ।

❀ अथ जगमाला ❀

— दोहा —

वसुविन वसु कर्म हानिकै, वसे धरा वसु जाय।
हरो हमारे कर्म वसु, नमू अंग वसु नाय ॥१॥

(चाल—अहो जगत गुरु देवकी)

अहो चन्द्रदुतिनाथ ज्ञायक अंतरजामी।
सकललोक तिरकाल लखे जुगपत गुणधामी॥
जे चर अचर अपार अनागततीत उपायो।
लोकालोक निहारि लखे कछु नाहि छिपायो।२।
भाख्या ज्यौं करमाहि मिधारथ धारि निहारे।
अथवा अंगुरी रेख लखे कर जुत इकवारे॥
एसो ज्ञान अपार और कहुँ नाहिं सुन्यौ है।
दरशनको परताप तुम जिन माहि भन्यौ है ॥३॥
मैं दुख पाये घोर चतुरगति माहिं घनेरे।
तुमतें छाने नाहिं कहा भाखू जिन मेरे॥
सब शिशुकी पैं तात ख्यात पित-जननी जानें।
माग्या बिन नहिं देहि तोय पय धान न खाने ॥४॥
देखो करम अपार सुभट जड, चेतन नाहिं।
चेतन होकरि रक, चोर जिम वा मत जाहीं॥
माता अगनि मझारि नरक दारुण दुख देही।

१ आठ।

कोउ सरनै नाहि धरम जिन निहचै ये ही॥ ५ ॥
तिरजंचगति दुख भार सह जिन संजम धारे।
भूख प्यास लदि भार अर द पीठ मझारे॥
मारत कारक धाय जाल मधि उरझन परेरू।
पकरि कसाई लेय सरनि नाहिं तिहि केरू॥ ६ ॥
मानुषगति कुल नीच विकल इन्द्री करि नाहीं।
भूपति आगैं दौरि तुरक कार्य घरि जाहीं॥
अहि निशि चौकी देह सह सिर घाम सहे ही।
जिन दरसन दुख येह घने चिरकाल लहे ही॥७॥
कोउ पुन्यवसाय बाल तपतें सुर थायो।
हस्ती घोटक बैल महिष असवारी धायो॥
पूरन आन जु आय तवै माला मुरझानी।
आरतित तजि प्रान कुसुमभव पाय अज्ञानी॥८॥
ऐसे दुख अपार सहे थिरता नहिं पाई।
क्रोध मान छल लोभ थकी दिन दिन अधिकाई॥
तुम करुणानिधि लेखि सरनि आयो ततकारी।
दरशो कर निरवार अहो जगपति जगतारी॥९॥
जगनायक जगदीस जगोत्तम दृष्टि निहारो।
मारू काम विचारि करो नपुत निरवारो॥
या नपुसगति पाय सह दुख औरन हती।
यह निश्चै करि जानि लये तुम यानी सेती॥१०

करम विचारे कौन भूलि मेरी अधिकाई।
अगनि मह घनघात लोहकी सगति पाई ॥
ऐसे या वपुसग मह दुख औरन सेती।
धनि वानी तुम दई सुनी गुरुके मुख एती ॥११॥
तुम अनुकम्प पसाय, तजू दुर ध्यान विकारो।
करनादिकन भिन्न, लखू चिद्रूप हमारो ॥
जोतिस्वरूपी देव, बसें याही घट माहीं।
ढूढ़ कौन सथान, लख तुम ध्यान उपाहीं ॥१२॥
तेरे ध्यान प्रताप, करम जरि जाय अनता।
'रामचद' करि ध्यान, लहे सुख नर गुणवता ॥
इहभव सुरपद अपार, और भव सुरपद पावें।
अनुक्रमतें निरवान जिनकेसुर यश करि गावें।१३।

— दोहा —

वपुद्रव्य ले सुध भावत, जजू तिहारे पाय।
देहु देव शिव सुभग अर्न, अहो चद दुति राय ॥१४॥
ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।
❀ इति श्रीचन्द्रप्रभपूजा समाप्त ❀

श्री वासुपूज्य जिनपूजा

— छन्द रूपकवित्त —

श्रीमतवासुपूज्य जिनवरपद, पूजनहेत हिये उमगाय।
थापों मननचतन शुचि करिकें, जिनकी पाटलदन्या माय ॥

महिष चिन्ह, पद्म मनोहर, लाल वरन तन समता दाय।
सो करुनानिधि कृपादृष्टि करि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ यहँ आय॥१

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

— अष्टक —

छन्द जोगीरासा। आंचलीबध "जिनपद पूजौं लवलाई"

गङ्गाजल भरि कनक कुम्भमें, प्रासुक गंध मिलाई।
करममलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई॥जिन०॥
वासुपूज्य वसुपूजतनुजपद, वासव सेवत आई।
बाल ब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई॥जिन०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०।१

कृष्णागरु मलयागिर चन्दन, केशरसंग घसाई।
भव आताप विनाशन कारन, पूजौंपद चित लाई॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि०।२

देवजीर सुखदास शुद्ध वर, सुवरनथार भराई।
पुंजधरत तुम चरनन आगैं, तुरित अखयपद पाई॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०॥३॥

पारिजात संतानकल्पतरु,-जनित सुमन बहु लाई।
मीनकेतुमदभंजनकारन, तुम पदपद्म चढ़ाई॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०॥४॥

नव्यगव्यआदिक रसपूरित, नेवज तुरित उपाई।
क्षुधारोग निरवारनकारन, तुम्हें जजों शिरनाई ॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् नि० ।५

दीपकजोत उदोत होत वर, दशदिशमें छवि छाई।
तिमिरमोहनाशक तुमको लखि, जजौं चरन हरषाई॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि० ।६

दशविध गंधमनोहर लेकर, वातहोत्रमें डारै।
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सु धूम उड़ाई ॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥७॥

सुरस सुपक्वसुपावन फल लै, कंचनथार भराई।
मोच्छ महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरों गुनगाई ॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥८॥

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति! निकट धरों यह लाई ॥वासु०॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये‌ऽर्घ्यं नि० ॥९॥

❁ पंचकल्याणक ❁

— छन्द पाइता (मात्रा १४) —

कलि छट्ठ असाढ़ सुहायौ। गरभागम मंगल पायौ॥
दशमें दिविते इत आये। शतइन्द्र जजें सिर नाये॥१॥
ॐ ह्रीं आसाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि०

कलि चौदश फागुन जानों। जनमें जगदीश महानों॥

..गे मह अंने तब जाई। हम पूजत हैं चितलाई॥ २॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं नि०

..ि चादस फागुन श्यामा। धरियो तप श्रीअभिरामा॥
..प सुन्दर ..पय पायो। हम पूजत अतिसुख थायो॥३॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं नि०

वदि भादव दोइज सोहैं। लहि केवल आतम जो हैं॥
अनअत गुनाकर स्वामी। नित बन्दौं त्रिभुवन नामी॥४॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णद्वितीयायां केवलज्ञानमण्डिताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं नि०

सित भादव चौदशि लीनों। निरवान सु धाम प्रवीनों॥
पुर चंपाथानकसेती। हम पूजत निजहित हेती॥ ५॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्राय अर्घं नि०

❀ अथ जयमाला ❀

— दोहा —

चंपापुरमें पंच वर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय॥१॥

— छन्द मोतियदाम (वर्ण १२) —

महासुखसागर आगर ज्ञान, अनंतसुखामृतभुक्त महान।
महाबलमंडित खंडितकाम, रमाशिवसंग सदा विसराम

॥ २ ॥ सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद, मुनिंद जजैं नित पादरविंद ॥ प्रभू तुम अन्तरभाव विराग। सुबालहितैं व्रत-शीलमों राग ॥ ३ ॥ कियो नहिं राज उदाससरूप। सुभावन भावत आतमरूप ॥ अनित्य शरीर प्रपंच समस्त। चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त ॥ ४ ॥ अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय। जहां जिय भोगत कर्मविपाय ॥ निजातमकै परमेसुर शर्न। नहीं इनके बिन आपदहर्न ॥ ५ ॥ जगत्त जथा जलबुद्बुद येव। सदा जिय एक लहै फलमेव ॥ अनेक प्रकार धरी यह देह। भमैं भवकानन आन न नेह ॥ ६ ॥ अपावन मात कुधात भरीय। चिदातम शुद्धसुभाव धरीय ॥ धरै इनसौं जब नेह तबेव। सुआवत कर्म तबै वसुमेव ॥ ७ ॥ जबै तनभोगजगत्तउदास। धरै तब संवर निर्जरआस ॥ करै जब कर्मकलङ्क विनाश। धरै तब मोक्ष महासुखराश ॥ ८ ॥ तथा यह लोक नराकृत नित्त। विलोकियते षट्द्रव्यविचित्त ॥ सुआतमजानन बोधविहीन। धरै किन तत्त्वप्रतीत प्रवीन ॥ ९ ॥ जिनागमज्ञानरु संजम-भाव। सबै निजज्ञान विना विरसाव ॥ सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल। सुभाव सबै जिहतैं शिवहाल ॥ १० ॥ लयो सब जोग सुपुन्य वशाय। कहो किमि दीजिय ताहि गँवाय ॥ विचारत यों लवकांतिक आय। नमें पदपंकज पुष्प चढ़ाय ॥ ११ ॥ कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार। प्रबोधि सु येम

[illegible] मरधर्मतनौं हरि आय । रच्यौ [illegible] जनाय ॥ १२ ॥ धरे तप पाय सुके- [illegible] शुभव्य मँबोध ॥ लियो शिव [illegible] नाम लित भक्त सोई सुखआश ॥१३॥

— घत्तानंद —

जिन [illegible], पापनिकंदत, वासपूज्य व्रतब्रह्मपती। भवभयनिखंडत, आनँदमंडित, जैं जैं जैं जैवंत जती ॥१४॥
ॐ ह्रीं वासुपूज्यजिन द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥१४॥

— सोरठा छंद —

वासपूजपद सार, जजौं दरवविधि भावसों।
सो पावें सुखसार, भुक्ति मुक्तिको जो परम ॥१५॥

इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

❀ इति श्रीवासुपूज्य जिनपूजा समाप्त ❀

अथ शांतिपाठ भाषा

— चौपाई (१६ मात्रा) —

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी, शीलगुणव्रतसंयमधारी।
लखन एकसौ आठ विराजैं, निरखत नयन कमलदल लाजैं।१।
पंचम चक्रवर्तिपदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी ॥
इंद्रनरेन्द्रपूज्य जिननायक, नमो शांतिहित शांतिविधायक।२।
दिव्य विटप पहुपनकी वरषा, दुंदुभि आसन वाणी सरसा ॥

१ सौधर्मादिक इन्द्र।

छत्र चमर भामडल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥३॥
शांति जिनेश शांतिसुखदाई, जगतपूज्य पूजौं शिरनाई ॥
परम शांति दीजै हम सबको, पढ़ै तिन्हें, पुनिचारसघको ।४

— वसततिलका —

पूजै जिन्हैं मुकुट हार किरीट लाकैं।
इन्द्रादिदेव अरु पूज्य पदाब्ज जाकैं ॥
सो शांतिनाथ वर वशजगत्प्रदीप ।
मेरे लिये करहिं शांति सदा अनूप ॥५॥

— इन्द्रवज्रा —

सपूजकोंको प्रतिपालकोंको, यतीनको औ यतिनायकोंको,
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेशको ले, कीजै सुखी हे जिन शांतिको दे ।६

— स्रग्धरा —

होवै सारी प्रजाको सुख, बलयुत हो धर्मधारी नरेशा ।
होवै वर्षा समैपै तिलभर न रहै व्याधियोंका अँदेशा ॥
होवै चोरी न जारी सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी ।
सारे ही देश धारै जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी ॥७॥

— दोहा —

घातिकर्म जिन नाशकरि, पायो केवलराज ।
शांति करो सब जगतमें, वृषभादिक जिनराज ॥

— मदाक्रांता —

शास्त्रोंका हो पठन सुखदा, लाभ सत्सगतीका ।
सद्वृत्तोंका सुजस कहके, दोष ढाँकू सभीका ॥

तोन प्रकार तमन हितकर, आपको रूप ध्याऊ।
तातों सऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौलौं न पाऊ ॥

— आर्या —

तवपद मेरे हिय में मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तबलौं लीन रहैं, प्रभु, जबलौं पाया न मुक्तिपद मैंने ॥
अक्षरपद मात्रासे दूषित जो कछु कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब करुणाकरि पुनि छुडाउ भवदुखसे॥
हे जगबंधु जिनेश्वर, पाऊं तव चरण शरण बलिहारी।
मरणसमाधि, सुदुर्लभ, कर्मोंका क्षय सुबोध सुखकारी ॥

(परिपुष्पाञ्जलि क्षिपेत)

❁ अथ विसर्जन पाठ ❁

— दोहा —

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसादतैं परमगुरु, सो सब पूरन होय ॥ १ ॥
पूजनविधि जान्यो नहीं, नहि जान्यो आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान ॥२॥
मंत्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु मुझे, देहु चरणकी सेव ॥३॥
आये जो जो देवगन, पूजे भक्तिप्रमान।
सो अब जावहु कृपाकर, अपने अपने थान ॥४॥

— (१) राग काफी :—

प्रभु मैं यह वरदान सुपाऊं,
फिर जगकीचबीच नहिं आऊं ।टेर।

जल गंधाक्षत पुष्प सुमोदक,
दीप धूप फल सुन्दर ल्याऊं ।
आनंदजनक कनकभाजन धरि,
अर्घ अनर्घ बनाय चढ़ाऊं। प्र० ।१।

आगमके अभ्यासमांहि पुनि,
चित एकाग्र सदैव लगाऊं ।
संतनकी संगति तजिकै मैं,
अब कहूँ इक छिन नहिं जाऊं।प्र०।।२।

दोषवादमें मौन रहूँ फिर,
पुण्यपुरुषगुन निशिदिन गाऊं ।
मिष्ट स्पष्ट सबहीसों भाषौं,
वीतराग निज भाव बढ़ाऊं।। प्र० ।।३।।

बाहिजदृष्टि ऐंचके अन्तर,
परमानन्द स्वरूप लखाऊं ।
भागचन्द शिवप्राप्त न जौलौं,
तौलौं तुम चरनाम्बुज ध्याऊं ।।प्र० ।।४।।

सर्वज्ञ-स्तुति

— वसंततिलका —

अङ्कुर एक नथी मोह [1]तणो रह्यो ज्यां,
अज्ञान भस्म [3]बली भस्मरूपे [4]थयो ज्यां,
आनंद, ज्ञान निजवीर्य अनन्त [5]छे ज्यां,
त्यां स्थान मागुं—जिनना चरणाम्बुजोमां।

अर्थ—जहां मोहका एक अङ्कुर नहीं रहा, जहां अज्ञान जलकर भस्म हुआ, जहां अनन्त आनन्द, ज्ञान, वीर्य है, वहां—जिनेन्द्रदेवके चरणकमलोंमें स्थान मांगता हूँ।

[6]जे आभामां जगत [7]आ परमाणुतुल्य,
[8]ते अनन्तहीन नभनुं [9]जहीं पूर्ण ज्ञान,
[10]सौ द्रव्यना युगपदे त्रण काल जाणे,
ते नाथने नमन हो [11]मुंज नम्र भावे।

अर्थ—जिस आकाशमें यह जगत परमाणु तुल्य है, उस अनन्ताकाशका जिसको पूर्ण ज्ञान है, सब द्रव्योंको युगपत् त्रिकाल जानता है, ऐसे उस भगवानको मेरा नम्र भावसे नमस्कार हो।

दैवी [12]समोसरणमां नहिं राग किंचित,
धूलि मलिन पर [13]ज्यां नहि द्वेष किंचित्,

१ नहीं, २ का, ३ जलकर, ४ हुआ, ५ है। ६ जिस, ७ यह, ८ उस, ९ जहांपर (जिसको) १० सब, ११ मेरा, हमारा। १२ में, १३ जहां।

धूलि समोसरण केवल ज्ञेय [1]जेमा,
ते ज्ञानने नमन हो जिनजी ! [2]अमारा।

अर्थ—देव निर्मित समवशरणमें किंचित् राग नहीं है, कर्माच्छादित पर जहां किंचित् द्वेष नहीं है, किन्तु जिसमें मात्र ज्ञेय (ज्ञानके विषय) हैं ऐसे उस ज्ञान को हे जिनेन्द्रदेव ! हमारा नमस्कार हो।

— शिखरिणी —

भले [3]सो इन्द्रोना तुज चरण मां शिर नमता,
भले इन्द्राणी ना रतनमय स्वस्तिक बनता,
नथी [4]ए ज्ञेयोमां [5]तुज परिणति सन्मुख जरा,
स्वरूपे डूबेला, नमन [6]तुजने ओ जिनवरा !

अर्थ—चाहे तुम्हारे चरणों में सौ इन्द्रोंके मस्तिष्क नमते हों, चाहे इन्द्राणीका रत्नमय स्वस्तिक बनता हो, किन्तु तुम्हारी इन ज्ञेयोंकी ओर थोडी भी परिणति नहीं है, स्वरूपावस्थित हे जिनेन्द्र ! तुम्हें नमस्कार है।

— वसंततिलका —

जगना अगाध तिमिरे प्रभु ! सूर्य तू छे,
अज्ञान अंध जगनु प्रभु ! नेत्र तू छे,
भवसागरे पतितनु प्रभु ! नाव तू छे,
माता, पिता, गुरु, जिनेश्वर ! सर्व तू छे।

१ जिसमें। २ हमारा। ३ सौ, शत। ४ इन। ५ तेरी तुम्हारा। ६ तुम्हें, तुझे, तुमको।

अर्थ—प्रभु ! जगके गाढ़ अंधकारमें तू सूर्य है, प्रभु ! अनाथोंके [illegible] तू नेत्र है, प्रभु ! भवसागरमें पतितोंके लिये [illegible], माता, पिता, गुरु आदि सब, जिनेश्वर ! तू है।

तीर्थंकरो जगतमा जयवन्त वर्तो,
ॐकारनाद जिननो जयवंत वर्तो,
जिनना समोसरण सौ जयवन्त वर्तो
ने तीर्थनाथ जगमा जयवन्त वर्तो।

अर्थ—जगतके तीर्थंकर जयवन्ते रहे, जिनेन्द्रका ओंकारनाद (ओंकारध्वनि) जयवन्त रहे, जिनेन्द्रके समवशरण जयवन्त रहे, और जगतमें जिनधर्म जयवन्त रहे।

— (अनुष्टुप) —

समोसर्ण जिनेश्वर नु शास्त्रमा बहु[3] वर्णव्यु,
परन्तु [4] ए महार्णवनु, बिंदुमात्र [5] नहीं कह्यु।

अर्थ—जिनेश्वर के समवशरण का शास्त्रों में बहुत वर्णन किया है, परन्तु इस (समवशरणरूप) महासागर का बिन्दु मात्र वहां (शास्त्रों में) कहा है।

१ सब। २ जिनधर्म (जैनमार्ग)। ३ वर्णित किया है। ४ इस। ५ वहां।

विना [1]जोये न समजाये, समोसर्ण जिनेशनु,
भरते भाग्य न आ काले, महा भाग्य विदेहीन।

अर्थ—जिनेन्द्र का समवशरण बिना देखे समझमें नहीं आसकता, इस कालमें भरत क्षेत्रमें कोई भाग्यवान नहीं है, भाग्यशाली तो विदेह क्षेत्र वासी हैं।

—(वसंततिलका)—

जिनना समोसरणनु अहीं भाग्य छे ना,
दिव्यध्वनि श्रवणनु पण भाग्य छे ना,
तोये सीमधर अने वीरना ध्वनिना,
प[2]डघा सुणाय मधुरा [3]हजु आगमोमां।

अर्थ—जिनेन्द्र के समवशरण भी भाग्यसे यहां नहीं हैं, दिव्यध्वनि सुननेका भी भाग्य नहीं है, तो भी सीमधर और वीर जिन की वाणी की प्रतिध्वनि शास्त्रोंमें सुनते हैं।

१ देखे। २ प्रतिध्वनि। ३ अब भी।



…म प्रकरण

दौलत विलास

— २९ —

हे मन तेरी को कुटेव यह, ¹करनविषयमें धावै है॥हे०॥टेक॥
इनहीके वश तू अनादितै निजस्वरूप न लखावै है।
पराधीन छिन छिन समाकुल, दुर्गति विपति चखावै है॥हे०॥१
फरस विषयमें कारन ²वारन, ³गरत परत दुख पावै है।
रसनाइन्द्रीवश ⁴झप जलमें कंटक कंठ छिदावै है॥हे०॥२॥
गंधलोल पंकजमुद्रितमें, अलि निज प्रान खपावै है।
नयनविषयवश दीपशिखामें, अंग पतंग जरावै है॥हे०॥३॥
⁶करनविषयवश हिरन ⁷अरनमें, खलकर प्रान लुनावै है।
दौलत तज इनको जिनको भज, यह गुरु सीख सुनावै है॥४

— ३० —

मान ले या सिख मोरी, झुकै मत भोगन ओरी॥मान०॥
भोग ⁸भुजगभोगसम जानो, जिन इनसे रति जोरी।

---

१ इन्द्रियोंके विषयमें। २ हाथी। ३ गढ़ेमें पड़कर। ४ मछली। ५ कमलमें। ६ कानके विषयसे। ७ वनमें। ८ सर्पके फणके समान।

ते अनत भव [1]भीम भरे दुख, परे अधोगति [2]पोरी,
बधे दृढ़ [3]पातक डोरी ॥ मान० ॥१॥
इनको त्याग विरागी जे जन, भये ज्ञानवृषधोरी।
तिन सुख लह्यौ अचल अविनाशी, भवफांसी दई तोरी,
रमैं तिन सँग शिवगोरी ॥मान०॥२॥
भोगनकी अभिलाष हरनको, त्रिजगसंपदा थोरी।
यातैं ज्ञानानन्द दौल अब, पियौ पियूष कटोरी,
मिटै भवव्याधि कठोरी ॥मान० ॥ ३ ॥

— ३१ —

छांडि दे या बुधि भोरी, वृथा तनसे रति जोरी ।छाड़ि०टेक।
यह पर है न रहै थिर पोषत, सकल कुमलकी झोरी।
यामैं ममता कर अनादितैं, बधो कर्मकी डोरी,
सहै दुख [4]जलधि हिलोरी ।छाडि०।१।
यह जड है तू चेतन यौं ही, अपनावत बरजोरी।
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण निधि, ये हैं संपत तोरी,
सदा विलसौ [5]शिवगोरी ।।छाडि०।।२।।
सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासौं ममता तोरी।
दौल सीख यह लीजे पीजे, [6]ज्ञानपियूष कटोरी,
मिटै परचाह कठोरी ॥ छाड़ि० ॥३॥

१ भयानक २ पौर (पैड़ी, सीढ़ी या ड्योढ़ी) ३ पापकी डोरमें। ४ समुद्र। ५ मुक्ति लक्ष्मी। निष्कलङ्क निरञ्जन मुक्तात्मा का अनन्त सुख। ६ ज्ञानरूपी अमृत।

— ५५ —

मोहि समझावो मौ गो मार, निया तोहि समझायो० ॥टेक॥
दग सुगुरुकी परहितमें रति, हित उपदेश सुनायो ॥मौ०॥
विषय भुजग संग सुख पायो पुनि तिनसौं लपटायो।
स्वपदविसार रच्यो परपदमें, मदरत ज्यौं बौरायो ॥मौ०॥
तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजै भ्रम ³चाखसमामृत, जो नित संत सुहायो॥
अबहूँ समझ कठिन यह नरभव ⁴जिन ⁵वृष विना गमायो।
ते विलखैं मनि डार उदधिमें, दौलतको पछतायो ॥मौ०॥

— ५६ —

हे नर, भ्रमनींद क्यों न, छाडत दुखदाई।
सेवत चिरकाल सौंज, आपनी ठगाई ॥ हे नर० ॥ टेक ॥
मूरख अघ कर्म कहा, भेदै नहि मर्म लहा।
लागै दुखज्वालकी न, देहके तताई ॥ हे नर० ॥ १ ॥
जमके रव बाजते, सुभैरव अति गाजते।
अनेक प्रान त्यागते, सुनै कहा न भाई ॥ हे नर० ॥ २ ॥
परको अपनाय आप, रूपको भुलाय हाय।
करनविषय दारु जार, चाहदौ बढ़ाई ॥ हे नर० ॥ ३ ॥

१ विषयरूपी सर्प। २ शराबी। ३ समतारूपी अमृत ४ जिन्होने। ५ धर्म। ६ 'सुन्दर अघ करम रयान' 'भेदै मर्मथान' ऐसा भी पाठ है।

अब सुन जिनवान, राग द्वेषको जघान,
मोक्षरूप निज पिछान दौल, भज विरागताई ॥हे नर०॥४॥

— ३७ —

न मानत यह जिय निपट अनारी ।
सिख देत सुगुरु हितकारी ॥ न मानत० ॥ टेक ॥
कुमति कुनारि संग रति मानत, सुमतिसुनारि बिसारी ॥१॥
नर परजाय सुरेश चहैं सो, तजि विषविषय बिगारी ।
त्याग अनाकुल ज्ञान चाह पर[1] आकुलता विसतारी ॥२॥
अपनी भूल आप समतानिधि, भवदुख भरत भिखारी ।
परद्रव्यनकी परनतिको शठ, वृथा बनत करतारी[2] ॥ ३ ॥
जिस कषाय दव जरत तहां अभिलाष छटा घृत डारी ।
दुखसौं डरै करै दुखकारन,–तैं नित प्रीति करारी[3] ॥ ४ ॥
अति दुर्लभ जिनवैन श्रवन करि, संशय मोह निवारी ।
दौल स्वपर हित अहित जानकै, होवहु शिवमगचारी[4] ॥५॥

— ३८ —

अरे जिया, जग धोखेकी टाटी ॥ अरे० ॥टेक॥
झूठा उद्यम लोक करत है, जिसमें निशदिन घाटी ॥ १ ॥
जानबूझकै अन्ध बने है, आंखन बांधी पाटी ॥ २ ॥
निकल जांयगे प्राण छिनकमें, पड़ी रहैगी माटी ॥ ३ ॥
दौलतराम समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥ ४ ॥

१ पुद्गल सबधी । २ कर्ता । ३ गाढ़ी । ४ मोक्षमार्गी ।

— २५ —

तोहि समझायो सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो० ।टेक।
देख सुगुरुकी परहितमें रति, हित उपदेश सुनायो ।।सौ०।।
विषय भुजंग सेय दुख पायो पुनि तिनसौं लपटायो।
स्वपदविसार रच्यौ परपदमें, मद रत ज्यौं बौरायो ।।सौ०।।
तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजै भ्रम चाखसमामृत, जो नित संत सुहायो ।।
अबहूं समझ कठिन यह नरभव, जिन वृष बिना गमायो।
ते विलखैं मनि डार उदधिमें, दौलतको पछतायो ।।सौ०।।

— २६ —

हे नर, भ्रमनींद क्यों न, छाडत दुखदाई।
सेवत चिरकाल सोंज, आपनी ठगाई ।। हे नर० ।। टेक ।।
मूरख अघ कर्म कहा, भेदै नहि मर्म लहा।
लागै दुखज्वालकी न, देहकै तताई ।। हे नर० ।। १ ।।
जमके रव बाजते, सुभैरव अति गाजते।
अनेक प्रान त्यागते, सुन कहा न भाई ।। हे नर० ।। २ ।।
परको अपनाय आप, रूपको भुलाय हाय।
करनविषय दारु जार, चाहदौं बढ़ाई ।। हे नर० ।। ३ ।।

१ विषयरूपी सर्प। २ शराबी। ३ समतारूपी अमृत
४ जिन्होंने। ५ धर्म। ६ 'मुदर अघ करम स्थान' 'भेद
मरमथान' ऐसा भी पाठ है।

अरु सुन जिनवान, राग द्वेषको जवान,
मोक्षरूप निज पिछान दौल, भज विरागताई ॥हे नर०॥४॥

— ३७ —

न मानत यह जिय निपट अनारी।
सिख देत सुगुरु हितकारी ॥ न मानत० ॥ टेक ॥
कुमति कुनारि संग रति मानत, सुमतिसुनारि बिसारी ॥१॥
नर परजाय सुरेश चहैं सो, तजि विषयविषय विगारी।
त्याग अनाकुल ज्ञान चाह पर[१]-आकुलता विसतारी ॥२॥
अपनी भूल आप समतानिधि, भवदुख भरत भिखारी।
परद्रव्यनकी परनतिको शठ, वृथा बनत करतारी[२] ॥ ३ ॥
जिस कषाय दव जरत तहाँ अभिलाष छटा घृत डारी।
दुखसौं डरैं करैं दुखकारन,-तें नित प्रीति करारी[३] ॥ ४ ॥
अति दुर्लभ जिनबैन श्रवन करि, संशय मोह निवारी।
दौल स्वपर हित अहित जानके, होवहु शिवमगचारी[४] ॥५॥

— ३८ —

अरे जिया, जग धोखेकी टाटी ॥ अरे० ॥टेक॥
झूठा उद्यम लोक करत हैं, जिसमें निशदिन घाटी ॥ १ ॥
जानबूझके अन्ध बने हैं, आंखन बांधी पाटी ॥ २ ॥
निकल जांयगे प्राण छिनकमें, पड़ी रहैगी माटी ॥ ३ ॥
दौलतराम समझ मन अपने, दिलकी खोल कपाटी ॥ ४ ॥

१ पुद्गल सबधी । २ कर्ता । ३ गाढी । ४ मोक्षमार्गी ।

— ४९ —

और सबै जगद्वन्द मिटावो, लो लावो जिन आगम-ओरी ॥और०॥टेक॥ है असार जगद्वन्द बन्धकर, यह कछु गरज न सारत तोरी। कमला[1] चपला[2], यौवन सुरधनु[3], स्वजन पथिकजन क्यों रति जोरी ॥१॥ विषय कषाय दुखद दोनों ये, इनतैं तोर नेहकी डोरी। परद्रव्यनको तू अपनावत, क्यों न तजै ऐसी बुधि भोरी ॥२॥ बीत जाय सागरथिति सुरकी, नरपरजायतनी अति थोरी। अवसर पाय दौल अब चूको, फिर न मिलै मणि सागर बोरी ॥और०॥३॥

— ५० —

चेतन यह बुधि कौन सयानी, कही सुगुरु हित सीख न मानी ॥टेक॥ कठिन काकताली[4] ज्यौं पायौ, नरभव सुकुल श्रवण जिनवानी ॥१॥ भूमि न होत चांदनीकी ज्यौं त्यौं नहिं धनी ज्ञेयको ज्ञानी। वस्तुरूप यौं तू यौं ही शठ हटकर पकरत सोंज बिरानी ॥२॥ ज्ञानी होय अज्ञान राग रुष कर निज सहज स्वच्छता हानी। इन्द्रिय, जड़ तिन विषय अचेतन, तहां अनिष्ट इष्टता ठानी ॥३॥ चाहै

---

१ लक्ष्मी। २ बिजली। ३ इन्द्रधनुष। ४ काकतालीय न्यायसे अर्थात् जैसे ताड़वृक्षसे ताड़फलका टूटना और कागका उसे आकाशमें ही पा लेना कठिन है वैसे।

सुख, दुख ही अवगाहै, अब सुनि विधि जो है सुखदानी ।
दौल आपकरि आप आपमें, ध्याय लाय समरसरस-
मानी ॥ ४ ॥

— ५९ —

राचि रह्यो परमाहिं तू अपनो रूप न जान रे ॥ टेक ॥
अविचल चिनमूरत विनमूरत, सुखी होत तस ठानै रे ॥१॥
तन धन भ्रात तात सुत जननी, तू इनको निज जाने रे ।
ये पर इनहिं वियोगयोगमें यों ही सुख दुख मानै रे ॥२॥
चाह न पाये पाये तृष्णा, सेवत ज्ञान जघान रे ।
विपति खेत विधिबंधहेत पै, जान विषय रस खानै रे ॥३॥
नरभव जिनश्रुतश्रवण पाय अब, कर निज सुहित सयानै रे ।
दौलत आतम ज्ञान सुधारस, पीवो सुगुरु बखानै रे ॥४॥

— ६६ —

निजहितकारज करना भाई ! निजहित कारज करना ॥टेक॥
जनममरनदुख पावत जातैं, सो विधिबंध[1] कतरना ॥१॥
ज्ञानदरस अरु राग फरस रस, निजपरचिह्न भ्रमरना ।
सधिभेद बुधिछैनीतैं कर, निज गहि पर परिहरना ॥२॥
परिग्रही[3] अपराधी शंकै, त्यागी अभय विचरना ।

१ कर्मबंध । २ बुद्धिरूपी छैनीसे निज और परका संधिभेद करना । ३ परिग्रहका धारी तथा परकी वस्तु ग्रहण करनेवाला चोर ।

त्यौं पश्चाह बध दुखदायक, त्यागत मनसुख भरना ॥३॥
जो भवभ्रमन न चाह तो अब, सुगुरु सीख उर धरना ।
दौलत स्वरस सुधारस चाखो, ज्यौं विनसे भवमरना ॥४॥

— ७८ —

हो तुम शठ अविचारी जियरा, जिनरूप[१] पाय वृथा खोवत हो ॥टेक॥ पी अनादि मदमोहस्वगुननिधि, भूल अचेत नींद सोवत हो ॥१॥ स्वहित सीखवच सुगुरु पुकारत, क्यों न खोल उर-दृग जोवत हो । ज्ञान बिसार विषयविष चाखत, सुरतरु[४] जारि कनक[५] बोवत हो ॥२॥ स्वारथ सगे सकल जनकारन, क्यों निज पापभार ढोवत हो । नरभव सुकुल जैनरूप नौका, लहि निज क्यों भवजल डोवत हो ॥ ३ ॥ पुण्यपापफल वात[६]व्याधिवश छिनमें हँसत छिनक रोवत हो । सयमसलिल लेय निज उरके, कलिमल क्यों न दौल धोवत हो ॥४॥

— ७६ —

अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायौ,
ज्यौं शुक[७] नभचाल[८] विसरि नलिनी लटकायो ॥टेक॥

१ जिनधर्म। २ मोहरूपी शराब। ३ हियेकी आँखें। ४ कल्पवृक्षको जलाकर। ५ धतूरा। ६ साता। ७ चिड़ीमार या बहेलियेके गिरदार 'बम्पा' में उपर लगी हुई गिरी ८ आकाश (उड़ने) की चाल।

चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विशुद्ध,
तजि जड़ रस फरस रूप, पुद्गल अपनायौ ॥१॥
इन्द्रियसुख दुखमें नित्त, पाग रागरुखमें[1] चित्त,
दायक भवविपतिवृन्द, बन्धको बढायौ ॥२॥
चाह दाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहै,
समतासुधा न गाहै जिन, निकट जो बतायौ ॥३॥
मानुषभव सुकुल पाय, जिनवरशासन लहाय,
दौल निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ ॥४॥

— ७७ —

हम तो कबहूँ न हित उपजाये।
सुकुल सुदेव सुगुरु सुसग हित, कारन पाय गमाये ॥टेक॥
ज्यों शिशु नाचत, आप न माचत[2], लखनहार बौराये।
त्यों श्रुतबाचत[3] आप न राचत, औरनको समुझाये ॥१॥
सुजस-लाहकी[4] चाह न तज निज, प्रभुता लखि हरखाये।
विषय तजे न रजे[5] निज पदमें, परपद अपद लुभाये ॥२॥
पापत्याग निज-जाप[6] न कीन्हौ, सुमनचाप[7] तप ताये।
चेतन तनको[8] कहत भिन्न पर, देह सनेही थाये ॥३॥

१ राग द्वेष। २ मगन होता है। ३ शास्त्र पढ़ते हैं। ४ सुयश के लाभकी। ५ मग्न हुये। ६ आत्माका जाप। "जिन जाप" ऐसा भी पाठ है (जिनेन्द्रका जाप)। ७ कामसे उग्रस दुखी हुये। ८ शरीर।

यह चिर भूल भई हमरी अब कहा होत पछता
दौल अजौं भवभोग रचौ मत, यौं गुरु वचन सुनाये।

— ४२ —

मत कीजो जी यारी, ये भोगभुजग[1] सम जानके ॥मत
भुजग डसत इक बार नसत है ये अनत मृतुकारी[2] ।
तिसना तृषा बढ़ै इन सेयें, ज्यों पीये जल खारी ॥मत
रोग वियोग शोक वनको घन[3], समतालताकुठारी[4] ।
केहरि[5] करि[6] अरि[7] न देत ज्यों, त्यों ये दैं दुख भारी
इनमें रचे देव तरु[8] थाये, पाये श्वभ्र[9] मुरारी ।
जे विरचे[11] ते सुरपति[12] अरचे, परचे सुख अधिकारी
पराधीन छिनमाहिं छीन ह्वै पापबंधकरतारी ।
इन्हें गिनैं सुख आक माहिं तिन, आमतनी बुधि धारी
मीन[13] मतंग[14] पतंग भृङ्ग[15] मृग, इन वश भये दुखारी
सेवत ज्यों किंपाक ललित, परिपाक समय दुखकारी
सुरपति नरपति खगपतिहूकी[1], भोग न आस निवारी
दौल त्याग अब भज विराग सुख, ज्यों पावै शिवनारी

१ सर्प । २ मृत्युके देनेवाले । ३ बादल । ४ समतारूपी
काटनेको कुल्हाड़ा । ५ सिंह । ६ हाथी । ७ शत्रु । ८ कल्प
रूपति हुए)। ९ नरक । १० नारायण । ११ वैरागी हुये ।
पूजा करते हैं । १३ मछली । १४ हाथी । १५ भ्रमर । १६ विष

— ५६ —

मत कीजौ जी यारी, घिनगेह[1] देह जड़ जानिके ॥टेक॥
मात-तात रज वीरजसों यह, उपजी मलफुलवारी।
अस्थिमाल पल-नसा जालकी[2], लाल लाल जल क्यारी ॥१॥
कर्मकुरंगथलीपुतली[3] यह, मूत्रपुरीष[4] भँडारी।
चर्ममँडी रिपुकर्मघडी धन, धर्म चुरावनहारी ॥ २ ॥
जे जे पावन वस्तु जगतमें, ते इन सर्व बिगारी।
स्वेद[5] मेद[6] कफक्लेद[7]मयी बहु, मदगदव्यालपिटारी[8] ॥३॥
जा संयोग रोगभव[9] तौलौं, जा वियोग शिवकारी।
बुध तासों न ममत्व करैं यह, मूढ मतिनको प्यारी ॥४॥
जिन पोषी ते भये सदोषी, तिन पाये दुख भारी।
जिन तप ठान ध्यानकर शोषी, तिन परनी शिवनारी[10] ॥५॥
सुरधनु[11] शरदजलद[12] जलबुदबुद, त्यों झट विनशनहारी।
यातैं भिन्न जान निज चेतन, दौल होहु शमधारी[13] ॥६॥

— ५७ —

लखौ जी या जियभोरेकी बातैं, नित करत अहित हित घातैं ॥टेक॥ जिन गनधर मुनि देशव्रती समकिती

१ घृणाका घर। २ हाड़-मांस-नसोंके समूहकी। ३ कर्मरूपी हिरनोंको फँसानेवाली जगह पर पुतलीके समान। ४ मूत्र और विष्टाका घर। ५ पसीना। ६ चरबी। ७ दुर्गन्ध। ८ मद रोगरूपी साँपके लिये पिटारी। ९ संसाररूपी रोग। १० शिवकी। ११ इन्द्रधनुष। १२ शरदऋतुके बादल। १३ समताके धारी।

सुखी नित जात। सो पय ज्ञान न पान करत न अघात' जपतजश ख्यात ॥१॥ दुखस्वरूप दुखफलद' जलदसम', टिकत न छिनक विलात। तजत न जगत न भजत पतित नित, रचत न फिरत तहाँत ॥२॥ देह-गेह धन-नेह ठान अति, अघ संचत दिन रात। कुगति विपतिफलकी न भीत निचित प्रमाददशात ॥३॥ कबहुँ न होय आपनो पर द्रव्यादि पृथक चतुधा ।' अपनाय लहत दुख शठ नभ-हतन चलावत लात ॥४॥ शिवगृहद्वार सार नरभव यह, लहि दश दुर्लभतात। खोवत ज्यों मनि काग' उड़ावत रोवत रंकपनात ॥५॥ चिदानंद निर्द्वन्द स्वपद तज, अपर-विपद पद' रात। कहत सुशिख गुरु गहत नहीं उर, चहत न सुख समतात ॥६॥ जैनबैन सुन भवि बहु भवहर, छूटे द्वन्दशात। तिनकी सुकथा सुनत न मुनत' न, आतम-बोधकलात ॥७॥ जे जन समुझि ज्ञानदृगचारित, पावन पयवपात। तापविमोह हर्यौ तिनको जस, दौल त्रिभौन विख्यात ॥८॥

— ६० —

सुनो जिया ये सतगुरुकी बात, हित कहत दयाल

१ क्षय होता है। २ दुखरूप फल देने वाला। ३ बादलके समान। ४ स्वचतुष्टयमें। ५ आकाशके घात करने का। ६ विपति स्थानमें लीन। ७ मनन नहीं करता।

दयातैं ।सु०।टेक। यह तन थान अचेतन है तू, चेतन मिलत न यातैं। तदपि पिछान एक आतमको, तजत न हठ शठ-तातैं ॥१॥ चहुँगति फिरत भरत ममताको, विषय महाविष खातैं। तदपि न तजत न रजत[1] अभागे, दृगव्रत बुद्धि-सुधातैं ॥२॥ मात तात सुत भ्रात स्वजन तुझ, साथी स्वारथनातैं। तू इन काज साज गृहको सब, ज्ञानादिक मत घातैं ॥३॥ तन धन भोग सँयोग सुपन सम, वार न लगत विलातैं। ममत न कर भ्रम तज तू भ्राता, अनुभव ज्ञान कलातैं ॥४॥ दुर्लभ नरभव सुथल सुकुल है, जिन उपदेश लहातैं। दौल तजौ मनसौं ममता ज्यौं, निवडो द्वंद्वदशातैं ॥ सुनो० ॥ ५ ॥

— ७९ —

चेतन अब धरि सहजसमाधि[2], जातैं यह विनशै भवव्याधि।
मोह ठगौरी खायकै रे, परको आपा जान।
भूल निजातम ऋद्धिकौं तैं, पाये दुःख महान ।।चेतन०।।१॥
सादि अनादि निगोद दोयमें परयो कर्मवश जाय।
श्वासउसासमझार तहाँ भव, मरन अठारह पाय।चेतन०।२।
काल अनन्त तहाँ यों वीरयो, जब भइ मन्द कषाय।

---

१ रचायमान होना है। २ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी अमृतमें। ३ आत्मस्वरूपमें स्थिरता।

भू जल अनिल[1] अनल[2] पुन तरु[3] है, काल असंख्य गमाय।
क्रमक्रम विकलत्रय तन ते पाई, असैनि सैनि परजाय।
जल थल नभचर काय धार ठाने, तस[4] वश दुख लहाय॥४॥
नित नरकावास[5] दुख पाये, निकस कबहुँ नर थाय।
गर्भ जन्म शिशु-तरुण वृद्ध दुख, सहे कहे नहिं जाय॥५॥
कबहूँ किंचित पुण्यपाकतें, चउविधि देव कहाय।
विषयआश मन त्रास लही तहँ[6], मरनसमय बिललाय॥६॥
या अपार भवसागर मांहीं, भ्रम्यो अनंते काल।
दौलत अब निजभाव-नाव चढ़ि, ह्वै भवाब्धि की पाल॥७॥

— ८८ —

ज्ञानी जीव निवार भरमतम वस्तुस्वरूप विचारत ऐसें॥ज्ञा०॥टेक॥ सुत तिय बंधु धनादि प्रगट पर, ये मुझतें हैं भिन्न प्रदेशैं। इनकी परनति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवै वैसें॥ज्ञा०॥१॥ देह अचेतन चेतन मैं, इन परनति होय एकसी कैसें। पूरन[7] गलन स्वभाव धरै तन,[8] मैं अज अचल अमल नभ जैसें॥ज्ञा०॥२॥ पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा रागरुष द्वंद भयेसें। नसै ज्ञान निज फँसै बंधमें, मुक्त होय समभाव लयेसें॥ज्ञा०॥३॥ विषयचाह दवदाह नसै

१ अग्निकाय। २ वायुकाय। ३ वनस्पतिकाय। ४ पक्षी। ५ नरक। ६ वहाँ। ७ पूरण होने और गलन होने रूप स्वभाव वाला पुद्गल होता है। ८ शरीर।

नहि, निन निज सुधासिंधुमें पैंसे। जब जिनवन सुने श्रवननतैं मिटे विभाव करू विधि तैसें।।ज्ञा०।।४।। ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहितहत विलंब करेंमें। पछताओ बहु होय सयाने, चेतन दौल छुटो भव[१]-भै में ।।ज्ञा०।।५।।

— १०७ —

हमतो कबहूँ न निजगुन भाये।
तन निज मान जान तनदुखसुख,-में बिलखे हरखाये ।।टेक।।
तनको गरन[२] मरनलखि तनको, धरन मान हम जाये[३]।
या भ्रमभौंर[४] परे भवजलचिर, चहुँगति विपत लहाये ।।१।।
दरशबोधव्रतसुधा न चाख्यो, विविध विषय विष खाये।
सुगुर दयाल सीख दइ पुनिपुनि, सुनिसुनि उर नहिं लाये।।२
बहिरातमता तजी न अन्तर,-दृष्टि न ह्वै निज ध्याये।
धाम काम धन रामाकी नित, आश[५] हुताश जलाये ।।३।।
अचल अनूप शुद्ध चिद्रूपी सबसुखमय मुनि गाये।
दौल चिदानँद स्वगुन मगन जे, ते जिय सुखिया थाये।।४।

— १०८ —

हम तो कबहूँ न निज घर आये।
परघर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये ।। टेक ।।
परपद निजपद मानि मगन ह्वै, परपरनति लपटाये।

१ ससाररूपी भयसे। २ गलना (नष्ट होना) ३ उत्पन्न हुए। ४ अज्ञानरूपी भवर। ५ आशारूपी अग्निसे।

शुद्ध बुद्ध सुखकर मनोहर, देखनमात्र न भावै ॥ १ ॥
नर पशु रुग नरक निज जान्यो परजय बुद्धि लहावै।
अमल अखंड अतुल अविनाशी, आतमगुन नहिं गावै ॥२॥
यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछतावै।
दौल तजो अजहूं विषयनको, सतगुरु वचन सुनावै ॥३॥

भागचन्द भजनमाला

— (८३) राग ख्याल —

मारौ जिन निरफल खोयबौ करै है।
नरभव लहिकर प्रानी बिनज्ञान, मारौ जिन निरफल० टेक
परसंपति लखि निज चित माहीं, विरथा मूरख रोयबौ करै है ॥ १ ॥ कामानलतैं जरत सदाही, सुन्दर कामिन जोयबौ करै छै ॥ २ ॥ जिनमत तीर्थस्नान न ठानै जलमैं पुद्गल धोयबौ करै छै ॥ ३ ॥ भागचन्द इमि ध[illegible] बिना शठ मोहनीन्दमैं सोयबौ करै छै ॥ ४ ॥

— (८४) राग सोरठ —

आवै न भोगनमें तोहि गिलान ॥ टेक ॥
तीरथनाथ भोग तजि दीनें, तिनतैं मन भय आन।
त तिनतैं कहुँ डरपत नाहीं, दीसत अति बलवान ॥ १ ॥
इन्द्रियतृप्ति कान न भोग, विषय महा अघखान।
सो जैसे घृतधारा डारै, पावकज्वाल बुझान ॥आवै०॥२॥

जे सुख तो तीवन दुखदाई, ज्यों मधुलिप्त कृपान ।
तातैं भागचन्द इनको तजि, आत्मस्वरूप पिछान ॥ ३ ॥

— (८८) राग मल्हार —

मान न कीजिये हो परवीन ॥ टेक ॥
जाय पलाय चंचला कमला, तिष्ठै दो दिन तीन ।
धनजोबन छनभंगुर सबही, होत सुछिन छिन छीन ॥१॥
भरत नरेन्द्र खंड-षट नायक, तेहु भये मदहीन ।
तेरी बात कहा है भाई, तू तो सहज हि दीन ॥ २ ॥
भागचन्द मार्दव रससागर, माहि होहु लवलीन ।
तातैं जगत जालमें फिर कहुँ जनम न होय नवीन ।मान०।३।

— (८९) राग मल्हार —

अरे हो अज्ञानी तूंने कठिन मनुषभव पायो ॥ टेक ॥
लोचनरहित मनुषके करमें, ज्यों बटेर खग आयो ।अरे०।१।
सो तू खोवत विषयनमाहीं धरम नहीं चित लायो ॥ २ ॥
भागचन्द उपदेश मान अब, जो श्रीगुरु फरमायो ।अरे०।३।

— ३८ —

जीव ! तू भ्रमत सदीव अकेला, संग साथी कोई नहिं तेरा ॥ टेक ॥ अपना सुखदुख आपहि भुगतै, होत कुटुम्ब न भेला । स्वार्थ भयें सब बिछरि जात हैं, विघट जात ज्यों मेला ॥१॥ रक्षक कोइ न पूरन ह्वै जब, आयु अंतकी बेला । फूटत पारि बँधत नहिं जैसें, दुद्धर जलको ठेला ।जीव०।२।

तन धन जीवन सिगरि जान ज्यों, इन्द्रजालका खेला।
भागचन्द इमि लखकरि भाई हो सतगुरुका चेला ॥ ३ ॥

— (५) राग सोरठ —

जे दिन तुम विवेक बिन खोये ॥ टेक ॥
मोह वारुणी पी अनादितैं, परपदमें चिर सोये।
सुखकरंड चितपिंड आपपद, गुन अनंत नहिं जोये ।जे०।१।
होय बहिर्मुख ठानि राग रुख, कर्म बीज बहु बोये।
तसु फल सुख दुख सामग्री लखि, चितमें हरष रोये ।।२।।
धवल ध्यान शुचि सलिलपूरतैं, आस्रव मल नहिं धोये।
पर द्रव्यनिकी चाह न रोकी, विविध परिग्रह ढोये ॥ ३ ॥
अब निजमें निज जान नियत तहाँ, निज परिनाम समोये।
यह शिवमारग समरससागर, भागचन्द हित तोये ।जे०।४।

— (६) —

भववनमें नहीं भूलिये भाई। कर निज थलकी याद ।टेक।
नर परजाय पाय अति सुन्दर, त्यागहु सकल प्रमाद।
श्रीजिनधर्म सेय शिव पावत, आतम जासु प्रसाद ।भव०।१।
अबके चूकत ठीक न पड़सी, पासी अधिक विषाद।
सहसी नरक वेदना पुनि तहाँ, सुणसी कौन फिराद ।।२।।
भागचन्द श्रीगुरु शिक्षा बिन भटका काल अनाद।
तू कर्ता तू ही फल भोगत, कौन करै बकवाद ।।भव०।।३।।

—(७१) राग दीपचन्दी :—

यह मोह उदय दुख पावै, जगजीव अज्ञानी ।। टेक ।।
निज चेतनस्वरूप नहिं जानैं, परपदार्थ अपनावैं ।
पर परिनमन नहीं निज आश्रित यह तहँ अति अकुलावैं ।१।
इष्ट जानि रागादिक सेवैं, ते विधिबंध बढ़ावैं ।
निजहितहेत भाव चित सम्यग्दर्शनादि नहिं ध्यावैं ।।२।।
इन्द्रियतृप्ति करनके काज, विषय अनेक मिलावैं ।
ते न मिलैं तब खेद खिन्न ह्वै समसुख हृदय न ल्यावैं ।।३।।
सकल कर्म छय लच्छन लच्छित, मोच्छदशा नहिं चावैं ।
भागचन्द ऐसे भ्रमसेती, काल अनन्त गमावैं यह ।।४।।

—(७२)—

भ्रम अर त्यागहु पुद्गल का, अहितमूल यह जाना सुधीजन ।। टेर ।। कृमि-कुल कलित स्रवत नव द्वारन, यह पुतला मलका । कामादिक भगते तु न होता, चाम तना ललका ।। १ ।। काल-व्याल मुख थित इसका नहिं, है विश्वास पलका । क्षणिक मात्रमें विघट जात है, जिमि बुद्बुद जलका ।। २ ।। भागचन्द क्या सार जानके, तू या संग ललका । तातैं चित अनुसार करो जो न इच्छुक निरफलका ।। ३ ।।

द्यानत विलास

— २० —

विपतिमें धर धीर, रे नर ! विपतिमें धर धीर ॥ टेक ॥
सम्पदा ज्यों आपदा रे ! विनश जै है वीर ॥रे०॥१॥
धूप छाया घटत बढ़ ज्यों त्योंहि सुख दुख पीर ॥ २ ॥
दोष द्यानत देय किसको, तोरि करम जंजीर ॥ ३ ॥

— ३१ —

नहि ऐसो जनम बारबार ॥ टेक ॥
कठिन कठिन लह्यो मनुष भव, विषय भजि मतिहार ॥१॥
पाय चिन्तामन रतन शठ, छिपत उदधि मँझार ।
अंध हाथ बटेर आई तजत ताहि गँवार ॥ २ ॥
कबहुँ नरक तिरजंच कबहूँ, कबहुँ सुरगविहार ।
जगतमहिं चिरकाल भ्रमियो, दुर्लभ नर अवतार ॥ ३ ॥
पाय अमृत पाय धोवै, कहत सुगुरु पुकार ।
तजो विषय कषाय द्यानत, ज्यों लहो भवपार ॥ ४ ॥

— ३२ —

तू तो समझ समझ रे ! भाई ॥ टेक ॥
निशिदिन विषय भोग लपटाना, धरम वचन न सुहाई ॥१॥
कर मनका ले आसन मारयो, बाहिज लोक रिझाई ।
कहा भयो बकध्यान धरतें, जो मन थिर न रहाई ॥ २ ॥

१ हाथ । २ माला ।

मास मास उपवास किये तैं, काया बहुत सुखाई।
क्रोध मान छल लोभ न जीत्या, कारज कौन सराई ॥३॥
मन वच काय जोग थिर करकैं, त्यागो विषयकषाई।
द्यानत सुरग मोख सुखदाई, सदगुरु सीख बताई ॥४॥

(२६) गुजराती भाषा-गीत।

जीवा! शु कहिये तने भाई ।टेक॥ पोता नू रूप अनूप तजीने, शामाट विष खाई ॥जीवा० ॥१॥ इन्द्रीना विषय विषथकी मोटा ज्ञाननूं अमृत गाई। अमृत छोडीनें विषय विष पीना, साता तो नथी पाई ॥ जीवा० ॥२॥ नरक निगोदना दुख सह आव्यो, वली निकले मग धाई। एहवी बात रूडी न छे तमनें, तीन भवनना राई॥ जीवा० ॥३॥ लाख बातनी बात ए छे मूकोनें विषयकषाई। द्यानत ते वारें सुख लाधौ, एम गुरु समझाई ॥ जीवा० ॥४॥

(२८)

जीव! तैं मूढ़पना कित पायो ॥ टेक ॥ सब जग स्वारथको चाहत है, स्वारथ तोहि न भायो ॥जीव० ॥१॥ अशुचि अचेत दुष्ट तनमाहीं, कहा जान विरमायो। परम अतिन्द्री निजसुख हरिकें, विषय रोग लपटायो ॥जीव० ॥२॥ चेतन नाम भयो जड़ काहे, अपनो नाम गमायो। तीन लोकको राज छांडिकें, भीख मांग न लजायो ॥ जीव० ॥३॥ मूढ़पना मिथ्या जब छूटै, तब तू संत

द्यानत सुख अनन्त शिव विलसो, यों सद्गुरु बतलाया ॥ जान० ॥८॥

(७१)

हो भैया मोरे ! कहु कैसे सुख होय ॥ टेक ॥ लीन कषाय अधीन विषयके, धरम करै नहि कोय ॥ हो भैया० ॥१॥ पाप उदय लखि रोवत भोंदू !, पाप तजै नहि सोय। स्वान-वान ज्यों पाहन सूंघ, सिंह हनै रिपु जोय ॥हो० ॥२॥ धरम करत सुख दुख अघसेती, जानत हैं सब लोय। कर दीपक लै कूप परत है, दुख पै है सब होय ॥ हो भैया० ॥३॥ कुगुरु कुदेव कुधर्म भुलायो देव धरम गुरु खोय। उलट चाल तजि अब सुलटै जो, द्यानत तिरै जग-तोय ॥४॥

(६२) राग–सोरठा।

मन ! मेरे राग भाव निवार ॥टेक॥ राग चिक्कनतें लगत है कर्मधूलि अपार ॥ मन० ॥१॥ राग आस्रव मूल है, वैराग्य संवर धार। जिन जान्यो भेद यह, वह गयो भवपार ॥ मन० ॥२॥ दान पूजा शील जप तप, भाव विविध प्रकार। राग विन शिव सुख करत हैं, रागतें संसार ॥ मन० ॥३॥ वीतराग कहा कियो, यह बात प्रगट निहार। सोइ कर सुख हेत द्यानत, शुद्ध अनुभव सार ॥ मन० ॥४॥

(७३)

कर रे ! कर रे ! कर रे !, तू आतम हित, कर रे

१ जल (संसार समुद्र)।

॥ टेक ॥ काल अनन्त गयो जग भ्रमतें, भव भव के दुख हर रे ॥ कर रे० ॥१॥ लाख कोटि भव तपस्या करतें, जितो कर्म तेरी जर रे। स्वास उस्वासमाहि सो नाव, जब अनुभव नित धर रे ॥ कर रे० ॥ २ ॥ काहे कष्ट सहै बनमाहीं, राग दोष परिहर रे। कान होय समभाव बिना नहि, भावो पचि पचि मर रे ॥ कर रे० ॥ ३ ॥ लाख सीखनकी सीख एक यह, आतम निज, पर पर रे। कोट ग्रंथको सार यही है, द्यानत लख भव तर रे ॥ कर रे० ॥ ४ ॥

(७८)

भाई ज्ञानका मार्ग सुहेला रे ॥ भाई० ॥ टेक ॥ दरब न चहिये देह न दहिये, जोग भोग न नवेला रे ॥ भाई० ॥ १ ॥ लड़ना नाहीं मरना नाहीं, करना बेला तेला रे। पढ़ना नाहीं गढ़ना नाहीं, नाच न गावन मेला रे ॥ भाई० ॥ २ ॥ न्हाना नाहीं खाना नाहीं, नाहिं कमाना धेला रे। चलना नाहीं, जलना नाहीं, गलना नाहीं ढेला रे ॥ भाइ० ॥३॥ जो चित चाहै सो नित दाहै, चाह दूर करि खेला रे। द्यानत यामें कौन कठिनता, वे परवाह अकेला रे ॥ भाइ० ॥४॥

(७९) राग ख्याल

कहिवेको मन सूरमा, करवेको काचा ॥ टेक ॥

विषय छुडाय और पै, आपन अति माचो ॥ कहिवे० ॥ १ ॥ मिश्री मिश्री के कहैं, मुँह होय न मीठा। नाम कहे मुख कडु हुआ, कहुं सुना न दीठा ॥ कहिवे० ॥२॥ कहनवाले बहुत हैं, करने को कोई। कथनी लोक रिझावना, करनी हित होइ ॥ कहिवे० ॥३॥ कोडि जनम कथनी कथै, करनी बिनु दुखिया। कथनी बिनु करनी करै, द्यानत सो सुखिया ॥ कहिवे० ॥४॥

(९९) राग गौरी

हमारो कारज कैसें होय ॥ टेक ॥ कारण पंच मुकती मारगके, तिनमें के हैं दोय ॥ हमारो० ॥१॥ हीन संहनन लघु आयुषा, अल्प मनीषा जोय। कच्चे भावन सच्चे साथी, सब जग दग्यो होय ॥ हमारो० ॥२॥ इन्द्री पंच सुविषयनि दौरैं, मानै कहथा न कोय। साधारन चिरकाल वस्यो, मैं धरम बिना फिर सोय ॥ हमारो० ॥३॥ चिंता बडी न कछु बनि आवै, अब सब चिन्ता खोय। द्यानत एक शुद्ध निजपद लखि, आपमें आप समोय ॥ हमारो० ॥४॥ इति ॥

सवैया

हाट बनायके बाट लगायके टाट बिछायके उद्यम कीना। लनको नाट सुदनको घाट सुघाटनि फेरि ठगे सब दीना ॥ ताहमें दानको भाव न रंचक पाथरकी कहूँ नाव तरी ना। द्यानत याहीतें नर्कम वेदनि, लोह

सिरोदन और सही ना ॥१॥ नर्कनमाहिं कहे नहि जाहि मह दुख जे जर जानत नाहीं। गर्भ मझार कलेम अपार तले सिर था तब जानत नाहीं॥ धूलके बीचमें कीर नगीनमें नीच क्रिया सब जानत नाहीं। द्यानत न्याय उपाय करो जम आवहिगो जब जानत नाहीं॥२॥

सवैया—३१।

याही जगमाहि चिदानन्द आप डोलत है भर्म भाव धर हरे आनम मकतिसो। अष्ट कर्म रूप जे जे पुद्गलके परिनाम तिनको सरूप मान मानत सुमतिसो॥ जाही मर्म मि॰या मोह अँधकार नाशि गया गयो परकाश भानु चेतनको तनको। नाही मर्म जान्यो आप आप पर पर रूप मानि भव भावरी निवारी चारों गतिसो॥३॥ रुन गार बर्न नाहि धन तो न घरमाहि खानेकी फिकर बहु नारि चह गहना। दनेवाल फिरि जाहि मिलत उधार नाहि साफ मिले चोर धन आवे नाहिं लहनो॥ काऊ पूत जारी भयो घरमाहि सुत थयो एक पूत मरि गयो ताको दुख महना। पुत्री वर जोग भई व्याही सुता मरि गई एत दुःख सुख मानै तिसे कहा कहना॥४॥ शिष्यको पढ़ावत हैं हमको गढ़ावत हैं मानको बढ़ावत हैं नाना छल छानके। कौड़ी कौड़ी मागत है कायर हो भागत है प्रात उठे जागत है स्वारथ पिठान के॥ कागद सो ...

है केई नग पेखत है केई आप देखत है आपनी पुरानिकै। एक सेर नाज काज अपनो सरूप त्याज डोलत है लाज राज वस आन हान के ॥५॥ ऐसो चिदानन्द राम ज्ञान दृष्टि खोलिकरि तात मात भ्रात सुत स्वारथ पसारा है। त तो इन्हें आप मानि ममता मगन भयो रह्यो भ्रम मांहि निज धर्म को निसारा है॥ यह तो कुटुम्ब सब दुःख ही का कारण है तजि मुनिराज निज कारज निवारा है। तातें धर्म सार स्वर्ग मोक्ष सुखकार सोई लहे भवपार निजधर्म ध्यान धारा है॥६॥

कुण्डलिया–

यह संसार असार है, कदली वृक्ष समान।
यामें सारपनो लखें, सो मूरख परधान॥
सो मूरख परधान मान कुसुमनि नभ दरसे।
सलिल मथे घृत चहे शृंग सुन्दर खर परसे॥
अगिनि माहि हिम लखे सर्पमुख माहि सुधा तह।
जान जान मन माहि नाहि संसार सार यह॥७॥

कवित्त।

चेतनजी तुम जोडत हो धन, सो धन चलै नहीं तुम लार। जाको आप जानि पोषत हो, सो तन जरिकें ह्वै है छार। विषयभोगको सुख मानत हो ताको फल है

दुख अपार। यह ममार वृक्ष सेमरको, मानि कह्यो मैं रहूँ पुकार ॥८॥

(इन्द्रिय और कषायोंकी चाह। सवैया ३१)

स्परस काम चाहे रसना हू रस चाहे, नासिका सुवास चाहे नैन चाहे रूपको। श्रवण शब्द चाहे काया तो प्रमाद चाहे, वचन कथन चाहे मन दौर धूपको ॥ क्रोध क्रोध कर्यो चाहे मान मान गह्यो चाहे, माया तो कपट चाहे लोभ लोभ कूपको। परिवार धन चाहे आशा विषय सुख चाहे, एते वैरी चाहे नाहीं सुख जीव भूपको ॥ ९ ॥

इन्द्रिय और कषायोंको दमन करनेका उपाय।

जीव जोपै स्याना होय पाँचों इन्द्री वसि करैं, काम रस गंध रूप सुर राग हरिकै। आसन वतावै काय वच को मिटावै मौन, ध्यानमाहि मन लावै चंचलता गरिकै॥ छमा करि क्रोध मार विनय धरि मान गारे, सरल सो छल जार लोभ दशा हरिकै। परिवार नेह त्यागै विषय सैन छाड़ि जागै, तब जीव सुखी होय वैरि वस करिकै ॥१०॥

अपनी भूल

वसत अनंत काल बीतत निगोद माहि, अक्षर अनंत भाग ज्ञान अनुसरै है। छासठि सहस तीन सौ छत्तीस बार जहाँ, अंतर मुहूरत में जन्मै अरु मरै है॥ अँगुल असंख

भाग तहाँ तन धारत है, तहाँसेती क्यों ही क्यों ही क्यों ही वै निसर हैं। यहां आय भूल गयो लागि विषय भोग तिन, ऐसी गति पाय कहा ऐसे काम करै हैं ॥११॥

मात्रिक छंद

बार बार कहै पुनरुक्ती दोष लागत है, जागत न जीव तू तो सोयो मोह झाग मैं। आतमसेती विमुख गहै राग दोष रूप पर, इन्द्री विषय सुख लीन पगपगमें ॥ पावत अनेक कष्ट होत नाहि अष्ट नष्ट, महापद भ्रष्ट भयो भ्रमै सिष्ट जगमैं। जाग जगवासी उदासी ह्वैके विषयसौं, लाग, शुद्ध अनुभव जो आवै नाहिं जगमें ॥१२॥

—(०)—

बुधजन विलास

(५) तिताला।

काल अचानक ही ले जायगा, गाफिल होकर रहना क्या रे ॥ काल० ॥ टेक ॥ छिनहूँ तोकूं नाहिं बचावै, तौ सुभटनका रखना क्या रे ॥ काल० ॥ १ ॥ रंच सवाद करिनके काजै, नरकनमें दुख भरना क्या रे। कुलजन पथिकनिके हित काजै, जगत जालमें परना क्या रे ॥ काल० ॥ २ ॥ इन्द्रादिक कोउ नाहिं बचैया, और लोकका शरना क्या रे। निश्चय हुआ जगतमें मरना, कष्ट परै तब डरना क्या रे ॥ काल० ॥ ३ ॥ अपना ध्यान

करम खिर जारि, नौं करमनिको हरनो क्यों रे। अब हित करि आरत तजि बुधजन, जन्म जन्ममें जरना क्यों रे ॥ काल० ॥ ४ ॥

(७) भजन।

या नित चितवो उठिकैं भोर, मैं हूं कौन कहां तैं आयो, कौन हमारो ठौर ॥ या० ॥ टेक ॥ दीसत कौन कौन यह चितवत, कौन करत है शोर। ईश्वर कौन कौन है सेवक, कौन करै झकझोर ॥ या नित० ॥ १ ॥ उपजत कौन मरै को भाई, कौन डरै लखि घोर। गया नहिं आवत कछु नाहीं, परिपूरन सब ओर ॥ या नित० ॥ २ ॥ और और मैं और रूप हूं, परनति करि लइ और। स्वांग धरै डोलौ याहीतैं, तेरी बुधजन भोर ॥ या नित० ॥ ३ ॥

(८) राग सारंग।

तन देख्या अथिर घिनावना ॥ तन० ॥ टेक ॥ बाहर चाम चमक दिखलावै, माहीं मैल अपावना। बालक ज्वान बुढ़ापा मरना, रोगशोक उपजावना ॥ तन० ॥ १ ॥ अलख अमूरति नित्य निरंजन, एकरूप निज जानना। वरन फरस रस गंध न जाकै, पुन्य पाप बिन मानना ॥ तन० ॥ २ ॥ करि विवेक उर धारि परीक्षा, भेद विज्ञान

[illegible], भ्रमजु मेटना, चिदानद पद धारना [illegible] ॥३॥

(राग—काफी कनडी)

[illegible] लोभीडा ! क्यों भूल्या रे पर- [illegible] ॥ टेक ॥ किमी भाँति कहूँका धन [illegible] दासनम ॥ तोकों ॥ १ ॥ व्याह करूँ [illegible] गावै, लग्यौ रहै या भावनमैं ॥ तोकौ ॥२॥ [illegible] अपनी गौत, तू क्यों रहित उपायनमैं ॥ [illegible] ॥२॥ सुख तो है सन्तोष करनमैं, नाही चाह बढा [illegible] ॥ तोकों ॥ ४॥

(३१) राग–बिलावल धीमो तेताला।

नरभव पाय फेरि दुख भरना, ऐसा काज न करना हो ॥ नरभव० ॥ टेक ॥ नाहक ममत ठानि पुद्गलसौं, करमजाल क्यों परना हो ॥ नरभव० ॥१॥ यह तो जड तू ज्ञान अरूपी, तिल तुष ज्यों गुरु बरना हो। राग दोष तजि भजि समताकों, कर्म साथके हरना हो ॥ नरभव० ॥२॥ यों भव पाय विषय-सुख सेना, गज चढि ईंधन ढोना हो। बुधजन समुझि सेय जिनवर पद, ज्यों भवसागर तरना हो ॥ नरभव० ॥३॥

(३२)

गुरु दयाल तेरा दुख लखिकै, सुन लै, जो फरमावै

है ॥ गुरु० ॥ तोमैं तेरा जतन बतावै, लोभ कछू नहि चावै है ॥ गुरु० ॥१॥ पर सुभावको मेरया चाहै, अपना उमा बनावै है। मो तो कबहूं हुवा न होसी, नाहक रोग लगावै है ॥ गुरु० ॥२॥ खोटी खरी जम करो कमाई, तैसी तेरै आवे है। चिन्ता आगि उठाय हियामैं, नाहक जान जलावै है ॥ गुरु० ॥३॥ पर अपनावै सो दुख पावै, बुधजन ऐसे गावै है। परको त्यागि आप थिर तिष्ठै, सो अविचल सुख पावै है ॥ गुरु० ॥४॥

(२९) राग—आसावरी जलद तेताला।

आगैं कहा करसी भैया, आ जासी जब काल रे ॥ ॥ आगैं० ।टेक। ह्यां तो तैंने पोल मचाई ह्वां तो होय समाल रे ॥ आगैं० ॥१॥ झूठ कपट करि जीव सताये, हरया पराया माल रे। सम्पतिसेती धाप्या नाहीं, तकी बिरानी बाल रे ॥ आगैं० ॥२॥ सदा भोगमैं मगन रह्या तू, लख्या नहीं निज हाल रे। सुमरन दान किया नहि भाइ, हो जासी पैमाल रे ॥ आगैं० ॥३॥ जोबनमैं जुवती संग भूल्या, भूल्या जब था बाल रे। अबहूँ धारो बुधजन समता, सदा रहहु खुश हाल रे ॥ आगैं० ॥४॥

(४२)

बाबा! मैं न काहू का, कोई नहीं मेरा रे ॥ बाबा० ॥टेक॥ सुर नर नारक तिरयक गतिमैं, मोकौं करमन घेरा

[illegible] पिता सुत तिय कुल परिजन, [illegible] धन वमन समन जइ त्याग, [illegible] ॥ साधा० ॥२॥ सुक विभाव जड [illegible] फेरा रे। निभारचक्र तजि [illegible], जब आनन्दघन डेरा रे ॥ साधा० ॥३॥ [illegible] फागुन करते, निरखि चिदानंद चेरा रे। [illegible] सार यही है, बुधजन कर न अबेरा रे ॥ साधा० ॥४॥

(४४)

धर्म बिन कोई नहीं अपना, सब संपति धन थिर नहिं जग में, जिसा रैन सपना ॥धर्म० ॥टेक॥ आगें किया सो पाया भाई, याही है निरना। अब जो करैगा सो पावैगा तातैं धर्म करना ॥ धर्म० ॥१॥ ऐसें सब संसार कहत है, धर्म कियें तिरना। परपीडा विसनादिक सेवें, नरक विषै परना ॥ धर्म० ॥२॥ नृपके घर सारी सामग्री, ताकैं ज्वर तपना। अरु दारिद्रीकैं हू ज्वर है, पाप उदय थपना ॥ धर्म० ॥३॥ नाती तो स्वारथ के साथी, तोहि विपति भरना। बन गिरि सरिता अगनि जुद्ध में, धर्महि का सरना ॥ धर्म० ॥४॥ चित बुधजन सन्तोष धारना, पर चिन्ता हरना। विपति पडै तो समता रखना, परमातम जपना ॥ धर्म० ॥५॥

(९५) राग श्रहिंग।

तैं क्या किया नादान, तैंतो अमृत तजि विष लीना ॥ तैं० ॥ टेक ॥ लख-चौरासी जौनि माहिंतैं, श्रावक कुलमैं आया। अब तजि तीन-लोक के साहिब, नवग्रह-पूजन धाया॥ तैं० ॥ १ ॥ वीतरागके दरशनहीतैं, उदासीनता आवै। तू तौ जिनके सनमुख ठाड़ा, सुतको ख्याल खिलावै॥ तैं० ॥२॥ सुरग सम्पदा सहजैं पावै, निश्चय मुक्ति मिलावै। ऐसी जिनवर-पूजनसेती, जगत कामना चावै॥ तैं० ॥३॥ बुधजन मिलैं सलाह कहैं तब, तू वापै खिजि जावै। जथाजोगको अजथा मानैं, जनम जनम दुख पावै॥ तैं० ॥४॥

(९६) राग-कनड़ी।

उत्तम नरभव पायकैं, मति भूलै रे रामा॥ मति भू० ॥ टेक॥ कीट पशूका तन जब पाया, तब तू रह्या निकामा। अब नरदेही पाय सयाने क्यौं न भजै प्रभुनामा ॥ मति भू० ॥१॥ सुरपति याकी चाह करत उर, कब पाऊँ नरजामा। ऐसा रतन पायकैं भाई, क्यौं खोवत बिन कामा॥ मति भू० ॥२॥ धन जोबन तन सुन्दर पाया, मगन भया लखि भामा। काल अचानक झटक खायगा, परे रहैंगे ठामा॥ मति० ॥३॥ अपने स्वामीके पदपंकज, करौ हिये विसरामा। मेटि कपट भ्रम

॥ मति० ॥४॥

(७७)

... ...नि मूढ़ अज्ञानी ॥ तेरो० ॥टेक॥ ... ...र नाग्यो, नतकाल दुखखानी ॥ ... ...न मिलि यव भय, ज्यों पयमाहीं ... ...रूप नहिं मानै, मिथ्या एकता मानी ॥ ...० ॥२॥ ... सो बुधजन दृष्टा ज्ञाता, तन जड़ सरधा ठानी। तो ही अविचल सुखी रहैगे, होय मुक्तिवर प्रानी ॥ तेरो० ॥३॥

(७)राग—ईमन।

तू मेरा कह्या मान रे निपट अयाना ॥ तू० ॥ टेक ॥ भव वन वाट मात सुत दारा, बंधु पथिकजन जान रे। इनतैं प्रीति न ला बिछुरैंगे, पावेगो दुखखान रे ॥ तू० ॥१॥ इनसे तन आतम मति थानैं, यो जड़ है तू ज्ञान रे। मोह उदय वश भरम परत है, गुरु सिखवत सरधान रे ॥ ॥ तू० ॥२॥ बादल रंग सम्पदा जग की, छिनमैं जात बिलान रे। तमाशवीन बनि यातैं बुधजन, सबतैं ममता हान रे ॥ तू० ॥३॥

(७८) राग—सारंग।

मति भोगन राचौनी, यव भवमैं दुख देत घना ॥ मति० ॥टेक॥ इनके कारन गति गति माहीं, नाहक नाचौ

जी। झूठे सुखके काज घरमें पाड़ी माची जी॥ मति०॥१॥ पूरवकर्म उदय सुख आया राजो, माचो जी। पाप उदय पीड़ा भोगनमें, क्यों मन काचो जी॥ मति०॥२॥ सुख अनन्तके धारक तुमही, पर क्यों जाचो जी। बुधजन गुरुका वचन हियामें, जानो माचो जी॥ मति०॥३॥

(८०)

सम्यग्ज्ञान विना, तेरो जनम अकारथ जाय॥ सम्यग्ज्ञान०॥ टेक॥ अपने सुखमें मगन रहत नहिं परकी लेत बलाय। सीख सुगुरुकी एक न मानै, भव भवमें दुख पाय॥ सम्यग्ज्ञान०॥१॥ ज्यों कपि आप काठ लीलाकरि, प्राण तजै बिललाय। ज्यों निज मुखकरि जाल मकरिया, आप मरै उलझाय॥ सम्यग्ज्ञान०॥२॥ कठिनकमायो सब धन ज्वारी, छिनमें देत गमाय। जैसे रतन पायके भारू, मिलवे आप गमाय॥ सम्यग्ज्ञान०॥३॥ देवशास्त्र गुरुको निहचैकरि, मिथ्यामत मति ध्याय। सुरपति वाञ्छा राखत याकी, ऐसी नर परजाय॥ सम्यग्ज्ञान०॥४॥

(८१) राग—मालकोस

अब तू जान रे चेतन जान, तेरी होवत है नित हान॥ अब०॥ टेक॥ रथ वाजि करी असवारी, नाना विधि भोग तयारी। सुन्दर तिय सेज सँवारी, तन रोग भयौ या ख्वारी॥ अब०॥१॥ ऊँचे गढ़ महल बनाये, बड़ तोप

[illegible] जैन छिलम्य तनो नर, नभ चढ़े थिति [illegible] ॥३॥ भूधर पलपल हो है भारी, ज्यों [illegible] गरज० ॥४॥

(८८) राग—मल्हार।

[illegible]ति मानन आयो। टेक॥ बीति कुरीति [illegible], पावस महन सुहायो ॥ अब मेरे० ॥१॥ [illegible] दमकन लागी, सुरति घटा घन छायो। [illegible] विवेक पपोहा, सुमति सुहागिनि भायो ॥ अब [illegible] गुरुधुनि गरज सुनत सुख उपजै, मोर सुमन [illegible]आयो। साधक भाव अँकूर उठे बहु, नित तित हरष [illegible]आयो ॥ अब मेरे० ॥३॥ भूल धूल कहि भूल न सूझत [illegible] जल भर लायो। भूधर को निकसै अब बाहिर, [illegible] निरचू घर पायो ॥ अब मेरे० ॥४॥

(८९) राग—सोरठ।

भगवन्त भजन क्यों भूला रे ॥ टेक ॥ यह संसार रैन का सुपना, तन धन वारि-बबूला रे ॥ भगवन्त० ॥ १ ॥ इस जीवनका कौन भरोसा, पावकमें तृणपूला रे।। काल कुदार लिये सिर ठाड़ा, क्या समझै मन फूला रे। ॥ भगवन्त० ॥ २ ॥ स्वारथ साधै पाँच पाँव तू, परमारथ कों लूला रे।। कहु कैसें सुख पैहै प्राणी, काम करै दुख-मूला रे ॥ भगवन्त० ॥ ३ ॥ मोह पिशाच छल्यो मति मारै, निज कर कंध वसूला

नै दुरमति सिर धूला रे ॥ भगवन्त० ॥ ४ ॥

(३०) राग—धमाला।

आया रे बुढ़ापो मानी सुधि बुधि विसरानी ॥ टेक ॥ श्रवनकी शक्ति घटी, चाल चालै अटपटी, देह लटी भूख घटी, लोचन भरत पानी ॥ आया रे० ॥ १ ॥ दातनकी पंक्ति टूटी, हाडन की संधि छूटी, कायाकी नगरि लूटी, जात नहिं पहिचानी ॥ आया रे० ॥ २ ॥ बालोंने वरन फेरा, रोगने शरीर घेरा, पुत्रहू न आवे नेरा, औरोंकी कहा कहानी ॥ आया रे० ॥ ३ ॥ भूधर समुझि अब, स्व हित करगो कब, यह गति ह्वै है जब, तब पिछतै है प्रानी ॥ आया रे० ॥ ४ ॥

(३१) राग—सोरठ।

अन्तर उज्जल करना रे भाई ! ॥ टेक ॥ कपट कृपान तजै नहिं तबलौं, करनी काज न सरना रे ॥ अन्तर० ॥ १ ॥ जप तप तीरथ जज्ञ व्रतादिक आगम अर्थ उचरना रे । विषय कषाय कीच नहिं धोयो, यों ही पचि पचि मरना रे ॥ अन्तर० ॥ २ ॥ बाहिर भेष क्रिया उर शुचिसौं कीये पार उतरना रे । नाहीं है सब लोक रंजना, ऐसे वेदन वरना रे ॥ अन्तर० ॥ ३ ॥ कामादिक मनसौं मन मैला भजन किये क्या तिरना रे । भूधर नील वसनपर कैसैं, केसर रंग उछरना रे ॥ अन्तर० ॥ ४ ॥

[illegible]) राग—काफी।

[illegible] शिक्षा हितकारी ॥ टेक ॥ श्रीभग- [illegible] विषयनिकी यारी ॥ मन० [illegible] कामनासौं मति राचो, ना वह जात [illegible] भक्ति हमीसों, बुध हमनकी प्यारी [illegible] भव भीतर, दुखजलपूरित [illegible] उड़ौं छिन, हो शिव सरवर- [illegible] ॥ गुरुके वचन विमल मोती चुन, क्यों [illegible] हमारा। इनै है सुखो सीख सुधि राखें, भूधर [illegible] ॥ मन० ॥ ४ ॥

(४०) राग—काफी।

प्रभु गुन गाय रे, यह औसर फेर न पाय रे ॥ टेक ॥
मानुष भव जोग दुहेला, दुर्लभ सतसंगति मेला। सब बात भली बन आई, अरहंत भजौ रे भाई ॥ प्रभु० ॥ १ ॥
पहले चित चीर सँभारो, कामादिक मैल उतारो। फिर प्रीति फिटकरी दीजे तब सुमरन रंग रंगीजे ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
धन जोर भरा जो कूवा, परवार बढ़ें क्या हूवा। हाथी चढ़ि क्या कर लीया, प्रभु नाम बिना धिक जीया ॥ प्रभु० ॥ ३ ॥
यह शिक्षा है व्यवहारी, निहचैकी साधनहारी। भूधर पैड़ी पग धरिये, तब चढ़नेको चित करिये ॥ प्रभु० ॥ ४ ॥

(४७)

ऐसो नरभव पाय, वृथा क्यों खोवत हो

॥ टेक ॥ कठिन कठिनकर नरभव पाई, तुम लेखी आसान। धर्म विसारि विषयमें राचौ, मानी न गुरुकी आन ॥ वृथा० ॥ १ ॥ चक्री एक मतंगज पायो, तापर ईंधन ढोयो। बिना विवेक बिना मतिहीको, पाय सुधा पग धोयो ॥ वृथा० ॥ २ ॥ काहू शठ चिन्तामणि पायो, मरम न जानो ताय। वायस देखि उदधिमें फेंक्यो, फिर पीछे पछताय ॥ वृथा० ॥ ३ ॥ सात विसन आठों मद त्यागो, करुना चित्त विचारो। तीन रतन हिरदय धारो, आवागमन निवारो ॥ वृथा० ॥ ४ ॥ भूधरदास कहत भविजनसों, चेतन अब तो सम्हारो। प्रभुको नाम तरन तारन जपि, कर्मफन्द निरवारो ॥ वृथा० ॥ ५ ॥

जैन शतक (प० भूधरदासजी)

(८७) वैराग्यकामना।

कब गृहवासमों उदास होय वन सेऊ, वेऊ निजरूप गति रोकूं मन-करीकी। रहिहौं अडोल एक आसन अचल अंग, सहिहौं परीसा शीतघाम मेघ झरीकी ॥ सारंगसमाज खाज करवौ सुनै है आनि, ध्यान दल जोर जीतूं सेना मोह अरीकी। एकलविहारी जथाजात लिंगधारी कब, होऊं इच्छाचारी बलिहारी हौं वा घरीकी ॥

(८८) राग और वैराग्यका अंतर।

रागउदै भोगभाव लागत सुहावनेसे, बिना राग ऐसे

[illegible] तनमें सदीव [illegible] होत न्यारे हैं ॥ [illegible] नाने, राग मिटै सुकृत असार [illegible] विचारमें बड़ाई भद, [illegible] है ।" [illegible]

([illegible]) [illegible] (सवैया)

[illegible] नर, पूरवपुण्य विना [illegible] [illegible] जोग, यहै तब रोग न भोग [illegible] है । [illegible] तौ परि दुर्ग-[illegible] । [illegible] सलाह यही कि, "[illegible] [illegible]" [illegible] है ॥

(२०) [illegible] ।

मातपिता [illegible], उ[illegible] सब सात कुधात भरी है । माखिनके पर माफिक बाहर चामके बेठन बेढ़ धरी है ॥ नाहिं तो आय लगैं अब ही, बक वायस जीव बचै न घरी है । देहदशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है ॥

([illegible]) संसारस्वरूप और समयकी बहुमूल्यता । कवित्त-मनहर ।

काहूघर पुत्र जायौ काहूके वियोग आयौ, काहू राग रंग काहू रोआ रोई करी है । जहां भान उगत उछाह गीत गान देखे, सांझ समें ताही थान हाय हाय परी है ॥

ऐसी जगरीतिको न देखि भयभीत होय, हा हा नर मूढ तेरी मति कौनैं हरी है। मानुषजनम पाय सोवत विहाय जाय, खोवत करोरनकी एक एक घरी है॥

(२२) सोरठा

कर कर जिनगुन पाठ, जात अकारथ रे जिया।
आठ पहरमें साठ, घरी घनेरे मोलकी ॥२२॥
कानी कौडी काज, कोरिनको लिख देत खत।
ऐसे मूरखराज, जगवासी जिय देखिये ॥ २३ ॥

दोहा।

कानी कौडी विषयसुख, भवदुख करज अपार।
विना दियें नहिं छूटि है, बेशक दाम उधार ॥२४॥

(२५) शिक्षा छप्पय।

दश दिन विषयविनोद, फेर बहु विपतिपरंपर।
अशुचिगेह यह देह, नेह जानत न आप जर॥
मित्र बंधु सनमंध और, परिजन जे अंगी।
अरे अंध सब धंध, जान स्वारथके संगी॥
परहित अकाज अपनौ न कर, मूढराज अब समझ उर।
तजि लोकलाज निज काज कर, आज दाव है कहत गुर॥

(२६) कवित्त मनहर।

जौलों देह तेरी काहू रोगसों न घेरी जौलों जरा नाहि नेरी जासों पराधीन परी है। जौलों, जमनामा वैरी देय

...कान गमा बुद्धि जाइ ना निर्गारि
...न्द्रत सवार लेर, पौरुष थकैगे
...। सहो आग आयं जब झोंगी
...उपायें तब कौन काम मरि है ॥

(८७)

...तारा नेना करि ढगा सब, आबी तौ
...उत दिढाधर। आधीमें अनेक राग बाल
... सजोग कते ऐसे बीत जाय रे॥
...श्चर ... ताहि तू निचार मही, कारजकी बात
यही ... मन लाय रे। खातिरमें आने तो खलासी कर
इतनम, मार फँसि फन्द बीच दीनौं समुझाय रे॥

(८८) बुढ़ापा।

बालपन बात रयौ पीछे गृहभार वयौं, लोक लाज
कान बाध्यौ पापनकौ ढेर है। अपनो अकाज कीनौं
लोकनमें जस लीनौं, परभौ निमार दानौ विषेरस जेर है।
ऐसे ही गई विहाय अलपसी रही आय, नर परजाय यह
"आंधे की बटेर" है। आये सेत भैया, अब काल है
अबेया अहो, जानी रे सयाने तेरे अजौं हूँ अंधेर है॥

(८९) मत्तगयंद (सवैया)

बालपनै न सँभार सक्यौ कछु, जानत नाहि हिताहित
हीको। यौवन वेस बसी वनिता उर, कै नित राग रह्यौ

लचमीको ॥ यौं पन दोइ विगोइ दये नर, डारत क्यों नर्क निज जीको। आये हैं सेत अजौं शठ चेत, "गई सु गई अब राख रही को" ॥

(३०) कवित्त-मनहर।

मार नर दह सब कारजको जोग येह, यह तौ विख्यात बात वेदनमें बँचै है। तामें तरुनाइ धर्मसेवनको समै भाई, सेये तब विषै, जैसें माखी मधु रचै है॥ मोह मद भोये धनरामाहित रोज रोये, यौंही दिन खोये खाय कोदौं जिम मचै है। अरे सुन बौरे अब आये सीस धौरे अजौं, सावधान हो रे नर नरकसों बचै है॥

(३१) मत्तगयद (सवैया)।

बाय लगी कि बलाय लगी, मदमत्त भयौ नर भूलत त्यौं ही। वृद्ध भये न भजै भगवान, विषै विष खात अघात न क्यौं ही॥ सीस भयौ बगुलासम सेत, रह्यो उरअंतर श्याम[1] अजौं ही। मानुषभौ मुकताफलहार, गँवार तगा हित[2] तोरत यौं ही॥

(३२) संसारी जीवका चितवन।

चाहत है धन होय किसी विध, तौ सब काज सरैं जियराजी। गेह चिनाय करूं गहना कछु, ब्याहि सुतासुत बाँटिये भाजी॥ चिन्तत यौं दिन जाहिं चले, जम आनि

१ कालिमायुक्त। २ तागे (डोरे) के लिये।

[illegible] खेल खिलारि गये, "रहि [illegible] जात [illegible] बातें" ॥ [illegible]

[illegible] (सवैया)

[illegible] अश्व, मत्त मतंग उतंग खरे ही। [illegible] मन जोर खरोरन कोश [illegible] उद्यो [illegible] नर, छोरि चले उठि [illegible] धाम [illegible] धाम परे रह, दाम धरे रह धाम [illegible] ॥

(३४) अभिमान निषेध। कवित्त मनहर।

कंचन भंडार भरे मोतिनके, पुंज परे, घने लोग द्वार खरे मारग निहारते। जान चढि डोलत हैं झीने सुर बोला हैं, काहूकी हू ओर नीके ना चितारते॥ कौलौं धन खांगे कोऊ कहै यों न लागे तेइ, फिरें पाँय नागे कागे परपर्ग कारत। एते पै अयाने गरवाने रहैं विभौ पाय, धिक है समझ ऐसी धर्म ना सँभारते॥ ३४॥

(३५) कवित्त-मनहर।

देखौ भरजोवनमैं पुत्रको वियोग आयौ, तैसे ही निहारी निज नारी कालमगमैं। जे जे पुन्यवान जीव दीसत है या महीपैं, रंक भये फिरैं तेउ पनहीं न पगमैं॥ एते पै

१ नाड २ मकान। ३ अटारी। ४ छोटी आवाजमें। ५ कवूतर। ६ दूसरोके पैर। ७ गूरत। ८ जूता।

अभाग धनजीवनसौं धरै राग, होय न विराग जानै रहूँगो अलगमें। आँखिन विलोकि अंध सूसेकी अंधरी करै ऐसे राजरोगको इलाज कहा जगमें ॥३५॥

(३६) दोहा।

जैनवचन अंजनवटी आँजैं सुगुरु प्रवीन।
रागतिमिर तऊ ना मिटै बड़ो रोग लखलीन ॥३६॥

(३७) कवित्त–मनहर।

जोई दिन कटै सोई आयुमें अवश्य घटै बूँद बूँद बीतै जैसे अंजुलीकौ जल है। देह नित छीन होत नैन तेजहीन होत, जोबन मलीन होत छीन होत बल है॥ आवै जरा नेरी तकै अंतक अहेरी आवै परभौ नजीक जात नरभौ निफल है। मिलकै मिलापीजन पूछत कुशल मेरी, ऐसी दशामाहीं मित्र! काहेकी कुशल है?

बुढ़ापा। (३८) मत्तगयंद (सवैया)।

दृष्टि घटी पलटी तनकी छवि, बंक भई गति लंक नई है। रूठ रही परनी घरनी अति, रंक भयौ परियंक लई है॥ काँपत नार बहै मुख लार, महामति संगति छारि गई है। अंग उपंग पुराने परे, तिशना उर और नवीन भई है॥ ३८॥

---

१ जलजंतु। २ पास ३ रोगरूपी शिकारी। ४ नवभव (मनुष्यभव) ५ पलंग, शैय्या। ६ गर्दन, ७ सुबुद्धि।

([illegible]-मनहर)

[illegible], ज्यौं तुषार[1] दह्यो, भयो पत [illegible]मा। झरी भई है कटि[3] दूबरी[4] [illegible] आयु सेरमाह पूनीसी ॥ जोबन [illegible] जानी, हीनी भई सुधि बुधि [illegible] गयो तार[6] घट्यौ जीवनको चाव [illegible] ॥ [illegible] तिस्ना दिन दूनीसी ॥ अहो [illegible] नाहिं जानी, वीतराग-वानी सार [illegible] जंगम अनेक जीव, [illegible] न सनाय कछु करुणा न कीनी है ॥ तेइ अब जीव राग आकर परलोक पान, लगे वर दैंगे दुख भई ना [illegible] है। उनहीके भयसौं भरोसौ जान काँपत है, याही डर "डोकराने लाठी हाथ लीनी है" ॥ ४० ॥ जाकौं इन्द्र चाहै अहमिंद्रसे उमाहै जासौं, जीव मुक्तमाहि जाय भौमल बहाय है। ऐसौ नरजन्म पाय विषै विष खाय खोयौ, जैसे काच साटैं मूढ़ मानक गमावै है ॥ मायानदी बूड भीना कायाबल तेज छीजा आया पन तीना[11] अब कहा बनि आवै है। तातैं निज सीस ढोलै नीचे नैन किये डोलै, कहा बढ़ि बोल वृद्ध वदन दुरावै[12] है ॥

१ बर्फ, पाला। २ ठूँठावृक्ष। ३ कमर। ४ [illegible]। ५ थोड़ासा। ६ प्रताप। ७ सहित ८ उत्कंठित होत हैं। ९ जंगले में। १० ढूंढ कर। ११ बुढ़ापा। १२ काँपन लगता है।

जवानी की दुर्दशा। (४२) मत्तगयन्द (सवैया)।

देखहु जोर जरा भटको, जमराज महीपतिको अगवानी। उज्जल केश निशान धरैं, बहु रोगनकी सँग फौज पलानी॥ कायपुरी तजि भाजि चल्यो जिहि, आवत जोवन भूप गुमानी[1]। लूट लई नगरी सगरी, दिन दोयमें खोय है नाम निशानी॥ ४२॥

मनुष्य जन्मकी सार्थकता। (४३) दोहा।

सुमती हित तजि जोवन समय, सेवहु विषय विकार। खल[2] साटैं नहिं खोइये, जन्म-जवाहर सार॥ ४३॥

कर्तव्यशिक्षा। (४४) कवित्त मनहर।

देवगुरु साँचे मान साँचो धर्म हिये आन, साँचो ही बखान सुनि साँचे पंथ आव रे। जीवनकी दया पाल झूठ तजि चोरी टाल, देख ना बिरानी बाल[3] तिसना घटाव रे॥ अपनी बड़ाई परनिंदा मत कर भाई, यही चतुराई मद मांसको बचाव रे। साध षटकर्म साधसंगतिमें बैठ वीर, जो है धर्मसाधनको तेरे चित्त चाव रे॥ ४४॥

चार रत्न। (४५) कवित्त मनहर।

साँचो देव सोई जामें दोषको न लेश कोई, वहै गुरु जाकै उर काहूकी न चाह है। सही धर्म वही जहाँ करुणा

---

१ अभिमानी। २ दुष्ट, नीच। पत्थर। ३ दूसरों की स्त्री।

प्रधान दही, ग्रर [illegible] [illegible] [illegible] एरमी नवाह है। ये ही
[illegible] [illegible] चार इनतें [illegible] गार, साचे लेहु थूठे डार
सरमीसी लाह हैं। [illegible] [illegible] विना पशुके समान गिना
ताते यादि यात सीन [illegible] [illegible] नवाह है ॥ ४५ ॥

सांच [illegible] [illegible] । [४६] छप्पय ।

जो [illegible] [illegible] [illegible] हस्ततल जेम निहारै ।
[illegible] [illegible] [illegible] पार उतारै ॥
आदि [illegible] [illegible] वचन सबको सुखदानी ।
गुन [illegible] [illegible] गेगकी नाहि निशानी ॥
माधव महत [illegible] शिवो वर्धमान व बुद्ध यह ।
ये चिह्न जान जाके चरन नमो नमो मुझ देव वह ॥४६॥

(४०) सप्तव्यसन । दोहा ।

जूआखेलन मांस मद, वेश्या बिसन शिकार ।
चोरी पर रमनी रमन, सातों पाप निवार ॥ ५० ॥

(५१) जुआ निषेध छप्पय ।

सकल पापसंकेत, आपदाहेत कुलच्छन ।
कलहखेत दारिद्र देत, दीसत निज अच्छन ॥
गुनसमेत जस सेत, केत[१] रवि[२] रोकत जैसें ॥
औगुन निकर निकेत, लेत लखि बुधजन ऐसें ॥
जुआ समान इह लोकमें, आन अनीति न पेखिये ।

१ केतु विमान। २ सूर्य।

इम मिसनरायके खेलकौं, कौतुकहू नहि देखिये ॥५१॥

(५२) मांस निषेध-छप्पय।

जगम जियकौ नास, होय तब मास कहावै।
सपरस आकृति नाम, गन्ध उर घिन उपजावै॥
नरकजोग निरदई खाहिं, नरनीच अधरमी।
नाम लेत तज देत, असन उत्तमकुलकरमी।
यह निपटनिंद्य अपवित्र अति, 'कृमिकुलरासनिवास नित।
आमिप[1] अभख याको सदा, वरजौ दोष दयालचित ॥५२॥

(५३) मदिरानिषेध—दुमिल (सवैया)।

कृमिरास कुवास सराप[2] दहैं, शुचिता सब छीवत जात सही। जिहिं पान किये सुधि जात हियें, जननी जन जानत नार यही। मदिरा सम आन निषिद्ध कहा, यह जान भले कुलमें न गही। धिक है उनको वह जीभ जलौ, जिन मूढ़नके मत लीन[3] कही ॥ ५३ ॥

(५४) वेश्या निषेध। दुर्मिल (सवैया)।

धनकारन पापनि प्रीति करै, नहि तोरत नेह जथा तिनकौ, लव चाखत नीचनके मुँहकी, शुचिता सब जाय छियें जिनको ॥ मद मास बजारनि खाय सदा, अंधले विसनी न करैं घिनकौं। गनिका सग जे सठ लीन भये, धिक है धिक है धिक है तिनको ॥ ५४ ॥

---

१ मास। २ श्राप, शराब। ३ ग्रहण करना।

(५५) आखेट निषेध—कवित्त मनहर।

कानन में बसै ऐसो आन न गरीब जीव, प्राननसौं प्यारा प्रान पूँजी जिस यहै है। कायर सुभाव धरै काहूसौं न करै रार, सबहीसौं डरै दांत लियें तृन रहै है॥ काहूसौं न रोष पुनि काहूपै न पोष चहै काहूके परोष परदोष नाहिं कहै है॥ नेकु स्वाद सारिवेकौं ऐसे मृग मारिवेकौं, हा हा रे! कठोर तेरो कैसे कर बहै है॥

(५६) चोरी निषेध-छप्पय।

चिंता तजै न चोर, रहत चौकायत सारै।
पीटै धनी विलोक, लोक निर्दई मिलि मारैं॥
प्रजापाल करि कोप, तोपसौं रोप उडावै।
मरै महा दुख पेखि, अंत नीची गति पावै॥
अति विपतिमूल चोरी विसन, प्रगट त्रास आवै नजर॥
परवित अदत्त अंगार गिन, नीतिनिपुन परसै न कर॥५६॥

(५७) परस्त्रीसेवन निषेध।

कुगतिवहन गुनगहन, दहन दावानलसी है।
सुजसचंद्रघनघटा, देहकृशकरन खई है॥
धन सर सोखन धूप धरम दिन सांझ समानी।
विपतिभुजगनिवास, बांबई वेद बखानी॥

१ पराक्। २ लेने के लिये। ३ तलवार, हाथ। ४ दूसरे का धन। ५ ले जाने वाली।

इहिविधि अनेक औगुनभरी, प्रानहरन फाँसी प्रबल।
मत करहु मित्र यह जान जिय,परवनिताखों प्रीति पल ॥५७॥

(५८) परस्त्रीत्याग प्रशंसा—दुमिल (सवैया)।

दिवि दीपक लोयं बनी वनिता जड़जीव पतंग जहाँ परतें। दुख पावत प्रान गँवावत हैं, बरजे न रहे हठसों जरते॥ इहि भाँति विचच्छन अच्छनके वश, होय अनीति नहीं करते। पर ती लखि जे धरता निरखें, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते ॥ ५८ ॥ दिढ़शीलशिरोमनि कारजमें, जगमें जस आरज तेइ लहैं। तिनके जुगलोचन वारिज हैं, इहि भाँति अचारज आप कहैं॥ परकामिनि को मुखचंद चितै, मुँद जाहि सदा यह टेव गहैं। धनि जीवन है तिन जीवनको, धनि माय उनैं उरमाय वहैं ॥५९॥

(६०) कुशीलनिन्दा—मत्तगयन्द (सवैया)।

जे परनारि निहारि निलज्ज, हँसैं बिगसैं बुधिहीन बड़ेरे। जूठनकी जिमि पातर पेखि, खुशी उर कूकर होत घनेरे॥ है जिनकी यह टेव वहै, तिनकों इस भौ अपकी रति है रे। ह्व परलोकविषै दृढ़ दंड, करै शतखंड सुखाचलकेरे ॥६०॥

---

१ दीपक की शिखा। २ अज्ञानी। ३ परस्त्री। ४ कमल। ५ इत्यम।

(६४) कुकविनिन्दा ।

[illegible] उद [illegible] अब भयौ, सहज मन लोगन लाग
[illegible] [illegible] नर मीस रह, निमनादिक सेवनक
[illegible] और रचै रसकाव्य कहा कहिये तिनर्क
[illegible] अब असुभनकी अँखियानमें झोंकत हैं रज
[illegible] ॥

(६५)

कञ्चन कुभनकी उपमा, कह देत उरोजनको कवि
धारें । उपर श्याम विलोकत कैं, मनिनीलम की ढकनी
ढँकि छार ॥ यौं सतबैन कहैं न कुपण्डित, ये जुग आमि-
षपिंड उघार । मासन झार दई मुँह ढार, भये इहि हेत
किधौं कुच कार ॥

(६८) गुरु उपकार—कवित्त मनहर ।

ढईमा सराय काय पंथी जीव बस्यो आय, रत्नत्रय
निधि जापै मोख जाको घर है । मिथ्या निशि कारी जहाँ
मोह अन्धकार भारी, कामादिक तस्कर समूहनको थ
है ॥ सोवै जो अचेत सोई खोवै निज सपदाकौं, तहाँ गुरु
पाहरु पुकारैं दया कर हैं । गाफिल न हूजै भ्रात ऐसी है
अँधेरी रात, "जाग रे बटोही यहाँ चोरनको डर है" ॥

(६९) कषाय जीतनेका उपाय—मत्तगयन्द सवैया ।

छेम निवास छिमा धुवनी बिन, क्रोध पिशाच उरै न

टरगो। कोमलभाव उपाव विना, यह मान महामद कौन हरैगो। आतम-सार-कुठार विना छलजाल निकंदन कौन करैगो। तोष शिरोमनि मंत्र पढ़े विन, लोभ फणी विष क्यौं उतरैगो ॥

(७०) मिष्ट वचन।

काहेको बोलत बोल बुरे नर, नाहक क्यों जस धर्म गमावे। कोमल बैन चवे किन ऐन, लगे कछु है न सबै मन भावे॥ तालु छिदै रसना न भिदै न घटै कछु अंक दरिद्र न आवै। जीभ कहैं जिय हानि नहीं तुझ जी सब जीवनको सुख पावै ॥

(७१) धैर्यधारणोपदेश—कवित्त मनहर।

आयो है अचानक भयानक असाता कर्म, ताके दूर करिवेको बली कौन अह रे। जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप, तेई अब आये निज उदयकाल लह रे॥ एरे मेरे वीर काहे होत है अधीर यामें, कोउको न सीर तू अकेलो आप सह रे। भये दिलगीर कछू पीर न विनसि जाय, ताहीत सयाने तू तमासगीर रह रे॥

(७२) होनहार दुर्निवार—कवित्त मनहर।

कैसे कैसे बली भूप भूपर विख्यात भये, वैरी कुल काँपै नेकु भौंहोंके विकारसों। लंघे गिरि सायर[१] दिवा

१ समुद्र।

ानर किये हैं भट कोटिन हुशारसौं। ा ाय हू न हार मानी, क्योंही उतरे न ा। दरसौं न हार पुनि दानेमें न ा न हारें एक हारे होनहारसौं॥

(७) दैव शिक्षा—मत्तगयन्द सवैया।

न लाभ लिलार लिख्यौ, लघु दीरघ सुक्रतके । गो लहि हैं कछु फेर नहीं, मरुदेशकै ढेर सुमेर ा। घाट न बाढ़ कही वह होय, कहा कर आवत ाच विचारे। कूप किधौं भर सागरमें नर, गागर मान ल जल सारे॥

(७७) महामूढ़ वर्णन—कवित्त मनहर।

जीवन कितक ताम कहा बीत वाकी रह्यौ, तापे अध कौन कौन करै हर फेर ही। आपको चतुर जान औरनकौं मूढ़ मान, साभ होन आई विचारत सवेर ही॥ चामहीक चहुनत चितवै सकल चाल, उरसौं न चौंधे कर राख्यौ है अंधेर ही॥ बाहैं बान तानकै अचानक ही ऐसौ जम, दीसै[3] है मसान थान हाड़नकौ ढेर ही॥

(८१) चौबीस तीर्थंकरोंके चिह्न—छप्पय।

गऊपुत्र[4] गजराज, बाज[5] बानर मनमोहै।
कोक[6] कमल साथिया, सोम[7] सफरीपति[8] सोहै॥

१ सूर्य। २ चलाने। ३ दिखता। ४ बैल। ५ घोड़ा। ६ चकवा। ७ चन्द्रमा। ८ मगर।

सुरतरु गैंडा महिप, कौल[1] पुनि सेही जानौं।
वज्र हिरन अज[2] मीन, कलश कच्छप उर आनौं॥
शतपत्र[3] शख अहिराज हरि[4] रिषभदेव जिन आदि ले।
श्रीवर्द्धमानलौं जानिये, चिह्न चारु चौबीस ये॥८१॥

(८९) द्रव्यलिंगी मुनि मत्तगयद सवैया।

शीत सहैं तन धूप दहैं, तरुहेट रहैं करुना उर आनैं। झूठ कहैं न अदत्त गहैं, वनिता न चहैं लव लोभ न जानैं॥ मौन गहैं पढ़ि भेद लहैं, नहि नेम जहैं व्रत रीति पिछानैं। यौं निवहैं पर मोख नहीं, विन ज्ञान यहै जिन वीर बखानैं॥८९॥

(९०) अनुभव प्रशसा कवित्त मनहर।

जीवन अलप आयु बुद्धि बल हीन तामैं, आगम अगाधसिंधु कैसें ताहि डाक है। द्वादशांग मूल एक अनुभौ अपूर्व कला, भवदाघहारी घनसारकी सलाक[5] है॥ यह एक सीख लीजे याहीकौ अभ्यास कीजे, याकौ रस पीजे ऐसो वीरजिन वाक है। इतनो ही सार ये ही आतमको हितकार, यही लौं मदार[6] और आगैं ढूक-ढाक है॥

१ सुअर, २ बकरा, ३ कमल, ४ सिंह ५ कपूर ६ सुई, ७ काम की बात।

जीवन कितक तामें कहा बीत बाकी रह्यो, तापै अध औध कौन करै हेर फेर ही। आपको चतुर जानै औरनको मूढ़ मानै, साँझ होन आई है विचारत सवेर ही॥ चामहीके चखनतैं चितवै सकल चाल, उरसौं न चौंधै कर राख्यौ है अँधेर ही॥ बाहै[2] बान तानकै अचानक ही ऐसो जम, दीसै[3] है मसान थान हाड़नको ढेर ही॥

(८१) चौबीस तीर्थंकरोंके चिह्न—छप्पय।

गऊपुत्र[4] गजराज, बाजि[5] बानर मनमोहै।
कोक[6] कमल साथिया, सोम[7] सफरीपति[8] सोहै॥

---

१ सुत। २ चलावै। ३ दिखता। ४ बैल। ५ घोड़ा। ६ चकवा। ७ चन्द्रमा। ८ मगर।

सुरतरु गैंडा महिष, कौल[1] पुनि सेही जानौ।
वज्र हिरन अज मीन, कलश कच्छप उर आनौ॥
शतपत्र[3] शंख अहिराज हरि[4] रिषभदेव जिन आदि ले।
श्रीवर्द्धमानलौं जानिये, चिह्न चारु चौबीस ये॥८१॥

(८९) द्रव्यलिंगी मुनि मत्तगयंद सवैया।

शीत सहैं तन धूप दहैं, तरुहेट रहैं करुना उर आनैं। झूठ कहैं न अदत्त गहैं, वनिता न चहैं लव लोभ न जानैं॥ मौन गहैं पढ़ि भेद लहैं, नहिं नेम जहैं व्रत रीति पिछानैं। यौं निबहैं पर मोख नहीं, बिन ज्ञान यहै जिन वीर बखानैं॥८९॥

(९०) अनुभव प्रशंसा कवित्त मनहर।

जीवन अलप आयु बुद्धि बल हीन तामें, आगम अगाधसिंधु कैसें ताहि डाक है। द्वादशांग मूल एक अनुभौ अपूर्व कला, भवदाघहारी घनसारकी[5] सलाक[6] है॥ यह एक सीख लीजे याहीको अभ्यास कीजे, याको रस पीजे ऐसो वीरजिन वाक है। इतनो ही सार येही आतमको हितकार, यहीं लौं मदार[7] और आगैं ढूकढाक है॥

---

१ सुअर, २ बकरा, ३ कमल, ४ सिंह ५ कपूर ६ सुंई, ७ काम की बात।

(६)

पिछान्या रे, मोह उदय होने तैं मिथ्या
निज० ॥ टेक ॥ तू तो नित्य अनादि
माना रे। पुद्गल जड़में राचि भयो तू
र ॥ निज० ॥ १ ॥ तन धन जोनित पुत्र
निज माना रे। यह मन जाय रहन के नाहिं
सयाना रे ॥ निज० ॥ २ ॥ बालपनें लडकन
जोनित त्रिया जनाना रे। वृद्ध भयो सब सुधि गई
धर्म भुलाना रे ॥ निज० ॥ ३ ॥ गई गई अब राख
रही तू समझ सियाना रे। बुद्ध महाचन्द्र विचारि जिन
पद नित्य रमाना रे ॥ निज० ॥ ४ ॥

(२७)

भाई चेता चेत सकै तो चेत अब, नातर होगी खुवारी
रे ॥ भाइ० ॥ टेक ॥ लख चौरासीमें भ्रमता भ्रमत
दुर्लभ नरभव धारी र। आय लई तहाँ तुच्छ दोषैं
पञ्चम काल मझारी रे ॥ भाई० ॥ १ ॥ अधिक लई तो
सौ बरसनकी आयु लई अधिकारी रे। आधी तो सोनेमें
खोई तेरा धर्म ध्यान विसरारी रे ॥ भाइ० ॥ २ ॥
बाकी रही पचास वर्षम तीन दशा दुखकारी र। बाल
अजान जवान त्रियारम वृद्धपने बलहारी रे ॥ भाई०

॥ ३ ॥ रोग अरु शोक सयोग दुख वमि वीतत है दिन सारी रे। बाकी रही तेरी आयु किती अब सो तू नाहि विचारी रे ॥ भाइ० ॥ ४ ॥ इतने ही में किया जो चाहै सो तू कर सुखकारी रे। नहीं फँसेगा फंद विच पडित महाचन्द्र यह धारी रे ॥ भाई० ॥ ५ ॥

(८८)

जीव तू भ्रमत भ्रमत भव खोयो जब चेत भयो तब गेयो ॥ जीव० ॥ टेर ॥ सम्यक्दर्शन ज्ञान चरण तप यह धन धूरि विगोयो। विषय भोग गत रसको रसियो छिन छिनमें अति सोयो ॥ जीव० ॥ १ ॥ क्रोध मान छल लोभ भयो तब इन ही में उर भीयो। मोहरायके किंकर यह सब इनके वसि व्है लुटोयो ॥ जीव० ॥ २ ॥ मोह निवार सवारसु आयो आतम हित स्वर जोयो। बुध महाचन्द्र चन्द्रसम होकर उज्जल चित्त रखोयो ॥ जीव० ॥ ३ ॥

जिनेश्वर पद सग्रह

(१६) लावनी राग भैरवा में

अपना भाव उर धरना प्यारे जी, अपना भाव सुख-दान बडा। अपना भाव जिनने उर धारा, तिन पाया शिव थान बड़ा ॥ टेर ॥ नर भव पाय चतुर मति चूकै, यह मौका हितदान बड़ा। जो करना सो निजहित करना,

रा ॥ अपना० ॥ १ ॥ धन जोबन
सम ललचाता है । इन ही भावन
री भरमाता है ॥ अपना० ॥ २ ॥
का छाया, इन सबमें त न्यारा है । ये
न प्यारे, तू सब जाननहारा है ॥ अपना०
गद्वेष मदमोह छोडकै, वीतराग परनाम
पूरन ब्रह्म परम पद पावन, आप 'जिनेश्वर' सरन
। अपना० ॥ ४ ॥

(८९) राग सरेठा ।

जगतकी भूठी सब माया, अरे नर चेत वक्त पाया ॥ नर ॥ कंचन बरनी कामिनी, जोबनमें भरपूर । अतरदृष्टि निहारत, मलमूत्र भरपूर, वृथी नर इनमें लराचाया ॥ अरे नर० ॥ १ ॥ लक्ष्मी तो चचल बडी, बिजलीक उनहार । याके फन्दे बचोजी, अपनी करो सम्हार, जिसकी मानुष भव पाया ॥ अरे नर० ॥ २ ॥ स्वच्छ सुगन्ध लगायके, करके सब सिंगार । तिह तनमें तू रति करनी, सो शरीर है छार, वृथा क्या इनमें ललचाया ॥ अरे नर० ॥ ३ ॥ तन धन ममता छांडिये, राग द्वेष निरवार, शिव मारग पग धारियेजी, धर्म जिनेश्वर सार, सुगुरु ने ऐसे बतलाया ॥ अरे नर० ॥ ४ ॥

(९६) पद राग रेखता ।

आपके हिरदे सदा, सुविचार करना चाहिये । जापकर

निजरूपका निरधार करना चाहिये ॥ टेर। त्यागकर परका भजक, निज भावको निरखा करो। चढ़ि वीतरागता शिखर फिर ना उतरना चाहिये ॥ आप० ॥ ॥ १ ॥ धारिके समता सदन, तन दीजिये ममता मने। लोभविषयनिकरिपैं, नाहक ना गिरना चाहिये ॥आपक०॥ ॥ २ ॥ ज्ञान निजपरको मनन, स्वध्यानको सूरत यही। संसार सागर पार यो, जल्दीसे तिरना चाहिये ॥ आप० ॥ ३ ॥ श्रद्धा समभकर आचरन, जिनराजका मारग यही। हितदाय जिनेश्वर धर्मको, इख्त्यार करना चाहिये ॥ आप० ॥ ४ ॥

(२४) रेखता।

जिनधर्म रत्नपायके, स्वकाज ना किया।
नरजन्म पायक वृथा, गमाय क्या दिया ॥ टेर ॥

अरहंतदेव सेव सर्व सुक्खकी मही, तजके कुधी कुदेवकी अराधना गही ॥ पद्य अब तो परतन्त्र स्वच्छ ज्ञानको हरें, इनमें रचे कुजीव जे, कुजोनिमें परें ॥ जिन० ॥१॥ परमागके परमार्थ, परमगा ही लिया। तजके सुगम्यरूपको, जलधार ही पिया ॥ जिनधर्ममें मोह काम लोभको, भकोरमें परो। तन इनको ये वर्गी रहे, लखि दूरसे डरो ॥ जिन० ॥ २ ॥ हिरदे प्रतीत कीजिये, सुदय धर्मकी। तजि रागदोष मोह, औ कुटेर कर्मको ॥ सजि वीतरागभाव जो, स्वभाव आपना। जिविरज फटके निकद, भाव

॥ ३ ॥ मनका मता निरोध, नोध मोष
पाप पाप चीन, आप लीन कीजिये ॥
श्री. गुरुन ने कहा । शिवराम कान
गहा ॥ जिन० ॥ ४ ॥

(३२) पद राग ख्याल ।

वृथा गमावै महमा नहि पावै, मानुष जन्मको । मानुष जन्म निरोगी काया, उरविवेक चतुराई । ... मैं विठान किये जिन, काम कछू नहि आई जी ॥ मति वृथा० ॥१॥ जिनवर धर्म दिगंबर तार्मैं, यदि उर अर्नों भाइ । तौ आगम अनुसार दयगुरु, तत्त्वपरखि सुग ... जी ॥ मति वृथा० ॥२॥ खान पान अरु विषयभोगके, सेवनकी चतुराई । कूकर शूकर पशु भी करते, यामें कहा बडाइ जी ॥ मति वृथा० ॥३॥ क्षणभंगुर विषयनिके काज, निर्भय पाप कमावै । हे नर करत कहा अनरथ यह, शुभ-शिक्षा न सुहावै जी ॥ मति वृथा० ॥४॥ बहुविधि पाप करत हरखाव, मन कुटंब मिल खावै । दुख पावै जब नरक वरामैं, कोइयन काम जु आवै जी ॥ मति वृथा० ॥५॥ मानुष देह रतनसम पाकर, जो निजहित करवाव । कहत 'जिनेश्वर'सो नरभवके, धारनको फल पावजी ॥मति वृथा०॥६

मनमोदनपञ्चशती

(कविवर छत्रपति विरचित)

चार आराधना ग्रहण-शिक्षा।

सवैया इकतीसा।

नरभव रत्नदीप आय चिदानंद! कहा, मिथ्यापथ काच-खंड संग्रह करत हो। कुगुरु कुदेव कुआगमनसे न ठग आन, पाय श्रुतज्ञान इन वश क्यों परत हो॥ इन वश नर नारकादि परजायनिमें, जनमि जनमि फिरि फिरि क्यों मरत हो। सम्यक दरश ज्ञान चारित दुविधि तप, रतन अमोल काहे हिये न धरत हो॥ ३३॥

ज्ञानी पुरुष संपत्ति विपत्तिमें हर्ष विषाद नहीं करते

जैसे भानु[1] उदै अर अस्त समै रक्त रूप, कोपमान[2] धन आत-जात एक रूप है। तैसे बुध संपति विपति माँहि समरूप, हरष विषाद दोऊ जानें भ्रम रूप है॥ जौलौं मोह करमकौ नाश नाँहि सरवथा, तौलौं परनामनिमें रहै दौरधूप है। ज्ञान औ विराग बल रोकि नव आस्रवकौं, पूरवौं निवारि हाल होय शिवभूप है॥ ७२॥

ज्ञानीके वस्तुस्वभावका विचार।

जीवन मरण लाभ हानि जस अपजस, तन धन परि-

---

१ सूर्य। २ स्वजातीय। ३ परिजन परिवार।

...। निज निज परिणामरूप मन परि-
... होय करै आपी भगवान है ॥ काहूमेंतें
... वियोग होउ, मेरे तो न यामें कछु
... है। मै तो एक ज्ञायक स्वभाव अविनाशी
...[2] निधि[3] उदै परवान है ॥ ८५ ॥

यथार्थ ज्ञानका लक्षण।

... ज्ञान जब फुरे इस आतमके, तब ये चिहन
... प्रगटत है। भवतन भोगनमें महज विराग भाव
... प्रमन पुनि लोभ उलटत है॥ मयेसो न शोक अब
... न मोच जाके, अभय अक्रोध मन वारो सुलटत है।
... उदार वर दयो वृष लाजभार, प्राणीनात प्यार
उनमग उलटत है ॥ ८६ ॥

शिक्षा।

नोहि इतनी ही ज्ञान करनी जरूर भ्रात, और बनो
न बनो हमें न कछु डर है। जुक्ति नै- प्रमाणकरि वस्तु
कौ स्वरूप जानि, स्वपर पिछान करि भावना प्रवर है॥
परी जो अनादि थकी परविंप ममताकी, बानि निरवारि
दुरस अनोकृह[6] जर है। एतहीमें सब सिद्धि वसु रिद्धि नव
निधि, या विना न सिद्धि सब क्रिया दोष घर है॥८७॥

१ वृद्धि। २ नाश। ३ कर्म। ४ मिथ्यामाग। ५ नय।
६ वृक्ष।

ज्ञानविषै रमण करनेकी शिक्षा।

देखि तेरे घटमें अखंड ज्ञान पुञ्ज जोति, जाग रही जो प्रकासै सदा आप परकों। तीक्षण स्वभाव जाकी सरब तरफ मुख, सब ज्ञेय प्रतिबिंबी धरैं शक्ति सरका ॥ मोह तरौ अंग, नहिं दूसरौ प्रसग करि, दोषतैं असंग हरि भरम अबरकों। ताहि विषै रमि विषैवासनाकों वमि विधि-थावरन गमि वेगि जाउ शिवघरको ॥ ९७ ॥

दुःखका कारण।

लोक थिति जेय विधि उदै अनुसार सब, अपने स्वभावरूप परिणमैं सब ही। तहाँ मोह उदै करि निज चाह अनुसार, परिणाया चाहै वे न परिणव कब ही ॥ होय तब आतुर विपादित विशेषपने, वेवै नहीं चाह त्याग सुख गुर रतहीं। याही हेत थकी भूत वर्तमान दुखी भयौ, भावी दुखी होय यो न समै कछु फबही ॥ ११३ ॥

अपनी भूलसे दुःखी।

जैसें मकरी[1] जो उगलि निज मुख तार, आपुही उलझि पड़ दुखी होय मरै है। जैसें मूढ़ शुक[2] गहि नलिनीकों नीचों होय, पर करि गृह्यो मानि पींजरामें परै है ॥ जैसें काच भौन स्वान भूँसि भूँसि तजै प्रान, दीपककों

[1] मकड़ी। [2] तोता।

... । तमें यह जीव भूलि आपना
... चहुँगति दुख भरे है ॥१२२॥

...का माहात्म्य।

... सीप मुख परी मोती होय, केलिमें
... कमललोचना। ईखमें मधुर पुनि नींममें
... मुख परी होय प्रान मोचना॥
... परी मोती मम दिपै, तपन तवैपै परी
... सोचना। उतकिष्ट मध्यम जघन्य जैसो सग
... फल लगै मति पोच मति पोचना ॥१४७॥

अपराधीको मोक्ष नहीं होती।

हानि लाभ जीवन मरण, जस अपजसः सुख दुख, ... इनका जुगल है। आपपरि औरनके औरकरि आपनरें, भये मानें सरवथा बुधिसौं न मल है॥ कारज औ कारण सरूपकौं न पहचानि, जाके ज्ञान नैननमें छायो मोहमल है। सो है अपराधी जिन आतम सरति बाधी, याकी भवभौनके न लहै मोक्ष थल है॥ १५६॥

आठ वस्तुओंको धिक्कार है।

धिक वह राज जामें निसदिन चिंत रहै, धिक रकपन जामों सेवा पर करिये। धिक वह लक्षि वहु वैरकी करन

१ सर्प। २ कमल। ३ पत्ता पर।

हार, धिक अधनत्व जामें पेट हू न भरिये ॥ धिक वह भोग जासों कुगति गमन होय, धिक है अभोग जहाँ चाह नाहिं टरिये । धिक वह सुरधाम जासौं फेरि आगम हो, धिक वह धर्म जासौं भवभेष धरिये ॥ १७९ ॥

मनुष्यका शरीर काने साँटेके समान है ।

यह नरतन घुन करि खाये साँटे सम, दुखरूप गाँठ जामों भरी सरस है । मूलमें न रस अवसानमें विरस अरु, मध्यकी अवस्था भरी व्याधिमों विचित्र है ॥ विषै रस लोभमों बिगारौ तौ बिगारौ कोई, जामें नहीं रस स्वाद महा अपवित्र है । लगाय धर्म साधनमें करौ परभव बीज, तो अपार सार सुख भोगौ यकछत्र है ॥ २१५ ॥

सुख दुखका मूल कारण ।

होय मनचाही तहाँ मानत जगत सुख, अनचाही होय तहाँ दुख मानियत है । चाही अनचाही नहीं अपने पराए वश, भवितव्य अरु विधि सब आनियत है ॥ सुख दुख हेत माँहीं राग द्वेष परिणाम, याही भ्रमकरि विधि बंध ठानियत है । जहाँ राग द्वेष नाहि तहाँ सुख दुख नाहि, सुख दुख मूल राग द्वेष जानियत है ॥ २३० ॥

लोक प्रवृत्ति और धर्म विधि ।

कोई देखादेखी कोई कुलकी प्रवृत्ति मार, अलप

[illegible] । तम यह जीव भूलि आपना
[illegible] नहँगति दख भरे हैं ॥१२२॥

[illegible] माहात्म्य ।

[illegible] सीप मुख परी मोती होय, केलिमें
[illegible] लोचना । ईखम मधुर पुनि नीमम
गरल[2] मुख परी होय प्रान मोचना ॥
[illegible] परी मोती सम दिप, तपन तवेपे परी
[illegible] । उत्तम मध्यम जघन्य जैसो सग
[illegible], तैसो फल लहै मति पोच मति पोचना ॥१४७॥

अपराधीको मोक्ष नहीं होती ।

हानि लाभ, जीवन मरण, जस अपजस, सुख दुख, सयदार, इनका जुगल है । आपकरि औरनके औरकरि आपनके, भये मानें सरवथा बुधिसों न बल है ॥ कारज औ कारण सरूपको न पहचानि, जाके ज्ञान नैननमें छायो मोहमल है । सो है अपराधी निज आतम सकति बाधी, वासो भवभौनके न लहै मोक्ष थल है ॥ १५६ ॥

आठ वस्तुओंको धिक्कार है ।

धिक वह रान जामें निसदिन चित रहै, धिक रूपन जामें सेवा पर करिये । धिक वह लखि नहु वैरकी करन

१ सर्प । २ कमल । ३ पत्ता पर ।

हार, धिर अधनन्व जामें पेट [illegible] [illegible] [illegible] भोग जामें कुगति गमन [illegible] [illegible] चाह नाहि टरिये। [illegible] [illegible] [illegible] हो, धिर यह धर्म जामें [illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥

मनुष्यका शरीर [illegible] [illegible] [illegible] है।

यह नरतन पुन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नमी भरी मखन है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अर, मधकी अवस्था [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] रम लोममो निमारी नो [illegible] [illegible] [illegible] महा अपवित्र है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], वो अपार सार सुख [illegible] [illegible] है [illegible] ॥

सुख दुःखका [illegible] [illegible]।

होय मनचाही [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मनचाही होय नहीं दुख मानिये है [illegible] [illegible] [illegible] अपने परे वश, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ॥ सुख दुख इन [illegible] रागद्वेष [illegible] [illegible] [illegible] तिनि [illegible] हानियत है। [illegible] रागद्वेष [illegible] [illegible] [illegible] दुख नाहि, सुख दुख मूल रागद्वेष [illegible] है। ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

कोई [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible]

[illegible]

... है। कोई लाज सौंर बाज ... लाभ हत तनसों करत है। ... स्वभाव ज्ञाता, ममतामगन मो ... । और प्रमाण जुक्ति आगममों ठीक ... भवसागर तरत है ॥ २-१ ॥

मगरूरीका निषेध।

... जीव मरेगा अवश्य मोय, गाफिल न मरमों कोय ... । देह नगि जायगी विभूति पलायगी यों, ... मँझाता कोइ ठहर न ठाय ॥ लोक विवहार इमों ... हाल निमों, इन्द्रजाल ख्याल तिमों तह नहीं पारपे। ऐसी अलप ... कहा मगरवी गीर, साथ भी जगर अब सुहित समारय ॥ २६५ ॥

धनवानकी दशा।

बोन्निकी दृष्टिकी देखत धनको धनी, दीखत मरन सुगरूप जारी रमा है। अतरम दृष्टि करि, दसों नेंस नीक करि, याते उपरात कौन दुख माहि फँसा है ॥ गजडर पथडर आगिडर चोरडर, दुर्जन उपाधि डर करि मन वसा है। जम पट भूषणादि नाना भाँति भोग रज, पीड़ौ वात विथाकी पुरषकी जों लसा है ॥ २६७ ॥

तिर्यंचोंके दुःख।

महाशीत महाताप महारोग तन व्याप, पीठपर भार दूरि

दश तक चलना । तन असमरथ थौ परै है पराय वश महत कुवोल मार खात पल फल ना ॥ पीड़े भूख प्यासके न थिरता गहत छिन, काटत ससक डॉस फाग रख्छु सल ना । तीक्षण कषाय बडी चाहैं प न मिल कछु, धिग पशु भव जामें रहैं नित जलना ॥ २७१ ॥

देह की दशा ।

कारागार समा यह देह तामौं कहा नेह अस्थिरूप थम्भ पाषाणनिसौं सँवारी है । वेढ़ी नसाजाल करि पूरित रुधिर मास, चाम करि आवरत मलमूत क्यारी है । सडन स्वभाव खान पानके अधार यह, रोगनिमौं भरी दुख दोष निसा भरी है । रची विधि वेरी अरु आयुरूप बगी अति, अस अँधेरी तौऊ लगै तोहि प्यारी है ॥ २७९ ॥

महा अशुभ ।

अशुभके उदै निज तजका अभाव होय, ताहूते विशेष पांच अभावमें गनिये । धनका अलाभ पुनि उद्यम अभाव माँहि अधिक अधिक पाप कर्म उदै मानिये ॥ साहस और तनतेज बल बुद्धि नाश जिसै, मरते अधिक पाप उदे अनुमनिये । तातें हूजै हुस्यार तजि मनके विकार धीर,महा-दुख दोषकार पापहत हनिये ॥ २८७ ॥

१ मच्छर । २ कैदखाना । ३ हड्डी ।

सरागनास्प उराहना।

...पृत तन मनरथ तेरे, वात पित्त कफ
...। पीड़ै हुआ तथा शीत उष्णसौं न
... अपवित्र मल धर है॥ शुभ औ
पापकर्मफल, उदै रूप तेरे हस्त्म दुग-
... तेधानी परमारथके घाती अरे, धन्नि तेरी
... प्रीत वर है॥ २८३॥

...गर, तन, जनकी अवस्था।

... जाय, पापसौं
उपाय धरै जोरै कहा धनसौं। हाड माम मूत बीठ भरो
... दोषनसौं, रोगनसौं थान कहा पोषै इस तनसौं॥ परै
पाप मारगम स्वार्थके सग मर, काह अपनाये है यादि
इन जनसौं। आठ मौनि नेर श्रय माम या सवरे ...,
फेरत न काहे धुप और निज मनसौं॥ २९०॥

धर्ममें दृढ करनेकी शिक्षा।

जिन सुखकर्तें कष्टकरी वृप साधन हूवै, ऐसो भय मानि
न मिथुर होउ ...। धर्म सुख कारण है सुख धर्म
कारज है, कारण न कारज विरोधी होय कब ही॥ कार-
णतें कारजकी सिद्धि सरवथा जानि, चूको न कदाचि यो

१ मिथ्या। २ वृथा।

बखानैं जन मथ ही। तातैं तजि आलस अनादर धरम माँहि, होउ सावधान यों उचारे गुरुरव' ही ॥ ३०७ ॥

धर्मकी शिक्षा।

भमत निगोद वास बीतो है अनंतकाल, काललब्धि पाय लहि त्रिति' उपशमता। धरि भूमि तेज वायु अनो ठुह' नीरकाय', विकलत्रतुरु माँहि काल बहु गमता॥ नारक त्रयग माँहि कायधरी बहुभव, नरभौ मिलाप ज्या उकालो बीज जमता। पाप क्यों गुमावत अकारथ अयान मीत, करै क्यों न परम धरम गहि समता॥३११॥

धर्मात्माका सुख।

जिनकैं प्रवृत्ति एकदेशहू धरमकी है, तिनकैं न धन तौउ सुखी चक्रधरव। विष भोग वस्तु छते अनछते समरूप, सरवै न सुख दुख होना कभी परवे॥ गईकौ न सोच जाकैं आगेकी न चाह कछू, वर्तमान जैसें तस वरतें उकरतें। मोहकी मरोरमें सदव सावधान रहैं, अरिनके सनमुख जमें सूर अरव ॥ ३१५ ॥

धर्मका स्वरूप।

रहित त्रिदोष आतम सुभाव धरमके, दृग ज्ञान चारित त्रिभेद गुण वरना। सही मोह विभ्रम रहित सरधान दृग,

१ गुरुकी वाणी। २ क्रम। ३ पृष्व। ४ जलकाय। ५ भुना हुआ।

...ज्ञान चारित कषायसौं निवरना ॥ एकदश सर्वदश...
...रोकभर, साधन विशेष निराहार धर्म निरना...
...दारि वैर अभय मध्यान मोहि, तातें धर्म साधनमें...
...करना ॥ ३१७ ॥

धर्मके प्रति प्रेरणा।

जैसे निज तन मन धनके उपायवेमें, हरदम रुज्र रायै...
...ना हू नित रे। तैसें कहूँ महूरत मन वृष साधनमें, थिर...
...करि राग तौ किनक मन थित रे॥ जहाँ दृग ज्ञान उप...
...योगम न राग द्वेष, मोटे उतकिष्ट वृष केवली उक्त[1] रे।...
...प्रमाण जुगतिसौं साधिकरि गहौ भव्य, दहौ भ्रमभाव...
होउ जीवन[2] मुक्त रे ॥ ३२२ ।

विषयी प्रति शिक्षा।

अरे विषयानुरागी चिदानंद यार! तोहि, कहा बार...
बार सीख कहूँ तेरे हितकी। तोहि न रुचति जानै कहा...
होनहार तेरौ, कठिन कठोर पलटै न गति चितकी ॥ मिल...
जलमग पै न गहै रंच अंग जैसें, चक्रमक कजदल[3] मथनी...
विरतकी। भयौ बेशरम तोहि कहकी न गम हियें, करै न...
नरम बात बूझै न विरतकी ॥ ३३४ ॥

---

१ कहते हैं। २ अरहन्त। ३ कमलपत्र।

वीतराग देवकी ही भक्ति करना चाहिये ।

राग द्वेष व्याधित जगत दुःख सुख मय, जाके सुख मान्य ते असान भय भरके। इनहीके हत सेंर राग द्वेष धर देव, आप ही दुखित ते निवारू दुख करके ॥ जे हैं वीत राग सब ज्ञायक सजोगी जिन, सुख बैंन सरनामी काज सरैं सबके। तिनहीकी पूजन भजन सुमिरन भन्य, करनी निरालम ह्वै मिले छिन छड़के ॥ ३५६ ॥

सन्तोष ।

मन वच काय कृत कारितानुमत जोग, कियौ जो करम उदै पावै[1] करि जितनौ। जौन देश जौन विधि जौन काल मांहि जैसौ, रुज लाभ जागि[2] भरि लेह कीनि तितनो॥ काहेको अनेक देश गिरि वन मन फिरै, ममता निवारि थिर करौ चित जितनौ। मिलेगौ न जावि[3] थाह करत प्रपच घने, रुजमें संतोष धरौ जीवन है कितनौ ॥३६८।

स्त्रियोंका स्वभाव ।

क्रोध करि भरी सदा निरदै स्वभाव जाकी, बोले मृषा बैंन सब जगतकी छलना है। कलह करत सुख सुलहमें मानें दुःख, कहै कटु बैंन सुख मानौ मर सला है॥ कृपण कठोर चले अशुभकी ओर पर,-हतिकौ विचारि करै मन

[illegible]। [illegible] [illegible] अतरग दीपनिसौं रली, [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ॥ ३७४ ॥

विशेष विचार।

[illegible] गुण परजाय [illegible], नय परमान [illegible] [illegible]। गुणथान चौदै जीवथान चौदै [illegible], [illegible] तिन [illegible] लगावना ॥ कुलकोडि [illegible] गति [illegible] क्रिया, [illegible] विधि [illegible] आदि [illegible] लगावना। अथवा [illegible] सकलप विकलप मेटि, [illegible] ज्ञान [illegible] आप आपुम समावना ॥ ४२० ॥

गृहवासका निषेध।

[illegible] गृहाश्रम विषे सुखके अरथ धीर, उद्यम करत [illegible] रातिदिन [illegible] ना। हलनिसौं भूमि भेदि बीज बोहि [illegible] होय, [illegible] [illegible] पाय सेवै [illegible] ना ॥ [illegible] [illegible] श्रुति औरहू अनेक [illegible], करत [illegible] बहु अघ [illegible] ना। सुखसौं न [illegible] [illegible] दुखको बढ़ाउ मित्र, तातैं [illegible] [illegible] [illegible] छकना ॥ ४२८ ॥

बारह भावना।

परज न [illegible], न मरन, जग दुख रूप, सुख दुख भोगै एक दूसरो न मीर है। पुदगल जीव भिन्न, तन है अशुचि

[illegible] चैन।

छिन्न, मन वच काय जोग आश्रव जजीर है ॥ जोगनी निरोध सोई सवर लखौ सबोध, उद देय गिर विधि निर्जरा गहीर है। षट द्रव्यमयी लोक, दुर्लभ स्वपरबोध, वस्तु स्वभाविक धर्म हरै सब पीर है ॥ ४२५ ॥

ज्ञान दर्पण

परपदमें आपा मानना भूल है।

सवैया ३१ सा

मानि परपद आपौ भूले ए अनादिहीके, ऐस जग नामी (निजरूप) न सभारैं है। घटहीमें सासतौ निरंजन जो देव बसै, ताकौ नहीं देखैं यातैं हितसौं निमारैं है॥ जोति निजरूपकी न जागी कहुँ हीयेमाहिं, यातैं सुखसागर सुभावकौ निमारैं हैं। दशना जिनेंद्र 'दीप' पाय जब आपा लखै, होइ परमातमा अनत सुख धारैं हैं ॥१८॥

जीव अपनी भूलसे ही दुखी है।

निहचै निहारत ही आतमा अनादिसिद्ध, आप निज भूलिहीतैं भयो विवहारी है। ज्ञायक सकति जथाविधि सो तौ गोप्य दई, प्रगट अज्ञानभाव दसा विसतारी है॥ अपनौ न रूप जानैं औरहीकौं और मानै, ठानैं भवखेद निज रीति न सँभारी है। ऐसै तो अनादि कहाँ कहा साध्य सिद्धि अब, नैक हूँ निहारौ निधि चेतना तुम्हारी है ॥ ४७ ॥

[illegible] रागैं पनादिक बताए आए, तेसौ उपदश हम
[illegible]। यहै परम्प त मरूपकी चितौनी चुके,
[illegible] मनमैं भमानैंगे। एतौ हू कथन कीएँ लाग
[illegible] प्रमादा, तिसैं कठोर नर और न कहानैंगे। कहै
[illegible] आदि दर्ने कोऊ सुनौ, तत्त्वके गहैया भव्य
[illegible] पारसैं ॥ ८० ॥

आत्मपद ही उपादेय है।

आगम अनादिकौं अनादि यौं बतावतुहै, तिहूंकाल
[illegible] पद तोहि उपादेय है। याहीतैं अखड ब्रह्मडकौ
[illegible]या लखि, चिदानन्द धारैं गुणवृन्द मोही धेय है ॥ तूतौ
सुखसिंधु गुणधाम अभिराम महा, तेरो पद ज्ञान और
जानि मन ज्ञय है। एक अविकार सार मनमैं महत शुद्ध,
ताहि अवलोकि त्यागि सदा पर हेय है ॥ ८४ ॥ याही
जगमाहि ज्ञेय भावकौ लखिया नान, ताको धरि ध्यान
आन काहे पर हेरै है। परक सयोगतैं अनादि दुख पाए
अब, देखि तू सँभारि जो अखड निधि तेरै है ॥ वाणी
भगवानकीकौ सकल निचोर यहै, समैसार आप, पुण्य
पाप नहि नेरै है। यातें यह ग्रथ शिव पथको सधैया महा,
अरथ विचारि गुरदेव यौं परे है ॥ ८५ ॥ व्रत तप सील
सजमादि उपवास क्रिया, द्रव्य भावरूप दोउ बधकौ करतु
हैं। करम जनित तातैं करमको हेतु महा, बधहीकौं करैं

मोक्षपथकौ हरतु है ॥ आप जैसो होइ ताकौ आपके समान करै, बंधहीको मूल यातें बन्धकौ भरतु है। याकौ परपरा अति मानि करतूति करै, तेई महामूढ़ भव सिंधुमें परतु है।८६॥ कारण समान काज सब ही बखानतु हैं, यातें परक्रियामाहि परकी धरणि है। याहीतें अनादि द्रव्य क्रिया तौ अनेक करी, कछु नाहिं सिद्धि भई ज्ञानकी परणि है॥ कर्मकौं नस जामें ज्ञानकौ न अश कोउ, बढ़ै भववास मोक्ष पथ की हरणि है। यातें परक्रिया उपादेय तौ न कही जाय, तातें सदा काल एक बंधकी ढरणि है ॥ ८७ ॥ पराधीन बाधायुत बंधकी करैया महा, सदा विनासीक जाकौ ऐसौ ही सुभाव है। बंध उदै रसफल दीसै ज्यारयौं एक रूप, सुभ वा असुभ क्रिया एक ही लखाव है ॥ करमकी चेतनामें कैसे मोक्षपथ सधै मानैं तेई मूढ़ हीए जिनकै विभाव है। जैसो बीज होय ताकौ तैसो फल लागै जहाँ, यह जगमाहिं जिन आगम कहाव है ॥ ८८ ॥ क्रिया सुभ कीजै पै ममता न धरीजै कहै, दूजे न विवादी याम पुण्य भावना ही है। कीजै पुन्यकाज सो समाज सारो परहीको, चेतनाकी चाहि नाहि सधै याकै याही है॥ याकौ हय जानि उपादेयमें मगन हूजै, मिटै है विरोध वाद रहै न कहीं ही है। आठों जाम आतमाकी रुचिमें अनंत सुख, कहै 'दीपचन्द' ज्ञान भावरु तहाँ ही है ॥ ८९ ॥

... आपन दु खको कारण है।
... ति आयो है अनादिहीसों, यातैं नहिं ... परभावनी। गति गति माहिं परजायहीसों ... जानो न सरूपकी है महिमा सुभावनी। ... नाना पर धरैं जहाँ, परि परकृ थिति ... । भेदज्ञान भयसें सरूपसे सभारि दयो, ... महा चिदानदकी विलासनी ॥ १०४ ॥ महा ... एसौं ज्ञान जोति मेरो रूप, सुद्ध निज रूपकी ... वस्तु है। कहा भयो जिसौं मलीन ह्वैकै ... नीउ, निहचै निहार परभावन कस्तु है॥ मेध घन ... माहिं नाना भाँति नीसतु है, घटासौं न होय नभसुद्धता ... है। कहै 'दीपचन्द' तिहुँलोकप्रभुताई लीए, मेरे पद ... मेरो पद सुवरतु है॥ १०५॥ काह परभावनमें दौरि दौरि लागतु है, कहा परभावनकी दयदाई कही है। जनमाहि दउ परमगतै अनेक मह, तातैं परमग तोरिकै त्याग जोगि सही है॥ पानीके बिलोएँ कहूँ पाइए घिरत नाहिं, काच न रतन होय ढहौ मत सही है। यातैं अवलोकि दगि तेर ही सरूपकी सु, महिमा अनतरूप महा बनि रही है॥१०६॥

यहिरात्मा कथन।

मणिके मुकुट महा सिरपैं विराजतुहैं, हीए माहिं हार

नाना रतनके पोए हैं । अलकार और अग अगमें अनूप
मन, सुन्दर सरूप दुति देखें काम गोए हैं ॥ सुगलक कुल
निम सुग्मध साथ देखें, आवत प्रतीति ऐसे पुण्य बीज
बोए हैं । करमके ठाठ ऐसें कीने हैं अनेकवार, च न गिनु
भए यौं अनादिहीके मोए हैं ॥ ११८ ॥ सुर परजायनिमें
भोग भार भए जहाँ, सुख रग राची रति कीनी परभावम ।
रमा हाव भावनिको निरखि निहारि देखैं, भ्रम परतीति
भई रमणिरमावम ॥ देखि देखि देवनिके पुज आय पाँय
पँर, हियमैं हरष धरैं लागिनि लगावम । पर परपचनिम
मचिके करम भारी, ससारी भयौ फिरै जु परके उपा
वमें ॥११९॥ रमणि रमावमाहिं रति मानि रान्यौ महा,
मायामें मगन प्रीतिकरै परिवारमैं । विषैभोगमाँज विषतुल्य
सुधापान जानि, हित न पिछान रच्यौ अति भवभारमैं ॥
एक इन्द्री आदिक असैनी परिजत जहाँ, तहाँ ज्ञान कहाँ
रच्यौ करम विकारमैं । अब देव गुरु जिनवाणीको सजोग
जुरयौ मिवपथ साधौ करि आतमविचारमैं ॥ १२३ ॥
आगतें पतग यह जलमतें जलचर, जटाके बढाएँ सिद्धि हवे
तौ बट भरे हैं । मुण्डनतें उरणिवे नगन रहतें पशु, कष्टको
सहतें तरू कहुँ नाहिं तरे हैं ॥ पठनतें शुक बक ध्यानके कियै
तें कहूँ सीझ नाहिं सुनै य.तें भवदुख भरे हैं । अचल
अबाधित अनुपम अखड महा, आतमीक ज्ञानके लखैया
सुख करे हैं ॥ १८२ ॥

ब्रह्मविलास

पुण्यपचीसिका।

सवैया

पाप [illegible] कार करै अति, तोहि रहै दुख सङ्कट घेरे।
[illegible] महा शठ राखत, आवत काल छिनै छिन नेरे॥
[illegible] जन तु राखत मायामो, ये नरकादिकमें तुहि गेरें।
[illegible] मूल है 'भया' तु चेतत क्यों नहि चेत सवेरे॥११॥

कवित्त

[illegible] पाप होंहि अधर्मके व्याप होंहि, तेते सब
[illegible] मूल लोभरूप है। जेते दुखपुंज होंहि कर्मनके
[illegible] होंहि तेते सब बन्धनको मूल नेहरूप है॥ जेते बहु
रोग होंहि व्याधिके संयोग होंहि, तेते सब मूलको अजीरन
अनूप है। जेते जग मर्ण होंहि काहूको न शर्ण होंहि, तेते
सब रूपको शरीरनाम भूप है॥ १२॥

सवैया

काहेको क्रूर तु भूरि सहै दुख, पंचनके परपंच भरमाये।
ये अपने अपने रसको नित पोखतु हैं तोहि लोभ लगाये॥
तू कछु भेद न बूझतु रंचक, तोहि ठगा करि देत बधाये।
है अबके यह दाव भलो नर! शीतल पंथ जिनंद बताये॥१३॥
हे नर अन्ध तु बंधत क्यों निज, सूझत नाहि क भाग खई है।
जे अघ संचतु है नित आपको, ते तोहि मौज फेरंग गई है॥

य नरकाग्निमें तोहि डारिके, देहै सजा बहु ऐसी भट है। मानत नाहिं कहूँ मधुमाँय, सु तोकों दई मति ऐसी दईहै॥१६॥

मात्रिक कवित्त

दग तु दृष्टि विचार अभ्यंतर, या जगमहि कछु साँचो आह। मात तात सुत बन्धव वनिता, इनसों प्रीति करति चाह॥ तन यौवन कंचन औ मंदिर, गजरिद्ध प्रभुता पद काह। ये उपजें अपनी थितिमुत, तू किन नाथ होहि शठ ताह॥ १८॥

सवैया

चेतन ऐसेमें चेतत क्यों नहि, आय बनी सबही विधि नीकी। है नरदेह यो आरज खेत, जिनदकी वानि सु बूंद अमीकी॥ तामें जु आप गहो थिरता तुम, तो प्रगट महिमा सब जीकी। जामें निवास महासुखवास सु, आय मिलै पतियाँ शिवतीकी॥२३॥

कवित्त

ग्रीषमम धूप परै तामें भूमिभारी जरै, फूलत है आक पुनि अतिही उमहिके। वर्षाऋतु मेघ झरै तामें वृक्ष केइ फरै, जरत जवासा अघ आपुहीतें डहिकें॥ ऋतु को न दोष कोऊ पुण्य पाप फल दोउ, जैसें जैस किये पूर्व तैसें रहै सहिकें। केइ जीव सुखी होहि केई जीव दुखी होहि, देखहु तमासो 'भैया' न्यारे नैकु रहिकें॥२४॥

[illegible]ष्टोत्तरी कवित्त[illegible]

छप्पय

[illegible]न, प्राण पलमाहि गमावे ।
[illegible] परमग, रैन बहु मरट पावै ॥
[illegible] सनेह, देह दुरजनको दीनी ।
[illegible] धाग, दृष्टि हित कैसी कीनी ॥
[illegible] करि परयो, कौन कौन सकट सहै ।
[illegible] विपरीतिसम, पतन सेय तु सुख चहै ॥ ४ ॥

कवित्त

[illegible]मो वीतराग देव कह्यो है स्वरूपसिद्ध, तैसो ही [illegible]प मेरो यामें फेर नाहा है । अष्टकर्म भावकी उपाधि मोम कहू नाहि, अष्ट गुण मेरे सो तौ सदा मोहि पाहि है ॥ नायक स्वभाव मेरो तिहूँ काल मेरे पास, गुण जे अनत तेऊ सदा मोहि माही है । ऐसो है स्वरूप मेरो तिहूँ काल सुद्धरूप, ज्ञानदृष्टि देखतें न दूजी परछाही है ॥६॥ ज्ञानप्रान तेर नाहि तेरे तौ न जानत हो, ध्यानप्रान मानि ध्यानरूप मानि रह हो । आतमके वशको न अश कहूँ खुल्यो कौन, पुग्गलके वशसेती लागि लहलह हो ॥ पुग्गलके हारे हार पुग्गलके जाते जीत, पुग्गलकी प्रीति सग धैर्म बहबह हो । लागत हो वाय वाय लागै न उपाय कछु, सुनो चिदानदराय कौन पथ गह हो ॥ ९ ॥ सुनो राय

चिदानंद कहोजु सुबुद्धि रानी, कहै कहा बेर बर नकु तोहि लाज है। कमी लाज कहो कहाँ हम कछु जानत न, हमें इहाँ इन्द्रिनिको विषे सुख राज है॥ अर मूढ़ विषसुख सेये तू अनन्ती बेर, अजहूँ अघायो नहिं कामी सिरताज हैं। मानुष जनम पाय आरज सुखेत आय, जो न चेते हमराय तेरो ही अकाज है॥ १४॥ जीवन कितेक ताप मामा तू इतेकु करे, लक्ष कोटि जोर जोर नेकु न अघातु हैं। चाहतु धराको धन आन मन भरौं गेह, यो न जानै जनम सिरानो मोहि जातु है॥ कालसम क्रूर जहाँ निश दिन घेरो करै, ताके बीच शशा जीव कोलों ठहरातु है। देखतु है नैननिमों जग सब चल्यो जात, तऊ मूढ़ चेते नाहि लोभै ललचातु है॥ १८॥ कहाँ है वे वीतराग जीते जिन रागद्वेष, कहाँ है वे चक्रवर्ति छहो खंडके धनी। कहाँ हैं वे वासुदेव युद्धके करया वीर, कहाँ है वे कामदेव काम-रूपी जे अनी॥ कहाँ है वे राजा राम रावनसे जीते जिन, कहाँ हैं वे शालिभद्र लब्धि जाके थी घनी। ऐसे तो कइक कोटि हुव गये अनंती बेर, डेढ दिन तेरी बारी काहेको करै मनी॥ १९॥ सुनिरे सयाने नर कहा करै घर घर, तेरो जु शरीरघर घरी ज्यों तरतु है। छिन छिन छीने आय जल जैम घरी जाय, ताहूको इलाज कछु उरहू धरतु है॥ आदि जे सहे हैं ते तो यादि कछु नाहिं तोहि, आगे कहो

इस गति दा उड़तु है। घरी एक दसो ग्याल घरीसी इन्हें है चोत घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है ॥२०॥

शतअष्टोत्तरी

कवित्त

... कहो कीनो कहा राम तुम, रामागमा ... निरातु है। कैस दिन ऐक छिन रहि है ... काज करतु सुहातु है। जानत हैं ... नाहि डर, दरा भ्रम भूलि मूढ फलि ... चेतरे अचेत पुनि चेतवेको नाहि ठौर, आन ... पछी उड जातु है ॥ २१ ॥ कौन तुम कहाँ ... कौनें बीगाने तुमहिं, काके रस रसे कछु सुघद्द ... । रान हैं ये कर्म जिन्हें एकमेक मानि रहे, अजहू न लागे ... भाँवरी भरतु हो ॥ वे दिन चितारो जहाँ बीते हैं अनादिकाल, कसे कर्म सकट सहद्द निमरतु हो। तुम तौ सयाने पैं समान यह कौन कीन्हो, तीनलोकनाथ ह्वैकै दीनसे फिरतु हो ॥ ३० ॥

सवैया

वे दिन क्यों न चितारत चेतन, मातकी उदरम आय बसे हो। ऊरध पाँव लगे निशिवासर, रच उसासनिसों तरसे हो ॥ आउसयोग बचे कहुँ जीवत, लोगनिकी तब

दृष्टि लसे हो। आज भये तुम यौवनके वस, भूल गये कितते निकसे हो ॥ ३२ ॥

कवित्त

दरसत हो कहाँ कहाँ केलि करै चिदानद, आतम स्वभाव भूलि और रस राच्यो है। इन्द्रिनके सुखमें मगन रहै आठों जाम, इन्द्रिनके दुख देखि जाने दुख साच्यो है ॥ कहूँ क्रोध कहूँ मान कहूँ माया कहूँ लोभ, अहं भाव मानि मानि ठौर ठौर माच्यो है। देव तिर्यञ्च नर नारकी गतिन फिरै, कौन कौन स्वांग धरै यह ब्रह्म नाच्यो है ॥ ३९ ॥ कोउ तो करै किलोल भामिनीसों रीझि रीझि, वाहीसों सनेह करै कामराग अंगमें। कोउ तो लहै अनद लक्ष कोटि जोरि जोरि, लक्ष लक्ष मान करै लच्छिकी तरगमें ॥ कोउ महा शूरवीर कोटिक गुमान करै, मो समान दूसरो न देखो कोऊ जगमें। कहैं कहा 'भया' कछु कहिवेकी बात नाहिं, सब जग देखियतु रागरस रगमें ॥ ४१ ॥ जौलों तुम और रूप ह्वै रहे हो चिदानद, तौलो कहूँ सुख नाहिं राबरे बिचारिये। इन्द्रिनिके सुखको जो मानि रहे साचो सुख, सो तो सब दुःख ज्ञानदृष्टिमें निहारिये ॥ ए तौ विनाशीक रूप छिनमें और स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसें एकु पारिये। ऐसो नरजन्म पाय नकु तो विवेक कीजे, आप रूप गहि लीजे कर्मरोग टारिये ॥ ४२ ॥ जीवें जग निते

जन तिन्हें सदा रंग दिन, सोचत ही छिन छिन काल छानियत हैं। धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय, बढ़ो विसतार होय जस लोनियत है॥ दहहू निरोग होय सम्पत्ति संयोग होय, मनवाछे भोग होय जौलौं जी नियतु है। ये वाछा पूरी होइ पै न वाछे पूरी होय, आयु थिति गलाय तौला कीनियतु है॥४४॥ मात धातु मिलन है महादुर्गन्ध मयी, तामें तुम प्रीति करी लहत अनंद हौ। नरक निगोदके सहाइ जे करन पंच तिनहीकी सीख सचि करत सुछंद हौ॥ आठो जाम गहैं काम रागरसरंगराचि, करत किलोल मानों माते ज्यों गयंद हौ। कछू तौ विचार करो कहाँ कहाँ भूले फिरो, भलेजू भलेजू "भैया" भले चिदानंद हौ॥ ४६॥

सवैया।

ए मन मूढ कहा तुम भूले हो, हंस विसार लगे पर-छाया। यामें स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोट बनाई है काया॥ सम्यक्स्रूप सदा गुण तेरो सु, और बनी मन ही भ्रम माया। दर्शन रूप अनूप विराजत, सिद्धसमान जिनंद बताया॥ ४७॥ केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवार। काल अनादि वितीत भयो, अजहूँ तोहि चेत न होत कहा रे॥ भूलि गयो गतिको फिरवो, अब तौ दिन च्यारि भये ठगुवार। लागि कहा

रह्यो अचनिके संग, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' ॥ ५० ॥
बालक ह्वै तब बालकसी बुधि, जोबन काम हुतासन[२] जारे।
वृद्ध भयो तब अंग रहे थकि, आये हैं सेत गये सब कारे॥
पांय पसारि पर्यो धरतीमहिं, रोवै रटै दुख होत महा रे।
बीती यों बात गयो सब भूलि तू, 'चेतत क्यों नहिं चेतन
हारे' ॥५१॥ बालपने नित बालनके संग, खेल्यो है ताकी
अनेक कथा रे। जोबन आप रम्यो रमनी रस, सोउ तौ
बात विदीत यथा रे॥ वृद्ध भयो तन कंपत डोलत, लार परै
मुख होत विथारे। देखि शरीरके लच्छन भैया तू, 'चेतत
क्यों नहिं चेतनहारे' ॥५२। तू ही जु आय बस्यो जननी
उर, तू ही रम्यो नित बालकतारे। जोबनता जु भई पुनि
तोहिको, ताहीके जोर अनेक तै मारे॥ वृद्ध भयो तु ही
अंग रहे सब, बोलत बैन कहै तुतरारे। देखि शरीरके
लच्छन भैया तू, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' ॥५३॥ औरसों
जाइ लग्यो हित मानिके, वाहिके संग सुज्ञान बिडारे।
काल अनादि बस्यो जिनके ढिग, जान्यो न लच्छण ये
अरि सारे॥ भूलि गयो निजरूप अनूपम, मोह महामदके
मतवारे। तेरो हु दाव बन्यो अबके तुम, 'चेतत क्यों नहिं
चेतनहारे' ॥ ५४ ॥ काहेको देहसों नेह करै तुव, अंतको
राखी रहैगी न तेरी। मेरी है मेरी कहा करै लच्छिसों,

१ समस्यापूर्ति—'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे'। २ अग्नि

॥ मान रहा रह्यो मोह कुटुम्बमें,
। तातें तू चेति चिचल चेतन,
॥९०॥ जो परलीन रहे निशि-
न्यों न गमाय । जो जगमाहि
मा जिय क्यों निहचै पद पावै ॥ जो
न जानत, सो भवसागरमें फिर आवे ।
सो प्राण तन, गुड खाय जो काह न बाँन
॥

दुमिल सवैया, ८ सगण ।

जगवत भजो सु तजो परमाद, समाधिके सगमें रग
। अहो चेतन त्याग पराइ सु बुद्धि, गहो निज शुद्ध
सुक्ख लहो ॥ विषया रसके हित बूडत हो, भवसागरमें
कछु शुद्धि गहो । तुम ज्ञायक हो पट द्रव्यनकू, तिनसों हित
जानिकै आपु कहो ॥ १०२ ॥

कुन्डलिया ।

सुखमें मगन सदा रहे, दुखमें करै विलाप ।
ते अजान जाने नहीं, यह पुन्य अरु पाप ॥
यह पुण्य अरु पाप, आप गुन इनतैं न्यारो ।
चिद्विलास चिद्रूप, सहज जाको उजियारो ॥
गुण अनंत जास प्रगट, कबहू होहिं न और रुख।
तिहि पद परसे नित्तु रहे, मूढ मगन संसारसुख ॥१०४॥

द्रव्यसंग्रह

कवित्त।

व्यौहार नै देखिये तो पुग्गलके कर्मफल, नाना भाँति सुख दुःख ताको भुगतैया है। उपजाये आपुते ही शुभ औ अशुभ कर्म ताके फल साता औ असाताको सहैया है॥ निश्चै नय देखिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपने चेतन परिणामको करैया है। तातैं भोक्ता पुनि सुचेतन परिणामनिको, शुद्धन विलोकिये तो सबको लखैया है॥ ९॥

फुटकरकविता,

प्रश्नोत्तर दोहा।

कौन ज्ञान निज आचरन, कौन दान निज राग। कौन साधु निर्ग्रन्थ है, कौन व्रती जिहँ त्याग॥ १७॥

परमार्थपदपंक्ति,

१। राग भैरो।

या देहीको शुचि कहा कीजे, जामें धोइये मोइपै छीजै॥ या देही०॥ टेक॥ १॥ जो जो धोइये सो सो भरी, देखहु दृष्टि विचारके खरी॥ या देही०॥ २॥ दशों द्वार निशिवासर वहनी, कोटि जतन किये थिर नहिं रहनी॥ या देही०॥ ३॥ तत्त्व यहै आतमरस पीनै, जलनलि दीनै॥ या देही०॥ ४।

पद संग्रह

राग ... ।

... गमायोर ॥ अर० ॥ टेक ॥
... ... ती तानें नरभव पायो रे ।
... न दग्ग, भटकि भटकि भरमायो रे ॥
... फिर तोको मिलियो यह दुर्लभ, दश
...ता र । जो चेत तो चेत र 'भैया' तोको
...मुझायो र ॥ अर० ॥ ॥

राग धमाल ...

कहा परदेशीको पतियारो ॥ कहा० । टेक॥ मन मानै
... चलै पथको, सान गिनै न सकारो । सबै कुटुंब छांड
इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो ॥ कहा० ॥ १ ॥ ...
...दिमागर चलत आपही, कोउ न राखन हारो । कोऊ प्रीति
करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो ॥ कहा० ॥ २ ॥
धनसा राचि धरममो भूलत, भूलत मोक्ष मझारो । इहि
विधि काल अनंत गमायो, पायो नहिं भवपारो । कहा०॥
॥३॥ सांचे सुखसों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो ।
चेतहु चेत सुनहुरे 'भइया, आप ही आप सभारो ॥कहा०
॥ ४ ॥

१ मनुष्यभवकी दुर्लभता दिखानेके लिए जिनमतमें दश दृष्टान्तरूप कथाये हैं उनके द्वारा ।

२६। राग केदारो।

कहो परसों प्रीति कीन्हीं, कहा गुण तुम जान। चतुर चेतन चित विचारो, कहहूँ पुनि पहिचान॥ १॥ वे अचेतन तुम सुचेतन, दरश दृष्टि विनान। परहिं त्याग स्वरूप गहिये, यहै बात प्रमान॥ २॥

२१। राग अडानो।

हो चेतन वे दुख विसरि गये॥ टेक॥ परे नरकमें सकट सहते, अब महाराज भये। स्वर्ग सेज मरै तन वेदत, रोग एकत्र ठये॥ हो चे०॥ १॥ करत पुकार परम पद पावत, कर मन आनदये। कहूँ शीत कहूँ उष्ण महाधुनि, सागर आयु लये॥ हो चे०॥ २॥

कालाष्टक। दोहा।

तिहुं पुरके पुरहूत सब, वदत शीश नवाय। तिहुँ तीर्थंकर दवमों, बचत नाहिं यमराय॥ १॥ जिनकी भ्रूके फरकतें, कपत सुरनरवृन्द। तेहू काल छिनमें लये, जो योधा सुर इन्द्र॥ २॥ जाकी आनामें रहैं, छहों खडके भूप। ता चक्रीधरको ग्रसे, काल महा भयरूप॥ ३॥ नारायण नरलोकमें, महा शूर बलवत। तीन खड आज्ञा वहै, तिनेंहु काल ग्रसत॥ ४॥ औरहु भूप बलिष्ट जे, बसत याहिं जगमाहिं। तहु कालकी चालमों, बचत रच कहूँ नाहिं॥ ५॥ तातैं काल महाबली, करत सबनपै जोर।

[illegible] कीनो इह भोर ॥ ६ ॥ ऐसे [illegible] दव । कहत दास भगवतको, [illegible] काल वसत जगनालमें, नूतन [illegible] जग त्यागियो, नमहुँ ताहि धर [illegible] ॥ ८ ॥

[illegible] पचीसिका

चौपाई

[illegible] आपा, तातें तोहि लगत है [illegible] उपरना । एते पर एता क्या [illegible] अमल रम जानी । पीवहि [illegible] आतें जन्म जरा मृत हरना । एते पर एता क्या करना ॥ २३ ॥ जो चेत तो है यह दावो । नाहा चैठे मगल गावो फिर यह नरभव वृक्ष न फरना । एते पर एता क्या करना । २४ ॥ 'भया' मिनवहि वार वार । [illegible] भलो अवतारा ॥ हूवे दूलह शिव नारी वरना । एते पर एता क्या करना ॥ २५ ॥

दोहा ।

ज्ञानमयी दर्शनमयी, चारित्रमयी स्वभाव । सो परमातम ध्याइय यहै सु मोक्ष उपाय ॥ २६ ॥

अनित्य पचीसिका ।

दोहा ।

परो कालके गालमें, मूरख करे गुमान । दहै छिनमें

दार जो, निकस जाहिगे प्रान ॥७॥ लागो है जम जीवको, बोलत ऐसें गाजि। आज कालमें लेतहूँ, कहाँ जाहुगे भाजि ॥ ८ ॥ आज काल जम लेत है, तू जोरत है दाम। लच्च कोटि जो धर चले, गहै कौनै काम ॥ ६ ॥ दुखित सब समार है, सुखी लखै नहि कोय। एक सुखित जिन धर्म है, जिहँ घट परगट होय ॥ १० ॥ जाके परिग्रह बहुत है, सो बहु दुखके माहिं। जिन परिग्रहके त्यागतें, परमों छूटै नाहिं ॥ १२ ॥

कवित्त।

नरदेह पाये कहो कहा सिद्धि भई तोहि, विषै सुख सेयें सब सुकृत गमायो है। पच इन्द्रि दुष्ट तिन्हें पुष्टकर पोष राखे, आय गई जरा तब जोर बिललायो है ॥ क्रोध मान माया लोभ चारों चित रोक बैठे, नरक निगोदको भदसो बग आयो है। साथ चल्यो गाठको कमाइ कौडी एक नाहिं, तोसो मूढ दूसरो न ढूढयो कहूँ पायो है ॥११॥ वर्ष सौ पचास माहि एत सब मर जाहिं, जे त तेरी दृष्टि विषै दरसतु हैं यारे। इनमेंसे कोऊ नाहिं बचवेको काल पाँहि, राजा रक छत्री और शाह उमराव रे ॥ जमहीकी जमा माँहि घरी पल चले जाहि, घट तेरी आव रचु नाहि को उपाव रे। आज कालिह तोहूको समेट काल गाल माहि, त्यागि जैहैं चेत दरा पीछें नाहि दाव रे॥ २१ ॥

कौन कर्म कौन श्राप है ॥ यह तो सर्वज्ञ देव देख्यो भिन्न भिन्नरूप, चिदानंद ज्ञानमयी कर्म जड व्याप है। तिहँ भाँति मोह हीन जानै मरवानगान जसो मर्वज्ञ देखौ तैसो ही प्रताप है ॥ १० ॥

पुण्यपापजगमूल पचीसिका।

कवित्त।

चामके शरीर माहि रमत लजात नाहिं, दरगत अशुचि तोउ लीन होय तनमें। नारि रनी काहकी निचार कछु करै नाहिं, रीझि रीझि मोह रहे चामके वदनमें ॥ लक्ष्मीके काज महाराज पद छाड देत, डोलत है रंक जैसें लोभकी लगनमें। तनकमी आयुपे उपाय क्ई कोटि करै जगतके गामी दखे हासी आवे मनमें ॥ ४ ॥ नागरिन[1] मग केई मागम केलि करी, राग रंग नाटक मो तोऊ न अघाये हो। नर देह पाय तुम आयु पल्य तीन पाई, तहाँहू विषै रसाल नानाभाँति गाये हो ॥ जहाँ गये तहाँ तुम विषैमों विनोद कीन्हों, ताहीतें नरकमें अनेक दुख पाये हो। अजहूँ सम्हारि विषे डार क्यों न चिदानंद, जाके मग द म होय ताहीमो लुभाये हो ॥ ८ ॥ जहाँ तोहि चलनो है साथ तू तहाँको ढूढि, इहाँ कहाँ लोगनसों रह्यो तू लुभाय रे। मग तेरे कौन चले देख तू विचार हिये, पुत्र

१ दवागनाओंके।

… पाप करें जाय रे ॥ जाके काज पाप कर … है … हैं को सहाय तेरे नर्क जब जाय … तू ही पाप पुण्य साथी दोय, तामें … कीजे हसराय रे ॥ ९ ॥ जौलों तेरे ज्ञान … माहि चिदानंद, तौलों तुम मोहवश मूरदाम … हरक पराये प्रान पोपत हो देह निज, कहो यह … भ्रम कौन पथ लै रहै ॥ पापके क्रियेसों कछु पुण्य … है तोहि, ऐसो तू विचार नाही ऐसे ज्ञान … रहै। नर्कमें परगो कौन ? मरट महैगो कौन ?, अजहूं मम्हारो क्यों न कौन नींद स्वै रहै ॥ १० ॥ सोवत अनादि काल वीत्यो तोहि चिदानंद, अजहू मम्हार किन मोहनींद खोयके। सोयो तू निगोद माहि ज्ञान नैन मूंद आप, सोयो पच थावरमें शक्तिको समोयके ॥ विकलत्रै देह पाय तहाँ तू ही सोय रह्यो, सोयो न प्रमान घर वाही रूप होयके। पंच इन्द्री विषै माहिं मग्न होय सोय रह्यो, सोयो तैं अनंतो काल याही भांति सोयके ॥ ११ ॥

जिनधर्मपचीसिका।

कवित्त।

जामो कहै घर तामें डर तौ चईर तोहि, सवन निमार हम विप रस लागयो है। गिरवेको डर अरु डर

१ अर्थ। २ संकोचकर।

आगि पानीहूको, वस्तु राखवेको डर चौर डर जाग्यो है॥ पट भरवेको डर रोग शोक महाडर, लोकनिकी लाज डर राजडर पाग्यो है। डर जमराजहूको डारि तू निशंक भयो, जैसें मोह राजाने निवाज तोहि दाग्यो है॥ १८॥ रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करै सेव, ऐसो है अबुध ताको कैसें पाप खपनो?। राग रोग क्रीडा मग निषेकी उठे तरंग, ताहिमें अभंग रंग दिना करै जपनो॥ आरति औ रौद्र ध्यान दोउ किये आगेवान, एतेपै चहै कल्यान दके दृष्टि ढपनो। अरे मिथ्याचारी तैं बिगारी मति गति दोउ, हाथ ले कुल्हारी पाय मारत है अपनो॥ १९॥ सुन मेरे मीत तू निचिंत हूँके कहा बैठो, तेरे पीछे काम शत्रु लागे अति जोर हैं। छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी, डारत अंधेरी भैया किये जात भोर हैं॥ जागनो, तो जाग अब कहत पुकार तोहि, ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं। फोरकै शकति निज चोरको मरोर बाँधि, तोसे बलवान आगें चोर हूँकै को रहैं॥२०॥

वैराग्यपचीसिका।

(भैया भगवतीदासजी कृत)

दोहा।

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव। मन वच शीस नवायकें कीजे तिनकी सेव॥ १॥ जगत मूल यह राग है,

मुले पत नगा। मल दुहुनको यह कह्यो, जाग सरै तो जाग ॥ २ ॥ रा मान माया नरत, लोम महित परिताप। र हा नग शत्रु हैं, ममुझो आतमराम ॥ ३ ॥ इ-न ग शत्रुको, जो जीत जगमाहि। सो पावहि पथ भान धान धोखो नाहिं ॥ ४ ॥ जा लच्छीके काज तू, गावन है निज धर्म। सो लच्छी सँग ना चलै, क्यों मलत भर्म ॥ ५ ॥ जा कुटुम्बके हेत तू, करत अनेक उपाय। सो कुटुम्ब अगनी लगा, तोको देत जराय ॥ ६ ॥ पोषत है जा देहको, जोग त्रिविधिक लाय। सो तोको छिन एकमें, दगा दय खिर जाय ॥ ७ ॥ लच्छी साथ न अनुसरै, देह चलै नहि सग। काढ़ काढ़ सुजनहि करैं, देख जगत के रग ॥ ८ ॥ दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय। विषय सुखनके कारनें, सर्वस चले गमाय ॥ ९ ॥ जगहि फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार। चेतन अपनो चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥ १० ॥ ऐसें मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय। कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ११ ॥ पी तो सुख स्वभावको, जी ! तो कहूँ सुनाय। तू रीतो क्यों जातु है, बीतो नरभव जाय ॥ १२ ॥ मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट। भ्रष्ट करत है शिष्टको, शुद्ध दृष्टि दे पिष्ट ॥ १३ ॥ चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेषको सग। ज्यों प्रगटे परमातमा, शिव सुख होय अभग

॥ १४ ॥ ब्रह्म कहूँ तो ᵐ नही हूँ पुनि नाहिं। वैन्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदान माहि ॥ १५ ॥ जो देखे इन्द्रि ननमो, सो सब निमश्य। । तासा जो अपनो कहै मो मूरख शिरराय ॥ १६ ॥ पद्गलको जो रूप है, उपजै विनसै सोय। जो आतनाता आतमा, सो कछु और न होय ॥ १७ ॥ दग अवस्था गर्मकी, कौन कौन दुख होहि। बहुर मगन ममागम मौ लानत है तोहि ॥ १८ ॥ अधो शीस उरध चरन, कौन अशुचि आहार। थोरे दिनकी बात यह, भूलि जात ससार ॥ १९ ॥ अस्थि चर्म मलमूत्रमें, रेन दिनाको वास। देख दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥ २० ॥ रोगादिक पीडित रहै, महाकष्ट जो होय। तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥ २१ ॥ मरन समय विललात है, कोऊ लेहु बचाय। जान ज्यों त्यों जीजिय, जोर न कछू बसाय ॥ २२ ॥ फिर नरभव मिलिबो नहीं, किये हु कोट उपाय। तातैं वेगहि चेतह अहो जगतके राय ॥ २३ ॥ भैयाराय वह चीतर्द- चेम्न चितहि विचार। ज्ञानदर्श चारित्रमें आपो लहु निहार ॥ २४ ॥ एक मात पचासको सम्वत सुखदाय। एक शुक्ल तिथि धर्मकी, जै जै निशि विचार ॥ २५ ॥

परमात्मा छत्तीसी।

दोहा।

रमन को जग राग है, राग जरे जर जाय।
प्रगट नाम परमात्मा, भैया सुगम उपाय ॥१८॥
काहेको भटकत फिर, सिद्ध होनके काज।
रागद्वेषको त्यागदे, 'भैया' सुगम इलाज ॥१९॥
परमातम पदको धनी, रंक भयो बिललाय।
रागद्वेषकी प्रीतिसों, जनम अकारथ जाय ॥२०॥
रागद्वेषकी प्रीति तुम, भूलि करो जिन रंच।
परमातम पद ढांकके, तुमहि किये तिरजंच ॥२१॥
जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं।
राग द्वेषके जागत, ये सब सोये जाहिं ॥२२॥
राग द्वेषके नाशतें, परमातम परकाश।
राग द्वेषके भासत, परमातम पद नाश ॥२३॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार।
देख सयोगी स्वामिको, अपने हिये विचार ॥२४॥
लाख बातकी बात यह, तोको दई बताय।
जो परमातम पद चहै, राग द्वेष तज भाय ॥२५॥
राग द्वेषके त्याग बिन, परमातम पद नाहिं।
कोटिकोटि जपतप करो, सबहि अकारथ जाहिं ॥२६॥

टोप आतमाको यहै, राग द्वेषके सग ।
जैसें पाम मजीठके, वस्त्र और ही रग ॥२७॥
तैसें आतम द्रव्यको, राग द्वेषके पास ।
कर्म रग लागत रहै, कैसे लहै प्रकाश ॥२८॥
इन कर्मनको जीतिवो, कठिन बात है मीत ।
जड खोदें विन नहि मिटै, दुष्टजाति विपरीत ॥२९॥
लल्लोपत्तोके[1] किये, ये मिटवेके नाहिं ।
ध्यान अग्नि परकाशकें, होम देहु तिहि माहिं ॥३०॥
ज्यों दारूके गञ्जको[2], नर नहिं सकै उठाय ।
तनक आग सयोगतें, छिन इकमें उडि जाय ॥३१॥
देह सहित परमातमा, यह अचरज की बात ।
राग द्वेषके त्यागतें, कर्म शक्ति जर जात ॥३२॥
परमातमके भेद द्वय, निकल सकल परमान ।
सुख अनतमें एकसे, कहिवेको द्वय थान ॥३३॥
भैया वह परमातमा, सो ही तुममें आहि ।
अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि ॥३४॥
रागद्वेषको त्यागके, धर परमातम ध्यान ।
ज्यों पावे सुख सपदा, भैया इम कल्यान ॥३५॥

❀ इति परमात्मछत्तीसी ❀

---

१ टालटूल । २ ढेरको ।

नाटक पचीसी।

पुण्य योग भूपति भये, पापयोग भये रंक।
सुख दुख आपहि मानिके, नाचत फिरे निशंक ॥१६॥
नारि नपुंसक नर भये, नाना स्वांग रमाहि।
चेतनसों परिचय नहीं, नाच नाच गिर जाहि ॥१७॥
एस काल अनंत हुए, चेतन नाचत तोहि।
अजहूं आप सभारिये, सावधान किन ! होहि ॥१८॥
सावधान जे जिय भये, ते पहुँचे शिवलोक।
नाचभाव सब त्यागके, विलसत सुखके थोक ॥१९॥
नाचत है जग जीव जे, नाना स्वांग रमंत।
देखत हैं तिह नचनको, सुख अनंत विलसंत ॥२०॥
जो सुख देखत होत है, सो सुख नाचत नाहि।
नाचनमें सब दुख है, सुख निजदरसन माहि ॥२१॥
नाटकमें सब नृत्य है, सारवस्तु कछु नाहि।
ताहि विलोको कौन है, नाचन हारे माहि ॥२२॥
देखो वाको देखिये, जान ताको जान।
जो तोको शिव चाहिये, सो तासों पहचान ॥२३॥
प्रगट होत परमातमा, ज्ञानदृष्टिके देत।
लोकालोक प्रमान सब, छिन इकमें लख लेत ॥२४॥
'भैया' नाटक कर्मतें, नाचत सब संसार।
नाटक तज न्यारे भये, ते पहुँचे भव पार ॥२५॥

पचेंद्रियसंवाद

तब बोले मुनिरायजी, मन क्यों गर्व करत।
देखहु तंदुल मच्छको, तुमन नर्क परत। ११७॥
पाप जीव कोइ करो, तू अनुमोदे ताहि।
तामम पापी तू कह्यो, अनरथ लेही सिसाहि ॥११८॥
इंद्रिय तो न्यारी रहें, त दौरें निशदीश।
छिन छिन बांध कर्मको, देखत है जगदीश ॥११९॥
बहुत बात कहिये कहा, मन सुनि एक विचार।
परमातमको घ्याइये, ज्यों लहिये भवपार ॥१२०॥

ईश्वरनिर्णयपचीसी

कवित्त।

जैसें कोउ स्वान परो कांचके महलबीच, ठौर ठौर स्वान देख भूस भूस मरयो है। वानर ज्यों मूंठी बांध परयो है पराये वश, कूएमें निहारि सिंह आप कूद परयो है॥ फटिकसी शिलामें विलोर गज जाय अरयो, नलिनीक सुवटाको कौनेंयों पकरयो है। तैसें ही अनादिको अज्ञानभाव मान हंस, अपनो स्वभाव भूलि जगतमें फिरयो है॥ १२॥

दृष्टांतपचीसी।

दोहा।

राग न कीजे जगतमें, राग किये दुख होय।
देखहु कोकिल पींजरें, गहि डारत हैं लोय। १॥

... नर स्थि दुख होय।
... रार जामें जोय।१७।
... सर्म माप लपटाहिं।
... गिथिल होय दुर जाहिं॥२०॥
... निज भावनको ध्यान।
... अनुसर, सो पावै निरवान॥२३॥

...बत्तीसी।

... गतम, दूजो कौन कहाय।
... जाइहै, विपक नरमें जाय॥१६॥
... दुख नर, जाने मन ममार।
... मन नहा, विषयन सेती प्यार॥१७।
... अपकरा, वत्तिम उच्च विमान।
मन जीत ... हू, महै गम दुख आन॥२०॥
माहिज परिग्रह ... नहिं, मनमें धरै विकार।
तादुल मच्छ निहारिये, पडे नरक निरधार॥२४॥

चौपाई (१६ मात्रा)।

कहा रहा जियरो जडताई। सौंप कछु करनी नहि... जाइ॥ आरज खेट मनुष्यभव पायो। सो विषयासंग खेल... गमायो॥ ३०॥ आगे कहो कौन गति जैहो। ऐसे... जाम नगर कहां पहो॥ अर तू मूरख चेत सबेर। आवत... काल छिनहि छिन नेर॥ ३४॥ जबलों जमकी फौज न...

आवै। तबलों जो मनको समुझावै॥ आतम तत्त्व सिद्ध-सम ध्यावै। नाहि त्रिलोक सर्वभय भावै॥ ३२॥ बहुत बात कहिये कहु केती। कारज एक ब्रह्म ही सेती॥ ब्रह्म लखे सो ही सुख पावै, भैया सो परब्रह्म कहावै॥३३॥

स्वप्नबत्तीसी।

दोहा।

सुपनेसो कहे झूठ है, जाग कहे निजगेह।
ते मूरख ससारमें, लहे न भवको छेह॥११॥
कहा सुपनमें साच है, कहा जगतमें साच।
भूलि मूढ थिर मानिके, नाचत डोले नाच॥१२॥
आँख मूद सोले कहा, जागत कोऊ नाहि।
सोवत सब ससार है, मोहगहलता माहिं॥१३॥
मूरख है यह आतमा, क्योंहू समझत नाहिं।
देखि सुपनवत औरसों, बहुर मगन तिहमाहिं॥२२॥
जानत है जमराजको, आवत फौज प्रचड।
मारि करै इह देहको, छिनकमाहिं शत खड॥२३॥
ऐसे जमको भय नहीं, पोषत तन मन लाय।
तिनसम मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय॥२४॥
मूरख सोवत जगतमें, मोह गहलतामाहिं।
जन्म मरन बहु दुख सहै, तो हू जागत नाहिं॥२५॥

तन ऊपर जम है, जिनसों जम हु डराय।
तिनक पर जो ये, जमकी कहा बसाय ॥२६॥

कर विषय।

कवित्त।

अपनो पाट तुम यहाँ आय, अर कछु
सोच हैं। तब तो विचार कछु कीन्हों
नाहि तन उदै आय हमें ऐसे करि हैं॥
अब हैं अज्ञानी जीव, भुगते ही बन
 आगेको सभारिकै विचारि काम वही
करि फेरकै न धरि हैं॥ ७॥

सवैया।

ह मन निपात निरथक, काहको सोच करें नित
 । त परद्रव्य है, ताहिकी चाह निशा
दिन भूगे॥ आवत हाथ कछू शठ तेरे जु, बाधत पाप
प्रमाण न पूगे। आगेको मनि पर्‍ दुखकी कछु, सूझत
नाहि कियों भयो सूगे॥ ।

कवित्त।

कई कई बार भये भूपर प्रचड भूप, बड़े बड़े भूपनकै देश
छीनि लीनें हैं। कई कई बार भये सुर भौनवासी देव, केई कई
बार तो निवास नर्क कीन है॥ कई केई बेर भये कीट मल-
मूत माहि, ऐसी गति नीच बीच सुख मान भीनें हैं।

कौडीके अनंतभाग आपन विराय चुके, गर्व कहा करे मूढ ! देखि दृग दीने हैं ॥ २१ ॥

दोहा।

बिन कषायके त्यागतें, सुख नहिं पावै जीव।
ऐसे श्रीजिनवर कही, ज्ञानी माहिं सदीव ॥२१॥

इति सम्पूर्ण

समयसार नाटक

हितोपदेश कथन।

कवित्त।

सतगुरु कहै भव्यजीवनसों, तोरहु तुरत मोहकी जेल। समकितरूप गहो अपनो गुण, करहु शुद्ध अनुभवको खेल ॥ पुद्गलपिंड भावरागादिक, इनसों नहीं तिहारो मेल। ये जड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय अरु तेल ॥ १२ ॥

अथ द्वितीय अजीवद्वार प्रारंभ ॥ २ ॥

गुरु परमार्थकी शिक्षा कथन करे है ॥ सवैया ३१ सा

भैया जगवासी तू उदासी ह्वैके जगतसों, एक छ महीना उपदेश मेरो मानरे। और सकलप विकलपके विकार तजि, बैठिके एकंत मन एक ठौर आनरे ॥ तेरा घट सरितामें तूही ह्वै कमल वाको, तूही मधुकर ह्वै सुवास

पहिचान न । आपदि वे है कछु ऐसौ तू विचारत है, मही ऐसे है आपति ोंही जानरे ॥ ३ ॥

अथ पा पद्वार प्रारम्भ ॥ ४ ॥

शिष्यके पुरु उत्तर कहे हैं पापपुण्य ण ॥ सवैया ३१ सा

ऊमें मुकति नाहि, कटुक मधुर ... भकलेश विशुद्धि सहज दोउ कर्म ... जालमें निसेखिये ॥ कारणादि ... माहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान ... दोउ महा अन्धकूप दोउ कर्म बंधरूप, ... देखिये ॥ ६ ॥

अथ निर्जराद्वार प्रारम्भ ॥ ७ ॥

जीवकी शयन दशाका स्वरूप कहे हैं ॥ सवैया ३१ सा

काया चित्रशालामें करम परजंक भारि, मायाकी सवारी सेन चादर कलपना। शयन करे चेतन अचेतनता नींद लिये, मोहकी मरोर यहै लोचनकी ढपना ॥ उदै बल जोर यहै श्वासको शबद घोर, विषै सुखकारी जाकी दौर यही सपना । ऐसे मूढ दशामें मगन रहे तिहुंकाल, धावे भ्रमजालमें न पावे रूप अपना ॥ १३ ॥

जीवकी जाग्रत दशाका स्वरूप कहे हैं॥ सवैया ३१ मा

चित्रशाला न्यारी परजक न्यारी सेज न्यारी, चादर भी न्यारी यहाँ झूठी मेरी थपना। अतीत अवस्था सैन निद्रा वोहि कोउ पैं न विद्यमान पलक न यामें अब छपना॥ स्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलग बूझे, सूझे सब अंक लखि आतम दरपना। त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव छोड़ि, भाले दृष्टि खोलिके संभाले रूप अपना॥ १४॥

सप्तभय-दोहा।

इहभव भय परलोक भय, मरण वेदना जात।
अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात॥४७॥

सात भयके जुदे जुदे स्वरूप कहे हैं॥ सवैया ३१ सा

दशधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन भय परलोक मानिये। प्राणनिको हरण मरण भै कहावे सोइ, रोगादिक कष्ट यह वेदना बखानिये॥ रक्षक हमारो कोउ नाहीं अनरक्षा भय, चोर भय विचार अनगुप्त मन आनिये। अनचिंत्यो अबहि अचानक कहाधो होय, ऐसे भय अकस्मात जगतमें जानिये॥ ४८॥

इस ... निवारणकू मन्त्र (उपाय) कहे हैं ॥

छप्पय छन्द ।

... परिमाण, ज्ञान अवगाह निरखत ।
... परधन इम अखत ॥
... ममार ... परिवार भार जसु ।
... तहाँ प्रलय, जासु संयोग वियोग तसु ॥
... पवन परगट परसि, इह भय उपजे न चित ।
... निशक निरकलक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥४९॥

परभवके भय निवारणकू मन्त्र (उपाय) कहे हैं ॥

छप्पय छन्द ।

ज्ञान चक्र मम लोक, जासु अवलोक मोक्ष सुख ।
इतर लोक मम नाहि, जिम माहि दोष दुख ॥
पुन्य सुगति दातार, पाप दुर्गति दुखदायक ।
दोऊ खंडित खानि, मै अखंडित, शिवनायक ॥
इहविधि विचार परलोक भय, नहि व्यापत वरते सुखित ।
ज्ञानी निशक निकलक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥५०॥

मरणके भय निवारणकू मन्त्र (उपाय) कहे हैं ॥

छप्पय छन्द ।

फरश जीभ नासिका, नयन अरु श्रवण अक्ष इति ।
मन वच तन बल तीन, स्वास उस्वास आयु थिति ॥

ये दश प्राण विनाश, नाहि जग मरण कहीजे ।
ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहुँकाल न छीजे ॥
यह चित करत नहि मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित।
ज्ञानी निशंक निस्कलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥५१॥

वेदनाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे हैं ॥

छप्पय छन्द ।

वेदनहारो जीव, जाहि वेदत सोउ जिय ।
यह वेदना अभंग, सो तो मम अंग नाहि बिय ॥
करम वेदना द्विविध, एक सुखमय द्वितीय दुख ।
दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिर्मुख ॥
जब यह विवेक मनमें धरत, तब न वेदना भय विदित ।
ज्ञानी निशंक निस्कलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥५२॥

अनरक्षाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे हैं ॥

छप्पय छन्द ।

जो स्ववस्तु सत्ता स्वरूप, जगमांहि त्रिकालगत ।
तासु विनाश न होय, सहज निश्चय प्रमाण मत॥
सो मम आतम दरव, सरवथा नहि सहाय धर ।
तिहि कारण रक्षक न होय, भक्षक न कोय पर ॥
जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित ।
ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित ॥५३॥

[illegible] मन्त्र (उपाय) कहे हैं ॥

छप्पय छन्द।

[illegible] जासु लञ्छन चित मंडित।
[illegible] नाहि, माहि महि अगम अखंडित॥
[illegible] अनूप, अमृत अनमित अटूट घन।
[illegible] ठिम गहै, ठौर नहि लहै और जन॥
[illegible] ध्यान जब, तब अगुप्त भय उपशमित।
[illegible] निःशंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित। ५४॥

अकस्मात भय निवारणकूं मन्त्र (उपाय) कहे हैं॥

छप्पय छन्द।

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्ध सम।
अलख अनादि अनंत, अतुल अविचल स्वरूप मम॥
चिदविलास परकाश वीत विकलप सुख थानक।
जहाँ दुविधा नहि कोइ होइ तहाँ कछु न अचानक॥
जब यह विचार उपजत तब, अकस्मात भय नहि उदित।
ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखत नित॥५५॥

अथ अष्टम बंधद्वार प्रारंभ ॥ ८ ॥

चार पुरुषार्थ ऊपर ज्ञानीका अर अज्ञानीका विचार कहे हैं ॥ सवैया३१ सा

कुलको आचार ताहि मूरख धरम कहै, पंडित धरम कहै वस्तुके स्वभावको। खेदको खजानो ताहि अज्ञानी

अरथ कहै, ज्ञानी कहै अगथ दरव दरमावको ॥ दपतिको भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अभिलाप चित्त चावको। इंद्रलोक थानको अजान लोक कहै मोच, सुधी मोच कहै एक बंधके अभावकों ॥ १४ ॥

वस्तुका सत्यस्वरूप और मूढका विचार।

सवैया ३१ सा

तिहूँलोक माहि तिहूँकाल सब जीवनिको, पूरव करम उद आय रस देत है। कोऊ दीरघायु धरै कोऊ अल्प आयु मरे, कोउ दुखी कोऊ सुखी कोऊसमचेत है॥ याहि मैं जिवाउं याहि मारू याहि सुखी करू, याहि दुखी करू ऐसे मूढ मान लेत है। याहि अहं बुद्धिसो न विनसे भरम भूल, यहै मिथ्याधरम करम बंध हेत है॥ १६ ॥ जहाँलों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबै असहाय कोउ काहु को न धनी है। जैसे जैसे पूरव करम सत्ता बांधि तिन्ह, तैसे तैसे उदमें अवस्था आइ बनी है। एतेपर जो कोऊ कहै कि मैं जिवाऊं मारू, इत्यादि अनेक विकलप बात घनी है। सो तो अहं बुद्धिसो विकल भयो तिहूँकाल, डालै निज आतम शकति तिन्ह हनी है॥ १७॥

अधम मनुष्यका स्वभाव कहे हैं॥ सवैया ३१ सा

जैसे रंक पुरपके भावे कानी कौडी धन, उलुवाके भावे जैसे संझाही विहान है। कूकरके भावे ज्यों पिडोर

*रहना पग्दा, सुरक भावे ज्यों पुरीष पकवान है ॥ । सन भाव ास नावरी निरोरी दाग, नालकके भावे *** पुरान है। हिमरुक भाव जस हिमाम धरम ता * भाव शुभ सब निरवान है ॥ २१ ॥

सवैया ३१ सा

ािक उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति, अंजुलीक ारन ज्यों जीवन घटतु है। कालक ग्रमत छिन ्न हात छीन तन, आरके चलत मानो काठ ज्यों कटतु है॥ एतपरि मूरख न खोजै परमारथको, स्वारथके हतु भ्रम भारत ठटतु है। लगो फिर लोगनिसों पगोपरि जोगनिसों विषरस भोगनिसों नेकु न हटतु है ॥२६॥

मूढ़जीव कर्मबंधसे कैसे निकसे नहीं सो लोटण कबूतरका दृष्टान्त देके कहे है ॥ सवैया ३१ सा

लिये दृढ़ पेच फिरे लोटण कबूतरसो, उलटो अनादिको न कहूं सुलटतु है। जाको फल दुःख ताहि मातामों कहत सुख, सहत लपेटि अमि धागामो चटतु है॥ ऐसे मूढ़जन निज सपत्ती न लखे यों ही, मेरी मेरी मेरी निशि वासर रटतु है। याहि ममतामा परमारथ विनसि जाइ, कांजिको परस पाय दूध ज्यों फटतु है ॥ २८ ॥

नाकका अर कानका दृष्टान्त देके मूढके अल्पबुद्धिका स्वरूप कहै हैं ॥ सवैया ३१ सा

रूपकी न झाक हिये करमको डाक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिरगाक जैसे घनमें। लोचनकी ढाकसों न मानें सदगुरु हाक, डोले मूढ रकसा निशक तिहूं पनमें। टाक एक मासकी डलीसी तामें तीन फाक, तीन कोसो अक लिखि राख्यो काहू तनमें। तासों कहे नाक ताकि राखवेको करे काक, वाक्सो खडग वाधि वाधि धरे मनमें ॥२९॥

कुत्तेका दृष्टान्त देके मूढका विषयमें मग्नपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा

जैसे कौऊ कूकर क्षुधित सूके हाड चावे, हाडनकी कोर चहुँओर चुभे मुखमें। गाल तालु रसनासों मुखनिको मास फाटे, चाटे निज रुधिर मगन स्वाद सुखमें ॥ तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाणे, तामें चित्त माने हित माने खेद दुःखमें। देखे परतक्ष बल हानि मल मूत खानि, गहे न गिलानि पगि रहे राग रुखमें ॥३०॥

देहकी चाल कहै हैं ॥ सवैया २३ सा

देह अचेतन प्रेत दरी रज,रेत भरी मल खेतकी क्यारी। व्याधिकी पोट अराधिकी ओट, उपाधिकी जोट समाधिसों न्यारी ॥ रे जिया देह करे सुख हानि, इते परती तोहि

लागत प्यारी । देह तो तोहि तजेगी निदान पै, तूहि तजे क्यों न देहकी यारी ॥ ३८ ॥

दोहा ।

मन प्राणी सद्गुरु कहे, देह रोहकी खानि ।
जर सहन दुख पोषियो, करे मोचकी हानि ॥३९॥

देहका वर्णन करे हैं ॥ सवैया ३१ सा

रेतकीसी गढी कीधो मढि है ममाण कीसी, अन्दर अंधारि जैसी कंदरा है शैल की । ऊपरकी चमक दमक पट भूषणकी, धोके लगी भली जैसी कलि है कनैरकी ॥ औगुणकी उंडि महा भौंडि मोहकी कनोंडि, मायाकी मसूरति है मूरति है मैलकी । ऐसी देह याहीके सनेह याकी संगतिसों, ह्वे रही हमारी मति कोल्हू कैसे बैलकी ॥ ४० ॥ ठौर ठौर रक्तके कुंड केसनिके झुंड, हाडनिसों भरी जैसे थरी है चुरैलकी । थोरेसे धक्काके लगे ऐसे फटजाय मानो, कागदकी पूरी कीधो चादर है चैलकी ॥ सूचे भ्रम वानि ठानि मूढनिसों पहिचानि, करे सुख हानि अरु खानि बद फैलकी । ऐसी देह याहीके सनेह याकी संगतिसों, ह्वै रही हमारी मति कोल्हू कैसे बैलकी ॥४१॥

संसारी जीवकी गति कोल्हूके बैल समान है ॥

सवैया ३१ सा।

पाटी बाधी लोचनोमें सकुचे दबोचनिमें, कोचनीके मोचसों निवेद स्वेद तनको। धाइवोही धधा अरु कधा माहि लग्यो जोत बार बार, आर सह कायर ह्वै मनको ॥ भूख सह प्यास सहै दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उसास लहै छिनको। पराधीन घूमै जैसा कोल्हूको कमेरा बल, तैसोही स्वभाव भया जगवासी जनको ॥ ४२ ॥ जगतमें डोले जगवासी नररूप धरि, प्रेत कैसे दीप कींधो रेत कैसे धूह है। दीसे पट भूषण आडवरसों नीके फिरे, फीके छिन माहि सांझ अंबर ज्यों सूहे है ॥ मोहके अनल दगे मायाकी मनीसों पगे, डाभकी अणीसों लगे ऊस कैसे फूहे हैं। धरमकी बूझि नाहि उरझे भरम माहि, नाचि नाचि मरि जाहि मरी कैसे चूह हैं ॥ ४३ ॥

जगवासी जीवके मोहका स्वरूप कहे हैं ॥

सवैया ३१ सा।

जासु तू कहत यह संपदा हमारी सो तो, साधुनि ये डारी ऐसे जसे नाक सिनकी। तासु तू कहत हम पुन्य जोग पाइ सो तो, नरककी साइ है बड़ाई डढ दिनकी ॥ घेरा माहि परयो तू विचारे सुख आखिनिको, माखिनके चूटत

... होइ न उदासी जगवासी
... एक छिनकी ॥ ४४ ॥

... इनसों तोहि न काज।
... बसे, तामे तेरो राज ॥४५॥

... थिर कैसे होयगा ॥

... विषय कषायमें, बरतै चंचल सोइ।
... मन ध्यान विचारता, रुकेतु अविचल होइ ॥५२॥
... विषय कषायमें, फिरि सुमनकी जाणि।
शुद्धातम अनुभौ विषै, कीजे अविचल आणि ॥५३॥

अथ नवमो मोक्षद्वार प्रारंभ।

परकी संगति जो रचै, बंध बढ़ावे सोय।
जो निज सत्तामें मगन, सहज मुक्त सो होय ॥१९॥
उपजे विनसे थिर रहे, यहु तो वस्तु बखान।
जो मर्यादा वस्तुकी, सो सत्ता परमान ॥२०॥
जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥२५॥
अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध।
परको माने आतमा, करे करमको बंध ॥२६॥

झूठी करणी आचरे, झूठे सुखकी आस।
झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभुको दास ॥२७॥

सवैया ३१ सा।

माटी भूमि सैलकी सो सम्पदा बखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है। अपना न रूप गहे और ही सों आपा कहे, साता तो समाधि जाके असाता कहर है॥ कोपको कृपान लिये मान मद पान किये, मायाकी मरोर हिये लोभकी लहर है। याही भाँति चेतन अचेतनकी संगतिसो, साचसो विमुख भयो झूठमें बहर है॥ २८॥
तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है। तासों कहे यह मेरो दिन यह मेरी घरी, यह मेरो ही पिगोई मेरो ही पहर है॥ खेहको खजानो जोरे तासो कहे मेरा गेह, जहाँ बसे तासों कहे मेरा ही शहर है। याही भाँति चेतन अचेतनकी संगतीसों, साचसों विमुख भयो झूठमें बहर है॥२९॥

दोहा।

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ज्ञानकला घट माहि।
परचे आतमरामसा, ते अपराधी नाहि॥३०॥

सवैया ३१ सा।

जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसै मोह विभ्रम विरख तीनो बढ़े हैं। जिन्हके चितौनि आगे उदै

[illegible] परम रज ज्ञान गज चढ़े हैं ॥
[illegible] आगमसे, आगममें निपुण
[illegible] तेई परमारथी पुनीत नर आठों याम,
[illegible] यह पाठ पढ़े हैं ॥ ३१ ॥

सवैया ३१ सा।

जिन्हके चिहुँटी चिमटागी गुण चुनवेकौं, कुकथाके
सुनिवे कौं दोउ कान मढ़े हैं। जिन्हके सरल चित्त कोमल
वचन बोलें, सौम्यदृष्टि लिये डोलें मोम कैसे गढ़े हैं।
जिन्हके सकति जगी अलख अराधिवेकों, परम समाधि
साधिवेकों मन बढ़े हैं। तेई परमारथ पुनीत नर आठों याम,
राम रस गाढ़ करें यह पाठ पढ़े हैं ॥३२॥

दोहा।

ता कारण जगपथ इत, उत शिव मारग जोर।
परमादी जगकू दुके, अपरमाद शिव ओर ॥४०॥
जे परमादी आलसी, जिन्हके विकलप भूर।
होइ सिथिल अनुभौ विषैं, तिनको शिव पथ दूर ॥४१॥
जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव।
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥४२॥
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतना युक्त।
ते मुनिवर लघुकालमें, होई करमसे मुक्त ॥४३॥

कवित्त।

जैसे पुरुष लखे पहाड चढि, भूचर पुरुष ताहि लघु लग्गे। भूचर पुरुष लखे ताको लघु, उतर मिले दुहुको भ्रम भग्गे ॥ तैसे अभिमानी उन्नत गल, और जीवको लघुपद दग्गे। अभिमानीको कहे तुच्छ सब, ज्ञान जगे समता रस जग्गे ॥ ४४ ॥

सवैया ३१ सा

करमके भारी समुझे न गुणको मरम, परम अनीति अधरम रीति गहे हैं। होइ न नरम चित्त परम गरम हूते, चरमकी दृष्टिसों भरम भूलि रहे हैं ॥ आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर, नायेहू न डोले मानो पाथरके चहे हैं। देखनके हाउ भव पथके रढाऊ ऐसे, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे हैं ॥ ४५ ॥

सवैया ३१ सा।

धीरके धरैय्या भव नीरके तरैय्या भय,-भीरके हरैय्या वरवीर ज्यों उमहे हैं। मारके मरैय्या सुविचारके करैय्या, सुख ढारके ढरैय्या गुण लोंमों लहलहे हैं ॥ रूपके रझैय्या सब नयके समझैय्या सब हीके लघु भैय्या सबके कुबोल सहे हैं। वामके वमैय्या दुख दाम दमैय्या ऐसे, रामके रमैय्या नर ज्ञानी जीव कहे हैं ॥ ४६ ॥

चौपाई

जे गनकिनो जीव समचेती, तिनकी कथा कहू तुम-सेती। जहाँ प्रमाद क्रिया नहिं कोई, निरविकल्प अनुभौ पद सोई ॥ ४७ ॥ परिग्रह त्याग जोग थिर तीनों, करम बंध नहिं होय नवीनो ॥ जहाँ न राग द्वेष रस मोहै। प्रगट मोक्ष मारग मुख सोहै ॥ ४८ ॥ पूरब बंध उदय नहि व्यापै। जहाँ न भेद पुन्य अरु पापै ॥ द्रव्य भाव गुण निर्मल धारा। बोध विधान विविध विसतारा ॥४९॥ जिन्हके सहज अवस्था ऐसी। तिन्हके हिरदै दुविधा कैसी। जे मुनि क्षपक श्रेणि चढ़ि धाये। ते केवल भगवान कहाये ॥ ५० ॥

इति नवमो मोक्षद्वार समाप्त भया ॥ ९ ॥

अथ दशमो सर्वविशुद्धिद्वार प्रारंभ ॥१०॥

सवैया ३१ सा।

काहूसे विचार प्रीति माया ही में हारि जीति, लिये हठ रीति जैसे हारिलकी लकरी। चुगुलकी जोर जैसे गोह गहि रहे भूमि, त्योंही पाय गाड़ै पैं न छोड़ै टेक पकरी ॥ मोहकी मरोरसों भरमको न ठौर पावे, धावे चहुँ ओर ज्यों बढ़ावे जाल मकरी। ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरे ममता जंजीरनिसों जकरी ॥ ३७ ॥ बात

सुनि चौंकि उठे बात ही सौं भौंकि उठे, बातसौं नरम होइ बातहीसौं अकरी। निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी॥ मोच न सुहाइ दोष देखे तहाँ पैठि जाइ, कालसौं डराइ जैसे नाहरसौं बकरी। ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूली फिरै ममता जंजीरनिसौं जकरी॥ ३८॥

दोहा।

यथा सूत संग्रह बिना, मुक्त माल नहिं होय।
तथा स्यादवादी बिना, मोच न साधे कोय॥४०॥

सवैया ३१ सा।

वेद पाठी ब्रह्म माने निश्चय स्वरूप गहे, मीमांसक कर्म माने उदमें रहतु है। बौद्धमती बुद्ध माने सूक्षम सुभाव साधे, शिवमति शिवरूप कालको कहतु है॥ न्याय ग्रंथके पढ़ैया थापे करतार रूप, उद्यम उदीरि उर आनँद लहतु है। पाँचो दरसनि ते तो पोषे एक एक अंग, जैनी जिन पंथि सरवंगि नै गहतु है॥ ४३॥

दोहा।

कुब्जा कारी कूबरी, करे जगतमें खेद।
अलख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद॥७२॥

सवैया ३१ सा।

कुमति कुरूप अग लगी है पराये सग, अपनो प्रमाण करि आपहि बिकाइ है। गहै गति अंधकीसी, सकति कमंधकीसी बंधको बढ़ाउ करे धंधहीमें धाइ है॥ रांडकीसी रीत लिये मांडकीसी मतवारि, सांड ज्यों सुछन्द डोले भांडकीसी जाइ है। घरको न जाने भेद करै पराधीन खेद, याते दुरबुद्धि दासी कुबजा कहाई है॥ ७३॥ रूपकी रसीली भ्रम कुलपकी कीली शील, सुधाके समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है। प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदानकी, सुराचि निरवाची ठौर साची ठकुराई है॥ धामकी खबरदार रामकी रमन हार, राधा रस पथनिके ग्रथनिमें गाई है। संतनकी मानी निरवानी नूरकी निसानी, याते सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है॥ ७४॥

दोहा।

वह कुब्जा वह राधिका, दोऊ गति मति मान।
वह अधिकारी कर्मकी, वह विवेककी खान॥७५॥
कर्म चक्र पुद्गल दशा, भावकर्म मतिवक्र।
जो सुज्ञानको परिणमन, सो विवेक गुणचक्र॥७६॥

कवित्त।

जैसे नर खिलार चोपरिको, लाभ विचारि करै चितचाव। धरै सवारि सारि बुधिबलसों, पासा जो कुछ परै

सुदान ॥ तैसे जगत जोव स्वारथको, करि उद्यम चिंतवे उपाव । लिख्यौ ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही स्वभाव ॥ ७७ ॥ जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब सतरंजकी घात । चले चाल निरखे दोऊ दल, मुहरा गिणे विचारे मात ॥ तैसे साधु निपुण शिव पथमें, लक्षण लखे तजें उतपात । साधे गुण चिंतवे अभयपद, यह सुविवेक चक्रकी बात ॥ ७८ ॥

दोहा ।

ज्ञानवंत अपनी कथा, कहे आपसों आप ।
मैं मिथ्यात दशाविषै, कीने बहुविध पाप ॥८९॥

सवैया ३१ सा ।

हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताई, तातैं हम करुणा न कीनी जीव घातकी । आप पाप कीने औरनिकों उपदेश दीने हुति अनुमोदना हमारे याही बातकी । मन वच कायामें मगन ह्वै कमायो कर्म, धाये भ्रम जालमें कहाये हम पातकी । ज्ञानके उदयते हमारी दशा ऐसी भई, जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ९० ॥

सवैया ३१ सा ।

ज्ञान भान भासत प्रमाण ज्ञानवंत कहे, करुणानिधान अमलान मेरा रूप है । कालसौं अतीत कर्म चालसौं अभीत जोग, जालसौं अजीत जाकी महिमा अनूप है ॥

मोर्न्ही [illegible] तो, नगतमा शून्य पाप [illegible] पाप जिन जिये वोन करे करि है [illegible], [illegible] विचार सुपने की ठौर भूप है ॥ ९१ ॥ [illegible] मर्म महा मोह राजा बसे, करणी अज्ञान [illegible] पुरी है। करणी करम काया पुद्गलकी [illegible] करणी प्रगट माया मिसरीकी सुरी है ॥ [illegible] उरझि रह्यो चिदानन्द, करणीकी ओट [illegible] ज्ञान दुति दुरी है। आचारज कहे करणीमें व्यवहारी [illegible] करणी मदन निहचै स्वरूप दुरी है ॥ ९६ ॥ भेषमें [illegible] ज्ञान नहि ज्ञान गुरु वर्तनमें, मन्त्र जन्त्र गुरु तन्त्रमें न [illegible] कहानी है। ग्रन्थमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि चातुरीमें, [illegible] ज्ञान नहीं ज्ञान कहा बानी है ॥ तातें भेष गुरुता [illegible] मन्त्र बात इनतें अतीत ज्ञान चेतना निशानी है। ज्ञानहीमें ज्ञान नहीं ज्ञान और ठौर कहूँ, जाके घट ज्ञान सोही ज्ञानकी निदानी है ॥ १११ ॥ भेष धरि लोक-[illegible] सो धरम ठग, गुरु सो कहावें गुरुवाई जाके चहिये। मन्त्र तन्त्र साधक कहावें गुणी जादूगर, पंडित कहावे पंडिताई जामें लहिये ॥ कवित्तकी कलामें प्रवीण सो कहावे कवि, बात कहि जाने सो पवारगीर कहिये। एते सब विषैके भिखारी मायाधारी जीव, इनका विलोकिके दयालुरूप रहिये ॥ ११२ ॥

चौपाई ।

गुण पर्याय॰ न दीजै, निर्विकल्प अनुभव रस पीजै ॥ आप म॰ आपमें लीजै । तनुपा मेटि अपनपो कीजै ॥ ११६ ॥

दोहा ।

तज विभाव ह्न मगन, शुद्धातम पद माहि ।
एक मोक्ष मारग यहै, और दूसरो नाहि ॥११७॥

सवैया ३१ सा ।

केई मि पादृष्टि जीव धरे जिन मुद्रा भेष क्रियामें मगन रहे रहे हम यती हैं । अतुल अखंड मल रहित सदा उद्योत, एम ज्ञान भावसों विमुख मूढ मती हैं । आगम सभाल दोप टालें व्यवहार भाल, पाल व्रत यद्यपि तथापि अविरती हैं । आपको कहावें मोक्षमारगके अधिकारी, मोक्षसे सदैव रुष्ट दुष्ट दुरगती हैं ॥ ११८ ॥

इति दशमो सर्वविशुद्धिद्वार समाप्त भया ॥ १० ॥

अथ ग्यारहमो साध्य साधक द्वार प्रारंभ ॥१२॥

सवैया ३१ सा ।

चेतनजी तुम जागि विलोकहु, लागि रहे कहाँ मायाके ताईं । आये कहींसों कहीं तुम जाहुगे, माया रहेगी जहाँके तहाँई ॥ माया तुमारी न जाति न पाति न,

देति न आपकी छांह । दासि किये निज लातनि मारत, ऐसी अनीति न जात गुमाई ॥ ५ ॥

दोहा ।

माया छाया एक है, घटै बढ़ै छिन माहि ।
इनकी संगति जे लगे तिन्हें कहूँ सुख नाहि ॥६॥

सवैया २३ सा ।

लोकनिसों कछु नातो न तेरो, न तोसो कछु इह लोकको नातो । ते तो रहे रमि स्वारथके रस, तू परमारथके रस मातो ॥ ये तनसों तनमें तनसे जड, चेतन तू तनसों नित हातो । होहि सुखी अपनो बल फेरिकै, तोरिकै राग विरोधको तातो ॥ ७ ॥

सोरठा ।

जे दुर्बुद्धि जीव, ते उत्तग पदवी चहै ।
जे समरसी सजीव, तिनको कछु न चाहिये ॥८॥

सवैया ३१ सा ।

हासीमें विषाद वसे विद्यामें विवाद वसे, कायामें मरण गुरु वर्तनमें हीनता । शुचिमें गिलानि वसे प्रापतीमें हानि वसे, जयमें हारि सुन्दर-दशामें छवि छीनता ॥ रोग वसे भोगमें संयोगमें वियोग वसे, गुणमें गरब वसे सेवा मांहि दीनता । और जग रीत जेती गर्भित असाता तेति, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥ ९ ॥

दोहा।

जो उत्तम चढ़ि फिर पतन, नाहिं उत्तम वह रूप।
जो सुख अंतर भय बसे, सो सुख है दुखरूप ॥१०॥
जो विलसे सुख सपना, गये तहाँ दुख होय।
जो धरती बहु तृणवती, जरे अग्निसे सोय ॥११॥

पाच प्रकारके जीव।

दोहा।

इ धा प्रभु च धा चतुर, सुधा रोचक शुद्ध।
ऊधा दुर्बुद्धि विकल, घृधा घोर अशुद्ध ॥१६॥
जाकी परम दशा स्विंप, कर्म कलङ्क न होय।
इ धा अगम अगाध पद, वचन अगोचर सोय ॥१७॥
जो उदास ह्वै जगतसों, गहे परम रस प्रेम।
सो च धा गुरुके वचन, च धे बालक जेम ॥१८॥
जो सुवचन रुचिसा सुने, हिये दुष्टता नाँहि।
परमारथ समुझे नहीं, सो सुधा जगमाहि ॥१९॥
जाको विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट।
सो विषयी दुखसे विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥२०॥
जाके वचन श्रवण नहीं, नहिं मन सुरति विराम।
जडतासो जडवत भयो, घृधा ताको नाम ॥२१॥

चौपाई।

ज्यों गिद्ध कहै मद कोऊ। त्यों ज्यों मूरख दोऊ॥
त्यों घोर विकल ममारी। त्यों जीव मोक्ष अधिकारी॥२२॥

दोहा।

ज्यों साधक मोक्षको, करै दोष दुख नाश।
लहै पोष संतोषमों, वरनौं लक्षण तास ॥२३॥
कृपा प्रशम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग।
ये लक्षण जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग ॥२४॥

चौपाई।

जूआ आमिष मदिरा दारी। आखेटक चोरी परनारी॥
यह सप्त व्यसन दुखदाई। दुरित मूल दुर्गतिके भाई। २५॥

सवैया-३१ सा।

अशुभमें हारि शुभ जीति यहै द्यूतकर्म, देहकी मगनताई यहै मांस भखिवो। मोहकी गहलसों अजान यहै सुरा पान, कुमतीकी रीत गणिकाको रस चखिवो॥ निर्दय ह्वै प्राण घात करवो यहै शिकार, परनारी संग पर बुद्धिको परखिवो। प्यारसों पराई सौंज गहिवेकी चाह चोरी, एई सातो व्यसन विडारे ब्रह्म लखिवो॥ २७॥

इति श्री अमृतचंद्राचार्यानुसार समयसारनाटक-समाप्त॥

अथ चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारम्भ।

सवैया ३१ सा।

केई जीव समकित पाई अर्ध पुद्गल, परावर्तकालताई चोखे होई चित्तके। केइ एक अंतर महूरतमें गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदै मोक्ष वित्तके॥ ताते अंतर महूरत सा अर्ध पुद्गललों, जेते समय होहिं तेते भेद समकितके। जाहि समै जाको जब समकित होइ सोइ, तबहीसों गुण गहे दोष दहे इतके॥ २८॥

चौपाई।

सत्य प्रतीति अवस्था जाकी। दिन दिन रीति गहै समताकी। छिन छिन करे सत्यको साको। समकित नाम कहावे ताको॥ २९॥

दोहा।

आपा परिचे निज विषें, उपजे नहिं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह॥ ३०॥
सो तो सहज स्वभावके उपदेशे गुरु कोय।
चहुँगति सैनी जीवको, सम्यग्दर्शन होय॥ ३१॥

आपा परिचै निज विषै, उपजै नहि सन्देह ।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण येह ॥२९॥
करुणा वत्सल सुजनता, आतम निंदा पाठ ।
समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥३०॥
चित प्रभावना भावयुत, हय उपादे वाणि ।
धीरज हरख प्रवीणता, भूषण पंच बखाणि ॥३१॥
अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष ।
तीन मूढ़ता संयुक्त, दोष पचीसौं एष ॥३२॥
जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार ।
इनको गर्व न कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार ॥३३॥
ज्ञान गर्व मति मंदता, निष्ठुर वचन उद्गार ।
रुद्रभाव आलस दशा, नाश पंच परकार ॥३७॥
लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव ।
मिथ्या आगमकी भगति, मृषा दर्शनी सेव ॥३८॥

सवैया ३१ सा ।

चारित्र मोहकी चार मिथ्यातकी तीन तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी । बीजी महा मान रस भीजी मायामयी तीजी चौथे महा लोभ दशा परिग्रह पोहनी ॥ पांचवी मिथ्यातमति छटी मिश्र परणति, सातवी समै प्रकृति समकित मोहनी । येई षट विंग वनितासी एक कुतियासी, सातो मोह प्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥४१॥

छप्पय ।

सात प्रकृति उपशमहि, जासु सो उपशम मंडित ।
सात प्रकृति क्षय करनहार, चायिकी अखंडित ॥
सात माहि कछु खपै कछुक उपशम करि रक्खे ।
सो चय उपशमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे ॥
षट प्रकृति उपशमै वा खपै, अथवा चय उपशम करे ।
सातई प्रकृति जाके उदै, सो वेदक समकित धरे ॥५३॥

श्रावकके २१ गुण ।

सवैया ३१ सा ।

लज्जावंत दयावंत प्रसन्न प्रतीतवंत, पर दोषको ढकया पर उपकारी है । सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबको इष्ट, सिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है ॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है । सहज विनीत पाप क्रियासों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुणधारी है ॥५४॥

बाईस अभक्ष्यके नाम ।

ओरा घोरवरा निशिभोजन, बहुबीजा बैंगण संधान ।
पीपर बड़ ऊमर कटूमर पाकर जो फल होय अजान ॥
कंदमूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरा पान ।
फल अति तुच्छ तुषार चलितरस, जिनमत ये बाईस बखान ॥५५॥

प्रतिमा और प्रतिमाके भेदोंके लक्षण।

दोहा।

संयम अंश जग्यो जहाँ, भोग अरुचि परिणाम।
उदय प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताको नाम ॥५८॥
आठ मूलगुण संग्रहे, कुव्यसन क्रिया न होय।
दर्शन गुण निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोय ॥५९॥
पंच अणुव्रत आदरे, तीन गुणव्रत पाल।
शिक्षाव्रत चारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल ॥६०॥
द्रव्य भाव विधि संयुकत, हिये प्रतिज्ञा टेक।
तजि ममता समता गहे, अंतर्मुहूरत एक ॥६१॥

चौपाई।

जो अरि मित्र समान विचारे। आरत रौद्र कुध्यान निवारे ॥ संयम सहित भावना भावे। सो सामाइकव्रत कहावे ॥ ६२ ॥

दोहा।

प्रथमहि सामायिक दशा, चार पहरला होय।
अथवा आठ पहर रहै, प्रोसह प्रतिमा सोय ॥६३॥
जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥६४॥

चौपाई ।

जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले । तिथि आये निशि दिवस सम्हाले ॥ गहि नव वाडि करे व्रत रख्या । सो षट् प्रतिमा श्रावक आख्या ॥ ६५ ॥ जो नव वाडि सहित विधि साधे । निशि दिन ब्रह्मचर्य आराधे ॥ सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता । सील शिरोमणि जगत विख्याता ॥ ६६ ॥

दोहा ।

जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ ।
सो अष्टम प्रतिमाधनी, कुगति विजै रणथंभ ॥६८॥

चौपाई ।

जो दशधा परिग्रहको त्यागी । सुख सतोष सहज वैरागी ॥ समरस सचित किंचित ग्राही । सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ६९ ॥

दोहा ।

परका पापारंभको, जो न देइ उपदेश ।
सो दशमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेश ॥७०॥

चौपाई

जो स्वच्छंद वरते तजि डेरा । मठ मंडपमें करे बसेरा ॥ उचित आहार उदंड विहारी । सो एकादश प्रतिमा धारी ॥ ७१ ॥

दोहा।

षट प्रतिमाताईं जघन्य, मध्यम नव पर्यंत।
उत्कृष्ट दसमी ग्यारवीं, इति प्रतिमा विरतंत ॥७३॥

सवैया ३१ सा।

मांसकी गरंथि कुच कंचन कलश कहै, कहै मुख चंद जो सलेषमाको घर है। हाड़के दशन आहि हीरा मोती कहै ताहि, मांसके अधर ओंठ कहै बिंब फल है॥ हाड दंड भुजा कहै कौल नाल काम जुधा, हाडहीके थंभा जंघा कहै रंभा तरु है। यौंही झूठी जुगति बनावै औ कहावै कवि, एतै पर कहै हमें शारदाको वर है॥ १८॥

दोहा।

घटघट अंतर जिन बसै, घटघट अंतर जैन।
मतमदिराके पानसों, मतवाला समुझै न ॥३७॥

❀ इति सम्पूर्ण ❀

❀ बनारसीविलास ❀

(पं० बनारसीदासजी)

सवैया ३१ सा।

जामें सदा उतपात रोगनिसों छीजै गात कछू न उपाय छिन छिन आउ खपनो। कीजे बहुपाप और

नरक दुख चिंता व्याप आपदा कलापमें विलाप ताप तपनो ॥ जामें परिग्रहको विषाद मिथ्या बकवाद विषै भोग सुख है सवाद जैसो सपनो । ऐसो है जगतवास जैसो चपला विलास जामें तू मगन भयो त्यागि धर्म अपनो ॥ १ ॥ जगमें मिथ्याती जीव भ्रम करै है सदीव भ्रमके प्रवाहमें बहा है आगे बहेगा । नाम राखिवेको महारंभ करै दंभ करै यो न जाने दुर्गतिमें दुख कौन सहेगा ॥ बारबार कहै मैं ही भागवत धनवत मेरा नाम जगतमें सदाकाल रहेगा । याही ममतासौं गहि आयो है अनन्त नाम आगे योनि योनिमें अनंत नाम गहेगा ॥ २ ॥

सवैया २३ सा ।

मात पिता सुत बन्धु सखी जन मीत हितू सुख कामिन कीके । सेवक साजि मतंगज बाजि महादल साजि रथी रथ नीके ॥ दुर्गति जाय दुखी बिललाय परै सिर आय अकेले ही जीके । पंथ कुपंथ सुगुरु समझावत और सगे सब स्वारथहीके ॥ ३ ॥

सवैया ३१ सा ।

ये ही है कुगतिकी निदानी दुख दोष दानी, इन हीकी संगतिसौं संगभार बहिये । इनकी मगनतामों विभोको

निशा दोर इन हाकी गीतिमा अनीति पथ गहिये ॥
व ी तप मानसे स्तर दराचार धारै, इन ही सी तपत
निवेत भ्रम गहिर। ने ही इन्द्री सुमट इनहि जीत सोई
पाई इन्द्र मिलाती सो तो महापापी कहिये ॥ ४ ॥
मीनस धर्म गृह त्यागके करया निधि, गीनिके मधेपा
पर किरो अहूटे हैं। निवाक अम्यामी गिरिकद्राके
पाम सुनि, अगके अचागी हितकारी वन छूटे हैं। आग
पथ पाठी मन लाए महाकाठी भारी, कष्टके महनहार
गमाई मा स्ठ हैं। इत्यादिक जीव मय कारज फगत गीते,
इन्द्रियनके जीते विना मत अग झूठे हैं ॥ ५ ॥ धर्म तरु
भननको महामत्त कुनरसे, आपदा मपडारके भरनको
करोरी हैं। मत्यशील रोकवेको पौढ़ मरदार जैसे, दुर्गतिका
मारग चलायवेको धोरी है ॥ कुमतिके अधिकारी कुनय
पथके विहारी, भद्र भाव इंधन जरायवेको होरी हैं। मृषाके
सहाइ दुर्भावनाके भाई ऐसे, विषयाभिलाषी जीव अघक
अघोरी हैं ॥ ६ ॥

प० वनारसादासनी वनारसीविलास म कहते हैं।

मत्तगयन्द (सवैया)

ज्यों मतिहीन विवेक विना नर, साजि मतङ्गज इंधन ढोवै। कचन भाजन धूल भरै शठ, मूढ़ सुधारसमों

पगधोवै ॥ वाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै । ज्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि' पाय अजान अकारथ खोवै ॥ ७ ॥

कवित्तमात्रिक (३१) मात्रा ।

ज्यों जरमूर उखारि कल्पतरु, बोवत मूढ़ कनकको खेत । ज्यों गजराज वेच गिरिवर सम, क्रूर कुबुद्धि मोल खर लेत ॥ जैसे छाडि रतन चिन्तामणि, मूरख काचखंड मन देत । तैसे धर्म विसार 'बनारसि' धावत अधम विषय-सुखहेत ॥ ८ ॥

सोरठा ।

ज्यों जल बूडत कोय, वाहन तज पाहन गहै ।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छाडि सेवत विषय ॥ ९ ॥

सवैया ।

प्रशमको अहित अधीरजको बाल हित, महामोह-राजाकी प्रसिद्ध राजधानी है । भ्रमको निधान दुरध्यानको विलासवन, विपतको थान अभिमानकी निशानी है ॥ दुरितको खेत रोग शोग उतपति हेत, कलहनिकेत दुरगतिको निदानी है । ऐसो परिग्रह भोग मगनको त्याग जोग, आतम गवेषीलोग याही भाँति जानी है ॥ १० ॥

(५) पदपंक्ति (३) राग रामकली।

चेतन तू तिहुँकाल अकेला,

नदी नाव संजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटुंबका मेला, चेतन०॥टेक॥
यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला।
सुख संपति शरीर जलबुदबुद, विनशत नाहीं वेला, चेतन०॥१॥
मोह मगन आतमगुन भूलत, परी तोहि गलजेला।
मैं मैं करते चहुँ गति डोलत, बोलत जैसे छेला, चेतन०॥२॥
कहत बनारसि मिथ्यामत तज, होय सुगुरुका चेला।
तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला, चेतन०॥३॥

(६) राग विलावल।

ऐसें क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्रानी।
जैसें निरख मरीचिका, मृग मानत पानी॥ऐसें०॥१॥
ज्यों पकवान चुरैलका, विषयारस त्यों ही।
ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यों ही॥ऐसे०॥२॥
देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी।
भाषा मनसा करमकी, तैं निजकर जानी॥ऐसें०॥३॥
नाव कहावति लोककी, सो तौ नहिं भूलै।
जाति जगतकी कलपना, तामें तू झूलै॥ऐसें०॥४॥
माटी भूमि पहारकी, तुह संपति सूझै।
प्रगट पहेली मोहकी, तू तऊ न बूझै॥ऐसें०॥५॥

तैं कबहूँ निज गुणनिपै, निजदृष्टि न दीनी।
पराधीन परवस्तुमें, अपनायत कीनी ॥ ऐसैं० ॥ ६ ॥
ज्यों मृगनाभि सुवास सों, ढूंढत वन दौरे।
त्यों तुझमें तेरा धनी, तू खोजत और ॥ ऐसैं० ॥ ७ ॥
करता भरता भोगता, घट सो घटमाहीं।
ज्ञान बिना सद्गुरु बिना, तू समुझत नाहीं ॥ ऐसैं ॥ ८ ॥

(११) राग धनाश्री।

चेतन उलटी चाल चले।

जड़संगतैं जड़ता व्यापी निजगुन सकल टले ॥ चेतन० टेक ॥ १ ॥ हितसों विरचि ठगनिसों राचे, मोह पिसाच छले। हँसि हँसि फंद सवारि आपही, मेलत आप गले ॥ चेतन० ॥ २ ॥ आये निकसि निगोद सिंधुतें, फिर तिह पथ टले। कैसें परगट होय आग जो दबी पहारतले ॥ चेतन० ॥ ३ ॥ भूले भवभ्रम बीचि 'बनारसि' तुम सुरज्ञान भले। धर शुभध्यान ज्ञाननौका चढ़ि, बैठे ते निकले ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

समाधिमरण

(कविवर सूरचन्दकृत 'बड़ा समाधिमरण')

वन्दौं श्रीअरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥

[illegible] तुमसे, कर समाधि उर माहीं ।
[illegible] मांगूं, सो दीजे जग राई ॥१॥

[illegible] मैं, भव भव शुभ सँग पायो ।
[illegible] रिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥
[illegible] पुरुष तनो धर, नारी हू तन लीनो ।
[illegible] सम्यक, आतम गुन नहि चीनो ॥२॥

[illegible] सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे ।
[illegible] गति नरकतनी धर, दुख पाये विधियोगे ॥
भव भवमें तिर्यच योनि धर, पायो दुख अतिभारी ।
भव भवमें साधर्मी जनको, संग मिल्यो हितकारी ॥३॥

भव भवमें जिन पूजन कीनी, दान सुपात्र हि दीनो ।
भव भवमें मैं समवसरनमें, देख्यो जिन गुन भीनो ॥
एती वस्तु मिली भव भवमें, 'सम्यक' गुन नहि पायो ।
ना समाधि युत मरन कियो मैं, तातैं जग भरमायो ॥४॥

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कु मरन हि कीनो ।
एक बारहू 'सम्यक' युत मैं, निज आतम नहिं चीनो ॥
जो निज परको ज्ञान होय तो, मरन समय दुख कोई ।
देह विनाशी, मैं निज भासी, जोति-सरूप सदाई ॥५॥

विषय कषायनके वश ह्वैकैं, देह आपनो जान्यो ।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो ॥

यों क्लेस हिय धार मरन करि, चारों गति भरमायो।
सम्यकदर्शन ज्ञान चरन ये, हिरदेमें नहिं लायो ॥६॥
अब यह अरज करूँ प्रभु सुनिये मरन समय यह माँगों।
रोगजनित पीडा मत होवो, अरु कषाय मत जागो ॥
ये मुझ मरन समय दुख-दाता, इन हर, साता कीजै।
जो समाधि-युत मरन होय मुझ, अरु मिथ्या गद छीजै ॥७॥
यह तन सात कुधात मयी है, देखत ही घिन आवै।
चर्म-लपटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै ॥
अति दुर्गन्ध अपावन सा, यह मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनाशी, जिय अविनासी, नित्य सरूप कहावै ॥८॥
यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, यातैं प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिले जब भाई, तब यामें क्या छीजै ॥
मृत्यु होनसे हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समतासे जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो ॥९॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसरके माहीं।
जीरन तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं ॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव ही अति कीजै।
क्लेश-भावको त्याग सयाने, समता भाव धरीजै ॥१०॥
जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावे, स्वर्ग सम्पदा भाई ॥

राग-द्वेषको छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समयमें समता धारो, परभव पंथ सहाई ॥११॥
कर्म महादुठ बैरी मेरो, ता सेती दुख पावै।
तन पिंजरमें बन्द कियो मोहि यासों कौन छुड़ावै ॥
भूख-तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तनमें गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दया कर, तन पिंजरसों काढ़े ॥१२॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तनको पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षटरस असन कराये ॥
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रही निधि मेरी ॥१३॥
मृत्युरायको शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यक्-रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जग माहीं।
मृत्यु समयमें ये ही परिजन, सबही हैं दुखदाई ॥१४॥
यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुरगति दाता।
इनसे मोह निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता ॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पति तेती ॥१५
चौ आराधन सहित प्रान तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग-मुकतिमें जावो।

मृत्यु-कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझार ।
ताको पाय क्लेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥१६॥
इस तनमें क्या राचै जियरा, दिन दिन जीरन होहै ।
तेज-कान्ति-बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है ।
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, साँस शुद्ध नहिं आवै ।
तापर भी ममता नहिं छाँड़े, समता उर नहिं लावै ॥१७॥
मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावै ।
नातर या तन बन्दीगृहमें, पड़ौ-पड़ौ बिललावै ॥
पुद्गलके परमानू मिलकें, पिण्डरूप तन भासी ।
ये तो मूरत, मैं हूँ अमूरत, ज्ञान जोति गुन रासी ॥१८॥
रोग शोक आदिक जे वेदन, ते सब पुद्गल लारे ।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे ॥
या तनसों इस क्षेत्रसँबन्धी, कारन आन बन्यो है ।
खान पान दे याको पोस्यो, अब सम-भाव ठन्यो है ॥१९॥
मिथ्यादर्शन, आत्म ज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो ।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहि पिछान्यो ॥
तन बिनसनतें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई ।
कुटुम आदिको अपनो जान्यो, भूल अनादी छाई ॥२०॥
अब निज भेद जथारथ समझो, मैं हूँ जोति सरूपी ।
उपजै बिनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी ॥

इष्टानिष्ट जेते दुख-सुख हैं, सो सब पुद्गल सागे।
मैं जब अपना रूप विचारों तब वे सब दुख भागे ॥२१॥
बिन समता तनऽनन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो।
शस्त्र घाततैंऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो।
बार अनन्त हि अग्नि माहि जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ, नाना दुक्ख दिखायो॥२२॥
बिन समाधि ये दुक्ख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्यु-राजको भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई॥
यातें जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप तप कीजै।
जप तप बिन इस जगके माहीं, कोई भी नहि सीजै ॥२३॥
स्वर्ग-सम्पदा तपसों पावे, तपसों कर्म नसावै।
तप ही सों शिव कामिनि पति ह्वै, यासों तप चित लावै॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहि सहाई।
मात पिता सुत-बान्धव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥२४॥
मृत्यु समयमें मोह करें ये, तातें आरत हो है।
आरततें गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है॥
और परिग्रह जेते जगमें, तिनसों प्रीत न कीजै।
परभवमें ये संग न चालें, नाहक आरत कीजै॥२५॥
जे जे वस्तु लसत हैं, ते पर, तिनसों नेह निवारो।
पर-गति में ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो॥

जो परभवमें सग चलै तुझ, तिनमों प्रीत सु कीजे।
पच पाप तज, ममता धारो, दान चार विध दीजे ॥२६॥
दशलक्षण-मय धर्म धरो हिय, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो॥
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रातको त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, सयमसों अनुरागो ॥२७॥
अन्त समय में यह शुभ भाव हि, होवें आन सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाके।
जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाके ॥२८॥
मन थिरता करके तुम चिन्तो, चौ आराधन भाई।
ये ही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोउ नाहीं॥
आगें बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥२९॥
तिनमें कछुइक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाके।
भावसहित अनुमोदे जो जन, दुर्गति होय न ताके॥
अरु समता निज उरमें आवे, भाव अधीरज जावे।
यों निश दिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये बिच लावे ॥३०॥
धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक स्यालिनी जुग बच्चा-जुत, पाँव भख्यो दुखकारी॥

यह उपसर्ग सह्यो धरि थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३१॥

धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्रीने तन खायो।
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहि आतमसों हित लायो ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३२॥

देखो गजमुनिके सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीस जले जिम लकडी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३३॥

सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ठ वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुन आपी ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३४॥

श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तब 'जिन' नाम चितारो।
धर सल्लेखना परिग्रह छोड्यो, शुद्ध भाव उर धारो ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३५॥

समंतभद्र मुनिवरके तनमें, क्षुधा-वेदना आई।
ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यो निज गुन भाई ॥

यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३६॥
ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौसाम्बी तट जानो।
नदीमें मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३७॥
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो।
एक मासकी कर मर्यादा, तृषा-दुक्ख सह गाढ़ो॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३८॥
श्रीदत्त मुनिको पूर्व-जन्मका, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो जो, सह्यो साधु मन लाके॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥३९॥
वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरो मन लाई।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवनकी, वेदन सहि अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४०॥
अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महा वेदना पाई।
वैरी चण्डने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई॥

यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुम रे जिय कौन दुखम है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४१
[illegible] बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी।
[illegible] प्राण तज तिन, धन्य और बड़भागी ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४२
[illegible] नामा मुनिको, वैरीने तन घाता।
मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुन राता ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी ॥४३
दंडक नामा मुनिकी देही, वानन कर अरि भेदी।
ता पर नेक डिगे नहिं व मुनि, कर्म-महारिपु छेदी ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४४
अभिनन्दन मुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे।
तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरब कर्म विचारे ॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४५
चाणक मुनि गौघरके माहीं, मूद अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर सम भाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो ॥

यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४६॥
मात शतक मुनिवर दुख पायो, हथिनापुरमें जानो।
बलि ब्राह्मण-कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४७॥
लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये।
पाँचों पाण्डव मुनिके तनमें, तौ भी नाहिं चिगाये॥
यह उपसर्ग सह्यो, धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुक्ख है, मृत्यु महोत्सव भारी ॥४८॥
और अनेक भये इस जगमें, समता-रसके स्वादी।
वे ही हमकों हों सुखदाता, हरिहैं टेव प्रमादी॥
सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारा।
ये ही मोकों सुखकी दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥४९॥
यों समाधि उर माहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तजि ममता अरु आठों मदको, जोति सरूपी ध्यावो॥
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तरके काज।
सो भी सगुन विचारै नीके, शुभके कारन साजै ॥५०॥
मात पितादिक सर्व कुटुम मिलि, नीके सगुन बनावें।
हलदी धनिया पुङ्गी अक्षत, दूध दही फल लावें॥

मद क्रम आगम दागन, कर शुभाशुभ सार।
तब घर गतिसे करउ पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे॥५१॥
गत रजन तर रोग लागे, तोहि रुलावें मार।
त नाणमन तें सुर तोका, तू यों क्या न विचारे॥
... तासे नालन विरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
राश पावन आराधो, मोह-तनो दुख हानो॥५२॥
हो निःशल्य तजो मन दुविधा, आतम राम सुध्यानो।
अब परगतिसे करहु पयानो, परम-तत्त्व उर लानो॥
मोह-जालको काटो प्यारे, अपनो रूप, विचारो।
मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो॥५३॥

"मृत्यु महोत्सव पाठ' को, पढ़ें-सुनें बुधिवान,
सरधा धर नित सुख लहैं, 'सूरचन्द' शिव थान।
पच उभय नव एक शुभ, संवत सो सुखदाय,
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय।

समाप्तम्।

बारह भावना प्रकरण

बारह भावना बुधजनकृत।

गीता छन्द।

जेती जगतमें वस्तु तेती अथिर परणमती सदा।
परणमन राखन नाहि स ... सदा॥

सुत नारि यौवन और तन धन जान दामिनि दमकसा।
ममता न कीजे धारि समता मानि जलमें नमकसा ॥१॥
चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहै।
सो रहै आप करार माफिक अधिक राखे ना रहैं॥
अब शरण काकी लेयगा जब इन्द्र नाहीं रहत हैं।
शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनिजन गहत हैं॥२॥
सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्म चेरे बन रहे।
सुख शासता नहि भासता सब विपतिमें अतिमन रहे॥
दुख मानसी तो देवगतिमें नारकी दुख ही भरै।
तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकटमें जरै॥३॥
क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकर थोकको।
लाया कहाँ ले जायगा क्या फौज भूषण रोकको॥
जनमत मरत तुझ एकलेको काल केता हो गया।
सँग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया॥४॥
इन्द्रीनतैं जाना न जावै तू चिदानंद अलख है।
स्वसंवेदन करत अनुभव होत तब प्रत्यक्ष है॥
तन अन्य जड़ जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है।
कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज और बात असत्य है॥५॥
क्या देख राचा फिरै नाचा रूप सुन्दर तन लहा।
मलमूत्र भाडा भरा गाढ़ा तू न जानै भ्रम गहा॥

क्यों राग नाहीं रोग आतुर क्यों न चातुरता धरै।
तुहि पात गजर ताहि अर्थै छोड़ तुमको गिर परै ॥६॥
कोइ राग कोइ बुरा नहि, वस्तु विविध स्वभाव हैं।
त वृथा विकलप ठान उरमें करत राग उपाव है ॥
य भाव आस्रव बनत तू ही द्रव्य आस्रव सुन कथा।
तुझ हेतुसे पुद्गल कर्म न निमित्त हो दते व्यथा ॥७॥
तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुरु शरणा लिया।
सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया ॥
इन्द्री अनिन्द्री दाबि लीनी त्रस रु थावर बँध तजा।
तब कर्म आस्रव द्वार रोकै ध्यान निजमें जा सजा ॥८॥
तब शल्य तीनों वरत लीनों बाह्यभ्यंतर तप तपा।
उपसर्ग सुर नर जड़ पशुकृत सहा निज आतम जपा ॥
तब कर्म रस बिन होन लागे द्रव्यभावन निर्जरा।
सब कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा ॥९॥
विच लोक नंतालोक माहीं लोकमें द्रव सब भरा।
सब भिन्न भिन्न अनादि रचना निमितकारण की धरा ॥
जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्मनाशा सुन गिरा।
सुर मनुष तिर्यंक नारकी हुइ ऊर्ध्व मध्य अधो धरा ॥१०॥
अनंतकाल निगोद अटका निकस थावर तनधरा।
भू-वारि तेज-बयार ह्वैकै बेइंद्रिय त्रस अवतरा ॥

फिर हो ति इद्री वा चौइद्री पचेंद्री मनबिन घना।
मनयुत मनुपगतिहोन दुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना ॥११॥
निय । न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा।
तन नग्न रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तपतपा॥
वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि बिन सब निष्फला।
बुधजन धरम निज धार लीना तिनहिं कीना सब भला ॥१२॥

दोहा।

अथिराशरण संसार है, एकत्व अनित्यहि जान।
अशुचि आस्रव संवर, निर्जर लोक बखान ॥१३॥
बोधरुदुर्लभ धर्म ये, बारह भावन जान।
इनको भावै जो सदा, क्यों न लहै निर्वान ॥१४॥

इति श्री बुधजनकृत बारह भावना समाप्त।

बारहभावना जयचंदजीकृत।

दोहा।

द्रव्यरूपकरि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नयकरि गौन ॥१॥
शुद्धातम अरु पंच गुरु, जगमें सरनौ दोय।
मोह उदय जियके वृथा, आन कल्पना होय ॥२॥
परद्रव्यनतैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चारमें, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध॥३।

परमारथ आतमा, एक रूप ही जोय।
कर्मनिमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥४॥
अपने अपने सत्वकू, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवे जीव तब, परते ममत न थाय ॥५॥
निर्मल अपनो आतमा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निज भावको, यामों तजो सनेह ॥६॥
आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार ॥७॥
निज स्वरूपमें लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरै पापकी हानि ॥८॥
संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निज स्वरूपको पायकर, लोकशिखर जब थाय ॥९॥
लोकस्वरूप विचारिकें, आतमरूप निहार।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि ॥१०॥
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं।
भवमें प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥११॥
दर्शज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि।
दयाक्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ॥१२॥

॥ इति श्री बारहभावना जयचन्दजी कृत समाप्त ॥

बारहभावना भगोतीदासजीकृत।

चौपाई।

पच परमपद वदन करों। मन वच भाव-सहित उर धरों॥ बारह भावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान॥ १॥ थिर नहिं दीखहि नैननि वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त॥ थिर बिन नेह कौनसों करों। अथिर देख ममता परिहरों॥ २॥ असरन तोहि सरन नहिं कोय। तीन लोकमहिं दगधर जोय। कोउ न तेरो राखनहार। कर्मनवस चेतन निरधार॥ ३॥ अरु संसार भावना एह। परद्रव्यनसों कीजे नेह। तू चेतन वे जड़ सरवग। तातैं तजहु परायो सग॥ ४॥ एक जीव तू आप त्रिकाल। ऊरध मध्य भवन पाताल। दूजो कोउ न तेरो साथ। सदा अकेलो फिरहि अनाथ॥ ५॥ भिन्न सदा पुद्गलतैं रहै। भ्रमबुद्धितैं जड़ता गहै॥ वे रूपी पुद्गलके खध। तू चिन्मूरत सदा अवध॥ ६॥ अशुचि देख देहादिक अग। कौन कुवस्तु लगी तो सग॥ अस्थी मास रुधिर गद गेह। मलमूतन लखि तजहु सनेह॥ ७॥ आस्रव परसों कीजे प्रीत। तातै बध बढ़हि विपरीत॥ पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं। तू चेतन वे जड़ सब आहि॥ ८॥ संवर परको रोकन भाव। सुख होवेको

यान उपाय ॥ आवे नहीं नये जहां कर्म। पिछले रुकि झरे निजधर्म ॥ ९ ॥ थिति पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं। निर्जरभाव अधिक अधिकाहिं ॥ निर्मल होय चिदानन्द आप। मिटे सहज परसंग मिलाप ॥ १० ॥ लोकमांहि तेरा कछु नाहिं। लोक आन तुम आन लखाहिं ॥ वह षट द्रव्यनको सब धाम। तू चिनमूरति आतम राम। ११॥ दुर्लभ पर द्रव्यनिको भाव। सो तोहि दुलभ है सुनि राव ॥ जो तेरो है ज्ञान अनंत। सो नहि दुर्लभ सुनो महंत ॥ १२ ॥ धर्म सु आप स्वभावहि जान। आप स्वभाव धर्म सोइ मान ॥ जब वह धर्म प्रगट तोहि होय। तब परमातम पद लखि सोय ॥ १३ ॥ ये ही बारह भावन सार। तीर्थंकर भावहिं निरधार ॥ ह्वै वैराग महाव्रत लेहि। तब भवभ्रमन जलांजुलि देहि ॥ १४ ॥ "भैया" भावहु भाव अनूप। भावत होहु तुरित शिवभूप ॥ सुख अनंत विलसहु निशदीस। इम भाख्यो स्वामी जगदीस ॥ १५ ॥

• इति श्री बारह भावना समाप्तम •

बारह भावना

(कविवर भूधरदास-कृत)

राजा, राणा, छत्रपति, हाथिनके असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार ॥ १ ॥

दल-बल, देई देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीवको कोऊ न राखनहार ॥ २ ॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख ससारमें, सब जग देखो छान ॥ ३ ॥
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीवको, साथी सगा न कोय ॥ ४ ॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर-सपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन-लोय ॥ ५ ॥
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगतमें, अवर नहीं घिन-गेह ॥ ६ ॥
मोह-नींदके जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म-चोर चहुँओर, सरबस लूटैं, सुध नहीं ॥ ७ ॥
सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं ॥ ८ ॥
ज्ञान दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर ॥
पच महाव्रत सचरन, समिति पच परकार।
प्रबल पच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार ॥ ९ ॥
चौदह राजु उतग नभ, लोक पुरुष सठान।
तामें जीव अनादितैं, भरमत हैं बिन ज्ञान ॥ १० ॥

[illegible] सुख, सबहि सुलभकर ज्ञान।
[illegible] संसार में, एक जथारथ ज्ञानं॥ ११॥
[illegible] सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
[illegible] चिन्तय, धर्म सकल सुख दैन॥ १२॥

वैराग्य भावना

(श्री वज्रनाभि चक्रवर्ती की)

दोहा।

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं॥ १॥

(जोगीरासा या नरेन्द्रछन्द)

इह विधि राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशालो।
सुख सागरमें रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो॥
एक दिवस शुभ कर्म सँजोगे क्षेमकर मुनि वंदे।
देखि सिरीगुरुके पद पंकज, लोचन अलि आनंदे॥ २॥
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरननमें दिठि दीनी॥
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे॥ ३॥
मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन भोग स्वरूप विचारो, परम धरम अनुरागी॥

इह संसार महावन भीतर, भ्रमते ओर न आवे।
जामन मरन जरा दौ दाझे, जीव महादुख पावै ॥ ४ ॥
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, बध-बंधन भयकारी॥
सुरगतिमें पर संपति देखे, राग उदय दुख होई।
मानुष-योनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई॥ ५॥
कोई इष्ट वियोगी बिलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री विगुचे, कोई तनके रोगी॥
किस ही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किस ही के दुख बाहिर दीखें, किस ही उर दुचिताई॥ ६॥
कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै, तब रोवे।
खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै॥
पुन्य उदय जिनके, तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।
यह जगवास जथारथ देखे सब दीखे दुखदाता॥ ७॥
जो संसारविषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।
काहेको शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागै॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागरके जलसों शुचि कीजै, तौ भी शुद्ध न होई॥ ८॥
सात कुधातु भरी मल मूरत चाम लपेटी सोहै।
अंतर देखत या सम जगमें अवर अपावन को है॥

नव मलद्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावै ॥ ९ ॥
पोषत तो दुख दोष करै अति, शोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजै, यामैं सार यही है ॥१०॥
भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ॥
वज्र अगिनि विषसे, विषधरसे, ये अधिके दुखदाई।
धर्म रतनके चोर चपल अति, दुर्गतिपन्थ सहाई ॥११॥
मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै ॥
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन वांछित जन पावै।
तृष्णा-नागिन त्यों त्यों डंकै, लहर जहरकी आवै ॥१२॥
मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राजसमाज महा अघ-कारण, बैर बढ़ावनहारा।
वेश्या सम लछमी अति चंचल, याका क्या पतियारा ॥१३॥
मोहमहारिपु बैर विचारयो, जग जिय संकट डारे।
घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥

सम्यकदर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार, असार और सब, यह चक्री चित धारी ॥१४॥

छोडे चौदह रत्न नवोनिधि अरु छोडे सँग साथी।
कोडि, अठारह घोडे छोड़े चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक सम्पति बहुतेरी जीरन तृण सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो बडभागी ॥१५॥

होय निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषण वसन उतारे।
श्रीगुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी।
ऐसी सम्पति छोड बसे वन, तिन पद धोक हमारी ॥१६॥

दोहा।

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित पन्थ।
निज स्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रन्थ॥

पूज्य आचार्योंके वैराग्यसे विभूषित पद्योंका सकलन

श्रीपूज्यपाद स्वामीकृत समाधिशतकके वैराग्यमय कतिपय श्लोक।

मूल ससारदु खस्य देह एवात्मधीस्तत ।
त्यक्त्वैना प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रिय ॥ १५ ॥

अर्थ-संसारके दुःखोंका मूल, शरीरमें आत्मबुद्धि करना है, अतः शरीरमें आत्मबुद्धिको त्यागकर व इंद्रियोंसे [illegible] अंदर अन्तरात्माका ध्यान करना चाहिये।

[illegible] यावद्गृहणीयात् कायवाक्चेतसां त्रयम्।
[illegible]तेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः ॥६२॥

अर्थ-जबतक यह जीव शरीर, वचन और मनको आत्मारूप मानता रहेगा, तबतक संसारका दुःख है। जब आत्माको इनसे भिन्न विचारनेका अभ्यास करेगा तब दुःखोंसे छूट जायेगा।

प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः ॥६९॥

अर्थ-समान आकार बना रहने पर भी इस शरीर-रूपी सेनाके चक्रमें प्रतिसमय नवीन-नवीन परमाणु आकर मिलते रहते हैं पुराने झड़ते रहते हैं तो भी मूढबुद्धिवाले बहिरात्मा जीव इस शरीरको भ्रान्तिसे थिर मानकर इसे ही आत्मा माना करते हैं।

गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यङ्गेनाविशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥७०॥

अर्थ–"मैं गोरा हूँ, स्थूल हूँ, अथवा कृश (दुबला) हूँ" इस प्रकार शरीरके धर्मोंसे आत्माको पृथक् समझे। आत्मा तो नित्य मात्र ज्ञान शरीरधारी है।

देहान्तरगतेर्बीजं, देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ ॥

अर्थ–इस शरीरमें आत्माकी भावना करना अन्य नवीन नवीन शरीर धारण करनेका कारण है और आत्मामें ही आत्माकी भावना करना इस शरीरसे छूटनेका उपाय है अथात् मोक्ष प्राप्तिका कारण है।

शृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं, यावत्तावन्न मोक्षभाक् ॥८१॥

अर्थ–"शरीरसे आत्मा भिन्न है" इस बातको उपाध्याय आदिक गुरुओं से सुनकर भी तथा इसी बातको दूसरोंसे बार बार कहते रहने पर भी जब तक भेदज्ञान की दृढ़-भावना नहीं की जाती तब तक मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

आत्मानुशासन

(श्रीगुणभद्राचार्य)

शरणमशरणं वो बन्धवो बन्धमूलं।
चिरपरिचितदारा द्वारमापद्गृहाणाम् ॥

रिपग्गिृहात पुत्रा शत्रव सर्वमेतत्।
त्यज भजत धर्म्म निर्म्मल शर्मकामा ॥६

—जिस तू शरण समझता है नहीं तुझे मरणसे
। ये भाइ बन्धु बधनके मूल हैं। चिर परि
आपदाओंका द्वार हैं। स्वार्थके सगे पुत्र
। इन सबको छोड़ और यदि तू सुखको चाहता है तो
पवित्र धर्मका सेवन कर।

अवश्यं नश्वरैरेभिरायु कायादिभिर्यदि।
शाश्वत पदमायाति मुधाऽऽयातमवेहि ते ॥७०

अर्थ—ये आयु शरीरादि सभी अवश्य नाश होनेवाले
यदि इनकी ममता छोड़नेसे अविनाशी मोक्षपद प्राप्त
है तो सहजमें ही आया जान।

गलत्यायु प्राय प्रकटितघटीयन्त्रसलिलं,
खल कायोप्यायुर्गतिमनुपतत्येप सततम्।
किमस्यान्यैरन्यैर्द्वयमयमिदं जीवितमिह,
स्थितो भ्रान्त्या नावि स्वमिव मनुते स्थास्नुमपधी. ॥

अर्थ—यह आयु प्रगट ही अरहटकी घड़ीके जलके स
छिन छिन गल रही है। यह दुष्ट शरीर भी आयुकी ग
अनुसार निरंतर पतनशील है। जिससे जीवन बना

है जैसे ये आयु व काय ही विनाशीक हैं तब अन्य पुत्र स्त्री व धन धान्यादिक पदार्थ तो छूटने ही वाले हैं। तो भी यह अज्ञानी जीव इनको थिर मानता है जैसे नावमें बैठा पुरुष चलता हुआ भी अपने अपनेको थिर मान लेता है।

बाल्ये वेत्ति न किंचिदप्यपरिपूर्णाङ्गो हितं वाहितं।
कामान्धः खलु कामिनीद्रुमघने भ्राम्यन्वने यौवने ॥
मध्ये वृद्धतृषार्जितुं वसु पशुः क्लिश्नाति कृष्यादिभि-
र्वृद्धो वार्द्धमृतः क्व जन्मफलितं धर्मो भवेन्निर्मलः ॥८९॥

अर्थ—यह जीव, बालावस्थामें तो परिपूर्णाङ्ग नहीं होनेसे अपने हित या अहितको कुछ भी नहीं जानता है। यौवनमें स्त्रीरूपी वृक्षोंके वनमें भ्रमता हुआ कामान्ध बना रहता है। मध्य अवस्थामें बढ़ी हुई धनकी तृष्णासे पशुके समान खेती आदि कर्मोंको करता हुआ क्लेश पाता है। बुढ़ापेमें अधमरा हो जाता है। तब कहो, नरजन्मको सफल करनेके लिये वह पवित्र धर्मको कहां पालन करेगा।

दीप्तोभयाग्रवातारिदारूदरगकीटवत्।
जन्ममृत्युसमाश्लिष्टे शरीरे बत सीदसि ॥२३॥

अर्थ—जैसे दोनों तरफ आगसे जलते हुये एरण्डके लाठके बीचमें गया कीड़ा महान् दुःखी होता है उसी प्रकार

जन्म लेता मरता है पास इस शरीरमें यह प्राणी कष्ट पाता है

निर्दोषो गर्भमात्रभृति मृतिपर्यंतमखिल,
मुञ्चन्तन् क्लेशाशुचिभयनिकारानघदुलम्।
तु त्याज्य त्यागाद्यदि भवति मुक्तिश्च जडधी,
स कस्त्यक्तु नाल खलजनसमायोगसदृशम् ॥१०४॥

अर्थ–आत्मज्ञानी जीवोंके लिये यह शरीर त्यागने योग्य है, क्योंकि वे विचार करते हैं कि यह शरीर गर्भसे लेकर मरण पर्यंत वृथा ही दुःख, अपवित्रता, भय, परामव और पापादिसे पूर्ण है। यदि इस अचेतन शरीरका राग छोडनेसे मुक्तिरूपी लक्ष्मीका लाभ हो तो ऐसा कौन मूर्ख है जो इसको त्याग ने के लिये समर्थ न हो ?

आदौ तनोर्जननमत्र हतेन्द्रियाणि,
काङ्क्षन्ति तानि विषयान् विषयाश्च मान।
हानिप्रयासभयपापकुयोनिदा स्यु,
मूलं ततस्तनुरनर्थपरम्पराणाम् ॥१९५॥

अर्थ–प्रथम ही शरीरकी उत्पत्ति होती है, उस शरीरमें इन्द्रियाँ निन्द्य विषयोंको चाहती है, व विषयभोग महानपनेकी हानि करते हैं, महाक्लेशके कारण हैं, भयके करने वाले हैं,

पापके उपजाने वाले हैं, और निगोदादि कुयोनिके देने वाले हैं। इसलिये यह शरीर ही अनर्थकी परपराका मूल कारण है।

शरीरमपि पुष्णन्ति सेवन्ते विषयानपि।
नास्त्यहो दुष्करं नृणां विषाद्वाञ्छन्ति जीवितम् ॥१९६॥

अर्थ–अज्ञानी लोग, अहो, कैसा न करने योग्य काम करते हैं, शरीरको भी पोषते हैं, विषयभोगोंको भी सेवते हैं मानों विष पीकर जीना चाहते हैं।

माता जातिः पिता मृत्युराधिव्याधी सहोद्गतौ।
प्रान्ते जन्तोर्जरा मित्रं तथाप्याशा शरीरके ॥२०१॥

अर्थ–इस शरीरकी उत्पत्ति तो माता है, मरण इसका पिता है, मानसिक शारीरिक दुःख इसके भाई हैं, अंतमें जरा इसका मित्र है तो भी इस शरीरमें तेरी आशा है यह बडा आश्चर्य है, अहो!

शुद्धोऽप्यशेषविषयावगमोऽप्यमूर्तोऽप्यात्मन् त्वमप्यतितरामशुचीकृतोऽसि। मूर्तं सदाऽशुचि विचेतनमन्यदत्र, किं वा न दूषयति धिग्धिगिदं शरीरम् ॥२०२॥

अर्थ–हे चिदानंद! तू तो शुद्ध है, सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, अमूर्तीक है तो भी इस अचेतन शरीरने तुझे अपवित्र कर दिया है। यह शरीर मूर्तीक है, सदा अपवित्र चेतना रहित है। यह तो केशर कपूरादि सुगंधित

[illegible]को भी दूषित कर देता है इस शरीरको धिक्कार हो। [illegible] हो।

हा हतोसि तरां जन्तो येनास्मिंस्तव साम्प्रतम्।
ज्ञानं कायाशुचिज्ञानं तत्त्यागः किल साहसम् ॥२०३॥

अर्थ—हाय हाय। हे प्राणी! तू अत्यन्त ठगाया गया, [illegible] शरीरमें ममत्व करके अति दुःखी भया। अब तू विचार, यह शरीर अशुचि है, ऐसा जानना यही सच्चा ज्ञान है तथा इसका ममत्व तजना ही साहसका काम है।

आस्वाद्याद्य यदुज्झितं विषयिभिर्व्यावृत्तकौतूहलै—
स्तद्भूयोप्यविकुत्सयन्नभिलषस्यप्राप्तपूर्वं यथा।
जन्तो किं तव शान्तिरस्ति न भवान्यावद्दुराशामिमा—
मंहःसंहतिवीरवैरिपृतनाश्रीवैजयन्तीं हरेत् ॥ ५० ॥

अर्थ—हे मूढ़! इस संसारमें विषयी जीवोंने कौतूहल-पूर्वक भोगकर जिन पदार्थोंको छोड़ा है, उनकी तू फिर अभिलाषा करता है। ऐसा रागी भया है मानो ये भोग पहिले कभी पाए ही न थे। इनको तूने अनन्तबार भोगा है और अनंत जीवोंने भी अनंत बार भोगा है। क्या तिनकी तुझे ग्लानि नहीं आती है? ये तो झूठनके समान हैं, इनसे तुझे क्या कभी शान्ति मिल सकती है? तुझे तब ही शांति मिलेगी जब तू इस प्रबल वैरीकी ध्वजाके

समान आशाको छोडेगा। विषयोंकी आशा कभी मिटती नहीं, यही बड़ी दु:खदायिनी है।

लब्धेन्धनोज्वलत्यग्नि प्रशाम्यति निरन्धन।
ज्वलत्युभयथाप्युच्चैरहो मोहाग्निरुत्कट: ॥५६॥

अर्थ-अग्नि तो ईंधनके होने पर ही जलती है परन्तु ईंधनके न होनेपर बुझ जाती है। परतु इन्द्रियोंके भोगोंकी मोहरूपी अग्नि बड़ी भयानक है जो दोनों तरह जलती रहती है। यदि भोग्य पदार्थ मिलते हैं तो भी जलती रहती है और नहीं मिलते हैं तो भी जलती रहती है। अहो! इसकी शान्ति किसी भी प्रकार नहीं होती है!

तत्त्व भावना या बृहत् सामायिक पाठ

(श्री अमितगति आचार्य)

असिमसिकृषिविद्याशिल्पवाणिज्ययोगै-
-स्तनुधनसुतहेतो कर्म्म यादृक् करोषि।
सकृदपि यदि तादृक् संयमार्थं विधत्से,
सुखममलमनंत किं तदा नाऽश्नुवेऽत्र ॥६६॥

अर्थ-हे मूढ़ प्राणी! तू शरीर, धन, पुत्रके लिये असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प तथा वाणिज्य कर्मोंद्वारा जैसा परिश्रम करता है वैसा यदि तू एक दफे भी संयमके

लिये कर तो तब तू निर्मल अनंतसुख क्या नहीं भोग सकेगा ?

दिनकरकरजाले शत्यमुष्णत्वमिंदो ।
सुरशिखरिणी जातु प्राप्यते जगमत्व ॥
न पुनरिह कदाचित् घोरससारचक्रे ।
स्फुटमसुखनिधाने भ्राम्यता शर्म्म पुसा ॥६८॥

अर्थ–कदाचित् सूर्यकी किरणसमूहमें ठडापन आ जावे, चंद्रमा उष्ण हो जावे, सुमेरु पर्वत चलने लग जावे तो भी दु खोंके भण्डार इस भयानक ससारचक्रमें भ्रमण करते हुए प्राणीको सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सकता ।

सकललोकमनोहरणक्षमा करणयौवनजीवितसपद । कमल-पत्रपयोलवचञ्चला किमपि न स्थिरमस्ति जगत्त्रये॥१०९॥

अर्थ–समस्त ससारके मनको हरन करनेमें समर्थ इन्द्रियें, यौवन, जीतव्य व सपदाए कमलपत्रपर पडी हुई पानीकी बू दके समान चचल हैं । तीनो लोकोंमें कुछ भी (कोई भी पर्याय) स्थिर नहीं है ।

सयोगेन दुरन्तकल्मषभुवा दु ख न किं प्रापितो ।
यो त्व भवकानने मृतिजरा व्याघ्रवनाध्यासिते ॥
सगस्तेन न जायते तव यथा स्वप्नेऽपि दुष्टात्मना ।
किंचित्कर्म तथा कुरुष्व हृदये कृत्वा मनो निश्चलम् ॥१७॥

अर्थ-जरा व मरणरूपी व्याघ्र समूहसे भरे हुए इस संसार वनमें महान पापको उत्पन्न करनेवाले इस शरीरके संयोगसे ऐसा कौनसा दुःख है, जो तूने प्राप्त नहीं किया है ? अब तू अपने मनको स्थिर करके ऐसा काम कर जिससे तुझे स्वप्नमें भी इस दुष्ट शरीरका फिर संग न हो।

दुर्गंधेन मलीमसेन वपुषा स्वर्गापवर्गश्रियः ।
साध्यंत सुखकारिणी यदि तदा संपद्यते का क्षतिः ॥
निर्माल्येन विगर्हितेन सुखदं रत्नं यदि प्राप्यते ।
लाभः केन न मन्यते बत तदा लोकस्थितिं जानता ॥१८॥

अर्थ-यह शरीर तो दुर्गंधमय अशुचि है। ऐसे शरीर से यदि स्वर्ग व मोक्ष देनेवाली सुखकारी सम्पदायें प्राप्त हो सकें तो क्या हानि है, उससे लिये यत्न करना ही चाहिये। यदि किसी निन्दा योग्य तुच्छ वस्तुके बदलेमें सुखदाई रत्न प्राप्त हो सके तो लोककी स्थितिको जानने वाले को क्या न मानना चाहिये ?

एकत्रापि कलेवरे स्थितिधिया कर्माणि संकुर्वता ।
गुर्वी दुःखपरंपरानुपरता यत्रात्मना लभ्यते ॥
तत्र स्थापयता विनष्टममता विस्तारिणीं संपदम् ।
का शक्रेण नृपेश्वरेण हरिणा न प्राप्यते कथ्यताम् ॥४३॥

अर्थ–इस शरीरके साथ रहते हुए अज्ञानी आत्मान
... मानकर जो पापकर्म किये हैं उससे दुःखकी परम्परा
... उठाइ है। यदि यह इस शरीरसे ममता हटाले तो
... आत्मकी सम्पत्ति है जो इसको प्राप्त न हो सके? क्या
... क्या चक्रवर्तीकी, क्या नारायण की?

... ति नातको गतघृणो भैषीर्ध मा तत ।
... यजातु न लभ्यतऽभिलषितन्न माभिलाषीरिद ॥
... गच्छति शोचितन विगत शोकवृथा मा कृथा ।
प्रज्ञापरविभाविनो विदधते कृत्य निरर्थं कथम् ॥७३॥

अथ–मृत्यु जब आती है तब उससे भयभीत होनेपर
भी वह छोड़ती नहीं है। अत तू उसपर घृणा मत कर
और डर भी मत। जब तू इच्छित विषय भोगोंको कभी
भी प्राप्त नहीं कर सकता, तो तू उनकी अभिलाषा मत कर
जिसका मरण हो गया वह जब शोक करने पर भी वापिस
नहीं आता तब तू वृथा शोक मत कर। विचारपूर्वक कार्य
करनेवाले किसी भी कामको बिना प्रयोजन नहीं करते हैं।

यो निःश्रेयसशर्मदानकुशल सत्यज्य रत्नत्रयम् ।
भीम दुर्गमवेदनोदयकर भोग मिथ सेवते ॥
मन्ये प्राणविपर्ययादिजनक हालाहल वल्भते ।
सद्यो जन्मजरातकक्षयकर पीयूषमत्यस्य स ॥१०१॥

अर्थ–जो कोई मूढ मोक्षसुख देनेवाले रत्नत्रय धर्मको छोड़कर भयानक व तीव्र दुःखके फलको पैदा करनेवाले भोगोंको बारबार सेवन करता है, तो मैं ऐसा मानता हूँ कि वह जन्म, जरा, मरणके नाशक अमृतको जल्दीसे फेंककर प्राणोंको हरनेवाले हलाहल विषको पीता है।

❀ ज्ञानार्णव ❀

(श्री शुभचन्द्राचार्य)

माता पुत्री स्वसा भार्या सैव संपद्यतेऽङ्गना ।

पिता पुत्रः पुनः सोऽपि लभते पौत्रिकं पदम् ॥१६॥

अर्थ–इस संसारमें माता मरकर पुत्री, बहन मरकर स्त्री, स्त्री मरकर पुत्री, पिता मरकर पुत्र, पुत्र मरकर पौत्र हो जाता है।

तैरेव फलमेतस्य गृहीतं पुण्यकर्मभिः ।

विरज्य जन्मनः स्वार्थे यैः शरीरं कदर्थितम् ॥ ९ ॥

अर्थ–इस शरीरके प्राप्त होनेका फल उन्होंने ही लिया, जिन्होंने संसारसे विरक्त होकर अपने अपने आत्मकल्याणके लिये ध्यानादि पवित्र कर्मोंसे इसे क्षीण किया।

कर्पूरकुङ्कुमागुरुमृगमदहरिचन्दनादिवस्तूनि ।

भव्यान्यपि संसर्गान्मलिनयति कलेवरं नृणाम् ॥१२॥

अर्थ–कपूर, केशर, अगर, कस्तूरी, हरिचन्दनादि सुन्दर सुन्दर पदार्थोंसे भी यह मनुष्योंका शरीर ससर्ग-मात्रसे मलरूप हो जाता है। ऐसा शरीर प्रीति करने योग्य कैसे हो सकता है?

इन्द्रियविषयोद्भूत दु खमेव न तत्सुखम्।
अनन्तजन्मसन्तानक्लेशसम्पादक यत. ॥ ५–७० ॥

अर्थ–इन्द्रियोंका विषयसेवनज य सुख दु ख ही है, क्योंकि यह विषयसुख अनत ससारकी परिपाटीमें दु खोंको ही पैदा करनेवाला है।

दु खमेवाक्षज सौख्यमविद्याव्याललालितम्।
मूर्खास्तत्रैव रज्यन्ते न विद्म केन हेतुना ॥ १० ॥

अर्थ–इन्द्रियजन्य सुख दु ख ही है। यह अविद्या-रूपी सर्पसे पोषित है। न जाने मूर्ख जन किस हेतुसे इस सुखमे रजायमान होते है।

मीना मृत्यु प्रयाता रसनवशमिता दन्तिन स्पर्शरुद्धा।
बद्धास्ते वारिबन्धे ज्वलनमुपगता पत्रिणश्चाक्षिदोषात्॥
भृङ्गा गन्धोद्धताशा प्रलयमुपगता गीतलोला कुरङ्गा।
कालव्यालेन दष्टास्तदपि तनुभृतामिन्द्रियार्थेषु राग ॥२५॥

अर्थ–रसना इन्द्रियके वश होकर मछलियाँ प्राण खोती है, हाथी स्पर्श इन्द्रियके वश होकर गड्ढेमें गिराए

जाते हैं व बाँध जाते हैं, पतंगे नेत्र इन्द्रियके वश होकर आगकी ज्वालामें जलकर मरते हैं, भ्रमर गंधके लोलुपी होकर कमलके भीतर मर जाते हैं, मृग गीतके वश होकर प्राण गँवाते हैं। ऐसे एक २ इन्द्रियके वश प्राणी मरते हैं, अहो आश्चर्य है तब भी देह धारियोंका राग इन्द्रियोंके विषयमें बना ही रहता है।

तत्त्वज्ञान तरंगिणी

(श्री ज्ञानभूषण भट्टारक)

एकेंद्रियादसंज्ञाख्यापूर्णपर्यंतदेहिन ।
अनतानतमा सति तेषु न कोऽपि तादश ॥
पचाक्षिसंज्ञिपूर्णेषु केचिदासन्न भव्यता ।
नृत्व चालभ्य तादत्ता भवत्यार्या सुबुद्धय ॥१०-११॥

अर्थ—एकन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पचेन्द्रिय तक अनतानत जीवोंमें सम्यग्दर्शन पानेकी योग्यता ही नहीं है। पंचेन्द्री सैनी जीवोंमें कुछ ही जीव निकटभव्यता और मानवपर्यायको प्राप्त करके उसमें भी जो आर्य हैं व सुबुद्धि हैं वे ही सुगमरूपसे सम्यक्त्वी होकर शुद्ध चिद्रूप का ध्यान कर सकते हैं।

दुर्गंध मलभाजन कुविधिना निष्पादित धातुभि
रग तस्य जनैर्निजार्थमखिलैराख्या कृता स्वेच्छया।

तरना कि मम मनन मतत रि निंदनेनेन च
रनद्रपस्य शरीरकर्मजनिताज्न्यस्यान्यहो तरवत ॥९-८॥

नर्थ-न शरीर दुःखमय है, मलाका घर है, अशुभ
कर्मोंसे उत्पन्न मानुआदाग बना है। तथापि अज्ञानी
जीवोंने अपने स्वार्थके लिये अपनी इच्छानुसार इसकी
प्रशंसा, की है। वस्तुत शरीर और कर्मसे उत्पन्न हुए
रागादि विकारोंसे रहित शुद्ध चिद्रूप स्वरूप मुझे इस
शरीरकी प्रशंसा और निंदासे, अहो, क्या प्रयोजन ?

कल्पनानागशनगशमभव चित्त सुखमे मतत तखायत। इन्द्री
रमाम्यानस्पहृदजात् भवति चित्र मनुतेऽज्ञधी सुख॥१०९॥

अर्थ-मैंने शुद्ध चिद्रूपके सुखको जान लिया है, अत
मेरे चित्तमें देवन्द्र, नागेन्द्र और इन्द्रोंके सुख सर्वदा जीर्ण
तणके समान प्रतिभासित होते हैं। परतु यह बडा आश्चर्य
है, कि अज्ञानी जीव स्त्री, लक्ष्मी, घर, शरीर और पुत्रादिक
द्वारा होनेवाले क्षणिक सुखको, जो वास्तवमें दु खरूप है,
सुख मान लेता है।

विषयानुभवे दु ख व्याकुलत्वात् मता भवेत्।
निराकुलत्वत शुद्धचिद्रूपानुभवे सुख॥

अथ-इन्द्रियोंके विषयोंके भोगनेमें सत्पुरुषोंको आकु
लता होनेके कारण वस्तुत दु ख ही होता है। परतु शुद्ध

चिद्रूपके अनुभव करनेमें निराकुलता होनेके कारण यथार्थ सुखका वस्तुत अनुभव होता है।

द्वादशानुप्रेक्षा

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य)

दुग्गध बीभत्थ कलिमलभरिद अचेयणो मुत्त।
सडणपडण सहाव देह इदि चिन्तये णिच्च ॥४४॥

अर्थ–शरीर दुर्गंधमय है, घृणामय है, मैलसे भरा है, अचेतन है, मूर्तीक है, इसका स्वभाव ही सड़ना व पड़ना है, ऐसा ज्ञानीको नित्य विचारना चाहिये।

प्रवचनसार

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य)

सपर बाधासहिद विच्छिण्ण बधकारण विसम।
ज इदिएहि लद्ध त सोक्ख दुक्खमेव तथा ॥८०॥

अर्थ–इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त सुख दु ख ही है क्योंकि वह पराधीन, बाधासहित, विनाशीक, बधका कारण तथा विषम है।

शील पाहुडमे-

वारि एकम्मि यजम्मे सरिज विसवेयणाहदो जीवो।
विसयविसपरिहयाण भमति ससारकातारे ॥२२॥

अर्थ-विषयरूपी नाशे आहत जीव एक ही बार जन्ममें मनुष्य प्राप्त होता है परन्तु विषयरूपी विष खाने वाले मनुष्य-बार बार मरकर भ्रमते फिरते हैं।

मूलाचार, द्वादशानुप्रेक्षा।

(श्री वट्टकेरस्वामी)

असुइविलिविले गब्भे वसमाणो वत्थिपडलपच्छण्णो।
माइसिभलालाइयं तु तिव्वासुहं पिबदि॥ ३३॥

अर्थ-अपवित्र मूत्रमल श्लेष्मपित्त रुधिरादिसे घृणामय गर्भमें बसता हुआ, मांस की झिल्लीसे ढका हुआ, माताके कफ द्वारा पाला हुआ यह जीव महान दुर्गंध रसको पीता है।

अत्थं कामसरीरादियं पि सव्वमसुभत्ति णादूण।
णिव्विज्जंतो झायसु जह जहसि कलेवरं असुइं॥३५॥

अर्थ-द्रव्य, काम भोग, शरीरादि ये सब तेरे बिगाड़ करनेवाले अशुभ हैं ऐसा जानकर इनसे वैराग्य धारण करके ऐसा आत्मध्यान कर जिससे इस अपवित्र शरीरका सम्बंध सदाके लिये छूट जावे।

मोत्तूण जिणक्खादं धम्मं सुहमिह दु णत्थि लोगम्मि।
ससुरासुरेसु तिरिएसु णिरयमणुएसु चिंतेज्जो॥ ३६॥

अर्थ-देव, असुर, तिर्यंच, नारकी व मानवोंसे भरे हुए इस लोकमें एक जिनेन्द्रप्रणीत धर्मको छोडकर कोई शुभ तथा पवित्र वस्तु नहीं है।

एद सरीरमसुइ णिच्च कलिकलुसभायणमचोक्खं।
अंतोछाइद -ढिड्ढिस खिब्भिसभरिद अमेज्झघर ॥ ७८ ॥

अर्थ-यह शरीर महान अशुचि है, नित्य रागद्वेष उत्पन्न करनेका कारण है, अशुभ वस्तुओंसे बना है, चमडेसे ढका है, भीतर पीप, रुधिर, मास, चर्बी, वीर्य आदिसे पूर्ण है तथा मलमूत्रका भण्डार है।

एदारिसे सरीरे दुग्गंधे कुणिमपूदियमचोक्खे ।
सडणपडणे असारे राग ण करिंति सप्पुरिसा ॥८४॥

अर्थ-ऐसे दुर्गंधित, पीपादिसे भरे, अपवित्र, सड़न-गलन स्वभाववाले, साररहित इस शरीरमें सत्पुरुष राग नहीं करते हैं।

धित्तेसिमिंदियाण जेसिं वसदो दु पावमज्जणिय ।
पावदि पावविवागं दुक्खमणंत भवगदिसु ॥४३ ॥

अर्थ-इन इन्द्रियोंको धिक्कार हो जिनके वशमें पडकर प्राणी पापोंको बाधकर उनके फलसे चारों गतियोंमें दुःखको पाते हैं।

स्वकीय ग्रन्थ मूलाचार, समयसार अधिकार में
कहते हैं —

चीहदव्वं णिच्च कट्ठकम्मं वि तहिच्छितम्मस्स ।
हवदि य चित्तक्खोभो पच्चयभावेण जीवस्स ॥९९

अर्थ—काष्ठके बने हुए स्त्रीके रूपको देखनेसे भी म
भय रखना चाहिये। क्योंकि निमित्तकारणसे इस जीव
मन विरागी हो जाता है।

घिदमरिदघडसरिच्छो पुरिसो इत्थी बलंतअग्गिसमा।
तो महिलेयं ढुक्का णट्ठा पुरिसा सिवं गया इयरे ॥१००

अर्थ—पुरुष घीसे भरे हुए घटके समान है, स्त्री जल
हुई आगके समान है। इस कारण बहुतसे पुरुष स्त्री
संयोगसे नष्ट हो चुके। जो बचे, वे ही मोक्ष पहुँचे हैं।

मादाए बहिणीए धूआए मूइ वुड्ढ इत्थीए।
चीहेदव्वं णिच्चं इत्थीरूवं णिरावेक्खं ॥१०

अर्थ—स्त्रीके रूपको देखनेसे बिना किसी अपेक्षाके स
ही भयभीत रहना चाहिये। चाहे वह माताका रूप
चाहे बहनका हो, चाहे पुत्र कन्याका हो, चाहे गूंगीका
व चाहे वृद्ध स्त्रीका हो।

भगवती आराधना

(श्री शिवकोटि आचार्य)

जदि होज्ज मच्छियाप, त्तमगिमिया तयाए णो पिहिद।
को णाम कुणिमभरिय, सरीरमालद्धुमिच्छेज्ज ॥१०३७॥

अर्थ–यदि यह शरीर मक्खीके पर समान पतली त्वचासे ढका न हो तो इस मैलसे भरे हुए शरीरको कौन स्पर्शना चाहेगा ?

परिदड्ढसव्वचम्म पंडुरगत्त मुयतवणरसिय।
सुट्ठु वि दयिद महिलं, दट्ठु पि णरो ण इच्छेज्ज॥१०३८॥

अर्थ–इस शरीर का सारा चमड़ा जल जावे, शरीर सफेद निकल आवे और घावोंसे रस झडने लग जावे तो प्यारी स्त्री भी उसे देखना पसंद न करेगी।

जदि दा रोगा एकम्मि, चेव अच्छिम्मि होति छण्णउदी।
सव्वम्मि चेव देहे, होदव्वं कदिहि रोगेहि ॥१०५३॥
पंचेव य कोडीओ, भट्ठसट्ठि तहवे लक्खाइ।
णव णवदि च सहस्सा, पचसया होति चुलसीदी ॥१०५४॥

अर्थ–यदि एक आँखमें ९६ रोग होते हैं, तो सारे शरीरमें कितने रोग होंगे ? इस शरीरमें पाच करोड अडसठ

[illegible] पाँचसौ चौरासी (५६८९९५८४) रोग [illegible] होते हैं।

[illegible] दुक्कमा, ढियाणि चिट्ठ ति मारवेंतम्म।

[illegible] मारवेंत, स्म टादि चिर सरीरमिम ॥१०५९॥

[illegible] की मूर्तिय सँजारी हुई बहुत समय तक [illegible] सकती हैं, परन्तु यह मनुष्यका शरीर अत्यन्त सम्हार करते हुए भी बहुत दर नहीं ठहरता है।

[illegible] जह लेहतो, सुगल्लयमट्टिय रस सुणहो।
सो मगतालुगरुहिर, लेहतो मएणए सुक्ख ॥१२५६॥
महिलादिभोगसेवी, ण लहइ किंचि वि सुह तहा पुरिसो।
सो मएणदे वराओ, सगकायपरिस्सम सुक्ख ॥१२५७॥

अर्थ—जैसे कुत्ता सूखे हाडोंको चाबता हुआ रसको नहीं पाता है, हाडोंकी नोकसे उसका तालवा कट जाता है जिससे रुधिर निकलता है, उस रुधिरको पीता हुआ उसे हाड़से निकला मान सुख मान लेता है वैसे स्त्री आदिक भोगोंको करता हुआ कामी पुरुष कुछ भी सुख नहीं पाता है। कामकी पीड़ासे दीन हुआ अपनी कायके परिश्रमको ही सुख मान लेता है।

❀ इति वैराग्य प्रकरण ❀

अध्यात्म प्रकरण

दौलतविलास

(४७)

जानत क्यों नहिं रे, हे नर आतमज्ञानी ॥ जानत० ॥ टेक ॥ रागदोष पुद्गलकी संपति, निहचैं शुद्धनिशानी ॥ ॥ जानत० ॥१॥ जाय नरक पशुनरसुरगतिमें, यह परजाय विरानी। सिद्धस्वरूप सदा अविनाशी, मानत विरले प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥ कियो न काहू हरै न कोई, गुरुशिष कौन कहानी। जनममरनमलरहित, विमल है, कीचबिना जिमि पानी। जानत० ॥ ३ ॥ सारपदारथ है तिहुं जगमें, नहि क्रोधी नहिं मानी। दौलत सो घटमाहिं विराजै, लखि हूजे शिवथानी ॥ जानत० ॥ ४ ॥

(४८)

चिन्मूरत दृग्धारीकी मोहि, रीति लगत है अटापटी[१] ॥ चिन्मूरत० ॥ टेक ॥ बाहिर नारकिकृत दुख भोगै, अंतर सुखरस गटागटी। रमत अनेक सुरनिसँग पै तिस,

१ अटपटी।

[illegible] गटागटी ॥ चिन्मू० ॥ १ ॥ ज्ञानविराग-शक्तितैं विधिफल[1], भोगत पै विधि घटाघटी[2]। सदननिवासी तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी ॥ चिन्मू० ॥ २ ॥ जे भवहेतु अबुधके ते तस, करत बंधकी झटाझटी। नारक पशु तिय षंढ[4] विकलत्रय, प्रकृतिनकी ह्वै कटाकटी ॥ चिन्मू० ॥ ३ ॥ संयम धर न सकै पै संयम, धारनकी उर चटाचटी। तासु सुयश गुनकी दौलतकै, लगी रहै नित रटारटी ॥ चिन्मू० ॥ ४ ॥

(६७)

मेरे कब ह्वै वा दिनकी सुघरी ॥ मेरे० ॥ टेक ॥ तन बिन वसन असन बिन वनमें, निवसों नासा दृष्टि धरी ॥ मेरे० ॥ १ ॥ पुण्यपापपरसौं कब विरचों, परचौं निजनिधि चिरविसरी। तज उपाधि सजि सहजसमाधी, सहौं घाम हिम मेघझरी[5] ॥ मेरे० ॥ २ ॥ कब थिरजोग धरौं ऐसो मोहि, उपल[6] जान मृग खाज हरी। ध्यान-कमान तान अनुभव-शर[7], छेदौं किहि दिन मोह अरी ॥ मेरे० ॥ ३ ॥ कब तृनकंचन एक गनों अरु, मनिजड़ितालय[8] शैलदरी[9]।

---

१ दूरपना। २ कर्मफल। ३ न्यूनता। ४ नपुंसक। ५ धूप-शीत वर्षा। ६ पत्थर। ७ ध्यानरूपी धनुषपर अनुभवरूपी बाण। ८ रत्नजड़ित महल। ९ पर्वतकी कंदरा (गुफा)।

दौलत मतगुरुचरनसेउ जो, पुरवो आश यहै हमरी ॥ मेरे० ॥ ४ ॥

(६९)

चित चितक चिदेश[1] कब, अशेष[2] पर[3] वमू[4] । अपार विधि दुचार[6]-की चमू[7] दमू ॥ चित० ॥ टेक ॥ तजि पुण्यपाप थाप आप, आपमें रमू[9] । कब राग-आग शर्म[10]-बाग, दाघनी शमू[11] ॥ चित० ॥ १ ॥ दृगज्ञानभानतैं[12] मिथ्या, अज्ञानतम दमू । कब सर्व जीव प्राणिभूत, सत्त्वसों छमू ॥ चित० ॥ २ ॥ जल मल्ललिप्त कल[14] सुकल[15], सुबल्ल परिनमूं । दलकें त्रिशल्लमल्ल[16] कब, अटल्लपद[17] पमू ॥ चित० ॥ ३ ॥ कब ध्याय अज[1] अमरको फिर न, भव विपिन[18] भमू । जिन पूर कौल[19] दौलको यह, हेतु हौं नमू ॥ चित० ॥ ४ ॥

---

१ आत्मा । २ सम्पूर्ण । ३ परपदार्थ । ४ वमन करदूं-छोड़दूं । ५ कर्म । ६ दो गुणित चार अर्थात् आठ । ७ सेना । ८ आत्मामें । ९ रमण करूं । १० सुखरूपी बागको जलानेवाली । ११ शमन करूं, शांत करूं । १२ सम्यग्दर्शन और ज्ञानरूपी सूर्यसे । १३ जड़ । १४ शरीर । १५ शुक्लध्यानके बलसे । १६ माया, मिथ्यात्व, निदानरूप तीन शल्यरूपी पहलवान । १७ मोक्षपद । १८ संसाररूपी वन । १९ प्रतिज्ञा ।

❁ द्यानत विलास ❁

(२) राग सोरठा।

गलतानमता कब आवैगा ॥ टेक ॥ राग दोष परणति मिट जै है, तब जियरा सुख पावैगा ॥ गलता० ॥१॥ मैं ही ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मैं, तीनों भेद मिटावैगा। करता किरिया करमभेद मिटि, एक दरब लौं लावैगा ॥ गलता० ॥ २ ॥ निह्चै अमल मलिन व्योहारी, दोनों पच्छ नसावैगा। भेद गुण गुणीको नहिं ह्वै है, गुरु शिख कौन कहावैगा ॥ गलता० ॥ ३ ॥ द्यानत साधक साधि एक करि, दुविधा दूर बहावैगा। वचनभेद कहवत सब मिटकै, ज्यौंका त्यौं ठहरावैगा ॥ गलता० ॥ ४ ॥

(३) राग सारंग।

मोहि कब ऐसा दिन आय है ॥टेक॥ सकल विभाव अभाव होंहिंगे, विकलपता मिट जाय है ॥ मोहि० ॥ १ ॥ यह परमातम यह मम आतम, भेदबुद्धि न रहाय है। औरनिकी का बात चलावै, भेदविज्ञान पलाय है ॥ मोहि० ॥ २ ॥ जानै आप आपमैं आपा, सो व्यवहार विलाय है। नय प्रमान निखेपन माहीं, एक न औसर पाय है ॥ मोहि० ॥ ३ ॥ दरसन ज्ञान चरनके विकलप, कहो कहाँ

ठहराय है। द्यानत चेतन चेतन हूं है, पुद्गल पुद्गल थाय है॥ मोहि० ॥ ४ ॥

(६) राग काफी धमाल।

सो ज्ञाता मेरे मन माना, जिन निज निज, पर-पर जाना॥ टेक॥ छहों दरवतें भिन्न जानके, नव तत्वनितें आना। ताको देखें ताको जानें, ताहीके रसमें साना॥ सो ज्ञाता० ॥ १ ॥ कर्म शुभाशुभ जो आवत हैं, सो तो पर पहिचाना। तीन भवनको राज न चाहै, यद्यपि गाठ दरव बहु ना॥ सो ज्ञाता० ॥ २ ॥ अखय अनंती सम्पति विलसे, भव तन भोग मगन ना। द्यानत ता ऊपर बलिहारी, सोई "जीवन मुक्त" भना॥ सो ज्ञाता० ॥ ३ ॥

(१०) राग सोरठ।

कर कर आतमहित रे प्रानी॥ टेक॥ जिन परिनामनि बंध होत है, सो परनति तज दुखदानी॥ कर० ॥१॥ कौन पुरुष तुम कहा रहत हो, किहिकी संगति रति मानी। जे परजाय प्रगट पुद्गलमय, तैं तैं क्यों अपनी जानी॥कर० ॥ २ ॥ चेतनजोति झलक तुझमाहीं, अनुपम सो तैं विसरानी। जाकी पटतर लगत आन नहि दीप रतन शशि सूरानी॥ कर० ॥ ३ ॥ आपमें आप लखो अपनो

?? ?ाल करि तन मन आनी। परमेश्वरपद आप पाइये, ?? आप स्वजनानी ॥ ज्ञा० ॥ ४ ॥

(१३) राग बिहागरो।

जानत क्यों नहिं रे, हे नर आतमज्ञानी ॥ टेर ॥ ?ाग? पुद्गलकी मगात, निहचै शुद्धनिशानी ॥ जानत० ॥ १ ॥ जाय नरक पशु नर सुर गतिमें, ये परजाय विरानी। सिद्धस्वरूप सदा अविनाशी, जानत विरला प्रानी ॥ जानत० ॥ २ ॥ कियो न काहू हरै न कोई, गुरु शिख कौन कहानी। जनम मरन मलरहित अमल है, कीच विना ज्यों पानी ॥ जानत० ॥ ३ ॥ सार पदारथ है तिहुं जगमें, नहि क्रोधी नहि मानी। द्यानत सो घटमाहि विराजै, लख हूजै शिवथानी ॥ जानत० ॥ ४ ॥

(१४) राग काफी।

आपा प्रभु जाना मैं जाना ॥ टेर ॥ परमेसुर यह मैं इम सेवक, ऐसो मर्म पलाना ॥ आपा० ॥ १ ॥ जो परमेसुर सो मम मूरति, जो मम सो भगवाना। मरमी होय सोइ तो जानै, जानै नाहीं आना ॥ आपा० ॥ २ ॥ जाको ध्यान धरत है मुनिगन, पावत है निरवाना। अर्हंत सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, आतमरूप बखाना ॥ आपा० ॥ ३ ॥ जो निगोदमें सो मुझमाहीं, सोई है शिव थाना।

द्यानत निहचै रच फेर नहिं जानै सो मतिराना ॥ आपा० ॥ ४ ॥

(६६) राग काफी ।

अब हम आतमको पहचाना जी ॥ टेक ॥ जैसा सिद्धक्षेत्रमें राजत, तैसा घटमें जाना जी ॥ अब हम० ॥ १ ॥ देहादिक परद्रव्य न मेरे, मेरा चेतन बाना जी ॥ अब हम० ॥ २ ॥ द्यानत जो जानै सो स्याना, नहिं जानै सो दिवाना जी ॥ अब हम० ॥ ३ ॥

(६७)

आतम अनुभव करना रे भाई ॥ टेक ॥ जब लौं भेद ज्ञान नहिं उपजै, जनम मरन दुख भरना रे ॥ भाई० ॥१॥ आतम पढ़ नव तत्त्व बखानै, व्रत तप संजम धरना रे । आतम ज्ञान बिना नहिं कारज, जोनी-संकट परना रे ॥ भाई० ॥ २ ॥ सकल ग्रन्थ दीपक हैं भाई, मिथ्या तमके हरना रे । कहा करैं ते अंध पुरुषको, जिन्हें उपजना मरना रे ॥ भाई० ॥ ३ ॥ द्यानत जे भवि सुख चाहत हैं, तिनको यह अनुसरना रे । 'सोऽहं' ये दो अक्षर जपकै, भव जल पार उतरना रे ॥ आतम० ॥ ४ ॥

(६८)

अब हम आतमको पहिचान्यौं ॥ टेक ॥ जब ही सेती मोह सुभट बल, छिनक एकमें भान्यौं ॥ अब० ॥ १ ॥

... भ्रम, ममता भाव पलान्यौ।
... रतन भेद रहित परजान्यौ। अब०
... अजर न दग्यो, देख्यो सो मरधान्यौ।
... मे करि, जा जान निम जान्यौ॥
... सुपनवत देखे, अपनो अनुभव
... द्यानत ता अनुभव स्वादत ही, जनम सफल करि
... ॥ अब० ॥ ४ ॥

(२)

आतमरूप अनूपम है, घटमाहि विराजे ॥ टेक ॥
जाके सुमरन जापसा, भव भव दुख भाजै हो। आतम०
॥ १ ॥ केवल दरसन ज्ञानमें, थिरतापद छाजै हो। उपमा
को तिहुँ लोकमें, कोउ वस्तु न राजै हो ॥ आतम० ॥२॥
सहै परीषह भार जो, जु महाव्रत साजै हो। ज्ञान बिना
शिव ना लहै, बहुकर्म उपाजै हो ॥ आतम० ॥ ३ ॥ तिहुँ
लोक तिहुँ कालमें, नहिं और इलाजै हो। द्यानत ताको
जानिये, निज स्वारथ काजै हो ॥ आतम० ॥ ४ ॥

(३४)

धिक ! धिक ! जीवन समकित बिना ॥ टेक ॥ दान
शील तप व्रत श्रुतपूजा, आतमहेत न एक गिना ॥ धिक०
॥ १ ॥ ज्यों बिनु कन्त कामिनी शोभा, अंबुज बिनु
सरवर ज्यों सुना। जैसे बिना एकड़े बिन्दी, त्यों समकित

बिन सरब सुना ॥ धिक० ॥२॥ जैसे भूप बिना सब सेना, नीव बिना मंदिर चुनना। जैसे चन्द बिहूनी रजनी, इन्हैं आदि जानो निपुना ॥ धिक० ॥ ३ ॥ देव जिनेन्द्र, साधु गुरु, करुना, धर्मराग व्योहार भना। निहचै देव धरम गुरु आतम, द्यानत गहि मन वचन तना ॥ धिक० ॥ ४ ॥

(३७) राग मल्हार।

ज्ञान सरोवर सोई हो भविजन । टेक ॥ भूमि छिमा करुना मरजादा, समरस जल जहँ होई ॥ भविजन० ॥१॥ परनति लहर हरख जलचर बहु, नय पंकति परकारी। सम्यक कमल अष्टदल गुण हैं, सुमन भँवर अधिकारी ॥ भविजन० ॥ २ ॥ संजम शील आदि पल्लव हैं, कमला सुमति निवासी। सुजस सुवास कमल परिचय तैं, परसत भ्रम तप नासी ॥ भविजन० ॥ ३ ॥ भव मल जात न्हात भविजनका होत परम सुख साता। द्यानत यह सर और न जानैं, जानैं विरला ज्ञाता ॥ भविजन० ॥ ४ ॥

(३९) राग सारंग।

हम लागे आतमरामसौं ॥टेक॥ विनाशीक पुदगलकी छाया, कौन रमै धनवामसौं ॥ हम० ॥ १ ॥ समता सुख घटमें परगास्यो, कौन काज है काममौं। दुविधा भाव जलांजुलि दीनौं, मेल भयो निज स्वामसौं ॥ हम० ॥ २ ॥

[illegible] करै [illegible] परि उर्यों, कौन निलोरै चामसौं ।
[illegible] दारा मात न भानै, लौ लाई गुणग्रामसौं ॥ हम०
[illegible] भाव रू मन भाजे, करि चेतन अभिरा-
[illegible] दानत आतम अनुभव करिकैं छूटे भव दुखधामसौं ॥
[illegible]

(४०)

मगन रहु रे ! शुद्धातममें मगन रहु रे ॥ टेर ॥ रागदोष परकी उतपात, निहचैं शुद्ध चेतना जात ॥ मगन० ॥ १ ॥ विधि निषेधको खेद निवारि, आप आपमें आप निहारि ॥ म०॥२॥ बंध मोच्छ विकलप करि दूर, आनँदकंद चिदातम सूर ॥ मगन० ॥ ३ ॥ दरसन ज्ञान चरन समुदाय, द्यानत ये ही मोच्छ उपाय ॥ मगन० ॥ ४ ॥

(४१)

आतम जानो रे भाई ! ॥ टेर ॥ जैसी उज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत । काया-करमनसौं जुदी रे, सबको करै उदोत ॥ आतम० ॥ १ ॥ शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलपरूप । निरविकलप शुद्धातमा रे, चिदानंद चिद्रूप ॥ आतम० ॥२॥ तन वचसेती भिन कर रे, मनसों निज लौ लाय । आप आप जब अनुभवै रे, तहां न मन वच काय ॥ आतम० ॥३॥ छहौं दरब नव तत्वतें रे, न्यारो आतमराम । द्यानत जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिव धाम ॥ आतम० ॥४॥

[illegible]

गुरु [illegible] नरदेो [illegible]

[illegible] [illegible]

चपन [illegible] सुमवि [illegible]

सत्ता [illegible] मिता [illegible]

(१) [illegible] मा [illegible] ३ ज्ञैन

॥ ३ ॥ [illegible]

ग्यानन [illegible] मैं, [illegible]

मी० ॥ ४ ॥

[illegible]

तुम [illegible] रमन्त ॥ [illegible] ॥ [illegible] रननीको [illegible] ॥ १ [illegible] चलि, [illegible] ॥ २ ॥ माना पित [illegible] सुमन्तु [illegible]सुरूप ॥ तुम० ॥ ३ ॥

[illegible]

जगतमें [illegible] ॥ [illegible] मया नरदभे, [illegible] पढ़े ॥ जगत० ॥ १ ॥ आरज्जन [illegible] ममता बुद्धि [illegible] ।

तिनें और ब्रह्मचारी, जिन आतम लव लाई ॥ जगत० ॥ २ ॥ पन परावर्तन तैं कीनें, बहुत बार दुखदाई। लख चौरासि स्वांग धरि नाच्यौ, ज्ञानकला नहिं आई ॥ जगत० ॥ ३ ॥ सम्यक बिन तिहु जग दुखदाई, जहँ भावै तहँ जाई। द्यानत सम्यक, आतम, अनुभव, सद्गुरु सीख बताई ॥ जगत० ॥ ४ ॥

(६०) राग गौडी।

भाई! अब मैं ऐसा जाना ॥ टेक ॥ पुद्गल दरब अचेत भिन्न हैं, मेरा चेतन बाना ॥ भाई० ॥ १ ॥ कलप अनन्त सहत दुख बीते, दुखको सुख कर माना। सुख दुख दोऊ कर्म अवस्था, मैं कर्मनतें आना ॥ भाई० ॥ २ ॥ जहा भोर था तहा भई निशि, निशिकी ठौर बिहाना। भूल मिटी निजपद पहिचाना, परमानन्द निधाना ॥ भाई० ॥ ३ ॥ गूंगे का गुड खाय कहै किमि, यद्यपि स्वाद पिछाना। द्यानत जिन देख्या ते जानैं, मेंडक हंस पखाना ॥ भाई० ॥ ४ ॥

(६१) राग ख्याल।

आतम जान रे जान रे जान ॥ टेक ॥ जीवनकी इच्छा करै, कबहुँ न मागै काल। (प्राणी) सोई जान्यो जीव है, सुख चाहै दुख टाल ॥ आतम० ॥ १ ॥ नैन बैनमें कौन है, कौन सुनत है बात। (प्राणी) देखत क्यों नहि आपमें, जाकी चेतन

जात॥ आतम०॥ २ ॥ बाहिर ढूंढे दूर है, अतर निपट नजीक ।(प्राणी) ढूंढनवाला कौन है, सोई जानो ठीक ॥ आतम० ॥ ३ ॥ तीन भवनमें देखिया, आतम सम नहि कोय,। (प्राणी) द्यानत जे अनुभव करैं, तिनकौं शिव-सुख होय,॥ आतम० ॥ ४ ॥

(६३) राग रामकली।

हम न किसीके कोई न हमारा, झूठा है जगका व्योहारा ॥ टेक ॥ तनसबधी सब परवारा, सो तन हमने जाना न्यारा ॥ हम० ॥ १ ॥ पुन्य उदय सुखका बढ़वारा, पाप उदय दुख होत अपारा। पाप पुन्य दोऊ ससारा, मैं सब देखन हारा॥ हम० ॥ २ ॥ मैं तिहुं जग तिहुं काल अकेला, पर सजोग भया बहु मेला, थिति पूरी करि खिर खिर जाहीं, मेरे हर्ष शोक कछु नाहीं ॥ हम० ॥३॥ राग भावतैं सज्जन मानैं, दोष भावतैं दुर्जन जानैं। राग दोष दोऊ मम नाहीं, द्यानत मैं चेतनपदमाहीं॥ हम० ॥ ४ ॥

(६४)

मैं निज आतम कब ध्याऊंगा ॥ टेक ॥ रागादिक परिनाम त्यागकै, समतासौं लौ लाऊंगा ॥ मैं निज० ॥१॥ मन वच काय जोग थिर करकै, ज्ञान समाधि लगाऊंगा ।

रत्नत्रय निधि उरमें धारि ध्याऊ, चारित मोह नशाऊंगा ॥ मैं नित० ॥२॥ चार करम घातिया हन करि परमातम पद पाऊंगा । ज्ञान दरश सुख बल भंडारा, चार अघाति नशाऊंगा ॥ मैं नित० ॥ ३ ॥ परम निरंजन सिद्ध शुद्ध पद, परमानंद कहाऊंगा । द्यानत यह सम्पति जब पाऊं, बहुरि न जगमें आऊंगा ॥ मैं० ॥ ४ ॥

(८७)

देखे सुखी सम्यकवान ॥ टेक ॥ सुख दुखको दुखरूप विचारै, धारै अनुभव ज्ञान ॥ देखे० ॥ १ ॥ नरक सातमेंके दुख भोगैं, इन्द्र लखैं तिन मान । भीख मांगकै उदर भरै न करैं चक्रीको ध्यान ॥ देखे० ॥ २ ॥ तीर्थंकर पदको नहिं चाहैं जपि उदय अप्रमान । कुष्ट आदि बहु व्याधि दहत न, चहत मकरध्वज थान ॥ देखे० ॥ ३ ॥ आधि व्याधि, निरवाध अनाकुल, चेतनजोति पुमान । द्यानत मगन सदा तिहिमाहीं, नाहीं खेद निदान ॥ देखे० ॥ ४ ॥

(८८) राग आसावरी ।

अब हम अमर भये न मरेंगे ॥ टेक ॥ तन कारन मिथ्यात दियो तज, क्यों करि देह धरेंगे ॥ अब० ॥ १ ॥ उपजै मरै कालतैं प्रानी, तातैं काल हरेंगे । राग दोष जग बंध करत हैं, इनको नाश करेंगे ॥ अब० ॥ २ ॥ देह

विनाशी मैं अविनाशी भेदज्ञान पर्खैंगे। ज्ञामी जामी हम थिरगामी, चोखे हों निखरैंगे ॥ अब० ॥ ३ ॥ मरे अनन्त बार विन समझैं, अब मब दुख विसरैंगे। द्यानत निपट निकट दो अक्षर, विन सुमरैं सुमरैंगे ॥ अब० ॥ ४ ॥

(९४) राग गौरी।

देखो भाई! आतमराम विराजै ॥ टेक ॥ छहों दरब नव तत्त्व ज्ञेय हैं, आप सुज्ञायक छाजै ॥ देखो० ॥ १ ॥ अर्हंत सिद्ध सूरि गुरु मुनिवर, पाचौं पद जिहिमाहीं। दरसन ज्ञान चरन तप जिहिमें, पटतर कोऊ नाहीं ॥ ॥ देखो० ॥२॥ ज्ञान चेतना कहिये जाकी, बाकी पुदगल-केरी। केवलज्ञान विभूति जासुकै, आनविभौ भ्रमकेरी ॥ देखो० ॥ ३ ॥ एकेन्द्री पचेन्द्री पुदगल, जीव अतीन्द्री ज्ञाता। द्यानत ताही शुद्ध दरबको, जानपनो सुखदाता ॥ देखो० ॥ ४ ॥

छप्पै

यह असुद्धमें सुद्ध, देह परमान अखंडित।
असमख्यात परदेस, नित्य निरभै मैं पंडित ॥
एक अमूरति निर उपाधि, मेरो छय नाहीं।
गुन अनंत ज्ञानादि, सर्व ते हैं मुझमाहीं ॥

[illegible] निमल, सुख अनत मौंमैं लसैं।
[illegible] निपुन, सिद्धखेत सहजै बसैं ॥ ८४ ॥

[illegible] ज्ञानमय जीव सु जानत।
[illegible] अन्य, अन्यसौं नातौ भानत ॥
[illegible] मिथ्या-तिमिर, तिमिर जा सम नहि कोई।
[illegible] विकलप नाहिं, नहिं दुविधा जस होई ॥
[illegible] अनत सुख प्रगट जब, जब प्रानी निजपद गहत।
गहत न ममत लखि गेय सब, सब जग तजि सिवपुर लहत॥९०॥

कुंडलिया।

जो जानै सो जीव है, जो मानै सो जीव। जो देखै सो जीव है, जीवै जीव सदीव ॥ जीवै जीव सजीव, पीव अनुभौरस प्रानी। आनदकद सुचद, चद पूरन सुखदानी ॥ जो जो दीसै सर्व, सर्व छिनभगुर सो सो। सुख कहि सकै न कोइ, होइ जाकौं जानै जो ॥९१॥

छप्पै।

ग्यानरूप चिद्रूप, भूप सिवरूप अनूपम।
रिद्ध सिद्ध निव वृद्ध, सहज समृद्ध सिद्ध सम ॥
अमल अचल अविकल्प, अजल्प, अनल्प, सुखाकर।
सुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सुगन-गन मनि-रतनाकर ॥

उतपात नाम धुव साध सत, सत्ता दरव सु एक ही।
द्यानत आनद अनुभौ दसा, बात कहनकी है नहीं ॥ ३ ॥
भोग रोगसे देखि, जोग उपयोग बढ़ायौ।
आन भाव दुख दान, ग्यानकौ ध्यान लगायौ ॥
सकलप विकलप अलप, बहुत सब ही तजि दीनें।
आनँदकन्द सुभाव, परम समतारस भीनें ॥
द्यानत अनादि भ्रमवासना, नास दुविद्या मिट गई।
अतर बाहर निरमल फटक, फटक दसा ऐसी भई ॥१०॥

सवैया २३।

लोगनिसौं मिलनौं हमकौ दुख, साहनिसौं मिलनौं दुख भारी। भूपतिसौं मिलनौं मरनैं सम, एक दसा मोहि लागत प्यारी ॥ चाहकी दाह जलें जिय मूरख, वे परवाह महा सुखकारी। द्यानत याहीतैं ग्यानी अवछक, कर्मकी चाल सबे जिन टारी ॥ २७ ॥

सवैया ३१।

चेतनासहित जीव तिहूंकाल राजत है, ग्यान दरसन भाव सदा जास लहिए। रूप रस गध फास पुदगलकौ विलास, मूरतीक रूपी विनासीक जड़ कहिये ॥ याही अनुसार परदर्वकौ ममत्त डारि, अपनौ सुभाव धारि आप

प्रा, गति । ऐसि यही इलाज जाति होत आप काज,
... मोह मोह भावसों समोज दहिए ॥ ९३ ॥

कुंडलियां ।

आनत नदी जुगलिये, भवनपती पाताल । सुरइंद्र ... मधे अधिक रे सुख भाल ॥ अधिक २ सुख भाल, ... लिह नत गुनाकर । एकसमें सुख सिद्ध, रिद्ध परमा-... पद धर ॥ सो निहचै तू आप, पापबिन क्यों न पिछा नत । दरस ग्यान थिर थाप, आपमें आप सु धानत॥९१॥

सवैया - ६३ ।

कर्म सुभासुभ जो उदयागत, आवत हैं जब जानत ज्ञाता । पूरव भ्रामक भाव किये बहु, सो फल मोहि भयौ दुखदाता ॥ सो जडरूप स्वरूप नहीं मम, मैं निज सुद्ध सुभावहि राता । नांस करौ पलमें सबकौ अब, जाय बसौं सिवखेत विख्याता ॥ ६४ ॥

अशोर छंद ।

सुद्ध आतमा निहारि राग दोष मोह टारि, क्रोध मान वक्र गारि लोभ भाव भानुरे । पापपुन्यकौं विडारि सुद्धभावकौं सँभारि, भर्मभावकौं विसारि पर्मभाव आनुरे ॥ चर्मदृष्टि ताहि जारि सुद्धदृष्टिकौं पसारि, देहनेहकौं निवारि

सेतध्यान ठानु रे। जागि जागि मैन छारि भव्य मोगर्को विहार, एक वारके कहे हजार वार जानु रे॥ ॥ ८२॥

सवैया ३१।

मिथ्याभाव मिथ्या लखौ ग्यानभाव ग्यान लखौ, काममोग भावनमों काम जोरजारिके। परकौ मिलाप तजो आपनपौ आप भजौ, पापपुन्य भेद छेद एकता विचारिके॥ आतम अकाज करे आतम सुकाज करे, पाव भवपार मोक्ष एतौ भेद धारिके। यातैं हूँ कहत हर चेतन चेतौ मनेर, मेर मीत हो निचीत एतौ काम सारिके॥ ९४॥

सवैया २३।

मौन रहै वनवास गहै, वर काम दहै जु सहै दुख भारी। पाप हरें सुभरीति करै, जिनवैन धरै हिरदे सुखकारी॥ देह तपैं बहु जाप जपै, न वि आप जप ममता विसतारी। ते मुनि मूढ करै जगरूढ, लहै निजगेह न चेतनधारी॥९६॥

सवैया ३१।

चेतनके भाव दोय ग्यान औ अग्यान जोय, एक निजभाव दूजौ परउतपात है। तातैं एक भाव गहौ दूजौ भाव मूल दहौ, जातैं सिवपद लहौ यही ठीक बात है॥ भावसौं दुखायौ जीव भावहीसौं सुखी होय, भावहीकौ फेरि

परै मोक्षपुर जात है। यह तौ नीकौ प्रसंग लोक कहैं मर जागहीगौ दावौ जग आगै ही गिरात है॥ १०७॥

छप्पै।

तिय सर्व दरसनि अंध, मूक मिथ्यावै भननकौं।
बधिर दोष पर सुनन, लुंज पटकाय हननकौं।
पंगु कुतीरथ चलन, सुन्न हिय लेन धरनकौं।
आलसि विषयनि मांहि, नाहि बल पाप करनकौं।
यह अंगहीन किह कामकौ, करैं कहा जग बैठकैं।
द्यानत ताते आठौं पहर, रहै आप घर पैठकैं॥५॥
होनहार सो होय, होय नहि अन होना नर।
हरप सोक क्यौं करे, दरग सुख दुख उदेकर॥
होय कछू नहिं परै, भारे समार बढ़ावै।
सोई करमकौ लियौ, तहां मरख रंच न पावै॥
यह चाल महामूरख तनी, रोयं रोयं आपद मई।
ग्यानी विभाव नासन निपुन, ग्यानरूप लखि शिव लई॥६॥

सवैया ३१।

ईंख फलै परै-काजै नदी औरोंके डेलाजै,
गाय दूध सैंत धन लोक सुखकार है।
चंदन घसाइ देखौ कंचन तपाई देखौ,
अगर जलाइ देखौ शोभा विसतार है॥

सुखा होत चन्द्रमाहिं जैसे छांह तरु माहिं,
पालेमें सहज सीत आतप निवार है।
तैसें साधलोग सब लोगनिकौं सुखकारी,
तिनहीकौ जीवन जगत माहिं सार है॥ ८॥

❀ भागचन्द भजनमाला ❀

(१) राग ठुमरी।

सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसें, आतमरूप अबाधित ज्ञानी ॥ टेक ॥ रागादिक तो देहाश्रित हैं, इनतें होत न मेरी हानी। दहन दहत ज्यों दहन न तदगत, गगन दहन ताकी विधि ठानी ॥ सन्त० ॥ १ ॥ वरणादिक विकार पुद्गलके, इनमें नहिं चैतन्य निशानी। यद्यपि एक क्षेत्र अवगाही, तद्यपि लक्षण भिन्न पिछानी ॥ सन्त० ॥ २ ॥ मैं सर्वांगपूर्ण ज्ञायक रस, लवण खिल्लवत लीला ठानी। मिलौ निराकुल स्वाद न यावत, तावत परपरनति हित मानी ॥ सन्त० ॥ ३ ॥ भागचन्द्र निरद्वन्द निरामय, मूरति निश्चय सिद्धसमानी। नित अकलंक अवंक शंक बिन, निर्मल पंक बिना जिमि पानी ॥ सन्त० ॥ ४ ॥

(२)

यही इक धर्ममूल है मीता! निज समकितसार सहीता॥ यही० ॥ टेक ॥ समकित सहित नरकपदवासा, खासा

उपजत गीता । जहँतैं निकसि होय तीर्थंकर, सुरगन जजत सप्रीता ॥ यही० ॥ १ ॥ स्वर्गग्राम हू नीको नाहीं, जिन समकित न प्रतीता । तहँतें चय एकड़ी उपजत, भ्रमत सदा भवभीता ॥ यही० ॥ २ ॥ खेत बहुत जोते हू बीज बिन, रहत धान्यसों रीता । सिद्धि न लहत कोटि तपहूतें, वृथा कलेश सहीता ॥ यही० ॥ ३ ॥ समकित अतुल अखंड सुधारस, जिन पुरुषननें पीता । भागचन्द ते अजर अमर भये, तिनहीने जग जीता ॥ यही० ॥ ४ ॥

(६)

अति सक्लेश विशुद्ध शुद्ध पुनि, त्रिविध जीव परिनाम बखाने ॥ अति०॥ टेक ॥ तीव्र कषाय उदयतैं भावित, दर्वित हिंसादिक अघ ठाने । सो संक्लेश भावफल नरका दिक गति दुख भोगत असहाने ॥ अति० ॥ १ ॥ शुभ उपयोग कारननमें जो, रागकषाय मंद उदयाने । सो विशुद्ध तसु फल इन्द्रादिक, विभव समाज सकल परमाने ॥ अति० ॥ २ ॥ परकारन मोहादिकतैं च्युत, दरसन ज्ञान चरन रस पाने । सो है शुद्ध भाव तसु फलतें, पहुँचत परमानद ठिकाने ॥ अति० ॥ ३ ॥ इनमें जुगल बंधके कारन, परद्रव्याश्रित हेय प्रमाने । 'भागचंद' स्वसमय निज हित लखि, तामें रम रहिये भ्रम हाने ॥ अति० ॥ ४ ॥

(१४) राग गौरी।

आतम अनुभव आवै जब निज, आतम अनुभव आवै, और कछू न सुहावै, जब निज० ॥ टेक ॥ रस नीरस हो जात ततच्छिन, अन्छ विषय नहिं भावै ॥ आतम० ॥ १ ॥ गोष्टी कथा कुतूहल विघटै, पुद्गलप्रीति नसावै ॥ आतम० ॥ २ ॥ राग दोष जुग चपल पक्षजुत मन पक्षी मर जावै ॥ आतम० ॥ ३ ॥ ज्ञानानन्द सुधारस उमगै, घट अंतर न समावै ॥ आतम० ॥ ४ ॥ भागचन्द ऐसे अनुभवके हाथ जोरि सिर नावै ॥ आतम० ॥ ५ ॥

(३६) राग ठुमरी।

जीवनिके परिनामनिकी यह, अति विचित्रता देखहु ज्ञानी ॥ टेक ॥ नित्य निगोदमाहितैं कढि कर, नर परजाय पाय सुखदानी । समकित लहि अतमुहूर्तमें, केवल पाय वरै शिवरानी ॥ जीवनि० ॥ १ ॥ मुनि एकादश गुणथानक चढि, गिरत तहांतैं चित भ्रम ठानी । भ्रमत अर्धपुद्गल परावर्तन, किंचित् ऊन काल परमानी ॥ जीवनि० ॥ २ ॥ निज परिनामनिकी सँभालमें, तातैं गाफिल मत ह्वै प्रानी । बंध मोच्छ परिनामनि ही सों, कहत सदा श्रीजिनवरवानी ॥ जीवनि० ॥ ३ ॥ सकल उपाधिनिमित भावनिसों, भिन्न

सु निज परनतिको छानी । ताहि जानि रुचि ठानि होहु
भव भागचन्द यह सीख सयानी ॥ जीवनि० ॥ ४ ॥

(३९)

आकुलरहित होय इमि निशदिन, कीजे तत्त्व विचारा
हो । को म कहा रूप है मेरा, पर है कौन प्रकारा हो
॥ टेक ॥ १ ॥ को भव कारण बंध कहा को, आस्रवरोक-
नहारा हो । खिपत कर्मबंधन काहेसों, थानक कौन
हमारा हो ॥ आकुल० ॥ २ ॥ इमि अभ्यास किये पावत
है, परमानद अपारा हो । भागचन्द यह सार जान करि,
कीजे वारवारा हो ॥ आकुल० ॥ ३ ॥

(४०) राग काफी ।

ऐसे विमल भाव जब पावै, तब हम नरभव सुफल
कहावै ॥ टेक ॥ दरश बोधमय निज आतम लखि, पर-
द्रव्यनिको नहिं अपनावै । मोह राग रुष अहित जान
तजि, झटित दूर तिनको छिटकावै ऐसे० ॥ १ ॥ कर्म
शुभाशुभबंध उदयमें, हर्ष विषाद चित्त नहिं ल्यावै । निज
हित हेत विराग ज्ञान लखि, तिनसौं अधिक प्रीति उपजावै॥
ऐसे० ॥ २ ॥ विषय चाह तजि आतमवीर्य सजि, दुखदा-
यक विधिबंध खिरावै । भागचन्द शिवसुख सब सुखमय,
आकुलता विन लखि चित चावै ॥ ऐसे० ॥ ३ ॥

(४४) लावणी।

सफल है धन्य धन्य वा घरी, जब ऐसी अति निर्मल होसी, परमदशा हमरी ॥ टेक ॥ धारि दिगंबर दीक्षा सुन्दर, त्याग परीग्रह अरी। वनवासी करपात्र परीषह, सहि हौं धीर धरी ॥ सफल० ॥ १ ॥ दुर्धर तप निर्भर नित तप हौं, मोह कुवृक्ष करी। पंचाचार क्रिया आचर हौं, सकल सार सुथरी ॥ सफल० ॥ २ ॥ विभ्रमतापहरन झरसी निज, अनुभव मेघ झरी। परम शान्त भावनकी तातें, होसी वृद्धि खरी ॥ सफल० ॥ ३ ॥ त्रेसठि प्रकृति भंग जब होसी, जुत त्रिभंग सगरी। तब केवल दर्शन विबोध सुख, वीर्यकला पसरी ॥ सफल० ॥ ४ ॥ लखि हौ सकल द्रव्य गुनपर्जय, परनति अति गहरी। भागचंद जब सहजहि मिलि है, अचल मुकति नगरी ॥ सफल० ॥ ५ ॥

(४७) राग दादरा।

धनि ते प्रान, जिनके तत्त्वारथ श्रद्धान ॥ टेक ॥ रहित सप्त भय तत्त्वारथमें, चित्त न संशय आन। कर्म कर्मफलकी नहिं इच्छा परमें धरत न ग्लानि ॥ धनि० ॥ १ ॥ सकल भावमें मूढ़दृष्टितजि, करत साम्यरसपान। आतम धर्म बढ़ावें वा, परदोष न उचरें वान ॥ धनि० ॥ २ ॥

... ... जैनधर्ममें, निजपरथिरता दान। रत्नत्रय ... ... आति स्वरूप महान॥ भवि०॥ ३॥ ... ... निर्मल यह, समकित निज गुन जान। ... ... महल चढनको, अचल प्रथम सोपान॥ ... ॥ ४॥

(४८) राग जोड़ा।

ज्ञानी जीवनके भय होय, न या परकार॥ टेक॥ इह भव परभव अन्य न मेरो, ज्ञानलोक मम सार। मैं वेदक इक ज्ञानभावको, नहिं परवेदनहार॥ ज्ञानी०॥ १॥ निज सुभावको नाश न तातैं, चहिये नहि रखवार। परम गुप्त निजरूप सहज ही, परका तहँ न संचार॥ ज्ञानी०॥ २॥ चितस्वभाव निज प्रान तासको, कोई नहीं हरनार। मैं चितपिंड अखंड न तातैं, अकस्मात भयभार। ज्ञानी०॥ ३॥ होय निशंक स्वरूप अनुभवे, जिनके यह निरधार। मैं मो मैं, पर मो मैं नाहीं, भागचन्द्र भ्रम डार॥ ज्ञानी०॥ ४॥

(५०) राग दादरा

चेतन निज भ्रमतैं भ्रमत रहै॥ टेक॥ आप अभंग तथापि अंगके, संग महा दुख (पुँन) बहै। लोहपिंड संगति पावक ज्यों, दुर्धर घनकी चोट सहै॥ चेतन०॥ १॥

नामकर्मके उदय प्राप्त नर नरकादिक परजाय धरै। तामें मान अपनपो विरथा, जन्म जरा मृतु पाय डरै ॥चेतन० ॥२॥ कर्ता होय रागरुष ठान परको साखी रहत न यहै। व्याप्य सुव्यापक भाव बिना किमि, परको करता होत न यहै ॥ चेतन० ॥ ३ ॥ जब भ्रम नींद त्याग निजमें निज, हित हेत सम्हारत है। वीतराग सर्वज्ञ होत तब, भागचन्द हित सीख कहै ॥ चेतन० ॥ ४ ॥

(६१) राग दीपचन्दी सोरठ।

प्रानी समकित ही शिवपंथा। या बिन निर्मल सब ग्रन्था ॥ टेक ॥ जा बिन बाह्यक्रिया तप कोटिक, सकल वृथा है रथा ॥ प्रानी० ॥ १ ॥ हयजुतरथ भी सारथ बिन जिमि, चलत नहीं ऋजु पथा ॥ प्रानी० ॥ २ ॥ भागचन्द सरधानी नर भये, शिवलक्ष्मीके कथा ॥ प्रानी० ॥ ३ ॥

(६६)

जे सहज होरीके खिलारी, तिन जीवनकी बलिहारी ॥ टेक ॥ शांतभाव कुसुम रस चंदन, भर समता पिचकारी। उड़त गुलाल निर्जरा संवर, अंवर पहरैं भारी ॥ जे० ॥१॥ सम्यक्दर्शनादि सग लेके, परम सखा सुखकारी। भींज रहे निज ध्यान रगमें, सुमति सखी प्रियनारी ॥ जे० ॥ २ ॥

ार न्हान ज्ञान जलमें पुनि, निमल भये शिवचारी। भागचन्द
ि ज्ञात त्त भजन, भाव समेत हमारी ॥जि० ॥ ३ ॥

(६) राग दीपचन्दी।

करौ रे भाई, तत्त्वारथ सरधान ।नरभव सुकुल सुक्षेत्र पायक ॥ टेक॥ दरसन जाननहार आप लखि, देहादिक पर जान ॥ करौ रे भाइ० ॥ १ ॥ मोह रागरुष अहित जान तजि, बधहु विधि दुखदान ॥ करौ रे० ॥ २ ॥ निज स्वरूपमें मगन होयकर, लगन विषय दो भान ॥करौ रे० ॥ ॥ ३ ॥ भागचन्द साधक ह्वै साधो, साध्य स्वपद अमलान ॥ करौ र० ॥ ४ ॥

(७०) राग दीपचन्दी जोड़ी।

जिन स्वपरहिताहित चीना, जीव ते ही हैं साँचे जैनी ।टेक। जिन बुधछैनी पैनीतैं जड, रूप निराला कीना । परतैं विरच आपसे राचे, सकल विभाव विहीना ॥ जिन० ॥ १ ॥ पुन्य पाप विधि बंध उदयमें, प्रमुदित होत न दीना । सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन निज, भाव सुधारस भीना ॥ जिन० ॥ २ ॥ विषयचाह तजि निज वीरज सजि करत पूर्वविधि छीना । भागचन्द साधक ह्वै साधत, साध्य स्वपद स्वाधीना ॥ जिन० ॥ ३ ॥

(७७)

सहज अबाध समाध धाम तहाँ, चेतन सुमति खेलैं होरी ॥ टेक ॥ निजगुनचन्दनमिश्रित सुरभित, निर्मल कुंकुम रस घोरी । समता पिचकारी अति प्यारी, भर जु चलावत चहुँ ओर ॥ सहज० ॥ १ ॥ शुभ संवर सुअबीर आडंबर, लावत भर भर कर जोरी । उड़त गुलाल निर्जरा निर्भर, दुखदायक भव थिति टोरी ॥ सहज० ॥ २ ॥ परमानंद मृदंगादिक धुनि, विमल विरागभाव घोरी । भागचंद दृग-ज्ञान चरनमय, परिनत अनुभव रंगबोरी ॥ सहज० ॥ ३ ॥

(७८)

सत्ता रंगभूमिमें, नटत ब्रह्म नटराय ॥ टेक ॥ रत्नत्रय आभूषण मंडित, शोभा अगम अथाय । सहज सखा निशंकादिक गुन, अतुल समाज बढ़ाय ॥ सत्ता रंग० ॥१॥ समता बीन मधुररस बोलै, ध्यान मृदंग बजाय । नदत निर्जरा नाद अनूपम, नूपुर संवर ल्याय ॥ सत्ता रंग० ॥ २ ॥ लय निजरूप मगनता ल्यावत, नृत्य सुज्ञान कराय । समरस गीतालापन पुनि जो, दुर्लभ जगमह थाय ॥ सत्ता रंग० ॥३॥ भागचन्द आपहि रीझत तहाँ, परम समाधि लगाय । तहाँ कृतकृत्य सु होत मोक्षनिधि, अतुल इनामहिं पाय ॥ सत्ता रंग० ॥ ४ ॥

[illegible] गीपचन्दी घनाश्री ।

[illegible] तेरी शक्ति न हलकी वे [illegible] बर्गादिक रचना मोहै मब पुद्गलकी [illegible] ॥१॥ अष्ट गुनातम तेरी मूरति, सो केवलमें [illegible] वे ॥ तू स्व० ॥ २ ॥ लगी अनादि कालिमा तेरे, दुस्त्यज मोहन मलकी वे ॥ तू स्व० ॥ ३ ॥ मोह नसैं भासत है मूरत, पर नसैं ज्यों जलकी वे ॥ तू स्व० ॥ ४ ॥ भागचन्द सो मिलत ज्ञानमा, स्फूर्ति अगट स्वगलकी वे ॥ तू स्व० ॥ ५ ॥

॥ इति ॥

बुधजन विलास

(२७) राग काफी कनड़ी ।

मैं देखा आतमरामा ॥ मैं देखा० ॥ टेक ॥ रूप फरस रस गधतें न्यारा, दरस-ज्ञान गुनधामा । नित्य निरंजन जाके नाहीं, क्रोध लोभ मद कामा ॥ मैं० ॥ १ ॥ भूख प्यास सुख दुख नहिं जाकै, नाहीं वन पुर गामा । नहि साहिब नहि चाकर भाई, नहीं तात नहि मामा ॥ मैं० ॥२॥

भूलि अनादि थकी जग भटक्त, लै पुद्गलका जामा।
बुधजन संगति जिनगुरकीतै, मैं पाया मुझ ठामा॥
मैं०॥ ३॥

(९७) राग सोरठ।

हमकों कछू भय ना रे, जान लियौ संसार॥ हमकौं०
॥ टेक॥ जो निगोदमैं सो ही मुझमैं, सो ही मोखमभार।
निश्चय भेद कछू भी नाहीं, भेद गिनैं संसार॥ हमकौं०
॥ १॥ परवश ह्वै आपा विसारिकैं, राग दोषकौं धार।
जीवत मरत अनादि कालतैं, यौं ही है उरझार॥ हमकौं०
॥ २॥ जाकरि जैसैं जाहि समयमैं, जो होतव जा द्वार।
सो बनि है टरि है कछु नाहीं, करि लीनौं निरधार॥
हमकौं०॥ ३॥ अगनि जरावै पानी बोवै, बिछुरत मिलत
अपार। सो पुद्गल रूपी मैं बुधजन, सबकौं जाननहार॥
हमकौं०॥ ४॥

श्रीपद्मप्रभमलधारि देव

सहजज्ञानसाम्राज्य सर्वस्व शुद्धचिन्मयम्।
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम्॥ १॥

—जो स्वाभाविक ज्ञानका साम्राज्य है, सर्वांग ... ज्योतिस्वरूप है ऐसी मेरी आत्माको जानकर ... परिग्रहित होता हूँ ॥ १ ॥

नित्यशुद्धचिदानंद संपदामाकर परम् ।
विपदामिदमेवोच्चै रपद चेतये पदम् ॥ २ ॥

अर्थ—जो नित्य शुद्ध चिदानन्दमय है, संपदाकी खान है, उत्कृष्ट है तथा विपत्तियोंका स्थान नहीं है मैं ऐसे पदको अच्छी तरह अनुभव करता हूँ ॥ २ ॥

आत्मध्यानादपरमखिलं घोरसंसारमूलं,
ध्यानध्येयप्रमुखसुतपः कल्पनामात्ररम्यम् ।
बुद्ध्वा धीमान् सहजपरमानन्दपीयूषपूरे,
निर्मज्जन्तं सहजपरमात्मानमेकं प्रपेदे ॥ ३ ॥

अर्थ—आत्मध्यानके अतिरिक्त सभी विचार घोर संसारके मूल हैं। ध्यान ध्येयका विकल्परूप जो तप है सो कहने मात्र ही सुन्दर है। ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष स्वाभा

निज परमानंदमई अमृतके समुद्रमें मग्न सहज एक परमात्माही का अनुभव करते हैं ॥ ३ ॥

अहमात्मा सुखाकांक्षी स्वात्मानमजमच्युतम् ।
आत्मनैवात्मनि स्थित्वा भावयामि मुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥

अर्थ—मैं आत्मा हूँ, निज सुखका चाहनेवाला हूँ अत मैं अपने ही अजन्म और अमर आत्माको अपने ही आत्मा के द्वारा अपने आत्मामें ठहरकर बारबार भाता हूँ ॥ ४ ॥

मुक्त्वा जल्प भवभयकर बाह्यमाभ्यन्तर च,
स्मृत्वा नित्य समरसमय चिच्चमत्कारमेकं ।
ज्ञानज्योति प्रकटितनिजाभ्यन्तरागान्तरात्मा,
क्षीणे मोह क्मिपि परम तत्त्वमन्तर्ददर्श ॥ ५ ॥

अर्थ—ससारके भयको पैदा करनेवाले बाह्य और आभ्यतर सभी विकल्पोंको त्यागकर तथा नित्य समतारस मई एक चैतन्यचमत्कारमात्र स्वरूपको स्मरण करके ज्ञानज्योतिसे जिसका आत्मा प्रकाशमान हो रहा है ऐसे महात्माने मोह के क्षय होने पर अतरगमें किसी परम अद्वितीय तत्त्वका दर्शन किया ॥ ५ ॥

समयसारप्राभृत भाषा

(छन्द हरिगीता)

ध्रुव अचल अरु अनुपमगति, पाये हुए सब सिद्धको,
मैं वन्दि श्रुतकेवलिकथित, कहूँ समयप्राभृतको अहो ॥१॥
जो चारित्रदर्शनज्ञानस्थित, स्वसमय निश्चय जानना,
स्थित कर्मपुद्गलके प्रदेशों, परसमय जीव जानना ॥२॥
एकत्वनिश्चयगत समय, सर्वत्र सुन्दर लोकमें।
उससे बने बंधनकथा, विरोधिनी एकत्वमें ॥३॥
है सर्व श्रुत परिचित अनुभूत, भोगबंधनकी कथा।
परसे जुदा एकत्वकी, उपलब्धि केवल सुलभ ना ॥४॥
दर्शाउ एकविभक्तको, आत्मातने निज विभवसे।
दर्शाउ तो करना प्रमाण, न छलं ग्रहो स्खलना बने ॥५॥
नहि अप्रमत्त प्रमत्त नहीं, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो ही है ॥६॥
चारित्र दर्शन ज्ञान भी, व्यवहार कहता ज्ञानी के।
चारित्र नहीं दर्शन नहीं, नहि ज्ञान ज्ञायक शुद्ध है ॥७॥
भाषा अनार्य बिना न, समझाना ज्युं शक्य अनार्यको।
व्यवहार बिन परमार्थका, उपदेश होय अशक्य यो ॥८॥

इम आतमको शुद्ध निरत जो शुद्ध देखत अबद्ध ।
श्रुतिगत प्रकाशइ लायक, श्रुतकेवलि उनको कहें [illegible]
श्रुतज्ञान सब जानैं जु निज श्रुतज्ञान [illegible] कहे ।
सब ज्ञान जा आतमा ही है, श्रुतकेवली उनको कहे ॥ [illegible]
व्यवहारनय अभूतार्थ [illegible] शुद्धनय भूतार्थ है ।
भूतार्थ आश्रित आतमा, सम्यग्दृष्टि निश्चय जीव है ॥ [illegible]
[illegible] परम जो भाव उनको, शुद्धनय ज्ञातव्य है ।
[illegible] अपरमभावमें, व्यवहार नय [illegible] है ॥ [illegible]
भूतार्थसे जाने अजीव जीव पुण्य पाप [illegible] ।
आस्रव संवर बंध मुक्ति, ये हि सम्यक्त्व जानना ॥ [illegible]
अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देख अभंगको ।
अविशेष अनसंयुक्त [illegible] शुद्धनय ये जानना ॥ [illegible]
अनबद्धस्पृष्ट अनन्य जो अविशेष [illegible] [illegible] ।
वो द्रव्य और जु भाव, जिनशासन सकल देखा करे ॥ [illegible]
दर्शनसहित नित ज्ञान अरु चारित्र साधु सेइये ।
पर ये तीनों आतमा ही केवल जान निश्चयदृष्टिसे ॥ [illegible]
ज्यों पुरुष कोइ नृपति का भी, जानकर श्रद्धा करे ।
फिर यत्नसे धन अर्थ वो अनुचरण नृपका ही करे ॥ [illegible]
जीवराजको यों जानना, फिर श्रद्धना इस रीतिसे ।
उसका ही करना अनुचरण, फिर मोक्ष अर्थी यत्नसे ॥ [illegible]

नोकर्म कर्म जु "मैं" अवरु "मैं" में कर्म नोकर्म हैं।
यह बुद्धि जबतक जीवकी, अज्ञानी तबतक वो रहे ॥१९॥
मैं ये अवरु ये मैं, मैं हूँ इनका अवरु ये हैं मेरे।
जो अन्य हैं परद्रव्य मिश्र, सचित्त अगर अचित्त वे ॥२०॥
मेरा ही यह था पूर्व में, मैं इसीका गतकाल में।
ये होयगा मेरा अवरु मैं इसका हूँगा भावि में ॥२१॥
अयथार्थ आत्मविकल्प ऐसा, मूढजीव हि आचरे।
भूतार्थ जाननहार ज्ञानी, ए विकल्प नहीं करे ॥२२॥
अज्ञानमोहित बुद्धि जो, बहुभाव संयुत जीव है।
ये बद्ध और अबद्ध, पुद्गलद्रव्य मेरा वो कहे ॥२३॥
सर्वज्ञ ज्ञानविषें सदा, उपयोग लक्षण जीव है।
वो कैसे पुद्गल हो सके जो, तू कहे मेरा अरे ॥२४॥
जो जीव पुद्गल होय, पुद्गल प्राप्त हो जीवत्वको।
तू तब हि ऐसा कह सके, "है मेरा" पुद्गल द्रव्यको ॥२५॥
जो जीव होय न देह तो, आचार्य वा तीर्थेशकी।
मिथ्या बने स्तवना सभी, सो एकता जीव देहकी। २६॥
जीव देह दोनों एक हैं यह वचन है व्यवहारका।
निश्चयविषें तो जीव देह, कदापि एक पदार्थ ना ।२७॥
जीवसे जुदा पुद्गलमयी, इस देहकी स्तवना करी।
माने मुनी जो केवली, वंदन हुआ स्तवना हुई ॥२८॥

निश्चयविषें नाहीं योग्य ये, नहिं देह गुण केवली हि क।
जो केवली गुणको स्तवे, परमार्थ केवली वो स्तवे ॥२९॥
रे ग्राम वर्णन करनसे, भूपाल वर्णन हो न ज्यों।
त्यों देह गुणके स्तवनसे, नहिं केवली गुण स्तवन हो ॥३०॥
कर इन्द्रीजय ज्ञान स्वभाव र, अधिक जाने आत्मको।
निश्चयविषें स्थित साधुजन, भाषें जितेन्द्रिय उन्हींको ॥३१॥
कर मोहजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्मा।
परमार्थ विज्ञायक पुरुष ने, उन हि जित मोही कहा ॥३२॥
जित मोह साधु पुरुषका जब, मोह क्षय हो जाय है।
परमार्थ विज्ञायक पुरुष, क्षीणमोह तब उनको कहे ॥३३॥
सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावोंका करे।
इससे नियमसे जानना की, ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥३४॥
ये और का है जानकर, परद्रव्यको को नर तजे।
त्यों और के हैं जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥
कुछ मोह वो मेरा नहीं, उपयोग केवल एक मैं।
इस ज्ञानको ज्ञायक समयके, मोह निर्ममता कहे ॥३६॥
धर्मादि वे मेरे नहीं, उपयोग केवल एक हूं।
इस ज्ञानको ज्ञायक समयके, धर्म निर्ममता कहे ॥३७॥
मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे ॥३८॥

(जीवाजीव अधिकारका पूर्वरंग समाप्त)

जीवाजीव अधिकार

... ... अध्यवसान जो, पर आत्मवादी जीव है।
... ... अध्यवसान ही जीव, या हि यों कथनी करे ॥३९॥
... ... अध्यवसानमें, अनुभाग तीक्षण मंद जो।
उनको ही माने आत्मा, अरु अन्य को नोकर्मको ॥४०॥
को अन्य माने आत्मा बस, कर्म के ही उदय को।
को तीव्र मन्द गुणों सहित, कर्मोंहि के अनुभागको ॥४१॥
को कर्म आत्मा, उभय मिलकर जीवकी आशा धरें।
को कर्मके संयोगसे, अभिलाष आत्माकी करें ॥४२॥
दुर्बुद्धि यों ही और बहुविध आत्मा परको, कहे।
वे सर्व नहिं परमार्थवादी, येहि निश्चयविद कहे ॥४३॥
पुद्गलद्रव्य परिणामसे, उपजे हुए सब भाव ये।
सब केवली जिन भाषिया, किस रीत जीव कहो उन्हें ॥४४॥
रे कर्म अष्ट प्रकारका, जिन सर्व पुद्गलमय कहे।
परिपाकमें जिस कर्मका फल, दुःख नाम प्रसिद्ध है ॥४५॥
व्यवहार ये दिखला दिया जिनदेवके उपदेशमें।
य सर्व अध्यवसान आदिक, भावको जँह जीव कहे ॥४६॥
निर्गमन इसीनृपका हुआ निर्देश सैन्य समूह में।
व्यवहारसे कहलाय यह, पर भूप इसमें एक है ॥४७॥

त्यों सर्व अध्यवसान आदिक, अन्य भाव जु जीव है।
शास्त्रन किया व्यवहार, पर वहा जीव निश्चय एक है॥४८॥
जीव चेतना गुण, शब्द रस रूप गंध व्यक्ति विहीन है।
निर्दिष्ट नहीं संस्थान उसका, ग्रहण नहीं हैलिंग से॥४९॥
नहीं वर्ण जीवके गंध नहिं, नहिं स्पर्श रस जीवके नहीं।
नहिं रूप अरु संहनन नहिं, संस्थान नहीं तन भी नहीं॥५०॥
नहीं राग जीवके, द्वेष नहीं, अरु मोह जीवके हैं नहीं।
प्रत्यय नहीं नहि कर्म, अरु नोकर्म भी जीवके नहीं॥५१॥
नहीं वर्ग जीवके, वर्गणा नहीं, कर्मस्पर्द्धक है नहीं।
अध्यात्मस्थान न जीवके, अनुभाग स्थान भी हैं नहीं॥५२॥
जीवके नहीं कुछ योगस्थान रु, बंधस्थान भी है नहीं।
नहिं उदयस्थान हि जीवके, अरु स्थान मार्गणा के नहीं॥५३॥
स्थितिबंध स्थान न जीवके संक्लेश स्थान भी हैं नहीं।
जीवके विशुद्धि स्थान, संयमलब्धि स्थान भी हैं नहीं॥५४॥
नहीं जीवस्थान भी जीवके, गुणस्थान भी जीवके नहीं।
ये सब ही पुद्गल द्रव्यके, परिणाम हैं जानो यही॥५५॥
वर्णादि गुणस्थानांत भाव जु, जीवके व्यवहारसे।
पर कोई भी ये भाव नहीं है, जीवके निश्चयविषै॥५६॥
इन भावसे संबंध जीवका, क्षीर जलवत् जानना।
उपयोग गुणसे अधिक, तिससे भाव कोई न जीवका॥५७॥

... पथ ये लुटात है।
... व्यवहारमें नहि पथ जो लुटात है ॥५८॥
... जीवमें, इन कर्म अरु नोकर्मका।
... व्यवहारसे, यह वर्ण है इस जीवका ॥५९॥
... रस रूप स्पर्श तन, संस्थान इत्यादिक सर्व।
... पुरुषने, व्यवहारनयसे वर्णये ॥६०॥
संसारी जीवके वर्ण आदिक, भाव है संसार में।
संसारसे परिमुक्तके नहिं, भाव को वर्णादिके ॥६१॥
ये भाव सब हैं जीव जो, ऐसा ही तू माने कभी।
तो जीव और अजीवमें कुछ, भेद तुझ रहता नहीं ॥६२॥
वर्णादि है, संसारी जीवके, योंहि मत तुझ होय जो।
संसारस्थित सब जीवगण पाये तदा रूपित्व को ॥६३॥
इस रीत पुद्गल वो ही जीव, हे मूढ़मति सम चिह्नसे।
अरु मोक्ष प्राप्त हुआ भी पुद्गल, द्रव्य जीव बने अरे ॥६४॥
जीव एक दो ति चार पंचेंद्रिय बादर सूक्ष्म हैं।
पर्याप्त अनपर्याप्त जीव जु नामकर्म की प्रकृति हैं ॥६५॥
जो प्रकृति यह पुद्गलमयी, वह करणरूप बने अरे।
उससे रचित जीवथान जो हैं, जीव क्यों हि कहाय वे ॥६६॥
पर्याप्त अनपर्याप्त जो, हैं सूक्ष्म अरु बादर सभी।
व्यवहारसे कही जीवसंज्ञा, देहको शास्त्रन, महीं ॥६७॥

मोहन करमके उदयसे, गुणस्थान जो ये वर्णये ।
वे क्यों बने आत्मा, निरंतर जो अचेतन जिन कहे ॥६८॥

पहला जीवाजीवाधिकार पूर्ण हुआ ।

अथ कर्तृकर्माधिकार

र आरम आश्रवका जहाँ तक, भेद जीव जाने नहीं ।
क्रोधादिमें स्थिति होय है, अज्ञानी ऐसे जीवका ॥६९॥
जीव वर्तता क्रोधादिम, तब करम संचय होय है ।
सर्वज्ञने निश्चय कहा, यों बंध होता जीवके ॥७०॥
ये जीव ज्यों ही आश्रवोंका, त्यों ही अपनी आत्मका ।
जाने विशेषांतर तब ही, बंधन नहीं उसको कहा ॥७१॥
अशुचिपना विपरीतता, ये आश्रवोंका जानके ।
अरु दुःखकारण जानके, इनसे निवर्तन जीव कर ॥७२॥
मैं एक शुद्ध ममत्व हीन रु, ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ ।
इसमें रहू स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥७३॥
ये सर्व जीव निबद्ध अध्रुव शरणहीन अनित्य हैं ।
ये दुःख दुःखफल जानके, इनसे निवर्तन जीव करे ॥७४॥
जो कर्मका परिणाम, अरु नोकर्मका परिणाम है ।
सो नहीं करे जो मात्र जाने, वो हि आत्मा ज्ञानी है ॥७५॥

[illegible] पद्गल [illegible] भव, ज्ञानी पुरुष जाना करे।
[illegible] पर्यायों न [illegible]णमें, नहीं ग्रहे नहीं ऊपजे ॥७६॥
[illegible] परिणाम सब, ज्ञानी पुरुष जाना करे।
[illegible] न प्रणमें, नहीं ग्रह नहीं ऊपजे ॥७७॥
[illegible] अनन्ता, ज्ञानी जन जाना करे।
[illegible] पर्यायों न प्रणमें, नहीं ग्रह नहीं ऊपजे ॥७८॥
[illegible]न भांति पुद्गल द्रव्य भी, निज भावसे हो परिणमे।
परद्रव्य पर्यायों न प्रणमें, नहीं ग्रह नहीं उपजे ॥७९॥
जीव भाव हेतु पाय पुद्गल, कर्मरूप जु परिणमे।
पुद्गल कर्मके निमित्तसे, यह जीव भी त्यों परिणमे ॥८०॥
जीव कर्मगुण कर्ता नहीं, नहीं जीवगुण कर्म ही करे।
अन्योन्यके हि निमित्तसे, परिणाम दोनोंके बने ॥८१॥
इस हेतुसे आत्मा हुआ, कर्ता स्वयं निज भाव ही।
पुद्गल कर्मकृत सब भावोंका, कभी कर्ता नहीं ॥८२॥
आत्मा करे निजको हि यह, मन्तव्य निश्चयनय हि का।
अरु भोगता निजको हि आत्मा, शिष्य यों तू जानना ॥८३॥
आत्मा करे बहुभाँति पुद्गल कर्म मत व्यवहारका।
अरु वो हि पुद्गलकर्म, आत्मा नेकविधमय भोगता ॥८४॥
पुद्गलकर्म जीव जो करे, उनको हि जो जीव भोगवे।
जिन को असम्मत द्वि क्रिया, से एकरूप आत्मा हुवे ॥८५॥

जीवभाव पुद्गल भाव दोनों भावको आत्मा करे ।
इससे हि मिथ्यादृष्टि, ऐसे द्विक्रियावादी हुवे ॥ ८६ ॥
मिथ्यात्व जीव अजीव दोविध, उभयविध अज्ञान है ।
अविरमण योग रु मोह अरु क्रोधादि उभय प्रकार है ॥८७॥
मिथ्यात्व अरु अज्ञान आदि अजीव, पुद्गल कर्म है ।
अज्ञान अरु अविरमण अरु मिथ्यात्व जीव, उपयोग है ॥८८॥
है मोहयुत उपयोगका परिणाम तीन अनादिका ।
मिथ्यात्व अरु अज्ञान अविरतभाव ये तीन जानना ॥८९॥
इससे हि है उपयोग त्रयविध, शुद्ध निर्मल भाव जो ।
जो भाव कुछ भी वह करे, उस भावका कर्ता बने ॥९०॥
जो भाव जीव करे स्वयं, उस भावका कर्ता बने ।
उस ही समय पुद्गल स्वयं, कर्मत्व रूपहि परिणमे ॥९१॥
परको करे निजरूप अरु, निज आत्म को भी पर करे ।
अज्ञानमय ये जीव ऐसा, कर्मका कारक बने ॥९२॥
परको नहीं निजरूप अरु, निज आत्मको नहिं पर करे ।
यह ज्ञानमय आत्मा, अकारक कर्मका ऐसे बने ॥९३॥
"मैं क्रोध" आत्मविकल्प यह, उपयोग त्रयविध आचरे ।
तब जीव उस उपयोगरूप, जीवभावका कर्ता बने ॥९४॥
"मैं धर्म" आदि विकल्प यह, उपयोग त्रयविध आचरे ।
तब जीव उस उपयोगरूप, जीवभावका कर्ता बने ॥९५॥

यह मन्दबुद्धि अज्ञ यों, परद्रव्यको निजरूप करे।
इस भाँति निज आत्मको अज्ञानसे पररूप करे ॥९६॥
सर्वज्ञ परमार्थज्ञ, कर्त्ता कहे इस आत्मको।
यह ज्ञान जिसका होय, वो छोडे सकल कर्तृत्वको ॥९७॥
घट पट रथादिक वस्तुएं, कर्मादि अरु सब इन्द्रियें।
नाना विविध जगतमें, आत्मा करे व्यवहारसे ॥ ९८॥
परद्रव्यको आत्मा जो करे तो जरूर वो तन्मय बने।
पर वो नहीं तन्मय हुआ इससे न कर्त्ता जीव है ॥९९॥
जीव नहिं करे घट पट नहीं, नहिं शेष द्रव्यों जीव करे।
उपयोगयोग निमित्तकर्त्ता, जीव तत्कर्त्ता बने ॥१००॥
ज्ञानावरण आदिक सभी, पुद्गल दरब परिणाम हैं।
करता नहीं आत्मा उन्हें, जो जानता वो ज्ञानि है ॥१०१॥
जो भाव जीव करे शुभाशुभ, उस हि का कर्त्ता बने।
उसका बने वो कर्म, आत्मा उस हि का वेदक बने ॥१०२॥
जो द्रव्य जो गुण द्रव्य में, परद्रव्यरूप न संक्रमे।
अनसंक्रमा किस भाँति वह, परद्रव्य प्रणमावे अरे ॥१०३॥
आत्मा करे नहिं द्रव्य गुण, पुद्गलमयी कर्मोविषे।
इन उभयको उनमें न कर्त्ता, क्यों हि तत्कर्त्ता बने ॥१०४॥
जिव हेतुभूत हुआ अरे, परिणाम देख जु बंधका।
उपचारमात्र कहाय वो, यह कर्म आत्मा ने किया ॥१०५॥

योद्धा करें जहँ युद्ध, वहाँ यह भूपकृत जनगण कहे।
त्यों जीवने ज्ञानावरण आदिक किये व्यवहार से ॥१०६॥
उपजावता प्रणमावता ग्रहता अवरु बांधे करे।
पुद्गलदरवको आतमा, व्यवहारनय वक्तव्य है ॥१०७॥
गुणदोष उत्पादक कहा, ज्यों भूपको व्यवहार से।
त्यों द्रव्यगुण उत्पन्न कर्ता, जिव कहा व्यवहारसे ॥१०८॥
सामान्य प्रत्यय चार, निश्चय बंधके कर्ता कहे।
मिथ्यात्व अरु अविरमण, योग कषाय ये ही जानने ॥१०९॥
फिर उनहिंका दर्शा दिया, यह भेद तेर प्रकारका।
मिथ्यात्व गुणस्थानादि ले, जो चरमभेद सयोगका ॥११०॥
पुद्गल करमके उदयसे, उत्पन्न इससे अजीव वे।
वे जो करें कर्मों भले, भोक्ता भि नहिं जिवद्रव्य है ॥१११॥
परमार्थसे 'गुण' नामके, प्रत्यय करें इन कर्मको।
तिससे अकर्ता जीव है, गुणवान करते कर्मको ॥११२॥
उपयोग ज्योंहि अनन्य जिवका, क्रोध त्योंही जीवका।
तो दोष आवे जीव त्योंहि अजीवके एकत्वका ॥११३॥
यों जगतमें जो जीव वेहि अजीव भी निश्चय हुवे।
नोकर्म, प्रत्यय, कर्म के एकत्वमें भी दोष ये ॥११४॥
जो क्रोध यों है अन्य, जिव उपयोग आत्मक अन्य है।
तो क्रोधवत् नोकर्म प्रत्यय कर्म भी सब अन्य हैं ॥११५॥

हिं बद्ध, स्वयं नहिं कर्मभावों परिणमे।
द्रव्य भी, परिणमनहीन बने अरे ॥११६॥
कार्माणकी, नहिं कर्मभावों परिणमे।
अभाव अथवा सांख्यमत निश्चित हुवे ॥११७॥
परिणमावे जीव पुद्गल द्रव्यको।
उसको परिणमावे, स्वयं नहि परिणमत जो ॥११८॥
स्वयमेव पुद्गलद्रव्य अरु, जो कर्म भावों परिणमे।
जिव परिणमावे कर्मको, कर्मत्वमें मिथ्या बने ॥११९॥
पुद्गल दरव जो कर्म परिणत, नियमसे कर्महि बने।
ज्ञानावरण इत्यादि परिणत वोहि तुम जानों उसे ॥१२०॥
नहिं बद्धकर्म, स्वयं नहीं जो क्रोधभावों परिणमे।
तो जीव यह तुझ मतविषै, परिणमनहीन बने अरे ॥१२१॥
क्रोधादि भावों जो स्वयं नहिं जीव आप हि परिणमे।
संसारका हि अभाव अथवा सांख्यमत निश्चित हुवे ॥१२२॥
जो क्रोध पुद्गलकर्म जिवको, परिणमावे क्रोधमें।
क्यों क्रोध उसको परिणमावे जो स्वयं नहिं परिणमे ॥१२३॥
अथवा स्वयं जिव क्रोधभावों परिणमे तुझ बुद्धिसे।
तो क्रोध जिवको परिणमावे क्रोधमें मिथ्या बने ॥१२४॥
क्रोधोपयोगी क्रोध जिव, मानोपयोगी मान है।
मायोपयुत माया अवरु लोभोपयुत लोभहि बने ॥१२५॥

जिस भावको आत्मा करे, कर्ता बने उस कर्मका ।
वो ज्ञानमय है ज्ञानिका, अज्ञानमय अज्ञानिका ॥१२६॥
अज्ञानमय अज्ञानिका, जिससे करे वो कर्म को ।
पर ज्ञानमय है ज्ञानिका, जिससे करे नहि कर्म जो ॥१२७॥
ज्यों ज्ञानमय को भावमेंसे ज्ञान भावहि ऊपजते ।
यों नियत ज्ञानी जीवके सब भाव ज्ञानमयी बने ॥१२८॥
अज्ञानमय को भावसे, अज्ञान भावहि ऊपजे ।
इस हेतुसे अज्ञानिके, अज्ञानमय भावहि बने ॥१२९॥
ज्यों कनकमय को भावमेंसे, कुण्डलादिक ऊपजे ।
पर लोहमय को भावसे, कटकादि भावो नीपजे ॥१३०॥
त्यों भाव बहुविध ऊपजे, अज्ञानमय अज्ञानिके ।
पर ज्ञानिके तो सर्व भावहि, ज्ञानमय निश्चयबने ॥१३१॥
जो तत्त्वका अज्ञान जीवके, उदय वो अज्ञानका ।
अप्रतीत तत्त्वकी जीवके जो, उदय वो मिथ्यात्वका ॥१३२॥
जीवका जु अविरत भाव है, वो उदय अनसंयम हि का ।
जीवका कलुष उपयोग जो, वो उदय जान कषायका ॥१३३॥
शुभ अशुभ वर्तन या निवर्तन रूप जो चेष्टा हि का ।
उत्साह करत जीवके वो उदय जानो योगका ॥१३४॥
जब होय हेतुभूत ये तब स्कन्ध जो कार्माणके ।
वे अष्टविध ज्ञानावरण इत्यादि भावों परिणमे ॥१३५॥

कार्मणवर्गणारूप वे जब, बंध पावें जीवमें।
आत्मा हि निज परिणाम भावोंका तभी हेतु बने ॥१३६॥
जो कर्मरूप परिणाम, जिवके साथ पुद्गलका बने।
तो जीव अरु पुद्गल उभय ही, कर्मपन पावें अरे ॥१३७॥
पर कर्मभावों परिणमन है, एक पुद्गलद्रव्यके।
जिव भाव हेतुसे अलग, तब कर्मके परिणाम हैं ॥१३८॥
जिवके करमके साथ ही, जो भाव रागादिक बने।
तो कर्म अरु जिव उभय ही, रागादिपन पावें अरे ॥१३९॥
पर परिणमन रागादिरूप तो, होत है जिव एकके।
इससे हि कर्मोदय निमित्तसे, अलग जिव परिणाम है ॥१४०॥
है कर्म जिवमें बद्धस्पृष्ट, जु कथन यह व्यवहारका।
पर बद्धस्पृष्ट न कर्म जिवमें, कथन है नय शुद्धका ॥१४१॥
है कर्म जिवमें बद्ध वा अनबद्ध ये नयपक्ष है।
परपक्षसे अतिक्रान्त भाषित, वो समयकासार है ॥१४२॥
नयद्वय कथन जाने हि, केवल समयमें प्रतिबद्ध जो।
नयपक्ष कुछ भी नहिं ग्रहे, नयपक्षसे परिहीन वो ॥१४३॥
सम्यक्त्व और सुज्ञानकी, जिस एकको संज्ञा मिले।
नयपक्ष सकल विहीन भाषित, वो समयकासार है ॥१४४॥

कर्ता कर्म अधिकार पूर्ण हुआ।

३ अथ पुण्यपापाधिकार ।

है कर्म अशुभ कुशील अरु जानो सुशील शुभकर्मको ।
किसरीत होय सुशील, जो संसारमें दाखिल करे ॥१४५॥
ज्यों लोहकी त्यों कनककी, जंजीर जकड़े पुरुषको ।
इस रीतसे शुभ या अशुभकृत, कर्म बांधे जीवको ॥१४६॥
इससे करो नहिं राग वा संसर्ग उभय कुशीलका ।
इस कुशिलके संसर्ग से है, नाश तुझ स्वातन्त्र्यका ॥१४७॥
जिम भाँति कोई पुरुष, कुत्सितशील जनको जानके ।
संसर्ग उसके साथ त्योंही, राग करना परितजे ॥१४८॥
यों कर्मप्रकृती शील और स्वभाव कुत्सित जानके ।
निजभावमें रत राग, अरु संसर्ग उसका परिहरे ॥१४९॥
जिव रागी बांधे कर्मको, वैराग्यगत मुक्ती लहे ।
ये जिन प्रभू उपदेश है नहिं रक्त हो तू कर्मसे ॥१५०॥
परमार्थ है निश्चय, समय, शुध, केवली, मुनि, ज्ञानि है ।
तिष्ठे जु उसहि स्वभाव मुनिवर, मोक्षकी प्राप्ती करें ॥१५१॥
परमार्थमें नहि तिष्ठकर, जो तप करें व्रतको धरें ।
तप सर्व उसका बाल अरु, व्रत बाल जिनवरने कहे ॥१५२॥
व्रतनियमको धारें भले, तपशीलको भी आचरें ।
परमार्थसे जो बाह्य वो, निर्वाणप्राप्ती नहिं करे ॥१५३॥

परमार्थरहित जीव जो, जानें न हेतू मोक्षका।
अज्ञानसे वे पुण्य इच्छें, हेतु जो संसारका ॥१५४॥
जीवादिका श्रद्धान सम्यक्त्व, ज्ञान उनका ज्ञान है।
रागादिका त्याग चरित है, अरु येहि मुक्ती पथ है ॥१५५॥
विद्वान् जन भूतार्थ तज, व्यवहारमें वर्तन करे।
पर कर्मनाश विधानतो, परमार्थ आश्रित संतके ॥१५६॥
मल मिलन लिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्रका।
मिथ्यात्वमलके लेपसे, सम्यक्त्व त्यों ही जानना ॥१५७॥
मल मिलन लिप्त जु नाश पावे श्वेतपन ज्यों वस्त्रका।
अज्ञानमलके लेपसे, सद्ज्ञान त्यों ही जानना ॥१५८॥
मल मिलन लिप्त जु नाश पावे, श्वेतपन ज्यों वस्त्रका।
चारित्र पावे नाश, लिप्त कषायमलसे जानना ॥१५९॥
यह सर्वज्ञानी दर्शि भी, निज कर्म रज आच्छादसे।
संसारप्राप्त, न जानता वो सर्वको सब रीतसे ॥१६०॥
सम्यक्त्वप्रतिबंधक करम, मिथ्यात्व जिनवरने कहा।
उसके उदयसे जीव मिथ्यात्वी बने यह जानना ॥१६१॥
त्यों ज्ञानप्रतिबंधक करम, अज्ञान जिनवरने कहा।
उसके उदयसे जीव अज्ञानी बने यह जानना ॥१६२॥
चारित्रप्रतिबंधक करम, जिन ने कषायोंको कहा।
उसके उदयसे जीव चारितहीन हो यह जानना ॥१६३॥

❀ पुण्य पाप अधिकार पूर्ण हुआ ❀

४ अथ आस्रवाधिकार

मिथ्यात्व अविरत अरु कषाय, योग संज्ञ असंज्ञ हैं।
ये विविध भेद जु जीवमें, जिवके अनन्य हि भाव हैं ॥१६४॥
अरु वे हि ज्ञानावरन आदिक, कर्मके कारण बनें।
उनका भि कारण जीव बने, जो रागद्वेषादिक करे ॥१६५॥
सद्दृष्टिको आस्रव नहीं, नहि बंध, आस्रवरोध है।
नहि बांधता जाने हि पूर्वनिबद्ध जो सत्ताविषे ॥१६६॥
रागादियुत जो भाव जिवकृत उसहि को बंधक कहा।
रागादिसे प्रविमुक्त ज्ञायक मात्र, बंधक नहिं रहा ॥१६७॥
फल पक्व खिरता, वृन्तसह सम्बन्ध फिर पाता नहीं।
त्यों कर्मभाव खिरा, पुन जिवमें उदय पाता नहीं ॥१६८॥
जो सर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते हैं ज्ञानिके।
वे पृथ्विपिंड समान हैं, कार्मणशरीर निबद्ध हैं ॥१६९॥
चउविध आस्रव समय समय जु, ज्ञानदर्शन गुणहिसे।
बहु भेद बांधे कर्म इससे ज्ञानि बंधक नाहिं है ॥१७०॥
जो ज्ञानगुणकी जघनता, वर्तता गुण ज्ञानका।
फिर फिर प्रणमता अन्यरूप जु, उसहिसे बंधक कहा ॥१७१॥
चारित्र दर्शन ज्ञान तीन, जघन्य भाव जु परिणमे।
उससे हि ज्ञानी विविध पुद्गलकर्मसे बंधात है ॥१७२॥

" पर्व पूर्वनिबद्ध प्रत्यय, वर्तते सद्दृष्टिके।
" उपयोग प्रायोग्य बंधन, कर्मभावोंसे करे ॥१७३॥
अनुभोग्य व निरुपभोग्य हि, बालिका ज्यों पुरुषको।
उपभोग्य बनते वे हि बांधें, यौवना ज्यों पुरुषको ॥१७४॥
अनुभोग्य हो उपभोग्य जिस विध होय उस विध बांधते।
ज्ञानावरण इत्यादि कर्म जु सप्त अष्ट प्रकार के ॥१७५॥
इस हेतुसे सम्यक्त्वसंयुत, जीव अनबंधक कहे।
आस्रव भाव अभावमें, प्रत्यय नहीं बंधक कहे ॥१७६॥
नहिं रागद्वेष न मोह वे, आस्रव नहीं सद्दृष्टिके।
इससे हि आस्रवभाव बिन, प्रत्यय नहीं हेतु बने ॥१७७॥
हेतु चतुर्विध कर्म अष्ट प्रकारका कारण कहा।
उनका हि रागादिक कहा, रागादि नहिं वहां बंधना ॥१७८॥
जनसे ग्रहित आहार ज्यों, उदराग्निके संयोगसे।
बहुभेद मांस, वसा अरू, रुधिरादि भावों परिणमे ॥१७९॥
त्यों ज्ञानिके भी पूर्वकालनिबद्ध जो प्रत्यय रहे।
बहुभेद बांधे कर्म, जो जिव शुद्धनयपरिच्युत बने ॥१८०॥

* आस्रव अधिकार पूर्ण हुआ *

५ अथ संवराधिकार

उपयोगमें उपयोग, को उपयोग नहिं क्रोधादि में।
है क्रोध क्रोधविषैं हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोगमें ॥१८१॥

उपयोग है नहि अष्टविध, कर्मों अरु नोकर्ममें।
ये कर्म अरु नोकर्म भी कुछ है नहीं उपयोगमें ॥१८२॥
ऐसा अविपरित ज्ञान जब ही प्रगटता है जीवको।
तब अन्य नहि कुछ भाव वह उपयोग शुद्धातमा करे ॥१८३॥
ज्यों अग्नितप्त सुवर्ण भी, निज स्वर्णभाव नहीं तजे,
त्यों कर्म उदय प्रतप्त भी, ज्ञानी न ज्ञानिपना तजे ॥१८४॥
जिव ज्ञानि जाने येहि, अरु अज्ञानि राग हि जिव गिने।
आत्मस्वभाव अजान जो, अज्ञानतमआच्छादसे ॥१८५॥
जो शुद्ध जाने आत्मको, वो शुद्ध आत्म हि प्राप्त हो।
अनशुद्ध जाने आत्मको, अनशुद्ध आत्म हि प्राप्त हो॥१८६॥
शुभ अशुभसे जो रोककर निज आत्मको आत्मा हि से।
दर्शन अवरु ज्ञान हि ठहर, परद्रव्यइच्छा परिहरे ॥१८७॥
जो सर्वसंगविमुक्त ध्यावे, आत्मसे आत्मा हि को।
नहि कर्म अरु नोकर्म, चेतक चेतता एकत्व को ॥१८८॥
वह आत्मध्याता, ज्ञानदर्शनमय अनन्यमयी हुआ।
बस अल्पकाल जु कर्मसे परिमोक्ष पावे आत्मका ॥१८९॥
रागादिके हेतू कहे, सर्वज्ञ अध्यवसानको।
मिथ्यात्व अरु अज्ञान, अविरतभाव त्यों ही योगको॥१९०॥
कारण अभाव जरूर आस्रवरोध ज्ञानीके बने।
आस्रवभाव अभावमें, नहिं कर्मका आना बने ॥१९१॥

रामे, नोकर्मका रोधन बने ।
आस्रव ... , ममार सगोधन बने ॥१९२॥

संवर अधिकार पूर्ण हुआ

अथ निर्जराधिकार

... द्रव्यका, उपभोग इन्द्रियसमूहसे ।
... सद्दृष्टि वह सब, निर्जरा कारण बने ॥१९३॥
... वस्तु उपभोग निश्चय, दुःख वा सुख होय है ।
... उदित सुख दुःख भोगता, फिर निर्जरा हो जाय है ॥१९४॥
ज्यों जहरके उपभोगसे भी, वैद्यजन मरता नहीं ।
त्यों उदयकर्म जु भोगता भी, ज्ञानिजन बँधता नहीं ॥१९५॥
ज्यों अरतिभाव जु मद्य पीकर मत्तजन बनता नहीं ।
द्रव्योपभोगविषे अरत, ज्ञानी पुरुष बँधता नहीं ॥१९६॥
सेता हुआ नहिं सेवता, नहिं सेवता सेवक बने ।
प्रकरणतनी चेष्टा करे, अरु प्राकरण ज्यों नहिं हुवे ॥१९७॥
कर्मों हि के जु अनेक, उदय विपाक जिनवरने कहे ।
वे मुझ स्वभाव जु हैं नहीं, मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९८॥
पुद्गलकरमरूप रागका हि, विपाकरूप है उदय ये ।
ये है नहीं मुझभाव, निश्चय एक ज्ञायक भाव हूँ ॥१९९॥
सद्दृष्टि इसरित आत्मको, ज्ञायकस्वभाव हि जानता ।
अरु उदय कर्मविपाकका वह, तत्त्वज्ञायक छोडता ॥२००॥

अणुमात्र भी रागादिका, सद्भाव है जिस जीवको ।
वो सर्व आगमधर भले ही, जानता नहि आत्मको ॥२०१॥
नहिं जानता जहँ आत्मको, अनआत्म भी नहिं जानता ।
वो क्योंहि होय सुदृष्टि जो, जिव अजिवको नहिं जानता ॥२०२॥
जिवमें अपद्भुत द्रव्यभावहु, छोड ग्रह तु यथार्थसे ।
थिर, नियत, एक हि मात्र यह, उपलभ्य जो हि स्वभावसे॥२०३
मति, श्रुती, अवधी, मन, केवल मनहि एक हि पद जु है।
वो ज्ञानपद परमार्थ है, जो पाय जिव मुक्ती लहे ॥२०४॥
रे ज्ञानगुणसे रहित बहुजन, पद नहीं यह पा सके ।
तू कर ग्रहण पद नियत ये, जो कर्ममोचेच्छा तुझे ॥२०५॥
इसमें सदा रतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे ।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे ॥२०६॥
परद्रव्य यह मुझ द्रव्य, यों तो कौन ज्ञानीजन कहे ।
निज आत्मको निजका परिग्रह, जानता जो नियमसे॥२०७॥
परिग्रह कभी मेरा बने, तो मैं अजीव बनूं अरे ।
मैं नियमसे ज्ञाता हि, इससे नहि परिग्रह मुझ बने ॥२०८॥
छेदाय या भेदाय, को ले जाय, नष्ट, बनो भले ।
या अन्य को रित जाय, पर परिग्रह न मेरा है अरे ॥२०९॥
अनिच्छक कहा अपरिग्रही, नहिं पुण्य इच्छा ज्ञानिके ।
इससे न परिग्रहि पुण्यका, वो पुण्यका ज्ञायक रहे ॥२१०॥

रे ... पापारी, नहिं पाप इच्छा ज्ञानिके।
... है ... , जो पापका ज्ञायक रहे ॥२११॥
... अशनकी नहिं अशन इच्छा ज्ञानिके।
... अशनका, वो अशनका ज्ञायक रहे ॥२१२॥
... पानपरिग्रही नहिं पान इच्छा ज्ञानिके।
इससे ... पानका, वो पानका ज्ञायक रहे ॥२१३॥
ये ... विध भाव बहु, ज्ञानी न इच्छे सर्वको।
सर्वत्र आलंबनरहित बस, नियत ज्ञायकभाव वो ॥२१४॥
साम्प्रत उदयके भोगमें जु वियोगबुद्धी ज्ञानिके।
अरु भावि कर्मविपाककी, कांक्षा नहीं ज्ञानी करे ॥२१५॥
रे वेद्यवेदक भाव दोनों, समय समय विनष्ट है।
ज्ञानी रहे ज्ञायक, कदापि न उभयकी कांक्षा करे ॥२१६॥
संसारतनसंबंधि, अरु बंधोपभोग निमित्त जो।
उन सर्व अध्यवसान उदय जु, राग होय न ज्ञानिको ॥२१७॥
हो द्रव्य सबमें रागवर्जक, ज्ञानि कर्मों मध्यमें।
पर कर्मरजसे लिप्त नहिं, ज्यों कनक कर्दम मध्यमें ॥२१८॥
पर द्रव्य सबमें रागशील, अज्ञानि कर्मों मध्यमें।
वह कर्मरजसे लिप्त हो, ज्यों लोह कर्दम मध्यमें ॥२१९॥
ज्यों शंख विविध सचित्त, मिश्र अचित्त वस्तू भोगते।
पर शंखके शुक्लत्वको नहिं, कृष्ण कोई कर सके ॥२२०॥

त्यों ज्ञानि भी मिश्रित, सचित्त, अचित्त वस्तु भोगते ।
पर ज्ञान ज्ञानीका नहीं, अज्ञान कोई कर सके ॥२२१॥
जबही स्वय वो शख, तजकर स्वीय श्वेत स्वभावको ।
पावे स्वय कृष्णत्व तब ही, छोडता शुक्लत्वको ॥२२२॥
त्यों ज्ञानि भी जब ही स्वाय निज, छोड ज्ञानस्वभावको ।
अज्ञानभावों परिणमे, अज्ञानताको प्राप्त हो ॥२२३॥
ज्यों जगतमें को पुरुष, वृत्तिनिमित्त सेवे भूपको ।
तो भूप भी सुखजनक विधविध भोग देवे पुरुषको ॥२२४॥
त्यों जिवपुरुष भी कर्मरजका सुख अरथ सेवन करे ।
तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोग देवे जीवको ॥२२५॥
अरु वो हि नर जब वृत्तिहत भूपको सेवे नहीं ।
तो भूप भी सुखजनक विधविध भोगको देवे नहीं ॥२२६॥
सद्दृष्टिको त्यों विषयहत् कर्मरज सेवन नहीं ।
तो कर्म भी सुखजनक विधविध भोगको देता नहीं ॥२२७॥
सम्यक्ति जिव होते निःशंकित इसहिसे निर्भय रहें ।
हैं सप्तभयप्रविमुक्त वे, इसही से वे निःशंक हैं ॥२२८॥
जो कर्मबंधनमोहकर्त्ता, पाद चारों छेदता ।
चिन्मूर्ति वो शंकारहित, सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२२९॥
जो कर्मफल अरु सर्व धर्मोंकी न कांक्षा धारता ।
चिन्मूर्ति वो कांक्षारहित सम्यक्त्वदृष्टी जानना ॥२३०॥

[illegible] मुनिराज जुगुप्साभाव जो नहि धारता।
[illegible] सो सम्यग्दृष्टि निश्चय जानना ॥२[illegible]
[illegible] मार्गमें जो मत्यदृष्टी धारता।
[illegible] सम्यग्दृष्टि निश्चय जानना ॥२[illegible]
[illegible] है, गोपनकरें मत धर्मका।
[illegible] वा [illegible] सम्यक्तदृष्टी जानना ॥२[illegible]
[illegible] बाते [illegible] भी, मार्गमें जो स्थापता।
[illegible] सो [illegible] युत, सम्यक्तदृष्टी जानना ॥२[illegible]
[illegible] मोक्षपथमें साधु अथवा वत्सलता करे अहा।
[illegible] सो वात्सल्यगुन, सम्यक्तदृष्टी जानना ॥२[illegible]
[illegible] रथपथमें [illegible] घूमता।
जिनराज ज्ञान प्रभावकर सम्यक्तदृष्टी जानना ॥२[illegible]

※ [illegible]धिकार समाप्त हुआ ※

५ अथ बंधाधिकार

जिम कोइ पुरुष, मर्दन आप करके तेलका।
व्यायाम करता शस्त्रसे, बहु रजभर स्थानक खडा ॥२[illegible]
तरु ताड कदली बांस आदी छिन्नभिन्न बहू करे।
उपघात आप सचित्त अरु अचित्त द्रव्योंका करे ॥२[illegible]
बहुभांतिके करणादिसे उपघात करत उसहि को।
निश्चयपने चिंतन करो, रजबंध है किन कारणों ॥२[illegible]

यों जानना निश्चयपनें, चिक्नाइ जो उस नरविषै।
रजबंधकारण वो हि है, नहिं कायचेष्टा शेष है ॥२४०॥
चेष्टा विविधमें वर्तता, इसभांति मिथ्यादृष्टि जो।
उपयोगमें रागादि करता, रजहिसे लेपाय जो ॥२४१॥
जिम रीत फिर वो ही पुरुष, उस तेल सबको दूरकर।
व्यायाम करता शस्त्रसे, बहु रजभर स्थानक ठहर ॥२४२॥
अरु ताड, कदली, बाँस आदी, छिन्न भिन्न बहू करे।
उपघात आप सचित्त अवरु, अचित्त द्रव्योंका करे ॥२४३॥
बहुभांतिके करणादिसे, उपघात करत उसहि को।
निश्चयपने चिंतनकरो, रजबंध नहिं तिन कारणों ॥२४४॥
यों जानना निश्चयपने, चिक्नाइ जो उस नरविषै।
रजबंधकारण वो हि है, नहि कायचेष्टा शेष है ॥२४५॥
योगों विविधमें वर्तता, इमभांति सम्यग्दृष्टि जो।
उपयोगमें रागादि न करे, रजहि नहिं लेपाय वो ॥२४६॥
जो मानता मैं मारु पर अरु घात पर मेरा करे।
वो मूढ है, अज्ञानि है, विपरीत इससे ज्ञानि है ॥२४७॥
है आयुक्षयसे मरण जिवका ये हि जिनवरने कहा।
तू आयु तो हरता नहीं, तैने मरण कैसे किया ॥२४८॥
है आयुक्षयसे मरण जिवका ये हि जिनवरने कहा।
व आयु तुझ हरते नहीं, तो मरण तुझ कैसे किया ॥२४९॥

[illegible] शुभ जिवन परसे रहे।
[illegible] [illegible]परीत इससे ज्ञानि है ॥२५०॥
[illegible] ये हि जिनवरने कहा।
[illegible] नहिं जिवन कैसे किया ॥२५१॥
[illegible] ये हि जिनवरने कहा।
[illegible] तो जिवन तुझ कैसे किया ॥२५२॥
[illegible] सुखि, मैं करूं परजीवको।
[illegible], विपरीत इससे ज्ञानि है ॥२५३॥
[illegible] उदयकर्म [illegible] दुखित अरु सुखी बनें।
[illegible] कर्म तो देता नहीं, कैसे तु दुखित सुखी करे ॥२५४॥
जहँ उदयकर्म जु जीव सब ही, दुखित अरु सुखी बनें।
वो कर्म तुझ देते नहीं, तो दुखित तुझ कैसे करें ॥२५५॥
जहँ उदयकर्म जु जीव सब ही, दुखित अरु सुखी बनें।
वो कर्म तुझ देते नहीं, तो सुखित तुझ कैसे करें ॥२५६॥
मरता दुखी होता जु जिव सब कर्म उदयोंसे बनें।
मुझसे मरा अरु दुखि हुआ क्या मत न तुझ मिथ्या अरे ॥२५७॥
अरु नहिं मरे, नहिं दुखि बने, वे कर्म उदयोंसे बनें।
'मैंने न मारा दुखि करा' क्या मत न तुझ मिथ्या अरे ॥२५८॥
ये बुद्धि तेरी "दुखित अरु सुखी करूं हूं जीवको"।
वो मूढमति तेरी अरे, शुभ अशुभ बांधे कर्मको ॥२५९॥

करता तु अध्यवसान "दुखित सुखी करूँ जीवको",।
जो बांधता है पापको या बांधता है पुण्यको ॥२६०॥
करता तु अध्यवसान "मैं मारूँ जिवाऊँ जीवको"।
जो बांधता है पापको या बांधता है पुण्य को ॥२६१॥
मारो न मारो जीवको, है बंध अध्यवसानसे।
यह आतमाके बंधका, संक्षेप निश्चयनयविषें ॥२६२॥
यों झूठ माहिं, अदत्तमें, अब्रह्म अरु परिग्रहविषें।
जो होय अध्यवसान उससे पापबंधन होय है ॥२६३॥
इस रीत सत्य रु दत्तमें, त्यों ब्रह्म अनपरिग्रहविषें।
जो होय अध्यवसान उससे पुण्यबंधन होय है ॥२६४॥
जो होय अध्यवसान जिवके, वस्तुआश्रित वो बने।
पर वस्तुसे नहिं बंध, अध्यवसान से ही बंध है ॥२६५॥
करता दुखी सुखि जीवको, अरु बद्ध मुक्त करूँ अरे।
ये मूढ़मति तुझ है निरर्थक, इस हि से मिथ्या हि है ॥२६६॥
सब जीव अध्यवसान कारण, कर्मसे बँधते जहाँ।
अरु मोक्षमग थित जीव छूटे, तू हि क्या करता भला ॥२६७॥
तिर्यंच, नारक, देव, मानव, पुण्यपाप अनेक जे।
उन सर्वरूप करे जु निजको, जीव अध्यवसानसे ॥२६८॥
अरु त्यों हि धर्म अधर्म, जीव अजीव,लोक अलोक जे।
उन सर्वरूप करे जु निजको, जीव अध्यवसानसे ॥२६९॥

[illegible] ,अध्यवसित नहि जिनहि को ।
[illegible] मुनिराज वे नहिं लिप्त हों ॥२७०॥
[illegible] ,अध्यवसान अरु विज्ञान है ।
[illegible] शब्दहि सर्व ये एकार्थ हैं ॥२७१॥
[illegible] निषिद्ध निश्चयनयहिसे ।
[illegible] ,मोक्षकी प्राप्ती करे ॥२७२॥
[illegible] ,गुप्ती अनरु तप शीलको ।
[illegible] ,अज्ञानि मिथ्यादृष्टि है ॥२७३॥
[illegible] अभव्य जिन शास्त्रों पढ़े ।
[illegible] ,पठन ये नहि गुण करे ॥२७४॥
वो धर्मको [illegible] प्रतीत, रुची अरू स्पर्शन करे ।
वो भोगहेतु धर्मको, नहि कर्मक्षयके हेतुको ॥२७५॥
"आचार" आदिक ज्ञान है, जीवादि दर्शन जानना ।
षट् जीवकाय चरित्र है, ये कथन नय व्यवहारका ॥२७६॥
मुझ आत्मनिश्चय ज्ञान है, मुझ आत्मदर्शन चरित है ।
मुझ आत्म प्रत्याख्यान अरु, मुझ आत्म संवर योग है ॥२७७॥
ज्यों फटिकमणि है शुद्ध, आप न रक्तरूप जु परिणमे ।
पर अन्य रक्त पदार्थसे, रक्तादिरूप जु परिणमे ॥२७८॥
त्यों ज्ञानि भी है शुद्ध, आप न रागरूप जु परिणमे ।
पर अन्य जो रागादि दूषण, उनसे वो रागी बने ॥२७९॥

कभि रागद्वेषविमोह अगर कषायभाव जु निजविषै।
ज्ञानी स्वयं करता नहीं, इससे न तत्कारक बने ॥२८०॥

पर रागद्वेषकषायकर्मनिमित्त होवें भाव जो।
उनरूप जो जिव परिणमें फिर बांधता रागादि को ॥२८१॥

यों रागद्वेषकषायकर्मनिमित्त होवें भाव जो।
उनरूप आतमा परिणमें वो बांधता रागादिको ॥२८२॥

अनप्रतिक्रमण दो भाँति अनपचखाण भी दो भाँति है।
जिवको अकारक है कहा इस रीतके उपदेशसे ॥२८३॥

अनप्रतिक्रमण दो द्रव्यभाव जु याहि अनपचखाण है।
जिवको अकारक है कहा इस रीतके उपदेशसे ॥२८४॥

अनप्रतिक्रमण अरु त्योंहि अनपचखाण द्रव्य रु भावका।
जबतक करै है आतमा, कर्ता बने है जानना ॥२८५॥

हैं अधःकर्मादिक जु पुद्गलद्रव्यके ही दोष ये।
कैसे करे ज्ञानी, सदा परद्रव्यके जो गुणहि हैं ॥२८६॥

उद्देशि त्योंही अधःकर्मी पौद्गलिक यह द्रव्य जो।
कैसे हि मुझकृत होय नित्य अजीव वर्णा जिसहिको ॥२८७॥

※ बंधाधिकार समाप्त हुआ ※

८ मोक्षाधिकार

ज्यों, पतिबद्ध है चिरकालका।
ज्यों ही काल जाने बंधका ॥२८८
ने तो छूटे न, बंधनवश रहे।
तो भी मुक्त जो नर नहिं बने ॥२८९

… प्रदेश, स्थिति, अनुभागको।
जान … छूटे … जो शुद्ध तो ही मुक्त हो ॥२९०

जो बंधनोंसे बद्ध जो नहिं बंधचिंतासे छुटे।
त्यों जीव भी इन बंधकी चिंता करेसे नहिं छुटे ॥२९१

जो बंधनोंसे बद्ध जो नर बंधछेदनसे छुटे।
त्यों जीव भी इन बंधोंका छेद कर मुक्ती वरे ॥२९२

र जानकर बंधन स्वभाव स्वभाव जान जु आत्मका।
जो बंधमें हि विरक्त होवें, कर्म मोक्ष करें अहा ॥२९३

छेदन करो जिव बंधका तुम नियतनिज निज चिह्नसे।
प्रज्ञा छैनीसे छेदते दोनों पृथक् हो जाय हैं ॥२९४

छेदन होवे जिव बंधका जँह नियत निज २ चिह्नसे।
वह छोडना इस बंधको, निज ग्रहण करना शुद्धको ॥२९५

यह जीव कैसे ग्रहण हो? जिवका ग्रहण प्रज्ञाहि से।
ज्यों अलग प्रज्ञासे किया, त्यों ग्रहण भी प्रज्ञाहि से॥२९६

कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, चेतक है सो ही मैं हि हूँ।
अवशेष जो सब भाव हैं, मेरेसे पर ही जानना ॥२९७॥
कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, दृष्टा है सो ही मैं हि हूँ।
अवशेष जो सब भाव है, मेरेसे पर ही जानना ॥२९८॥
कर ग्रहण प्रज्ञासे नियत, ज्ञाता है सो ही मैं हि हूँ।
अवशेष जो सब भाव हैं मेरेसे पर ही जानना ॥२९९॥
सब भाव जो परकीय जाने, शुद्ध जाने आत्मको।
वह कौन ज्ञानी "मेरा है यह" या वचन बोले अहो ॥३००॥
अपराध चौर्यादिक करें जो पुरुष वो शंकित फिरें।
को लोकमें फिरते हुएको, चोर जान जु बांध ले ॥३०१॥
अपराध जो करता नहीं, निःशंक लोकविषैं फिरैं।
"बँध जाउंगा' ऐसी कभी, चिंता न उसको होय है ॥३०२॥
त्यों आतमा अपराधी "मैं बँधता हुं' यों हि सशंक है।
अरु निरपराधी आतमा, "नाहीं बंधू" निःशंक है ॥३०३॥
संसिद्धि, सिद्धि जु राध, अरु साधित अराधित एक है।
वे राधसे जो रहित है, वो आतमा अपराध है ॥३०४॥
अरु आतमा जो निरपराधी होय है निःशङ्क वो।
वर्ते सदा आराधनासे, जानता "मैं" आत्मको ॥३०५॥
प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण त्यों परिहरण, निवृत्ति धरणा।
अरु शुद्धि, [illegible], ये अष्टविध विषकुंभ हैं।

ञान, लिनारा, अनपरिहरण अनधारणा।
, गर्हा, अशुद्धि अमृतर म है ॥३०७॥

मोक्षाधिकार समाप्त

अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार

जिन गुणोंसे, उनमें जान अनन्य यो ।
कटकादि, पर्यायामें कनक अनन्य ज्यों ॥३०८॥
अजीवके परिणाम जो शास्त्रोंमें निनवर कहे।
जीव और अजीव जान, अनन्य उन परिणामसे ॥३०९॥
उपजे न आतमा कोइसे, इससे न आत्मा कार्य है ।
उपजावता नहिं कोइको, इससे न कारण भी बने ॥३१०॥
रे! कर्मआश्रित होय कर्ता, कर्म भी करतारके ।
आश्रित हुवे उपजै नियमसे, अन्य नहिं सिद्धी दिखै ॥३११॥
पर जीव प्रकृतीके निमित्त जु, उपजता नशता अरे ।
अरुप्रकृतिका जिवके निमित्त, विनाश अरु उत्पाद है ॥३१२॥
अन्योन्यके जु निमित्त से यों, बंध दोनोंका बने ।
इस जीव प्रकृती उभयका, संसार इससे होय है ॥३१३॥
उत्पादव्यय प्रकृती निमित्त जु, जब हि तक नहिं परितजे।
अज्ञानि, मिथ्यात्वी, असंयत, तब हि तक वो जिव रहे ॥३१४॥
य आतमा जब ही करमका, फल-अनंता परितजे ।
ज्ञायक तथा दर्शक तथा मुनि वोहि, कर्मविमुक्त है ॥३१५॥

अज्ञानि स्थित प्रकृती स्वभाव सु, कर्मफलको वेदता ।
अरु ज्ञानि तो जाने उदयगत कर्मफल, नहिं भोगता ॥३१६॥
सद्गीत पढ़कर शास्त्र भी, प्रकृती अभव्य नहीं तजे ।
ज्यों दूध-गुड पीता हुआ भी सर्प नहिं निर्विष बने ॥३१७॥
वैराग्यप्राप्त जु ज्ञानिजन है, कर्मफल को जानता ।
कड़वे-मधुर बहुभाँतिको, इससे अवेदक है अहा ॥३१८॥
करता नहीं, नहिं वेदता, ज्ञानी करम बहुभाँतिको ।
बस जानता ये बंध त्यों ही कर्मफल शुभ अशुभको ॥३१९॥
ज्यों नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अहो ।
जाने हि कर्मोदय, निरजरा, बंध त्यों ही मोक्षको ॥३२०॥
ज्यों लोक माने "देव नारक आदि जिव विष्णू करे" ।
त्यों श्रमण भी माने कभी, "षट्कायको आत्मा करे" ॥३२१॥
तो लोक मुनि सिद्धांत एक हि, भेद इसमें नहिं दिखे ।
विष्णू करे ज्यों लोकमतमें, श्रमणमत आत्मा करे ॥३२२॥
इसभांति लोक मुनी उभयका मोक्ष कोई नहिं दिखे । -
जो देव, मानव असुरके, त्रयलोकको नित्यहि करे ॥३२३॥
व्यवहारमूढ़ अतत्त्वविद् परद्रव्यको मेरा कहे ।
"अणुमात्र भी मेरा न" ज्ञानी जानता निश्चयहि से ॥३२४
ज्यों पुरुष कोई कहे "हमारा ग्राम, पुर अरु देश
[illegible] उसका अरे । जिव मोहसे "मेरा"

... ... ग ... भी 'मुझ' जानता परद्रव्यको।
... ... र्लो बने, निजरूप करता अन्यको ॥३२६॥
... ... नान निज, परद्रव्यम इन उभयको।
... ... जानता, जाने सुदृष्टीरहितकी ॥३२७॥
... ... प्रकृती ही अगर, मिथ्यात्वि जो जिवको करे।
... ... प्रकृति ही कारक बने तुझ मतविषे ॥३२८॥
... ... जो जीव पुद्गलद्रव्यके मिथ्यात्वको।
तो तो बने मिथ्यात्वि पुद्गल द्रव्य आत्मा नहिं बने। ३२९॥
... जीव अरु प्रकृती करे मिथ्यात्व पुद्गल द्रव्यको।
तो उभयकृत जो होय तत्फल भोग भी हो उभयको ॥३३०॥
जो प्रकृति नहिं नहिं जिव करे मिथ्यात्व पुद्गलद्रव्यको।
पुद्गलद्रव्य मिथ्यात्व अकृत, क्या न यह मिथ्या कहो ॥३३१॥
कर्महि करें अज्ञानि त्योंही ज्ञानि भी कर्महि करें।
कर्महि सुलाते जीवको, त्यों कर्म ही जाग्रत करें ॥३३२॥
अरु कर्महीं करते सुखी, कर्महि दुखी जिवको करे।
कर्महि करें मिथ्यात्वि त्योंहि, असंयमी कर्महि करें ॥३३३॥
कर्महि भ्रमावे ऊर्ध्व लोक र, अध अरु तिर्यक विषे।
अरु कुछ भी जो शुभ या अशुभ, उन सर्वको कर्महि करे ॥३३४॥
करता करम ... करम, हरता करम—सब कुछ करे।
इस हेतुसे यह है सुनिश्चित जिव अकारक सर्व है ॥३३५॥

पुंकर्म इच्छे नारिको स्त्रीकर्म इच्छे पुरुषको ।
एसी श्रुती आचार्यदेव परंपरा अवतीर्ण है ॥३३६॥
इस रीत "कर्महि कर्मको इच्छे" कहा है शास्त्र ।
'अब्रह्मचारी यों नहीं को जीव हम उपदेशमें ॥३३७॥
अरु जो हने परको, हनन हो परसे, सोह प्रकृति है ।
'इस अर्थमें परघात नामक कर्म का निर्देश है ॥३३८॥
इस रीत "कर्महि कर्मको हनता" कहा है शास्त्रमें ।
इससे न को भी जीव है हिंसक जु हम उपदेशमें ॥३३९॥
यों सांख्यका उपदेश ऐसा जो श्रमण वर्णन करे ।
उस मतसे मत प्रकृती करे जिव तो अकारक सर्व हैं ॥३४०॥
अथवा तु माने "आतमा मेरा स्व आत्मा को करे ।
तो ये जो तुझ मंतव्य भी मिथ्या स्वभाव हि तुझ अरे ।३४१॥
जिव नित्य है त्यों, है असंख्यप्रदेशि दर्शित समयम ।
उससे न उसको हीन, त्योंहि न अधिक कोई कर सके॥३४२॥
विस्तारसे जिवरूप जिवका, लोकमात्र प्रमाण है ।
क्या उससे हीन रु अधिक बनता द्रव्यको कैसे करे॥३४३॥
माने तु 'ज्ञायकभाव तो ज्ञानस्वभाव स्थित रहे' ।
तो यों भि यह आत्मा स्वयं निज आत्माको नहिं करे॥३४४॥
पर्याय कुछसे नष्ट जिव, कुछसे न जीव विनष्ट है ।
इससे करे है वो हि या को अन्य नहिं एकान्त है ॥३४

[illegible] जिव, पुजमे न जीव विनष्ट है।
[illegible] जो अन्य नहिं एकान्त है ॥३४६॥
[illegible] नहि–जिसका यह सिद्धान्त है।
[illegible] नहीं, जो जिव मिथ्यादृष्टि है। ३४७॥
[illegible] अन्य वेदे जिसका यह सिद्धांत है।
[illegible] नहीं, वो जीव मिथ्यादृष्टि है ॥३४८॥
ज्यों [illegible] कर्म करे परन् वो नहीं तन्मय बने।
त्यों [illegible] आत्मा करे पर वो नहीं तन्मय बने ॥३४९॥
ज्यों शिल्पि करणासे करे पर वो नहीं तन्मय बने।
त्यों जीव करणोंसे करे पर वो नहीं तन्मय बने ॥३५०॥
ज्यों शिल्पि करण ग्रहे परन्तु वो नहीं तन्मय बने।
त्यों जीव करणोंको ग्रहे पर वो नहीं तन्मय बने ॥३५१॥
शिल्पी करमफल भोगता, पर वो नहीं तन्मय बने।
त्यों जिव करमफल भोगता, पर वो नहीं तन्मय बने॥३५२॥
इस भांति मत व्यवहारका संक्षेपसे वक्तव्य है।
सुनलो वचन परमार्थका, परिणामविषयक जो हि है ॥३५३॥
शिल्पी करे चेष्टा अवरु, उस ही से शिल्पि अनन्य है।
त्यों जीव कर्म करे अवरु, उस ही से जीव अनन्य है॥३५४॥
चेष्टित हुआ शिल्पी निरंतर दुखित जैसे होय है।
अरु दुखसे शिल्पि अनन्य, त्यों जिव चेष्टमान दुखी बने ॥३५५॥

ज्यों सेटिका नहिं अन्यक ...का बस सेटिका।
ज्ञायक नहीं त्यों अन्य... अहो ज्ञायक तथा ॥३५६॥
ज्यों सेटिका नहि अन्य... सेटिका बस सेटिका।
दर्शक नहीं त्यों अन्य... अहो दर्शक तथा ॥३५७॥
ज्यों सेटिका नहि अन्य... सेटिका बस सेटिका।
संयत नहीं त्यों अन्यक संयत अहो संयत तथा ॥३५८॥
ज्यों सेटिका नहि अन्य... सेटिका बस सेटिका।
दर्शन नहीं त्यों अन्यका, दर्शन अहो दर्शन तथा ॥३५९॥
यों ज्ञानदर्शनचरितविषयक कथन नय परमार्थका।
सुनलो वचन संक्षेपसे, इस विषयमें व्यवहारका ॥३६०॥
ज्यों श्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप स्वभावसे।
ज्ञाता भि त्यों ही जानता, परद्रव्यको निज भावसे ॥३६१॥
ज्यों श्वेत करती सेटिका परद्रव्य आप स्वभावसे।
आत्मा भि त्यों ही देखता परद्रव्यको निजभावसे ॥३६२॥
ज्यों श्वेत करती सेटिका परद्रव्य आप स्वभावसे।
ज्ञाता भि त्यों ही त्यागता, परद्रव्यको निज भावसे ॥३६३॥
ज्यों श्वेत करती सेटिका, परद्रव्य आप स्वभावसे।
सुदृष्टि त्यों ही श्रद्धता, परद्रव्यको निज भावसे ॥३६४॥
यों ज्ञानदर्शनचरितमें निर्णय कहा व्यवहारका।
अरु अन्य पर्यय विषयमें भी इस प्रकार हि जानना॥

[illegible] [illegible]त् नहि अचेतन विषयमें।
[illegible] क्या हन सके उन विषयमें ॥३६६॥
[illegible] [illegible]त् नहिं अचेतन कर्मम।
[illegible] [illegible]नमा क्या हन सके उन कर्ममें ॥३६७॥
[illegible] किञ्चित् नहि अचेतन कायमें।
[illegible] [illegible]नमा क्या हन सके उन कायमें ॥३६८॥
[illegible] सम्यक्त्वका, उपघात चारितका कहा।
[illegible] कुछ भी नहिं कहा उपघात पुद्गल द्रव्यका ॥३६९॥
जो [illegible]के गुण है नियत वे कोइ नहिं परद्रव्यमें।
इस हेतुसे सद्दृष्टि जिनको राग नहि है विषयमें ॥३७०॥
अरु राग, द्वेष, विमोह तो जिवके अनन्य परिणाम हैं।
इस हेतुसे शब्दादि विषयोंमें नहीं रागादि हैं ॥३७१॥
को द्रव्य दुसरे द्रव्यमें उत्पाद नहि गुणका करे।
इस हेतुसे सब ही दरव उत्पन्न आप स्वभावसे ॥३७२॥
पुद्गल दरव बहु भाँति निंदा स्तुतिवचनरूप परिणमे।
सुनकर उन्हें 'मुझको कहा' गिन रोष तोष जु जिव करे ॥३७३॥
पुद्गलदरव शब्दत्वपरिणत, उसका गुण जो अन्य है।
तो नहिं कहा कुछ भी तुझे, हे अबुध! रोष तू क्यों करे ॥३७४॥
शुभ या अशुभ जो शब्द वो 'तू सुन मुझे' न तुझे कहे।
अरु जीव भी नहि ग्रहण जावे कर्णगोचर शब्दको ॥३७५॥
शुभ या अशुभ जो रूप वो 'तू देख मुझको' नहि कहे।
अरु जीव भी नहि ग्रहण जावे चक्षुगोचर रूपको ॥३७६॥

शुभ या अशुभ जो गंध वो 'तू सूंघ मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे घ्राणगोचर गंधको ॥३७७॥
शुभ या अशुभ रस कोइ भी 'तू चाख मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे रसनगोचर स्वादको ॥३७८॥
शुभ या अशुभ जो स्पर्श वो 'तू स्पर्श मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे कायगोचर स्पर्शको ॥३७९॥
शुभ या अशुभ गुण कोइ भी 'तू जान मुझको' नहिं कहे।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर गुण अरे ॥३८०॥
शुभ या अशुभ जो द्रव्य वो 'तू जान मुझको' नहिं कहे ।
अरु जीव भी नहिं ग्रहण जावे बुद्धिगोचर द्रव्य रे ॥३८१॥
यह जानकर भी मूढ जिव पावे नहीं उपशम अरे !
शिवबुद्धिको पाया नहीं वो परग्रहण करना चहे ॥३८२॥
शुभ और अशुभ अनेकविध, के कर्म पूर्व जो किये।
उनसे निवर्ते आत्मको, वो आतमा प्रतिक्रमण है ॥३८३॥
शुभ अरु अशुभ भावी करमका बंध हो जिन भावमें ।
उनसे निवर्तन जो करे वो आतमा पचखाण है ॥३८४॥
शुभ और अशुभ अनेकविध हैं उदित जो इस कालमें ।
उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव है ॥३८५॥
पचखाण नित्य करे अरु प्रतिक्रमण जो नित्यहि करे।
नित्यहि करे आलोचना वो आतमा चारित्र है ॥३

इस हेतुसे जो शुद्ध आत्मा को नहीं कुछ भी ग्रहे।
छोड़े नहीं कुछ भी अहो! परद्रव्य जीव अजीव में ॥४०
मुनिलिंगको अथवा गृहस्थीलिंगको बहुभाँतिके।
ग्रहकर कहत हैं मूढ़जन, 'यह लिंग मुक्तीमार्ग है' ॥४०
वह लिंग मुक्तीमार्ग नहिं, अर्हंत निर्मम देहमें।
बस लिंग तजकर ज्ञान अरु चारित्र दर्शन सेवते ॥४०
मुनिलिंग अरु गृहिलिंग—ये नहिं लिंग मुक्तीमार्ग है।
चारित्र-दर्शन ज्ञानको बस मोक्षमार्ग प्रभू कहे ॥४१
यों छोड़कर सागार या अनगार धारित लिंगको।
चारित्र-दर्शन ज्ञानमें तू जोड़ रे। निज आत्मको ॥४१
तू स्थाप निजको मोक्षपथमें ध्या अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर न विहार कर परद्रव्यमें ॥४
बहुभाँतिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थीलिंग जो।
ममता करे उनने नहीं जाना 'समयके सार' को ॥४
व्यवहारनय, इन लिंग द्वयको मोक्षके पथमें कहे।
निश्चय नहीं माने कभी को लिंग मुक्तीपथमें ॥४
यह समयप्राभृत पठन करके जान अर्थ रु तत्त्वसे।
ठहरे अरथमें जीव जो वो सौख्य उत्तम परिणमे ॥४

॥ सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार समाप्त ॥

र ! कर्म है नहिं ज्ञान क्योंकी कर्म कुछ जाने नहीं।
हतु मइसे है ज्ञान अन्य रु कर्म अन्य जिनवर कह ॥३९७॥
र। धर्म नहिं है ज्ञान क्योंकी धर्म कुछ जाने नहीं।
इस हतुसे है ज्ञान अन्य रु धर्म अन्य जिनवर कह ॥३९८॥
नहिं है अधर्म जु ज्ञान क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं।
इस हतुसे है ज्ञान अन्य अधर्म अन्य जिनवर कह ॥३९९॥
रा काल है नहिं ज्ञान क्याकी काल कुछ जाने नहीं।
इम हतुसे है ज्ञान अन्य रु काल अन्य प्रभू कह ॥४००॥
आकाश है नहिं ज्ञान क्योंकि अकाश कुछ जाने नहीं।
इम हेतुसे आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य प्रभू कह ॥४०१॥
रे ! ज्ञान अध्यवसान नहिं, क्योंकी अचेतन रूप है।
इम हतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य अध्यवसान है ॥४०२॥
रे। सर्वदा जाने हि इससे जीव ज्ञायक ज्ञानि है।
अरु ज्ञान है ज्ञायकसे अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है ॥४०३॥
सम्यक्त्व अरु सयम तथा पूर्वांगगत सब सूत्र जो।
धर्माधरम दीक्षा सबहि, बुध पुरुप माने ज्ञानको ॥४०४॥
यों आतमा जिसका अमूर्तिक वो न आहारक बने।
पुद्गलमयी आहार यों आहार तो मूर्तिक अरे ॥४०५॥
प है पर, ग्रहण नहिं-नहिं त्याग उसका हो सके।
उसका गुण कोई प्रायोगि अरु वैस्रसिक है ॥४०६॥

। ै े ऐसा जिन कर्मफल निजरूप करे।
ऐसे आठविधके कर्मको–दुखबीज को ॥३८७॥
कर्मकी ज्ञाता जाने करमफल मैं किया।
आठविधके कर्मको–दुखबीजको ।३८८॥
॥ कर्मफलको वेदता निज सुखी दुःखी होय है।
वाटे आठविधके कर्मको–दुखबीजको ॥३८९॥
रे। शास्त्र है नहिं ज्ञान क्योंकी शास्त्र कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु शास्त्र अन्य प्रभू कहे ॥३९०॥
रे। शब्द है नहि ज्ञान क्योंकी शब्द कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु शब्द अन्य प्रभू कहे ॥३९१॥
रे। रूप है नहिं ज्ञान क्योंकी रूप कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु रूप अन्य प्रभू कहे ॥३९२॥
रे। वर्ण है नहिं ज्ञान क्योंकी वर्ण कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु वर्ण अन्य प्रभू कहे ॥३९३॥
रे। गंध है नहि ज्ञान क्योंकी गंध कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु गंध अन्य प्रभू कहे ॥३९४॥
रे। रस नहीं है ज्ञान क्योंकी रस जु कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य रस। जिनवर कहे ३९५॥
रे। स्पर्श है नहि ज्ञान क्योंकी स्पर्श कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु स्पर्श अन्य प्रभू कहे ॥३९६॥

र। कर्म है नहिं ज्ञान क्योंकी कर्म कुछ जाने नहीं।
हतु सइसे है ज्ञान अन्य रु कर्म अन्य जिनवर कहे ॥३९७॥
र। धर्म नहिं है ज्ञान क्योंकी धर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रु धर्म अन्य जिनवर कहे ॥३९८॥
नहिं है अधर्म जु ज्ञान क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य अधर्म अन्य जिनवर कहे ॥३९९॥
रे। काल है नहिं ज्ञान क्योंकी काल कुछ जाने नहीं।
इस हतुसे है ज्ञान अन्य रु काल अन्य प्रभू कहे ॥४००॥
आकाश है नहि ज्ञान क्योंकि अकाश कुछ जाने नहीं।
इस हतुसे आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य प्रभू कहे ॥४०१॥
रे। ज्ञान अध्यवसान नहिं, क्योंकी अचेतन रूप है।
इस हतुसे है ज्ञान अन्य रु अन्य अध्यवसान है ॥४०२॥
रे। सर्वदा जाने हि इससे जीव ज्ञायक ज्ञानि है।
अरु ज्ञान है ज्ञायकसे अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है ॥४०३॥
सम्यक्त्व अरु संयम तथा पूर्वांगगत सब सूत्र जो।
धर्माधरम दीक्षा सबहि, बुध पुरुष माने ज्ञानको ॥४०४॥
यों आतमा जिसका अमूर्तिक वो न आहारक बने।
पुद्गलमयी आहार यों आहार तो मूर्तिक अरे ॥४०५॥
जो द्रव्य है पर, ग्रहण नहिं-नहिं त्याग उसका हो सके।
ऐसा हि उसका गुण कोई प्रायोगि अरु वैस्रसिक है ॥४०६॥

[illegible] जो शुद्ध आतमा वो नहीं कुछ भी ग्रहे ।
[illegible] भी अहो। परद्रव्य जीव अजीव में ॥४०७॥
[illegible] अथवा गृहस्थीलिंगको बहुभाँतिके ।
[illegible] हैं मूढ़जन, 'यह लिंग मुक्तीमार्ग है' ॥४०८॥
[illegible] लिंग मुक्तीमार्ग नहि, अर्हंत निर्मम देहमें ।
[illegible] तजकर ज्ञान अरु चारित्र दर्शन सेवते ॥४०९॥
मुनिलिंग अरु गृहिलिंग—ये नहि लिंग मुक्तीमार्ग है ।
चारित्र-दर्शन-ज्ञानको बस मोक्षमार्ग प्रभू कहे ॥४१०॥
यों छोड़कर सागार या अनगार धारित लिंगको ।
चारित्र-दर्शन-ज्ञानमें तू जोड़ रे ! निज आत्मको ॥४११॥
तू स्थाप निजको मोक्षपथमें ध्या अनुभव तू उसे ।
उसमें हि नित्य विहार कर न विहार कर परद्रव्यमें ॥४१२॥
बहुभाँतिके मुनिलिंग जो अथवा गृहस्थीलिंग जो ।
ममता करे उनमें नहीं जाना 'समयके सार' को ॥४१३॥
व्यवहारनय, इन लिंग द्वयको मोक्षके पथमें कहे ।
निश्चय नहीं माने कभी को लिंग मुक्तीपथमें ॥४१४॥
यह समयप्राभृत पठन करके जान अर्थ रु तत्त्वसे ।
ठहरे अरथमें जीव जो वो सौख्य उत्तम परिणमे ॥४१५॥

❀ सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार समाप्त ❀

ज्ञानदर्पण

(कविवर शाह दीपचन्दजी कृत)

आत्मरुचिका माहात्म्य।

सवैया ३१ (मनहर)

परम अखंड ब्रह्मंड विधि लखे न्यारी, करम विहंड करै महा भववाधिनी। अमल अरूपी अज चेतन चमतकार, समसार साधै अति अलख अराधिनी॥ गुणको निधान अमलान भगवान जाको, प्रतक्ष दिखावै जाकी महिमा अवाधिनी। एक चिदरूपको सरूप अनुसरै ऐसी, आतमीक रुचि है अनंतसुखसाधिनी॥६॥

आतम भाव भावनेकी प्रेरणा।

चेतनको अंक एक सदा निकलंक महा, करम कलंक जामें कोऊ नहीं पाइए। निराकार रूप जो अनूप उपयोग जाके, ज्ञेय लखैं ज्ञेयाकार न्यारो हू बताइए॥ वीरज अनंत सदा सुखको समुद्र आप, परम अनंत तामें और गुण गाइए। ऐसो भगवान ज्ञानवान लखै घटहीमें, ऐसो भाव भाय 'दीप' अमर कहाइए॥७॥

चिद्रूपकी ज्ञानभावना ।

ज्ञानरूप चिद्रूप रूप मोहि माहि, जाके लखें
... भवभावना । जाके दृगमाहमें विभाव सो
... जाकी रुचि कीए मधे अलख अराधना ॥
... गति प्रीतिकरि पाई तातें, त्यागी जगजाल
सकल उपाधना । अगम अपार सुखदाई सब सतनकों,
... आप' साध जानी साची ज्ञानभावना ॥१३॥

आत्मसिद्धिका उपाय ज्ञानभावना है ।

आप अवलोके बिना कछु नाही सिद्धि होत, कोटिक
कलेशनिकी करो बहुकरणी । क्रिया पर कीए, परभावनकी
प्रापति है, मोक्षपथ मधे नाहीं वाहीकी धरणी ॥ ज्ञान
उपयोगमें अखड चिदानद जाको, साची ज्ञानभावना है
मोक्षअनुसरणी । अगम अपार गुणधारीकों सुभाव साध,
'दीप' मत जीवनकी दशा भवतरणी ॥१४॥

स्वसवेदन भाव ही सुखका निधान है ।

वेदत सरूप पद परम अनूप लहै, गहै चिदभाव महा
आप निज थान है । द्रव्यकी प्रभाव अरु गुणको लखाव
जामें, परजायको उपाव ऐसो गुणवान है ॥ व्यय उतपाद

धुर मध मव जाहीकरि, ताहीने उदोत लक्ष्य लखनको थान है। महिमा महत जाकी कहालों कहत करि, स्वसंवेदभाव 'दीप' सुखको निधान है ॥१८॥

सिद्धके समान अपनी आत्म भावना करो।

चिदानंदराइ सुखसिंधु है अनादिहीको, निहचै निहारि ज्ञानदृष्टि धरि लीजिये। नय विवहारहीतें करम कलंक पंक, जाके लागि आए तौऊ सुद्धता गहीजिये ॥ जैसी दिष्टि देखै सब ताकौ तसौ फल होइ, सुध अवलोकै सुध उपयोगी हूजियै। दीप कहै देखियतु आतमसुभाव ऐसौ, सिद्धके समान ज्ञानभावना करीजियै ॥१९॥

आत्माकी शुद्ध भावना।

अचल अखंड ज्ञानजोति है सरूप जाको, चेतनानिधान जो अनंतगुणधारी है। उपयोग आतमीक अतुल अबाधित है, देखिए अनादि सिद्ध निहचै निहारी है। आनंदसहित कृतकृत्यता उद्योत होइ, जाही समै ब्रह्मदिष्टि देत जो सभारी है। महिमा अपार सुखसिंधु ऐसो घट हीमें, इन भगवान लखि 'दीप' सुखकारी है ॥२०॥

तार्जीर समारसमुद्रके तिरैया हैं।

...त्याग त्यागि तत्त्वकी सभार करैं, हरैं भ्रमभार ... या हैं। लखैं आपा आपमाहिं राग...र म.व उपयोग एक भावके करैया हैं॥ थिरता सुरूपतीसी ...राम, परम अतेंद्री सुख नीरके ढरैया हैं॥ दर ... माँ रूप लखें घटहीमें, ऐसे ज्ञानवान भवसिंधुके ...या हैं॥२१॥

आत्मानुभवी जीव ही सचे आत्मसुखके विलासी हैं।

लोकालोक लखिके सरूपमें सुथिर रहैं, विमल अखंड ज्ञानजोति परकासी हैं। निराकाररूप सुद्धभावके धरैया महा, सिद्ध भगवान एक सदा सुखरासी हैं॥ ऐसौ निजरूप अवलोकत हैं निहचैमें, आप परतीति पाय जगसौं उदासी हैं। अनाकुल आतम अनूप रस वेदतु हैं, अनुभवी जीव आप सुखके विलासी हैं॥२२॥

अनादिहीका मेरा चिदानंदरूप है।

महा दुखदानी भवथितिके निदानी जातैं, होय ज्ञानहानी ऐसे भावक चमैया हैं। अति ही विकारी पापपुन

अधिकारी सदा, ऐसे रागदोष भाव तिनके दमैया हैं ॥ दया दान पूजा मौन सजमादि सुभभाव, ए हू पर जानै नाहिं इनमैं उम्हैया हैं । सुभासुभ रीति त्यागि जागे हैं सरूपमाहि, तेइ ग्यानवान चिदानदके रमैया हैं ॥२५॥ देहपरिमाण गति गतिमाहि भयौ जीव, गुपत ह्वै रह्यौ तौऊ धारैं गुणवृंद हैं । करम कलक तौऊ जामैं न करम कोऊ, रागदोष धारै पै विशुद्ध निरफंद है ॥ धारत सरीर तौऊ आतमा अमूरतीक, सुन पख गहै एक सदा सुखकंद है । निहचै विचार देख्यौ सिद्ध सो सरूप 'दीप', मेरे तौ अनादिकौ सरूप चिदानद है ॥२६॥ व्यवहारपच परजाय धरि आयौ तौऊ, सुद्धनै विचारे निज धर्म न कमा है । ज्ञान उपयोग जाको सकति मिटाई नाहिं, कहा भयौ जो तू भववासी होय बसा है ॥ द्वैतको विचार कीए भासत सयोग पर, देखै पद एक पर और नहि धसा है । निहचै विचारकै सरुधर्म समारि देखौ, मेरी तौ अनादिहीकी चिदानद दसा है ॥ २७ ॥ ज्ञानकी सकति महा गुपति भई है तौऊ, ज्ञेयकी लखैया जाकी महिमा अपार है । प्रतच्छ प्रतीतिमैं परोख कहो कैसें होइ, चिदानद चेतनकौ चिह्न अविकार

पद पूरन विराजमान, तिहुँ लोकनाथ है। अविपद यौ ही एक सासतौ निधान स्वरूप भी सभार है। २८॥ बहु विसतार विपतु, यह भवग्राम जहाँ भावकी असुद्धता। है उदास महाव्रत धारै, यह विपरीति जिन सुद्धता॥ परमकी चेतनामें शुभ उपयोग सधै, अमल ताकै ताते नाहीं सुद्धता। वीतराग देव जो तोही उपदेश महा, यह मोक्षपद जहाँ भावकी शुद्धता॥ २९॥ ज्ञान उपयोग जोग जामें न अराग हूवो, निहचै निहारि एक तिहूलोकभूप है। चेतन अनंत चिह्न सासतो विराजमान, गतिगति भम्यौ तौऊ अमल अनूप है॥ जैसे मणिमाहि कोऊ काचखंड मानै तौऊ, महिमा न जाय वामें वाहीको सरूप है। ऐसे ही ससारिके सरूपको विचारथो मैने, अनादिको अखंड मेरो चिदानंदरूप है॥ ३०॥

दोहा

चिदानद आनदमय सकति अनत अपार।
अपनो पद ज्ञाता लखै, जामें नहि अवतार॥३१॥

स्वसंवेदनज्ञानका माहात्म्य। सवैया ३१ सा (मनहर)

जामें परवेदना उछेदना भइ है महा, वेदै निज आतमपद परम प्रकासतो। अनाकुल आतमीक अतुल अतेंद्री सुख, अमल

अनूप करै सुखसौं विलासतौ ॥ महिमा अपार जाकी कहांलौं बखान कोय, जाहीके प्रभाव देव चिदानद भासतौ। निहचै निहारिके सरूपमें मँभारि देख्यौ, स्वसवेदनान है हमारौ रूप सासतौ ॥३५॥ परम अनंत गुण चेतनाकौ पुंज महा, वदतु है जाके बल ऐसौ गुणवान है। सासतौ अखंड एकद्रव्य उपादान सो तौ, ताहीकरि सबै यामैं और न विनान है ॥ जाहीके सुभावतैं अनंतसुख पाइयतु, जाहीकरि जान्यो जाय देव भगवान है। महिमा अनंत जाकी ज्ञानहीमें भासतु है, स्वसवेदज्ञान सो ही पदनिरवान है ॥३६॥

दोहा।

निज महिमामैं रत भए, भेदज्ञान उर धारि।
ते अनुभौ लहि आपकौ करमकलंक निवारि ॥ ४१ ॥

आत्माका स्वरूप।

मत्तगयन्द सवैया।

मेरो सरूप अनूप विराजत, मोहीमें और न भासत आना। ज्ञान कलानिधि चेतन मूरति, एक अखंड महासुखथाना ॥ पूरण आप प्रताप लिए, जहँ जोग नहीं परके मन नाना। आप लखै अनुभाव भयौ अति, देव निरंजनकौ उर ज्ञाना ॥४२॥

[illegible]मघनकी निर्टारी।

सवैया ३१ सा।

[illegible] अन आवम अमित तेजे, एक अनिवार [illegible] [illegible] । निर दो सुभाव जाको मर्म हू सर्म[illegible] [illegible] आयौ मीनि भम्यौ मवननमें ॥ परम [illegible] है निशक महा, पद पढ़ अति रागी भयो [illegible] । ऐमी तिरकालकी हू विपति विलाय जीय, [illegible] हू निहारि देसौ आपि निर्म धनमें ॥४६॥

ज्ञानशक्तिकी महिमा।

सकति अनंत जामें चेतना प्रधानिरूपै, ताहूमें प्रधान महा ग्यायक सकति है। परम अखड बृहमडकी लखेयो सो है, सूक्षम सुभाव यों सहजहीकी गति है॥ सुपरप्रकामनी सुभासनी सरूपकी है, सुगेकी विलोसिनी अपाररूप अति है। उपयोग साकार वर्न्यौ है सरूप जाको, ज्ञानकी सकति 'दीप' जानें साँची मति है॥६२॥

द्रव्यका स्वरूप।

गुण परजाय गहि वपरी है सरूप जाको, गुण परजाय बिनु द्रव्य नाहि पाईए। द्रव्यको सरूप गहि गुण परजायें भएं,

द्रव्यहीमें गुण परजाय ए बताईए ॥ सहज सुभाय जाते भिन्न न बतायौ द्रव्य, बिन ही सुभाव वस्तु कैसें ठहराईए । तातें स्याद्वाद विधि जगमें अनादिसिद्ध, वचनके द्वारि कहो कहाँ लगि पाइए ॥७३॥

सवैया ३१ सा ।

आप सुद्ध सत्ताकी अवस्था जो सरूप करै, सो ही करतार दव कहै भगवान है । परिणाम जीवहीको करम कराने यातैं, परणति क्रिया जाकौ जानै सो ही जान है ॥ करता करम क्रिया निहचे विचार दरव, वस्तुसौं न भिन्न होइ यहै परमान है । कहै 'दीपचंद' ग्याता ज्ञानमें विचारै सो ही, अनुभौ अखंड लहि पावै सुखथान है ॥८०॥

पंचपरमेष्ठी कथन ।

दोहा ।

सकल एक परमातमा, गुण ज्ञानादिक सार ।
सुध परणति परजाय है, श्रीजिनवर अविकार ॥९०॥
सकल करमसौं रहित जो, गुण अनंत परधान ।
किंच ऊन परजाय है, यहै सिद्ध भगवान ॥९७॥

... प्रकार ते गुण छतीस हैं जास ।
... पंचाचार हैं, आचारज परकाम ॥९८॥
... पद्दा, सँगपूरव गुण जानि ।
... अनुसार हैं, उपाध्याय सो मानि ॥९९॥
... गुणमें धरे, आठवीस गुणलीन ।
... शरीर परजाय हैं, महासाधु परवीन ॥१००॥

सामायिक कथन ।

सवैया ३१ सा ।

सुभ वा असुभ नाम जाने समभाव करें, भली बु...
थापनामें समता करीजिएँ । चेतन अचेतन वा भलो बु...
द्रव्य दृष्टि, धारिकें विवेक तहाँ समता करीजिएँ ॥ शोभ...
अशोभन जो ग्राम वनमाहि सम, भले बुरे समें हूँ में सा...
भाव कीजिएँ । भल बुर भावनिमें कीजे समभाव जह...
सामायिकभेद षट यह लखि लीजिएँ ॥१०३॥

सप्त भङ्गीका स्वरूप ।

है नाही है नाहि वैनगोचर हू नाहीं यह, है नाहीं...
नाहींमाहिं तिहूँ भेद कीजिए । स्वपरचतुष्कमेंसेती ज...
साधियत, सो ही नयभंगी जिनवाणीमें कहीजिए ॥ स्या...

पदसेती सात भगकौ मरूप सांधै, परमाण भगीसा अभग माधि लीजिए। दोउमां ग्हत सौ तौ दुरनय भगी कही, यहै तीनमेद सातभगीके लपीजिए ॥११६॥

आप ही आपरूप होना है।

स्वमनेद ज्ञान अमलान परिणाम आप, आपनकौ दए आप आपहीमों लए हैं। आप ही स्वरूप लाभ लहौ परणामनिमें, आपहीमें आपरूप ह्वैकै थिर थए हैं॥ सामतो रिाणक आप उपादान आप करै, करता करम त्रिया आप परणए हैं। महिमा अनत महा आप धरै आपहीकी, आप अविनाशी सिद्धरूप आप भए हैं ॥११७॥

चिदानदका माहात्म्य।

चेतनाविलास जामें आनँदनिवास नित, ज्ञान परकाम घरें देव अविनाशी है। चिदानद एक तू ही सासतो निरजन है, महा भयभजन है मदा सुखरासी है॥ अचल अखड शिवथानकौ रमैया तू है, कहा भयौ जो तो होय रह्यौ भवत्रासी है। सिद्ध भगवान जेसौ गुणकौ निधान तू है, निहचै निहारि निधि आप परकासी है ॥१२२॥

दोहा।

[illegible] पश्चानंत, उपजै आनँद आप।
[illegible] सरपर्सौ, जामैं पुण्य न पाप ॥१२५॥

अनुभवकी महिमा।

कवित्त इकतीसा।

जगमें अनादि यति जेते पद धारि आए, तेऊ सब तिरे [illegible] अनुभौ निधानकौ। याके बिन पाए, मुनिहूसो पद [illegible] है, यह सुखसिंधु दरसावै भगवानकौ॥ नारकी हू [illegible] ज तीर्थंकर पद पावै, अनुभौ प्रभाव पहुँचावै [illegible]। अनुभौ अनंत गुणके धरै याहीकौ, तिहुंलोक [illegible] हित जानि गुणवानको॥ १२६॥ अनुभौ अखंड रस धाराधर जग्यौ जहाँ, तहाँ दुख दावानल रंच न रहतु है। करमनिवास भववास घटा भानवेकौ, परम प्रचण्ड पौन मुनिजन कहतु है॥ याकौ रस पीएँ फिरि काहूकी न इच्छा होय, यह सुखदानी सब जगमैं महतु है। आनँदकौ धाम, अभिराम यह संतनकौ, याहीके धरैया पद सासतौ लहतु है॥१२७॥ आतम गवेषी संत याहीके धरैया जे हैं, आपमें मगन करें आन ना उपासना। निकलप जहाँ कोऊ नहीं मागतु है, याके रस भीने त्यागी सबै आन वासना॥

चिदानंद दरके अनतगुण । कह, जिनकी मकृति सब ताहिमाहिं भासना । व्यय उत्पाद ध्रुव द्रव्य गुण परजाय, महिमा अनत एक अनुभौ विलासना ॥१२८॥

गुण अनतके रस सब अनुभौ रसके माहि।
यातैं अनुभौ सारिखौ, और दूसरो नाहिं ॥१२९॥

जगतकी जेती विद्या भासी कररेखावत, कोटिक जुगातर जो महा तप कीने हैं। अनुभौ अखंड रस उरमें न आयौ जो तौ, सिवपद पावै नाहिं पररस भीने हैं॥ आप अवलोकनिमे आप सुख पाईयतु, पर उरझार होय परपद चीने हैं। तातैं तिहुँलोकपूज्य अनुभौ है आतमाकौ, अनुभवी अनुभौ अनूप रस लीने हैं ॥१३०॥

उद्यममें ही सिद्धि है।

उद्यमके टार कहूँ साध्यसिद्धि कही नाहि, होनहार सार जाको उद्यम ही द्वार है। उद्यम उगार दुखदोषको हरनहार, उद्यममें सिद्धि यह उद्यम ही सार है॥ उद्यम विना न कहूँ भावी भली होनहार, उद्यमकौं साधि भव्य गए भवपार है। उद्यमके उद्यमी कहाए भवि जीव तातैं, उद्यम ही कीजे कीयौ चाहै जो उद्धार है॥१४१॥

... स्वरूपमें ही मगन रहो।

... न निजपथ मानतु हैं, रहत उपाधि ... है। दर्स चिनमूरतिकौं आनँद ... सुधारस पीवैं अविकारी हैं॥ चेतना ... सो ही सार जान्यौ, अनुभौ रसिक है ... है। कहै 'दीपचंद' चिदानंदकौ लखत ... उपयोगी आपपद अनुसारी है।१४५॥ अलख ... ज्ञानकी उद्योत लीए, प्रगट प्रकास जाकौ ... है छिपाईए। दरसन-ज्ञान-धारी अविकारी आतमा है, ताहि अवलोकिकैं अनंत सुख पाईए॥ निजपुरी कारण निवारण सकल दोष, ऐसैं भाव भए भवसिंधु तिरि जाइए। चिदानंद देव दरसि ताहीमें मगन हूजे, याते और भाव कोउ ठौर न अनाईए॥१४६॥

दोहा।

गुण अनंत के रस सबै, अनुभौ रसकै माहि।
यातें अनुभौ सारिखौ, और दूसरो नाहिं॥१४७॥
पंच परमगुरु जे भए, जे हूंगे जगमाहिं।
ते अनुभौ परसादतें, यामें धोखौ नाहिं॥१४८॥

आत्माकी महिमा।

सवैया ३१ सा।

चेतन अनादि नव तत्त्वमें गुपत भयौ, सुद्ध पद देखैं

स्वसुभावरूप आप है। कनक अनेक वान भेदकौ धरत तोऊ अपने सुभावमें न दूसरो मिलाप है॥ भेदभाव धरैं हूँ अभेदरूप आतमा है, अनुभौ किएतें मिटै भवदुखताप है। जानत विशेष यौं असेष भाव भासतु है चिदानंद दर्वमें न कोऊ पुण्य पाप है॥१८९॥ फटिकके हेठि नव रंगौ रंग दीजियत, तसौ प्रतिमामें यामें नानारंगसो रंग है। अपनो सुभाव सुद्ध उज्जल विराजमान, तामें नहीं तन और गहे नहिं संग है॥ तैसे यह आतमाहू पगमाहिं परही सौं,– भासे पै सदैव यामें चिदानंद अंग है। याहीतें अखंड पद पावै जगमाहिं जेई, स्यादवादनय गहे मन्त सरवंग है॥१९०॥

✤ इतिसंपूर्ण ✤

❀ ब्रह्मविलास ❀

(भैया भगवतीदासजी कृत)

पुण्यपचीसिका

कवित्त।

ज्ञानमें है ध्यानमें है वचन प्रमाणमें है, अपने सुथानमें है ताहि पहचानि रे। उपजे न उपजत मूए न मरत जोई, उपजन मरन व्यौहार ताहि मानि रे॥ रागसों न, रकसो है ... न पकसो है, अति ही अटकसो है

... । ...को प्रकाश कर अष्टकर्म नाश करै, ऐसी ... ...मिथ्या" नाहि उर आनिये ॥ १९ ॥

...मिश्र कवित्त ।

... भरममाहि भूल्यो रूप नलिनपै बैठो ...स्वादविरम्यो इह थानक, लटक्यो तैं ऊर्ध्व ...। पाये मोहमगन चुङ्गलमो, कहै कर्ममों नाहि ... देखत हि नहिं सुविचार भविक जन, जगत जीव ... स्वभाव ॥ २० ॥

कवित्त ।

जो पै चारो वेद पढ़े मथि पचि रीझ रीझ, पंडितकी कलामें प्रवीन तू कहायो है। धरम व्योहार ग्रन्थ ताहूके अनेक भेद, ताके पढ़े निपुण प्रसिद्ध तोहि गायो है॥ आतमके तत्त्वको निमित्त कहूं रंच पायो, तौलों तोहि ग्रन्थनिमें ऐसे के बतायो है। जैसें रस व्यञ्जनमें करछी फिरै सदीव, मूढ़तास्वभावसों न स्वाद कछु पायो है॥२१॥

ज्ञानअष्टोत्तरी ।

कर्मको करैया सो तौ जानै नाहि कैसे कर्म, भरममें अनादिहीको कर्म करतु है। मर्मको जनैया भेया सो तौ कर्म करै नाहि, धर्ममाहि तिहूँ काल धरमें धरतु है॥

दुहूँनकी जाति पाति लच्छन स्वभाव भिन्न, कबहूँ न एकमेक होइ विचरतु है। जा दिनातें ऐसी दृष्टि अन्तर दिखाई दइ, ता दिनातें आपु लखि आपु ही वरतु है ॥७२॥

सवैया।

जीव अकर्ता कह्यो परको, परको करता पर ही परवान्यो। ज्ञाननिधान सदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै कछु आन्यो ॥ ज्यों जग दूध दही घृत तककी, शक्ति धरै तिहुँ काल बखान्यो। कोऊ प्रवीन लखै दृगसेति सु, भिन्न रहै वपुसों लपटान्यो ॥७३॥

मात्रिक कवित्त।

जाके घट समकित उपजत है, सो तौ करत हंसकी रीत।
क्षीर गहत छोंडत जलको सँग, वाके कुलकी यहै प्रतीत ॥
कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै जल नेकु न पीत।
तसैं सम्यक्वन्त गहै गुण, घट घट मध्य एकनयनीत ॥९२॥
सिद्धसमान चिदानंद जानिके, थापत है घटके उर बीच।
वाके गुण सब वाहि लगावत, और गुणहि सब जानत कीच ॥
ज्ञान अनंत विचारत अंतर, राखत है जियके उर सींच।
ऐसें समकित शुद्ध करतु है, तिनतैं होवत मोक्ष नगीच ॥९३॥

चेतनकर्मचरित्र।

चौपाई।

अविचल धाम वसे शिव भूप। अष्ट गुणातम सिद्ध स्वरूप ॥ चरमदेह परमित परदेश। किंचित ऊनो तिन

जिन भेश ... निरंजन नाम। कालअनन्तहि
... विश्राम ... न क्बहू होय। सुख अनत
... लोकालोक प्रगट सब वेद।
... नेयाकार सकल प्रतिभास।
... भास ॥२८६॥ षटगुणी हानि
... स्वभावहि र्कम ॥ उत्पत व्यय
... थिते सब शिवराम ॥२८७॥
... प्रमान। पायो शिवगढ रतनति
... वत नाम। इहविध तिष्ठहि
आतमराम। ॥२८८॥ ... जगम जहँ होय। सिद्ध
निसानी दगहु पेय ॥ सिद्ध समान निहारहु आप। जातैं
मिटहि सकल सताप ॥२८९॥ निश्चयदृष्टि देख घट
माहि। सिद्ध रु तोमहि अन्तर नाहि ॥ ये सब कर्म होंय
जड़ अग। तू 'भैया' चेतन सरंग ॥२९०॥ ज्ञान दरश
चारित भडार। तू शिवनायक तू शिवसार ॥ तु सब र्कम
जीत शिव होय। तेरी महिमा वरनें कोय ॥२९१॥

दोहा।

गुण अनत या हसके, किहविधि कहै बखान।
थोरेमें कछु बरनये, 'भविक' लेहु पहिचान ॥२९२॥

फुटकर कविता।

कवित्त।

आतमा अनूपम है दीसै रागद्वेष बिना, देखो भवि जीवों। तुम आपमें निहारकें। कर्मको न अंश कोऊ भर्मको न वंश कोऊ, जाकी शुद्धताईमें न और आप टारकें॥ जैसो शिवखेत बसै तैसो ब्रह्म यहाँ लसै, यहाँ वहाँ फेर नाहीं देखिये विचारकें। जोई गुण सिद्धमाहिं सोई गुण ब्रह्ममाहिं, सिद्धब्रह्म फेर नाहिं निश्चै निरधारकें॥ १६॥

त्र्यक्षरी दोहा।

चेतन चेतो चेतना, तो चेते चित चैन।
तातैं चेतन चेत रे, चेतनता नित नैन॥ २०॥

चतुरक्षरी दोहा।

अध्यातममें आतमा मम, अध्यातम, धाम,।
आतम अध्यातम मतैं धू मम आतम ताम॥२१॥

परमार्थपदपंक्ति।

१ राग देव गंधार।

अब मैं छाड्यो पर जंजाल॥ अब मैं० ॥टेक॥ लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी तज्यो ताहि तत्काल॥ अब मैं० ॥ १ ॥ आतम रस चाख्यो मैं अद्भुत, पायो परम

॥ घट मैं० ॥ २ ॥ सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, मो
रूप गुनिमाल ॥ घट मैं० ॥ ३ ॥

५। राग विलावल।

या घटमैं परमात्मा चिन्मूरति भइया। ताहि विलो
गुरुदिसों पंडित परखैया ॥ या घटमैं० ॥ १ ॥ ज्ञानस्वरू
सुधामयी, भवसिंधु तरैया। तिहूँ लोकमें प्रगट है, जा
ठकुरैया ॥ या घटमैं० ॥ २ ॥ आप तरै तारै परहिं, जै
जल नइया। केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझै समुझैया
या घटमैं० ॥३॥ देव वहै गुरु है वहै, शिव वहै बसइया
त्रिभुवन मुकुट वहै सदा, चेतो चितरइया ॥या घटमैं०॥४

७। राग काफी।

जाको मन लागौ निजरूपहि, ताहि और क्यों भावै
ज्यों अटूट धन लहैं रंक कहुँ, और न काहू दिखावै
जाको० ॥ १ ॥ गुण अनंत प्रगटै जिह थानक, तापटत
को भावै। इहविधि इस सकल सुखसागर, आपुहि आ
लखावै ॥ जाको० ॥ २ ॥

८। राग सारग।

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊँ ॥ जगत० ॥ टेक
नग्न दिगंबरमुद्रा धरिकैं कब निज आतम ध्याऊँ। ऐस
लब्धि होइ कब मोको, हौं या छिनको पाऊँ ॥जगत०॥१

कव घर त्याग होऊँ वनवासी, परमपुरुष लौ लाऊँ। रहौं अडोल जोड पद्मासन, करम कलंक खपाऊँ ॥ जगत० ॥ २ ॥ केवलज्ञान प्रगट कर अपनों, लोकालोक लखाऊँ। जन्म जरा दुख देय जलांजलि, हौं कब सिद्ध कहाऊँ ॥ जगत० ॥ ३ ॥ सुख अनंत विलसौं तिहँ थानक, काल अनंत गमाऊँ। "मानसिंह"[1] महिमा निज प्रगटै, बहुर न भवमें आऊँ ॥ जगत० ॥ ४ ॥

२२। राग मारू।

जो जो देख्यो वीतरागने सो सो होसी वीरा रे। विन देख्यो होसी नहिं क्योंही, काहे होत अधीरा रे ॥ जो० ॥ १ ॥ समयो एक बढ़ै नहिं घटसी, जो सुख दुखकी पीरा रे। तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय वज्र ज्यों हीरा रे ॥ जो० ॥ २ ॥ लगै न तीर कमान बान कहूँ, मार सकै नहिं मीरा रे। तू सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे ॥ जो० ॥ ३ ॥ निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभुको, जो टारै भवभीरा रे। 'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे ॥ जो० ॥ ४ ॥

[1] मानसिंह भैया भगवतीदासजीका परम मित्र था।

गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर।

दोहा।

[illegible] शिष्य सुनि, आयो गुरुके पास।
[illegible] करत बीनती, अचरजकी अरदास ॥ १ ॥
[illegible] ग्रन्थों में सुन्यो, एक नगरके बीच।
राजा [illegible] छिप रह्यो, राज करें सब नीच ॥ २ ॥
नाचसु [illegible] करें जहाँ, तहाँ भूप बलहीन।
अपनो जोर चले नहीं, उनहीके आधीन ॥ ३ ॥
[illegible] यासों मानें नहीं, यह वासों रसलीन।
मत्सर कोड़ाकोडिलों, बंदीखानें दीन ॥ ४ ॥
बंदीखान समान नृप, कर राख्यो उहि ठौर।
वासों जोर चले नहीं, उनहीके सिरमौर ॥ ५ ॥
[illegible] जो आज्ञा देत हैं, सोइ करैं यह काम।
आप न जानें भूप मैं, ऐसो है चित भ्राम ॥ ६ ॥
उनकी चेरीसों रचै, तजि निज नारि निधान।
कहो स्वामि सो कौन वह, जिनको ऐसो ज्ञान ॥ ७ ॥
कौन देश, राजा कवन, को रिपु को कुल नारि।
सो दासा कहु कृपाकरि, याको भेद विचारि ॥ ८ ॥

गुरूवाच ।

गुरु बोले समकित विना, कोउ पार नाहिं । मरैं रिद्धि इक ठौर है, काया नगरीमाहिं ॥९॥ काया नगरी जीव नृप, अष्ट कर्म अति जोर । मात्र अनादशामी रचे, पगे विषयकी ओर ॥१०॥ विषयवृद्धि जहाँ है नहीं, तहाँ सुमतिकी चाह । जो सुमती सो कुल त्रिया, इहि याते निरवाह ॥११॥ आप पगये वश परे, आपा डारयो खोय । आपा आपु न जानहीं, कहो आपु क्यों होय ॥१२॥ आप न जानें आपको, कौन उतारनहार । तबहि शिष्य समकित लहयो, जान्यौ सबहि विचार ॥१३॥ इहि गुरु शिष्य चतुदशी, सुनहु सबै मन लाय । कहै दास भगवतको, समताके घर आय ॥१४॥

इति गुरुशिष्यचतुर्दशी ।

मिथ्यात्वविध्वंसनचतुर्दशी ।

कवित्त मनहर ।

नेकु राग द्वेष जीत भये वीतराग तुम, तीनलोक पूज्यपद येहि त्याग पायो है । यह तो अनूठी बात तुम ही बताय देहु, जानी हम अबहीं सुचित्त ललचायो है ॥ तनिकहू कष्ट नाहिं पाइये अनंत सुख, अपने सहजमाहिं आप ठहरायो है ।

१ गुरु जी न उत्तर दिया ।

...नात हैं परसंग त्यागत ही, जारि दीने भ्रम ...महा ...रहायो है ॥३॥ वीतराग देव सो तो वसत ...ढ़ ...कहाय शिव लोकमध्य लहिये । आचारज ...जोन न कोऊ यहां, साधु जो बताये सो तो दक्षिणमें ...नक पुनीत सोऊ विद्यमान यहाँ नाहिं, सम्यकके ...आर मगदहिये । शास्त्रकी सरधा तामें बुद्धि अति ...ा, पनम ममर्में कहो कैसे पथ गहिये ॥३॥ तू ही ...राग देव राग द्वेष टारि देग, तूही तो कहाय सिद्ध अष्ट ...नाशत । तू ही तो आचारज है आचरै जु पचाचार, तूही उवझाय जिनवाणीक प्रकाशत ॥ परसों ममत्व त्याग तू ही है गो ऋषिराय, श्रावक पुनीत व्रत एकादश भासत । सम्यक स्वभाव तेरो शास्त्र पुनि तेरी बाणी, तू ही भैया ज्ञानी निज रूपके निवासतं ॥४॥

कवित्त मनहरन ।

मोहके निवारें राग द्वेषह निवारे जाहि, राग द्वेष टारें मोह नेकहू न पाइये । कर्मकी उपाधिके निवारिवेको पेंच यहै, जड़के उखारें वृच्छ कैसे ठहराइये ॥ डार पात फल फूल सबै कुम्हलाय जाय, कर्मनके वृन्दनको ऐसे के नसाइये । तबै होय चिदानंद प्रगट प्रकाशरूप, विलसै अनंत सुख सिद्धमें कहाइये ॥८॥ जबै चिदानंद निज रूपको सभार देखे, कौन

हम कौन कर्म कहाँको मिलाप है । रागद्वेष भपने अनादिके भ्रमामें हमें, तातैं हम भूल परे लाग्यो पुण्य पाप है ॥ रागद्वेष भ्रम ये सुभाव सो हमारे नाहिं, हम तो अनंत ज्ञान, भानसो प्रताप है । जैसो शिव खेत तैसो देह यहाँ लसे, तिहूँ काल शुद्ध रूप "भैया" निज आप है ॥९॥ जीव तो अकेलो है त्रिकाल तीनों लोकमध्य, ज्ञान पुन प्राण जाके चेतना सुभाव है । असंख्यात परदेश पूरित प्रमान बन्यो, अपने सहजमाहि थाप ठहराव है ॥ राग द्वेष मोह तो सुभावमें न याके कहूँ, यह तो विभाव पर संगति मिलाव है । आतम सुभावमा विभावमो अतीत सदा, चिदानंद चेतवेको ऐसे में उपाव है ॥१०॥ मिथ्या भाव जौलों तौलों भ्रममों न नातो टूटै, मिथ्याभाव जौलों तौलों कर्मसों न छूटिये । मिथ्याभाव जौलों तौलों सम्यक न ज्ञान होय, मिथ्या भाव जौलों तौलों अरि नाहिं कूटिये ॥ मिथ्याभाव जौलों तौलों मोक्षको अभाव रहै, मिथ्याभाव जौलों तौलों परसंग जूटिये । मिथ्याको विनाश होत प्रगट प्रकाश जोत, सूधो मोक्ष पंथ लखि नेक न अटूटिये ॥ १२ ॥

जिनगुणमाला । दोहा ।

ज्ञान अनँतमय आतमा, दर्शन जासु अनंत ।
सुख अरु वीर्य अनंत बल, सो वंदौं भगवंत ॥१६॥

सिद्धाष्ट । सवैया छंद ।

... नग, मो भ्रम नहिं लसै, सिद्ध मम आतमा ... मोह मिथ्यात्वमद, पान दूरहिं नग, राग अरु ... ॥१॥ नहिं क्रोध नहि मान थान भाम कहूँ, ... लोभ जहँ दूर दीसै। चहूँ प्रकृति परद्रव्यकी ... मिद्ध मम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥२॥ जामें ... दर्शन चारित गुण राजहीं, शकति अनंत सबै ध्रुव ... । परम पद पाय निज राजधानी सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ३ ॥ अतीत अनागत वर्त्तमानहिं जिते, दरब गुण परजय सबै भासहि तिते । शुद्ध नय सिद्ध निम जानि प्रानी, सिद्ध मम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ४ ॥

गुणमजरी । चौपाई ।

प्रथम कहूँ निज दया बखान । जिहमें मन आतमरस जान ॥ शुद्धस्वरूप विचारहिं चित्त । सिद्धसमान निहारहिं नित्त ॥८॥ थिरता धर आतम पदमाहि । विषय सुखनकी वाछा नाहिं । रहै सदा निजरसमें लीन । सो चेतन निज दया प्रवीन ॥९॥ ममताभाव धरहि उरमाहि । वैर भाव काहूसों नाहि ॥ निज समान जाने सबहस । क्रोधादिक तब करै विध्वंस ॥१०॥ उत्तम छमा धरहि उर थान । सुखदुख दुहुमें रहहि बान[१]॥ जो कोउ क्रोध करइह आय । तबहू याके समता

१ आदत ।

माय ॥३०॥ उपजे क्रोध कषाय कराय । तब तहँ रहे आपसों राच ॥ सो ममतादिक लच्छन जान । थोरेमें कछु कह्यो बखान ।।३१॥ अब कहूँ हय उपादय भेद । जाके लखे मिट मन खेद ॥ प्रथमहिं हय कहनूँ सोय । जामें त्याग कर्मको होय ॥४९॥ पुद्गल त्याग योग्य सब तोहि । इनकी संगति मगन न होहि ॥ इनमें जो मगन परिणाम । हय कहत है ताको नाम ॥५०॥ अब कहें उपादयकी बात। जामें ग्रहण अर्थ विख्यात ॥ निज स्वरूप जो आतमराम । चिदानन्द है ताको नाम ॥५१॥ ज्ञान दरस चारित भंडार । परमधरम धन धारन हार ॥ निराकार निरभय निरूप । सो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप ॥५२॥ ताकी महिमा जानहि संत । जाकी सकति अपार अनंत ॥ ताहि उपादेय जानहि जोय । सम्यकदृष्टी कहिये सोय ॥५३॥ निज स्वरूप जो ग्रहण करेय । परसत्ता सब त्यागे देय ॥ एम भाव धरहि जो कोय । हेय उपादेय कहिये सोय ॥५४॥ अब धीरज गुण कहूँ बखान । जिनके ते समदृष्टी जान ॥ धर्मविषै जो धीरज धरे । कष्ट देख सरधा नहिं टरे ॥५५॥ सहे उपसर्ग अनेक प्रकार । सबहू धीरज हूँ निरधार ॥ मिथ्यामत जो देखे कोय । चमत्कार तामें बहु होय ॥५६॥ तबहू ताहि लखहि अज्ञान । सो धीरजधर सम्यकवान । अब कहूँ हरष गुणहिं समुझाय । समदृष्टी यह सहज सुभाय ॥५७॥ निज

, प गिनहि जो राय । ताके हर्ष महा उर होय ॥ सुप न । ा उप । तिह निरखै हरपै निसदीस ॥५८॥ गुण परकाश । जानै निज आगम सुपसाय[१] ॥ विनाशी नाहि । यातै हर्ष महा उर माहि ॥५९॥ देव । ताकी प्रभुताके सब भेव ॥ अनंतचतुष्टय ार । रूप ते निज माहिं निहार ॥६०॥ जन्म दुख बहु जान । तिहतै भिन्न अपनपो मान ॥ विचारहि चित्त । तातै हर्ष महा उर नित्त ॥६१॥ ताके हृदय भयो परकाश । ताकी कुमति गई सब नाश । जाके घट भर्मक्ति परकाश । ताकेये गुन होंहि निवास ॥६८॥ सम्यग्दर्श तहै जो जीव । सो शिवरूपी कह्यो सदीव । तात सम्यकज्ञान प्रमान । जातैं शिवफल होय निदान ॥६९॥

सिद्ध चतुर्दशी । दोहा ।

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध ।
परम ब्रह्म महिमा कहूँ, परम धरम गुण साध ॥ १ ॥

कवित्त ।

आतम अनोपम है दीसै राग द्वेष बिना, देखो भव्य-जीव ! तुम आपमें निहारकैं । कर्मको न अश कोऊ भर्मको न वश कोऊ, जाकी शुद्धताई मैं न और आप टारकैं ॥

१ सुप्रसाद ।

जैसो शिव खेत वसे तैसो ब्रह्म इहाँ लसै, इहाँ उहाँ फेर नाहि देखिये विचारकैं। जेई गुण सिद्धमाहि तेई गुण ब्रह्म-पाहि सिद्ध ब्रह्म फेर नाहि निश्चय निरधारकै ॥ २ ॥ सिद्धकी समान है विराजमान चिदानंद ताहीको निहार निजरूप मान लीजिये। कर्मको कलंक अंग पंक ज्यों पखार हरयो, धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये ॥ थिरताके सुखको अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुभोके रसको सुधार भले पीजिये। ज्ञानको प्रकाश भास मित्रकी समान दीसै, चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये ॥ ३ ॥ भावकर्म नाम रागद्वेषको बखान्यो जिन, जाको करतार जीव भर्म संग मानिये। द्रव्यकर्म नाम अष्टकर्मको शरीर कह्यो, ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भले जानिये ॥ नोकरम संज्ञातैं शरीर तीन पावत है, औदारिक वैक्रीय आहारक प्रमानिये। अंतरालसमैं जो अहार विना रहै जीव, नो करम तहाँ नाहिं याहीतैं बखानिये ॥ ४ ॥

सवैया।

लोपहि कर्म हरै दुख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो। ज्ञानप्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न हारो ॥ चेतनरूप लखो निजमूरत, सूरत सिद्धसमान विचारो। ज्ञान अनंत रहै भगवंत, वसै और पकतिसों [illegible] ॥ ५ ॥

छप्पय छन्द।

त्रिविधि कर्मते भिन्न, भिन्न पररूप परमंतै।
त्रिविधि जगतके चिह्न, लखे निज ज्ञान दरसंतै॥
तन ध्याय सनमाहिं, सिद्ध समसिद्ध विराजहि।
प्रगटाइ परम स्वरूप, ताहि, उपमा सब छाजहि॥
इह विधि अनेक गुण जासमहिं, चेतनता निर्मल लसै।
तस पद त्रिकाल वंदत 'भविक', शुद्ध स्वभावहि नित वसै॥६॥

अष्टकर्मते रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर।
चिदानंद भगवान, वसत तिहुँ लोक शीशपर॥
विलसत सुखजु अनंत, संत ताको निज ध्यावहि।
वेदहि ताहि समान, आपु घटमाहि लखावहि॥
इम ध्यान करहि निर्मल निरखि, गुण अनंत प्रगटहि सरव।
तस पद त्रिकाल वंदत 'भविक', शुद्ध सिद्ध आतम दरव॥७॥

ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भइ कर्म कषायें।
प्रगटत पर्म स्वरूप, ताहि निज लेत लखायें॥
देत परिग्रह त्याग, हेत निहचे निज मानत।
जानत सिद्ध समान, ताहि उर अंतर ठानत॥
सो अविनाशी अविचल दरव, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम।
निर्मल विशुद्ध शाश्वत सुथिर, चिदानंद चेतन धरम॥८॥

कवित्त।

अरे मतवारे जीव जिन मतवारे होहु, जिनमत ध्यान गहो जिनमत छोरकैं। धरम न ध्यान गहो परमन ध्यान गहो, धरम स्वभाव गहो, प्रकृति सुगोरकैं। परसों सनेह करो, परम सनेह रंगो, प्रगट गुण गेह करो मोहदल मोरकैं। अष्टादश दोष हरो, अष्ट कर्म नाश करो, अष्टगुण धाम करो, कहूँ कर जोरकैं॥ ९॥ वर्णमें न ज्ञान नहि ज्ञान रस पंचनमें, फर्समें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूँ गंधमें। रूपमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूँ ग्रंथनमें, शब्दमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म बंधमें॥ इनतें अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसै, तहाँ बसै ज्ञान शुद्ध चेतनाके खंधमें। ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशभेव, ज्ञानवन पावें ताहि मूढ़ पावें धंधमें॥ १०॥ वीतराग बैन सो तो ऐनसे विराजत हैं, जाके परकाश निजभास पर लहिये। सुभ षट द्रव्य सर्व गुण परजाय भेद, देव गुरु ग्रंथ पंथ सत्य उर गहिए॥ कर्मको नाश जामें आतम अभ्यास कह्यो, ध्यानकी हुताश[1] अरिपंकतिको दहिये। खोल दृग देखि रूप अहो अविनाशी भूप, सिद्धकी समान सब तोपै रिद्ध कहिये॥ ११॥ रागकी जु रीतसु तो बड़ी विपरीत कही, दोषकी जु बात सु तो महादुख दात है इनही कीस्सगतिमों।

१ अग्नि।

[illegible] जाद, ताहा की सगतिसों नरक निपात है ॥
[illegible] निगोद बीच, जाके दुखदाहरो
[illegible] ये ही जगजालके फिरावनको बडे
[illegible] त्यागे भरभ्रम न निलात है ॥१२॥

मात्रिक कवित्त।

[illegible] आसन सुमिरके, तामें मुक्ति होनके दोय।
पद्मासन [illegible]गासन कहिये, इन बिन मुक्ति होय नहि कोय॥
परम दिगम्बर निजरस लीनो, ज्ञान दरश थिरतामय होय।
अष्ट कर्मको थान अष्टरूप, शिवपति विलसत है सोय ॥१३

दोहा।

जैसो शिव खेतहि बसै, तैसो या तनमाहि।
निश्चयदृष्टि निहारतैं, फेर रच कहुँ नाहिं॥१४॥

❀ इति सिद्धचतुर्दशी ❀

सुबुद्धिचौवीसी।

छप्पय।

जो जानहि सो जीव, जीव बिन और न जानै।
जो मानहि सो जीव, जीव बिन और न मानैं॥
जो देखहि सो जीव, जीव बिन और न देखै।
जो जीवहि सो जीव जीव गुण यहै विसेखै॥

महिमा निधान अनुभूत युत, गुण अनत निर्मल लसे ।
सो जीव द्रव्य पेखत भवि, सिद्ध खेत सहजहिं बसै ॥२४॥

कवित्त

सुबुधि प्रकाशमें सु आतम विलासमें सु, थिरता अभ्यास सुज्ञानको निवास है । उरपकी रीतिमें निजशक्ति प्रकाश सु, कर्मनकी जीतमें अनेक सुख भास है । ... ही निजपद पावत ही, द्रव्यके ... पास है । वीतराग वानी कहै सदा ... सुगम, सदा निवास पूरन प्रकाश है ॥२४॥

श्रीशिवपथ पचीसिका । ...

जब लौ जिय इह थानक माहि । तब लौ निय जग ... रहाहिं ॥ इनहि उलघि मुक्तिमें जाहि । काल अनतहि तहाँ रहाहिं ॥२३॥ सुख अनत विलसहि तिहँ थान । इहि भाख्यो है श्री भगवान ॥ भया सिद्ध समान निहार । निजघट माहि गहै पद धार ॥२४॥

अनित्य पचीसिका । कवित्त ।

पच वर्ण वमनमों पच वर्ण धूलि शाल, मान थम सत्य पेन देखे मान नाश है । दयाको निवास मो ... वेदीको ...ौं, रूपको जु कोट सु तौ ... नो .

[illegible] मुहर गाजत हैं, रतनसो सोट भार
[illegible] मध्य चेतन सु थाप जगदीस
[illegible] दर्श निज धाम है ॥ ४ ॥

। [illegible] । कवित्त ।

[illegible] कल्पवृक्ष इच्छाको न राखै उर, तेरो नाम [illegible] कामना हरत है। तेरो नाम चिन्तामन चिन्ताको [illegible] नाम, तेरो नाम पारस सो दारिद हरत है॥ तेरो नाम अमृत पियेतैं जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल दुखको दरत है। तेरो नाम वीतराग धरै उर वीतरागा, भव्य तोहि पाय भवसागर तरत है ॥३॥ नदीके निहारतहि आतमा निहारयो जाय, जा पै कोउ ज्ञानवत देखै दृष्टि धरकैं। एक नीर नयो आय एक आगें चल्यो जाय, इहां थिर ठहराय रह्यो पूर भरकैं॥ तामें कल्लोल कई मोतिसी तरंग उठ, तिनसे पुनि तामें अनेरूपा उछरिकैं। तैसें इह आतममें कई परिणाम होय, ऐसे परवान है अनंत शक्ति करकैं ॥१२॥

सवैया इकतीसा। [illegible]

निशद्यौस[१] यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्रक पाय रंघे परमा। जिनदरके देखनकी रटनाजु, कहो किम जाई

१ आत्मा। २ रातदिन।

बिना परसों ॥ करथौं शिवलासमें जाय वसों, सुख सबि लहीं मजिके परसों । कब जोग मिल इम इच्छित है भ व, आजके कालिह किथौं परसो ॥१६॥

सवैया (मत्तगयन्द)

जो जगको सब देखत है तुम, ताहि निलोकिके काहे न देखो । जो जगको सब जानतु है, तुम ताहि जु जानो तो सूधो है लेखो ॥ जो जगमें थिर ह्वै सुख मानत, सो सुख देखत कौन विशेखों । है घटमें प्रगटे तबही, जबही तुम आप निहारके पेखो ॥२०॥

कवित्त ।

केवलीके ज्ञानमें प्रमान आन सब भासै, लोक औ अलोकनकी जेती कछु बात है ॥ अतीत काल भई है अनागतमें होयगी, वर्तमान समैकी विदित यों विख्यात है ॥ चेतन अचेतनके भाव विद्यमान सबै, एक ही समैमें जो अनंत होत जात है । ऐसी कछु ज्ञानकी विशुद्धता विशेष धनी, ताको धनी यहै हम कैसें बिललात है ॥२१॥

आश्चर्य चतुर्दशी । दोहा ।

नमों पदारथ सारको, निज अनुभूति प्रकाश ।
सर्व द्रव्य व्यापी प्रभू, केवल ज्ञान प्रकाश

कवित्त।

" " चिदानन्द को दरसत स्वरूप निज, प्रगत हैं ता स गा उपगायके। बोलत हैं बोल ऐसे बोलत न प त ज्ञान कोऊ कथनको देत हैं बतायके॥ छहों काय ... सत्य पैन भाखिवेकी, पर द्रव्य नाखिवेकी कहे ... । परम नमायवेकी आप निधि पायवेकी, सुगमा अगमायवेकी रिद्धि द लखायके॥६॥

प्रश्न। दोहा।

पूछत हैं जन जैनकी, चिदानदसों बात।
आये हो किम देशतें, कहो कहाँ को जात॥७॥

कवित्त।

दश तो प्रसिद्ध है निगोद नाम मिथुमहा, तीनसे तेताल राजु जाको परमान हैं। तहाँके वसैया हम चेतनके वसनार, वसत अनादि काल जोल्यो निज ज्ञान हैं॥ तहाँतें निकस कोउ कर्म शुभ जोग पाय, आय हम इहाँ सुने पुरुष प्रधान हैं। ताके पैंय परवेको महाव्रत धरवेको, शिष्य सग करवेको चलिवो निदान हैं॥८॥ एक दिन एक ठौर मिले ज्ञान चारितसों, पूछी निज बात कहाँ रावरो निवास हैं। बोले ज्ञान सरवरूप चिदानद नाम भूप, असंख्यात परदेश ताके पुरग्राम हैं॥ एक एक देशमें अनत गुण ग्राम बसे, तहाँ के

चमैया हम चरणोंके दास हैं। तू हू चल मेरे संग दोऊ मिलि लूटैं सुख, मेरे आँख तेरे पाय मिलो योग खास है ॥९॥ लाल वस्त्र पहिरेसों देह तो न लाल होय, लाल देह भये हम लाल तौ न मानिये। वस्त्रके पुराने भये देह न पुरानी होय, देहके पुराने जीव जीरन न जानिये॥ वसनके नाश भये देहको न नाश होय, देहके न नाश हम नाश न बखानिये। देह दर्व पुद्गलकी चिदानंद ज्ञानमयी, दोऊ भिन्न भिन्न रूप 'भैया' उर आनिये ॥१०॥

प्रश्न। कवित्त (अर्द्धाली)

दर्शन भ्रष्ट भ्रष्ट सोई चेतन, दर्शन भ्रष्ट मुक्त नहिं होय।
चारितभ्रष्ट तरे भवसागर, यह अचरज पूछत शिशु कोय॥१२॥

उत्तर चौपाई।

तेरह विधि चारित जो धरै। तिंह विन तजे न भवदधि तरै॥
जब ये भाव करहिं उर नाश। तब जिय लहै मोक्षपद वास॥१३॥

रागादिनिर्णयाष्टक। दोहा।

सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान जिनंद।
[illegible] चरन वदन करों, मन धर परमानंद ॥१॥

(अज्ञानी जीव)।

मात्रिक कवित्त।

मोहकी परणति, है अनादि नहि मूल स्वभाव।
स्फटिक मणि जैसें, रागादिक ज्यों रग लगाव।
रग नरल जग मोहत, सो मिथ्यामति नाम कहाव।
गो न्यारा दुहूँ दल, यथायोग्य वरते वर न्याव॥२॥

दोहा।

जो रागादिक जीवके, है कहूँ मूल स्वभाव। तो होंते लो कर्म, देख चतुर वर न्याव॥३॥ मयहि कर्मते भिन्न है, जीव जगतके माहि। निश्चय नयसों देखिये, फरक रच कछु नाहि॥४॥ रागादिकसो भिन्न जब, जीव भयो जिह काल। तब तिह पायो मुकति पद, तोरि कर्मके जाल॥ ५॥ ये हि कर्मके मूल हैं, राग द्वेष परिणाम। इनहीमें सब होत है, कर्म बधके नाम॥६।

चा द्रायण छद। (२४ मात्रा)

रागी बाधे कर्म मरमकी भरनमों। वैरागी निर्बंध स्वरूपाचरनसों॥ यह बध अरु मोक्ष कही समुझायके। दखो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके॥ ७॥

कवित्त।

राग रु द्वेष मोहकी परणति, लगी अनादि जीव कहँ दोय। तिनको निमित पाय परमाणू, बध होय वसु

भेदहि सोय । तिनतें होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ तिपै रस भुंजत लोय । तिनमें राग द्वेष जो उपजत, तिहँ ममारचक्र फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा ।

रागादिक निर्णय कह्यो थोर में समुभाय ।
'भया' सम्यक नैनतें, लाज्यो सबहि लखाय ॥ ९ ॥

❀ इति रागादिनिर्णयाष्टक ❀

पुण्यपापजगमूलपच्चीसी ।

चांद्रायण छन्द ।

पुण्यपापको खेल, जगतमें वनि रह्यो । इनहीके परमाद सुखी दुखिया कह्यो ॥ दोउ जगतके मूल, विनाशी जानिये इनहीतें जो भिन्न, सुखी सो मानिये ॥ १४ ॥ मोह मगन संसार, विषय सुखमें रहै । वर न आप सम्हार परिग्रह सग्रहै ॥ जाने यह थिर धाम, नाश नहीं होयगो । पाके मानुष जन्म, अकारथ खोयगो ॥ १५ ॥ देवधर्म परतीति, परीक्षा साचकी । सीखै नाहि सुदृष्टि, रतन अरु काचकी ॥ जन्म अकारथ जाय, सुनो मन बावरे । पीछे फिर पछताय, बहुर नहिं दावरे ॥ १६ ॥ पुण्य पाप परतन्त्र, दोउ जगमूल है । इनहीमें संसार, भरमको भूलहै ।"

मात्रिक कवित्त ।

परणति, है अनादि नहि मूल स्वभाव ।
नहि जैसे, रागादिक ज्यों रंग लगाव ।
राग मोहत, सो मिथ्यामति नाम कहाव ।
दल, यथायोग्य वरते कर न्याव ॥२॥

दोहा ।

रागादिक जीवके, है कहूँ मूल स्वभाव । तो होते लारमें, देख चतुर कर न्याव ॥३॥ सबहि कर्मतैं भिन्न है, जीव जगतके माहि । निश्चय नयसों देखिये, फरक रंच कहुँ नाहि ॥४॥ रागादिकसों भिन्न जब, जीव भयौ तिह काल । तब तिह पायो मुकति पद, तोरि कर्मके जाल ॥ ५ ॥ ये हि कर्मके मूल है, राग द्वेष परिणाम । इनहीमें सब होत है, कर्म बंधके नाम ॥६।

चान्द्रायण छन्द । (२१ मात्रा)

रागी बांधे करम मरमकी भरनमों । वैरागी निर्बंध स्वरूपाचरनमों ॥ यहै बंध अरु मोक्ष कही मधुभायके । समझो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके ॥ ७ ॥

कवित्त ।

राग रु द्वेष मोहकी परणति, लगी अनादि जीव कहँ दोय । तिनको निमित पाय परमाणू, बंध होय वसु

भदहि मोय। तिनतें होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ जिपें रम भुजत लोय। तिनमें राग द्वेप जो उपजत, तिहँ ममारचक्र फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा।

रागादिक निर्णय कह्यो, थोरे में ममुभाय।
'भैया' मम्यक नेनतें, लीज्यो मयहि लखाय ॥ ९ ॥

❀ इति रागादिनिर्णयाष्टक ❀

पुण्यपापजगमूलपचीसी।

चान्द्रायण छन्द।

पुण्यपापको खेल, जगतमें वनि रह्यो। इनहीके परसाद सुखी दुखिया कह्यो ॥ दोउ जगतके मूल, विनाशी जानिय इनहीतें जो भिन्न, सुखी सो मानिये ॥ १४ ॥ मोह मगन ममार, विपय सुखमें रहै। करै न आप सम्हार परिग्रह मग्रहै ॥ जाने यह थिर धाम, नाश नहीं होयगो। पाक मानुप जन्म, अकारथ खोयगो ॥ १५ ॥ देवधर्म परतीति, परीक्षा साचकी। सीखै नाहि सुदृष्टि, रतन अरु काचकी ॥ जन्म अकारथ जाय, सुनो मन वावरे। पीछे फिर पछताय, बहुर नहिं दावरे ॥ १६ ॥ पुण्य पाप परतक्ष, दोउ जगमूल हैं। इनहींमें ममार, भरमकी भूलहै।

...मामाय, लखै नहि इमको। ताही तें म ... वश को।। १७।। शुद्ध निरंजन ... पाम है। ताको अनुभव करो, यही ... भूल न जाहु, पुण्य अरु पापमें। ... प्रकाश, लहाग आपमें।। १८।। पुण्य पाप ... न कोउ पाइये। औरनकी कहा चली, जिनेश्वर ...।। ये ही जगके मूल, रह ममुझायके। जो इनसेती ...भिन, रमै शिव जायके।। १९।।

दोहा।

कहा चर्मकी दहमें, परम परे हो ध्यान।
देखो धर्म मभारिके, छाड भरमकी वान।। २२।।
करम करतहैं भरमतैं, धरम तुम्हारो नाहि।
परम परीक्षा कीजिये, शर्म कहां इहि माहि।। २३।।
करन भरनतें होयगो, परन नरकके माहि।
ज्ञान चरनके धरन विन, तरन तुम्हारो नाहि।। २४।।
सरन मदा ढूढत रहै, मरन बचावहि कोय।
इरन ज्ञान निरखे पुर, तरन कहांसों होय।। २५।।
जीव वौन पुद्गल कहा, को गुण को परजाय।
जो इतनो समुझै नहीं सो मूरख शिरराय।। २६।।

पुण्य पाप वश जीव सब, वसत जगतमें जान ।
'भैया' इनतें भिन्न जो, ते सब सिद्ध समान ॥ २७ ॥

जिनधर्मपचीसिका । दोहा ।

प्रगट देव परमातमा, चिदानंद भगवान ।
वंदत हौं तिनके चरन, नाय शीश धर ध्यान ॥ १ ॥
ज्यों दीपक संयोगतें, बत्ती करै उदोत ।
त्यों ध्यावत परमातमा, जिय परमातम होत ॥ २६ ॥

अनादिबत्तीसिका ।

दोहा ।

जहाँ सु द्रव्य अनादिके, जगत माहि जयवंत ।
को किस ही कर्त्ता नहीं, यों भाखै भगवंत ॥ २ ॥
अपने गुण परजायमें, वरतै सब निरधार ।
को काहू मेटै नहीं, यह अनादि विस्तार ॥ ३ ॥
अपने अपने सहज सब, उपजत विनशत वस्त ।
है अनादि को जगत यह, इहि परकार समस्त ॥ २६ ॥
चेतन अरु पुद्गल मिलें, उपजे कई विकार ।
तामो जिन समुझे कहें, रच्यो जिनहिं संसार ॥ २७ ॥
यह संसार अनादि को, यही भाँति चल आय ।
[illegible] विनशै थिर रहै, सो सब वस्तु स्वभाय ॥ २

[illegible] रोक शिवपुर जात।
[illegible] मुक्ति होत रे भ्रात ॥ १७ ॥
[illegible] रोकन हारो कौन।
[illegible] बिन निमित्तके होन ॥ १८ ॥
[illegible] को उलट रह्यो जगमाहिं।
[illegible] सिद्ध लोक जो जाहिं ॥ १९ ॥
[illegible] निमितहीं, उलट रह्यो उपयोग।
[illegible] उपादान तुम जोग ॥ २० ॥
[illegible] निमित्त, हमपै कही न जाय।
[illegible] जिनकेवली, देखें त्रिभुवनराय ॥ २१ ॥
[illegible] मोही साचो आहि।
[illegible] अनादिके, बली कहोगे काहि ॥ २२ ॥
उपादान कहैं वह बली जाको नाश न होय।
जो उपजत विनशत रहै, बली कहाँते सोय ॥ २३ ॥
उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार।
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार ॥ २४ ॥
जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं।
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं ॥ २५ ॥
सूर सोम मणि अगिनके, निमित्त लखैं ये नैन।
अंधकारमें कित गयो, उपादानदृग दैन ॥ २६ ॥
सूर सोम मणि अग्नि जो, करै अनेक प्रकाश।
नैन शक्ति बिन ना लखैं, अन्धकार सम भास ॥ २७ ॥

कहै निमित्त वे जीवको, मो बिन जगके माहिं।
सबै हमारे वश परे हम बिन मुक्ति न जाहिं ॥ २८ ॥
उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल।
ताको तज निज भजत है, तेही करे किलोल ॥ २९ ॥
कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसे शिव जात।
पंच महाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात ॥ ३० ॥
पंच महाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार।
परको निमित्त खपायके, तब पहुँचे भवपार ॥ ३१ ॥
कहै निमित्त जग में बड़ो, मोतें बडो न कोय।
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतें होय ॥ ३२ ॥
उपादान कहै तू कहा, चहुं गतिमें ले जाय।
तो प्रसादतें जीव सब, दुखी होहिं रे भाय ॥ ३३ ॥
कहै निमित्त जो दुख सहै, सो तुम हमहि लगाय।
सुखी कौन तें होत है, ताको देहु बताय ॥ ३४ ॥
जा सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं।
ये सुख, दुखके मूल है, सुख अविनाशी माहिं ॥ ३५ ॥
अविनाशी घट घट बसै, सुख क्यों विलसत नाहिं ?
शुभ निमित्तके योग बिन, परे पर विललाहिं ॥ ३६ ॥
शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार।
पै इकसम्यक दश बिन, भटकत फिरयो गँवार ॥ ३७ ॥

...ह्या, तुरित मुकतिमें जाहि ।
...है, ते शिवको पहुँचाहि ॥ ३८ ॥
...गना, मोर योगकी रीति ।
...लमें, जोर लई शिवप्रीति ॥ ३९ ॥
...तहाँ, अब नहिं जोर बसाय ।
...ताकम, पहुँच्यो कर्म नपाय ॥ ४० ॥
...सहां, निजबल कर परकाश ।
...गुण भागते अन न बरन्यो ताम ॥ ४१ ॥
...अरु निमित्त पै, मत जीवनपै बीर ।
...शक्ति ममारही, मो पहुँचे भवतीर ॥ ४२ ॥
...महिमा, ब्रह्मकी, कैसे बरनी जाय ।
...। अगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बनाय ॥ ४३ ॥
उपादान अरु निमित्तको, मरस बन्यो सवाद ।
समदृष्टीको सुगम है, मूरखको बकवाद ॥ ४४ ॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद ।
साख जिनागममों मिल, तो मत कीज्यो खेद ॥ ४५ ॥
नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वास ।
तिहँ थानक रचना करी, भैया स्वमति प्रकाश ॥ ४६ ॥
सवत विक्रम भूपको, सत्रहसै पचास ।
फाल्गुण पहिले पक्ष में, दशों दिशा परकाश ॥ ४७ ॥

❀ इति उपादाननिमित्तसंवाद ❀

दोहा

रागभाव छूट्यो नहीं, मिट्यो न अंतर दोष ।
सगति चाहै शिवकी, होय कहाँसो मोष ॥ १७ ।

पंचेन्द्रियसंवाद । दोहा ।

पर द्रव्यनसों भिन्न जो, स्वक्रिय भाव रमतान ।
सो चेतन परमातमा, दरश्यो ज्ञान प्रधान । १४३ ॥
जो देखै गुण द्रव्यके, जानै सबके भेद ।
सो या घट में प्रगट है, कहा करत है खेद ॥ १४४ ॥
गुण अनंतको नाथ यह, चिदानंद भगवान ।
दर्शन ज्ञान विराजतो, देखो धर निज ध्यान ॥ १४५ ॥
देखनहारो ब्रह्म यह, घट घटमें परतच्छ ।
मिथ्यातमके नाशतैं, सूझै सबको स्वच्छ ॥ १४६ ॥
जैसो शिव तैसो इहां, भैया फेर न कोय ।
देखो सम्यक नयनसों, प्रगट विराजै सोय ॥ १४७ ॥
निकट ज्ञानदृग देखतैं, विकट चर्मदृग होय ।
विकट रहै जब रागकी, प्रगट चिदानंद जोय ॥ १४८ ॥

ईश्वरनिर्णयपच्चीसी । कवित्त ।

जैसे कोउ श्वान परयो शारके महल बीच
भूस मरयो है । वानर

? अग, हृयमें निहार सिंह आप कूं
फटिककी शिनाम निलोक गन जाय
? कै सुनदाको कौनै सो पकरयो है। तमें ही
अज्ञानमात्र मान हम, अपनो स्वभाव भूलि
? इ ॥ १२ ।

कर्त्ताअकर्त्तापचीसी ।

दोहा।

कर्मनको कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय। ता ईश्वरके चरनको, वदों शीश नवाय ॥ १ ॥ जो ईश्वर करता कहैं, भुक्ता कहिये कौन। जो करता सो भोगता, यहै न्यायको गौन ॥ २ ॥ दुहूँ दोषतें रहित हैं, ईश्वर ताका नाम। मनवचशीस नवाइकैं, करू ताहि परनाम ॥ ३ ॥ कर्मन तो करता कहै, जाँप ज्ञान न होय। इश्वर ज्ञानसमूह है, किम कर्त्ता है सोय ॥४॥ ज्ञानवत ज्ञानहिं करै, अज्ञानी अज्ञान। जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगै दोष असमान ॥ ५ ॥ ज्ञानीपै जड़ता कहा, कर्त्ता ताको होय। पंडित हिये विचारकैं, उत्तर दीजे मोय ॥ ६ ॥ अज्ञानी जडतामयी, करै अज्ञान निशक। कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखै भगवत ॥७॥ ईश्वरकी निज जात है, ज्ञानी तथा सुज्ञान। जो इह न ...दो, सौ है ज्ञान प्रमान ॥ ८ ॥ अज्ञानी कर्त्ता कहै,

तौ सब बनै बनाव । ज्ञानी ह्व जडता करे, यह तौ बने न न्याव ॥ ९ ॥ ज्ञानी करता ज्ञानको, करै न कहुँ अज्ञान । अज्ञानी जडता करै, यह तो बात प्रमान ॥ १० ॥ जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहँ होय । सुख दुख काको दीजिये, न्याय करहु बुध लोय ॥ ११ ॥ नरकलमें जिय डारिये, पकर पकरके बाँह । जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥ १२ ॥ ईश्वरकी आज्ञा बिना, करत न कोऊ काम । हिमादिक उपदशको, कत्ता कहिय राम ॥ १३ ॥ कर्त्ता अपने कर्मको, अज्ञानी निर्धार । दोष दत जगदीशको, यह मिथ्या आचार ॥ १४ ॥ ईश्वर तौ निर्दोप है, करता भुक्ता नाहि । ईश्वरको कत्ता कहै, त भरम जग माहि ॥ १५ ॥ ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीनलोक आभास । सुख सत्ता चतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास ॥ १६ ॥ जाके गुन तामें बसै, नहीं और में होय । सूधी दृष्टि निहारतें, दोष न लागै कोय ॥ १७ ॥ वीतरागवानी विमल, दोष रहित तिहुँकाल । ताहि लखे नहिं मूढ़ जन, झूठे गुरुके बाल ॥ १८ ॥ गुरु अंधे शिष्य अधकी, लखै न बाट कुबाट । बिना चक्षु भटकत फिरै, खुलै न हिय कपाट ॥१९॥ जौलों मिथ्यादृष्टि है, तौलों कर्त्ता होय । सो हू भानित कर्मको, दर्वित करै न कोय ॥ २० ॥ दर्व कर्म पुद्गलमयी, कर्त्ता पुद्गल तास । ज्ञानदृष्टिके होत ही, सूझै सब परकास

॥ २१ ॥ नोलों जीव न जान हीं, छहों कायके चोर। तौलों रक्षा कौनकी, कर हैं साहम धीर ॥ २२ ॥ जानत है मन जावको, मानत आप समान। रक्षा यातें करत है, मनमें करुणा जान ॥ २३ ॥ अपने अपने सहजके, कर्ता हैं सब द्रव्य। यहै धर्मको मूल है, समझ लहु जिय भव्य ॥ २४ ॥ 'भैया' बात अपार है, कहै कहालों कोय। थोरहाम समझियो, ज्ञानवत जो होय ॥ २५ ॥

❀ इति कर्ताअकर्तापच्चीसी ❀

अथ मनबत्तीसी लिख्यते।

जब मन मूंद्यो ध्यानमें, इंद्रिय भई निराश।
तब इह आतम ब्रह्मने, कीने निज परकाश ॥ १५ ॥
रंग रहै आरम्भमों, चक्रवर्ति जगमाहिं।
फेरत ही मन एकको, चले मुक्तिमें जाहिं ॥ २४ ॥
बाहिज परिग्रह रंच नहिं, मनमें धरै विकार।
तांदुल मच्छ निहारिये, पड़ै नरक निरधार ॥ २५ ॥
भावनहीतैं बंध है, भावनहीतैं मुक्ति।
जो जानै गति भावकी, सो जानै यह युक्ति ॥ २६ ॥

फुटकर विषय।

कवित्त।

तेरो ही स्वभाव चिनमूरति विराजतु है, तेरो ही स्वभाव सुख सागरमें लहिये। तेरो ही स्वभाव ज्ञान दर-

सनद् राजतु है, तेरो ही स्वभाव भ्रुव चारितमें कहिये ॥
तेरो ही स्वभाव अविनाशी सदा दीसतु है, तेरो ही
स्वभाव परभावमें न गहिये । तेरो ही स्वभाव सब आन
लसै ब्रह्ममाहिं, याते तोहि जगतको ईश सरदहिये ॥ १ ॥

दोहा ।

त्याग विना तिरयो नहीं, दखद् हिये विचार ।
तूंबी लेपहि त्यागतो, तव तरि पहुँचे पार ॥ २४ ॥
त्याग बडो संसारमें, पहुँचावै शिवलोक ।
त्यागहितें सब पाइये, सुख अन्तके थोक ॥ २५ ॥

अथ परमात्मशतक ।

दोहा ।

सकल देवमें देव यह, सकल सिद्धमें सिद्ध ।
सकल साधुमें साधु यह, पेख[1] निजातमरिद्ध ॥ २ ॥

सोरठा ।

पीरे[2] होहु सुजान, पीरे[3] कारे है रहे ।
पीरे तुम बिन ज्ञान, पीरें[4]-सुधा सुबुद्धि कहे ॥ ४ ॥

दोहा ।

फिरे बहुत संसारमें, फिरि फिरि थाके नाहिं ।
फिरे जबहि निजरूपको, फिरे न चहुँगति माहिं ॥१३॥

१ देख । २ (पियरे) अर्थात् प्यारे हो । ३ दुःखित ।
४ पान कर ।

परमारथ परमें नहीं, परमारथ निज पास ।
परमारथ पहचान बिना प्राणी रहे उदास[1] ॥१६॥
परमारथ जानें परम, पर[2] नहिं जानै भेद ।
परमारथ निज जानियो, दर्शन ज्ञान अभेद ॥१७॥
परमारथ निज जानियो, यहै परमसो[3] ज्ञान ।
परमारथ जानै नहीं, करै परम [illegible] धार ॥१८॥
आप पराये वश परे, आपा डार्यो खोय ।
आपै[4] आप जानै नहीं, आप प्रगट क्यों होय ॥१९॥
जिनकी महिमा न लखैं, ते जिन होहिं निरास ।
निजघाती यों कहत हैं, जिन जानहु कछु आन ॥२१॥
ध्यान धरो निजरूपको, ज्ञानमाहिं उर आन ।
तुम तो राजा जगतके, चेतहु विनती मान ॥२२॥
चेतनरूप अनूप है, जो पहिचानै कोय ।
तीनलोकके नाथकी, महिमा पावै सोय ॥२३॥
जिन पूजहिं जिनवर नमहिं धरहिं सुथिरता ध्यान ।
केवलपदमहिमा लखहिं, ते जिय सम्यग्ज्ञान ॥२४॥
तुम तो पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव ।
लिप्त भये गोरस[5] विषै, ताको कौन उपाव ॥२५॥

१ दुखित । २ परन्तु । ३ आतमा । ४ आप अपने को नहीं जानता । ५ 'गो' इन्द्रियां 'रस' विषयमें ।

वेदभाव[1] सब त्यागि करि, वेद[2] ब्रह्मको रूप।
वेद[3] माहिं सब खोज है, जो वेद चिद्रूप[4]॥२८॥
अपने रूप स्वरूपमों, जो जिय राखै प्रेम।
सो निहचे शिवपद लहै, मनसावाचा[5] नेम॥३०॥
जो जन परसा हित करै, निज सुधि गये बिसार।
सो चिन्तामणि रत्नसम, गयो जन्म नर हारि॥३८॥
जैसे प्रगट पतङ्गके[6], दीप माहिं परकाश।
तैसे ज्ञान उदोतमों, होय तिमिरको नाश॥३९॥
आप अकेलो ब्रह्मय, पर्यो भरमके फंद।
ज्ञानशक्ति जानें नहीं, कैसे होय स्वछन्द॥४४॥
शिवस्वरूपके लखतहीं, शिवसुख होय अनंत।
शिवसमाधिमें रम रहै, शिवमूरति भगवंत॥४५॥
या मायासों राचिके, तुम जिन भूलहु हम्म।
संगति याकी त्यागिके, चीन्हो अपनो अम्म॥४८॥
जोगी[7] न्यारो जोगतें, धरै जोग[8] सब साज।
जोग[9] जुगत जानें सब, सो जोगी शिवराज[10]॥४९॥

---

१ खोटु नष्टु सबभाव। २ ज्ञान। ३ शास्त्रोंमें। ४ जो यदि चिद्रूपको जानता हो तो, नहीं तो कुछ नहीं। ५ मन और वचनसे। ६ सूर्य। ७ आत्मा। ८ मन वचन कायके योगसे। ९. योग्य (उचित)। १०. योग, ध्यान। ११ मोक्ष।

जाकी महिमा जगतमें, लोकालोक प्रकास ।
सो अविनाशी घट विषै, कीन्हो आप निवास ॥५०॥
निजरूप स्वरूपमें, कर्मकलङ्क न होय ।
सो अविनाशी आतमा, निजपद परगट होय ॥५१॥
ज्ञान भानु[1] परगट भयो, तम अरि भागे दूर ।
धर्म मारग लख्यो, यह महिमा रहि पूर ॥५५॥
तनकी संगति किये, चेतन होत अजान ।
तासों ममता धरै, अपुनो जीन सयान[2] ॥५६॥
तनसों दुख होत है, यहै अचमो मोहि ।
तनसा ममता धरे, चेतन ! चेत न तोहि ॥५७॥
जा तनसा तू निज कहै सो तन तो तुझ नाहि ।
तीन प्राण संयुक्त जो, सो तन तो तुझ माहि ॥५८॥
जाके लखत यह लख्यो, यह मैं यह पर होय ।
महिमा सम्यग्ज्ञानकी, विरला बूझै कोय ॥५९॥
छहौं द्रव्य अपने सहज[3], राजत है जगमाहि ।
निहचै दृष्टि विलोकिये, परमें कबहूँ नाहि ॥६०॥
जड़ चेतनकी भिन्नता, परम दरवको राग ।
सम्यक होत यह लख्यो, एक पथ द्वै काज ॥६१॥
समुझै पूरण ब्रह्मको, रहै लोभ लौं लोय ।
जान बूझ भ्रम परै, तासों कहा बसाय ॥६२॥

१ सूर्य । २ चातुर्य । ३ स्वभाव । ४ ममता ।

अपनी नवनिधि छाडि कै, मागत घर घर भीख ।
जान बूझ कूए परै, ताहि कहाँ कहा सीख ॥६५॥
मूढ़ मगन मिथ्यातमें, समुझै नाहि निठोल[१] ।
कानी[२] कौडी कारणें, खोवै रतन अमोल ॥६६॥
कानी कौडी विषय सुख, नरभव रतन अमोल ।
पूरव पुन्यहिं कर चढयो, भेद न लहै निठोल ॥६७।
चौरासी लखमें फिरै, रागद्वेष परसङ्ग ।
तिनसौं प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञानको अङ्ग ॥६८॥
चल चेतन तहाँ जाइये, जहाँ न राग विरोध ।
निज स्वभाव परकाशिये, कीजे आतम बोध ॥६९॥
तेरे बाग[३] सुज्ञान है, निज गुण फूल विशाल ।
ताहि विलोक्हु परम[४] तुम, छाडि आल जजाल ॥७०॥
छहौं द्रव्य अपने सहज फूल फूल सुरग ।
तिनसौं नेह न कीजिये, यहै ज्ञानको अग ।७१॥
साच विसारयो भूलकर, करी झूठसो प्रीति ।
ताहीतें दुख होत है, जा यह महा अनीति ॥७२॥
हित शिक्षा इतनी यहै, हम सुनहु आदेश ।
गहिये शुद्ध स्वभावको, तजिये कर्म कलेश ॥७३॥

१ निठल्ला बेकाम मूर्ख । २ फूटी । ३ बगीचा ।
४ शुद्धात्मा ।

सोरठा।

इतनी और न रीति, मोहि बतावहु परम तुम।
तिन हीसों पुनि प्रीति, जो नरकहिं ले जात हैं ॥७५॥
अहो! जगतके राय मानहु एती बीनती।
त्यागहु पर परजाय, काहे भूले भरममें ॥७६॥
अहो! चेतनराय! परसों प्रीति कहा करी।
जो नरकहिं ले जाय, तिनहीसों राचे सदा ॥७७॥
तुम तो परम सयान, परसों प्रीति कहा करी।
किहि गुण[1] भये अयान, मोहि बतावहु मोय तुम ॥७८॥
कर्म शुभाशुभ दोय, तिनसों आपौ मानिये।
कहहु मुक्ति क्यों होय, जो इन मारग अनुसरे ॥७९॥
मायाहीके फन्द, उरझे चेतनराय तुम।
कैसे होहु स्वछन्द, देखहु ज्ञान विचारिके ॥८०॥
अहो! परम सुजान, कौन सयानप[2] तुम करी।
काहे भये अयान, अपनो जो निधि छाडिके ॥८१॥
तीनलोकके नाथ, जगवासी तुम क्यों भये।
गहहु ज्ञानको साथ, आवहु अपने धनविषे[3] ॥८२॥
तुम पूना सम चन्द, पूरण ज्योति सदा भरे।
पर पराये फन्द, चेतहु चेतनराय जू ॥८३॥

१ किस कारण। २ चतुरता। ३ आत्मधन।

जानहि गुण पर्याय, ऐसे चेतनराय हैं।
नैननि लेहु लखाय, एहो ! सन्त सुजान नर ॥८४॥
सब कोउ करत किलोल, अपने अपने सहजमें।
भेद न लहत निठोल[1], भूलत मिथ्या भरममें ॥८५॥

दोहा।

पुद्गलको कहा देखिये, धरै विनाशी रूप।
देखहु आतमसम्पदा, चिद्विलासचिद्रूप ॥८८॥
नित देखहु तित देखिये, पुद्गलहीसों प्रीत।
पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥८९॥
जगत फिरत कै जुग भये, सो कछु कियो विचार।
चेतन अब किन[2] चेतहू, नरभव लह अतिसार[3] ॥९१॥
ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय[4]।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥९३॥
देखहु तो निज दृष्टिसों, जगमें थिर कछु आइ।
सबै विनाशी देखिये, को तज गहिये काइ ॥९४॥
केवल शुद्ध स्वभावमें, परम अतीन्द्रिय रूप।
सो अविनाशी आतमा, चिद्विलास चिद्रूप ॥९५॥
जैसो शिवखेतहिं वसै, तैसो या तनमाहिं।
निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रंच कहुँ नाहिं ॥९६॥

१ मूर्ख। २ क्यों न। ३ श्रेष्ठ। ४ दौड़के। ५ सिद्धपरमात्मा। ६ मोक्षक्षेत्र।

चेतन धरै उपाधि तन, रागद्वेषको संग ।
[illegible] प्रगट [illegible] सम्यक्त्व, शिवसुख होय अभंग ॥९७॥
तू अनन्त [illegible] धनी, सुखमय तोहि स्वभाव ।
करो [illegible] प्रगट निज, होय बैठ शिवराव ॥९८॥
ज्ञान [illegible] प्रगटते दश दिशि होय प्रकाश ।
[illegible] स्वामी, कहत 'भगवतीदास' ॥९९॥

[illegible] परमात्मशतकम् ❁

[illegible] कर युद्ध तू, [illegible]ले ज्ञान कमान ।
[illegible] परम त, मारो मनमथ[1] जान ॥६॥
परम धरम अवधारि तू, परसगति कर दूर ।
ज्यों प्रगटै परमातमा, सुख संपति रहै पूर ।७॥

❁ इति संपूर्ण ❁

❁ समयसार नाटक ❁

अनुभवका वर्णन । दोहा ।

वस्तु विचारत ध्यानतें, मन पावै विश्राम ।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ ताको नाम ॥१७।
अनुभौ चिंतामणि रतन, अनुभव है रस रूप।
अनुभौ मारग मोखको, अनुभौ मोक्ष स्वरूप ॥१८॥

१ कामदेव ।

सवैया ३१ सा।

अनुभौके रसको रमायन कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहू तीरथकी ठौर है। अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरगासु, अनुभौ अधो रसासु ऊरधकी दौर है॥ अनुभौकी केलि इह कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौको स्वाद पच अमृतको कौर है। अनुभौ करम तोरे परमसो प्रीति जोरे, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है॥१९॥

जीव द्रव्यका लक्षण। दोहा।

चेतनवत अनंतगुण पर्यय शक्ति अनंत।
अलख अखंडित सर्वगत, जीवद्रव्य विरतंत॥२०॥

पुद्गलद्रव्यका लक्षण।

फरस वर्ण रस गंधमय, नरदपास सठान।
अनुरूपी पुद्गलदरव, नभ प्रदेश परवान॥ २१॥

धर्म द्रव्यका लक्षण।

जैसे सलिल समूहमें, करै मीनगति कर्म।
तैसें पुदगल जीवको, चलन सहाई धर्म॥२२॥

अधर्म द्रव्यका लक्षण।

ज्यौं पथी ग्रीषम समैं, बैठे छाया माहि।
त्यौं अधर्मकी भूमिमें, जड चेतन ठहराँहि॥२३॥

आकाश द्रव्यका लक्षण।

संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास।
जो भाजन सब जगतको, सोई द्रव्य आकाश॥२४॥

[illegible] द्रव्यका लक्षण ।

[illegible] परवर्तन दरव, सकल वस्तु थिति ठानि ।
[illegible] सन धरे, काल द्रव्य सो जानि ॥ २५ ॥

जीवविलास वर्णन ।

समता रमता उरधता, ग्यायकता सुखभास ।
वेदकता चैतन्यता, ये सब जीवविलास ॥ २६ ॥

अजीवतत्त्व विलास वर्णन ।

तनता मनता वचनता, जड़ता जडसमल ।
लघुता गुरुता गमनता, ये अजीवके खेल ॥२७॥

पुण्यतत्त्वका वर्णन ।

जो विशुद्ध भावनि बधे, अरु उरधमुख होइ ।
जो सुखदायक जगतमें, पुन्य पदारथ सोइ ॥२८॥

पापतत्त्वका वर्णन ।

संक्लेश भावनि बधै, सहज अधोमुख होइ ।
दुखदायक संसारमें, पाप पदारथ सोइ ॥२९॥

आश्रवतत्त्वका वर्णन ।

जोइ कर्म उदोत धरि, होइ क्रियारस रत्त ।
करषी नूतन कर्मको, सोई आश्रव तत्त्व ॥३०॥

संवरतत्त्वका वर्णन ।

जो उपयोग स्वरूप धरि, वरतैं जोग विरत्त ।
रोकै आवत करमकौं, सो है संवर तत्त ॥३१॥

निर्जरातत्त्वका वर्णन ।

पूरव सत्ताकर्म करि, थिति पूरण जो आउ ।
खिरवैकों उदित भयो, सो निर्जरा लखाउ ॥३२॥

बंधतत्त्वका वर्णन ।

जो नवकर्म पुरानसों, मिलैं गठि दिढ़ होइ ।
शक्ति बढ़ावै वंशकी, बंध पदारथ सोइ ॥३३॥

मोक्षतत्त्वका वर्णन ।

थितिपूरन करि कर्म जो, खिरैं बंधपद भान ।
हंस अंस उज्जल करै, मोक्षतत्त्व सो जान ॥३४॥

चिदानंद भगवान्‌की स्तुति ।

शोभित निज अनुभूति युत, चिदानंद भगवान ।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥१॥

सिद्ध भगवानको नमस्कार ।

सवैया २३ सा ।

जो अपनी दुति आप विराजित, है परधान पदारथ नामी । चेतन अंक सदा निकलंक, महा सुख सागरको

अनुभव अवस्था [illegible] । सवैया ३१ सा ।

जैसे [illegible] के उदै महि मंडलमें, आतम अटल तम [illegible] है । तैसे परमातमको अनुभौ रहत [illegible] पक्षपात है ॥ नयको न [illegible] परवेस, निक्षेपके वंसको विध्वंस होत जातु [illegible] साधक हैं तेउ तहाँ बाधक है, बाकी रागद्वेष [illegible] है ॥ १० ॥

[illegible] विलास कथन । सवैया ३२ सा ।

कोऊ बुधिवंत नर निरखै शरीर घर, भेदज्ञान दृष्टिसों विचारै वस्तु वास तो । अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भीग्यो चिदानंद लखै बंधमें विलास तो ॥ बंधको विदारि महा मोहको स्वभाव डारि, आतमको ध्यान करै देखै परगास तो । करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप, अचल अबाधित विलोकै देव सासतो ॥१३।

गुणगुणी अभेद कथन । सवैया २३ सा ।

शुद्ध नयातम आतमकी, अनुभूति विज्ञान विभूति है सोई । वस्तु विचारत एक पदारथ, नामके भेद कहावत दोई ॥ यों सरवंग सदा लखि आपुहि, आतम ध्यान करै जब कोई । मेटि अशुद्ध विभाव दशा तब, सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥१४॥

ज्ञाता का चिंतवन कथन। सवैया ३१ सा।

अपने ही गुण परजायसा प्रवाहरूप, परिणयो तिहूँ काल अपने आधारसों। अंतर बाहिर परकाशवान एकरस, खीणता न गहभिन्न रह भौ विकारसा॥ चेतनाकरम सरवग भरि रह्यौ जीव, जसे लूण काकर भरयो है रस खारसों। पूरण स्वरूप अति उजल विज्ञानघन, मोको होहु प्रगट विशेष निरवारसों॥ १५॥

द्रव्य पर्याय अभेद कथन। कवित्त।

जहँ ध्रुवधर्म कर्मक्षय लक्षण, सिद्ध समाधि साध्यपद सोई। शुद्धोपयोग जोग महि मंडित, साधक ताहि कहै सब कोई॥ यो परतक्ष परोक्ष स्वरूपसो, साधक साध्य अवस्था दोई। दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवै सिव वंछक थिर होई॥ १६॥

द्रव्य गुण पर्याय भेद कथन। कवित्त।

दरसन ग्यान चरण त्रिगुणातम, समलरूप कहिये विवहार। निहचै दृष्टि एक रस चेतन, भेद रहित अविचल अविकार॥ सम्यक्दशा प्रमाण उभयनय, निर्मल समल एक ही बार। यौं समकाल जीवकी परणति, कहें जिनंद गहे गणधार॥ १७॥

व्यवहार कथन । दोहा ।

एकरूप आतम दरब, ज्ञान चरण दृग तीन ।
भेदभाव परिणाम यों, विवहारे सु मलीन ॥१८॥

निश्चयरूप कथन । दोहा ।

यदपि समल व्यवहार सों, पर्यय शक्ति अनेक ।
तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक ॥१९॥

शुद्धस्वरूप कथन । दोहा ।

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर ।
समल विमल न विचारिये यहै सिद्धि नहिं और ॥२०॥

शुद्ध अनुभव प्रशंसा कथन । सवैया ३१ सा ।

जाके पद साहत सुलक्षण अनत ज्ञान, विमल विका-शवत ज्योति लहलही है। यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहारमें तथापि, एकता न तजे यों नियत अंग रही है ॥ सो है जीव कैसोहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करवेकूँ मेरी मनसा उमही है । जाते अविचल - रिद्धि होत और भाँति सिद्धि, नाहीं नाहीं नाहीं यामे धोखो नाहीं,सही,है ॥२१॥

ज्ञाताकी व्यवस्था । सवैया २३ सा ।

कै अपनो पद आप सभारत,कै गुरुके मुखकी सुनि बानी ।
भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके,प्रगटी सुविवेक कला रजधानी ॥

भाव अनंत भये प्रतिबिंबित, जीवति मोक्ष दशा ठहरानी।
ते नर दर्पण ज्यों अविकार, रहै थिर रूप सदा सुखदानी ॥२२॥

भेदज्ञान प्रशंसा कथन। सवैया ३१ सा।

याही वर्तमानसम भव्यको मिट्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो है कर्ममलसों। उदै करै भेदज्ञान महा रुचिको निधान, उरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसों॥ जाते थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि, कबहूँ अपनपो न कहै पुद्गलसों। यह करतूति यों जुदाई करै जगतसों, पावक ज्यों भिन्न करै कंचन उपलसों॥ २३॥

परमार्थकी शिक्षा कथन। सवैया ३१ सा।

बनारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी सीख, केहू भाँति कैसेहूँ के ऐसो काज कीजिये। एकहू मुहूर्त मिथ्यात्वको विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाय अंश हंस खोज लीजिये॥ वाहीको विचार वाको ध्यान यहै कौतूहल, यौंही भर जन्म परम रस पीजिये। तजिये भववासको विलास सविकाररूप, अंत कर मोहको अनंतकाल जीजिये॥ २४॥

निश्चय आत्मस्वरूप कथन। अडिल्ल छन्द।

एह विचक्षण पुरुष सदा हूँ एक हौं।
अपने रस सूं भरयो आपनी टेक हौं॥

मोहकर्म मम नाहि नाहि भ्रमरूप है।
शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है॥ ३२॥

ज्ञान व्यवस्था कथन। सवैया ३१ सा।

जाकी प्रतीतिमें लख्यो है निजपरगुण, दृग ज्ञान चरन त्रिविधि परिणयो है। विशद विवेक आयो आछो विसराम पायो, आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयो है॥ कहत बनारसी गहत पुरुषारथको, सहज स्वभावसों विभाव मिटि गयो है। पन्नाके पकाये जैसे कंचन विमल होत, तैसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है॥ ३३॥

॥ इति श्री समयसार नाटकका प्रथम जीवद्वार समाप्त भया ॥

द्वितीय अजीवद्वार प्रारम्भ ॥ २॥

वस्तु स्वरूप कथन। दोहा।

चेतनवंत अनंतगुण, सहित सु आतमराम।
याते अनमिल और सब, पुद्गलके परिणाम॥ ४॥

अनुभव प्रशंसा कथन। कवित्त।

जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखे निज दृगसों निज मर्म। तब सुखरूप विमल अविनाशिक, जाने जगत शिरोमणि धर्म॥ अनुभव करै शुद्ध चेतनको, रमे स्वभाव वमे सब कर्म। इहि विधि सधै मुक्तिको मारग, अरु समीप आवै शिवशर्म॥ ५॥

दोहा।

वरणादिक रागादि जड, रूप हमारो नाहि।
एक ब्रह्म नहि दूसरो, दीसे अनुभव माहि ॥ ६ ॥
खाडो कहिये कनकको, कनक म्यान सयोग।
न्यारो निरखत म्यानसों, लोह कहे सब लोग ॥ ७ ॥
वरणादिक पुद्गल दशा, धरै जीव बहुरूप।
वस्तु विचारत करमसों, भिन्न एक चिद्रूप ॥ ८ ॥
ज्यों घट कहिये घीवको, घटको रूप न घीव।
त्यों वर्णादिक नामसों, जडता लहै न जीव ॥ ९ ॥
निराबाध चेतन अलख, जाने सहज सुकीव।
अचल अनादि अनत नित, प्रगट जगतमें जीव ॥ १० ॥

अनुभव विधान कथन । सवैया ३१ सा।

रूप रसवत मूरतीक एक पुदगल, रूप बिन और यों अजीव द्रव्य द्विधा है। च्यार हैं अमूरतीक, जीव भी अमूरतीक, याहीतैं अमूरतीक वस्तु ध्यान सुधा है ॥ औरसों न कबहू प्रगट आपा आपहीसों, ऐसो थिर चेतन स्वभाव शुद्ध सुधा है। चेतनको अनुभौ आराधे जग तेई जीव, जिन्हके अखंड रस चाखवेकी क्षुधा है ॥ ११ ॥

ताका विलास कथन । सवैया ९३ मा ।

पटम भमण्य अनादि, विलाम महा अविवेक । नमे और महथ न दीमत, पुद्गल नृत्य करे । पग्र भय दिनावत कौतुक, मौज लिये दगागे । मोहमों भिन्न जुदो जड़मों चिन,-मूरति खनदारो ॥ १३ ॥

ज्ञान विलास कथन । सवैया ३८ सा ।

जैसे करान पर काठ बीच खड करे, जैसे राजहम निरवार दूध जलको । तैसे भेदज्ञान निज भेदक शकति सेती, भिन्न भिन्न करे चिदानंद पुद्गलको ॥ अवधिकों धावे मनपर्ययकी अवस्था पावे, उमगिके आवे परमावधिक थलको । याही भाँति पूरण सरूपको उदोत धरे, करे प्रतिबिंबित पदारथ सकलको ॥ १४ ॥

❀ द्वितीय अजीवद्वार समाप्त हुआ ❀

तृतीय कर्ताकर्म क्रियाद्वार प्रारम्भ ॥३॥

…का माहात्म्य । सवैया ३१ सा ।

… जीवमह मे मदीव एक, दूसरो न और … । अतर … आपा पर भेद मिटि … ॥ भासे छहो

दरवके गुण परजाय मग, नासे दुख लग्यो सुख [illegible] परमको। करमको करतार मान्यो पुद्गल पिंड, आप करतार भयो आतम धरमको ॥२॥ जाही समै जीव देह बुद्धिको विकार तजे, वेदत स्वरूप निज भेदत भरमको। महा [illegible] मति मडन अखड रस अनुभौ अभ्यास परकासत [illegible] ताही समै घटमें न रहे विपरीत भाव, जैसे तम [illegible] प्रगटि धरमको। ऐसी दशा आवे जब साधक [illegible] करता है कैसे करे पुद्गल करमको ॥३॥

प्रथम आत्माकू कर्मको कर्ता [illegible]
अकर्ता माने है। सवैया [illegible]

जगमें अनादिको अज्ञानी कहे [illegible] याको किरियाको प्रतिपाली है। [illegible] भयो उदासी, ममता मिटाय [illegible] ॥ निरभै स्वभाव लीनो अनुभौको [illegible] दृष्टि निहचेमें राखी है। भरमकी [illegible] तोरी, परमसो प्रीति जोरी [illegible] है। [illegible]

ज्ञानको सामर्थ्य कहे है। [illegible]

जैसे जे दरब ताके तैसे [illegible] पै मिले न काहु आनसों [illegible]

मन, नाहि अभिलाष ज्यों नितर जुरै कानसों ॥ ऐसो मतिविकल जाके हिरदै प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भाग भानसों। मोइ जीव करमको करता सो दीसे पहि, अकरता कह्यो शुद्धताके परमानसों ॥५॥

जीव और पुद्गलका जुदा जुदा लक्षण।

छप्पय छन्द।

जीव ज्ञानगुण सहित, आपगुण परगुण ज्ञायक।
आपा परगुण लखै, नाहि पुद्गल इहि लायक॥
जीवद्रव्य चिद्रूप सहज, पुद्गल अचेत जड़।
जीव अमूरत मूरतीक, पुद्गल अंतर बड़॥
जबलग न होय अनुभौ प्रगट, तबलग मिथ्यामति लसै।
करतार जीव जड़ करमको, सुबुधि विकाशत भ्रम नसै॥६॥

दोहा।

कर्ता परिणामी दरब, कर्मरूप परिणाम।
क्रिया पर्ययकी फिरन, वस्तु एक त्रय नाम॥ ७॥
कर्ता कर्म क्रिया करे, क्रिया कर्म करतार।
नाम भेद बहुविधि भयो, वस्तु एक निर्धार॥ ८॥
एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्ता दोय।
दुधा द्रव्य सत्ता सु तो, एक भाव क्यों होय॥ ९॥

कर्त्ता कर्म और क्रियाको विचार कहे हैं।

सवैया ३१ सा।

एक परिणामके न कर्त्ता दरवदोय, दोय परिणाम एक द्रव्य न धरत है। एक करतूति दोय द्रव्य कबहूँ न करे, दोय करतूति एक द्रव्य न करत है॥ जीव पुदगल एक खेत अवगाहि दोउ, अपने अपने रूप कोउ न टरत है। जड परिणामनि को करता है पुदगल, चिदानद चेतन सुभाव आचरत है॥ १०॥

यथा कर्म तथा कर्त्ता एकरूप कथन।

सवैया ३१ सा।

शुद्ध भाव चेतन अशुद्ध भाव चेतन, दुहूँको करतार जीव और नहि मानिये। कर्मपिंडको विलास वर्ण रस गध फास, करता दहूँको पुदगल परमानिये॥ तातें वर्णादि गुण ज्ञानावर्णादि कर्म, नाना परकार पुग्गलरूप जानिये। समल विमल परिणाम जे जे चेतनके, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये॥ १२॥

मिथ्यात्वी जीव कर्मको कर्त्ता माने है सो भ्रम है। सवैया ३१ सा।

जैसे महा धूपकेतपतिमें तिसाये मृग, भरमसें मिथ्याजल पीवनेकों धायो है। जैसे अधकार माहि जेवरी निरखि नर,

भ्रममों उरझि मरप मानि आयो है ॥ अपने स्वभाव जैसे सागर है थिर सदा, पवन सयोगसों उछरि अकुलायो है ॥ तैसे जीव जडसों अव्यापक सहजरूप, भरममों करमको कर्ता कहायो है ॥१४॥

स्वरूपकर्त्ती भेदज्ञानते कर्मके कर्ताका भ्रम दूर करे है ते ऊपर दृष्टांत।

जैसे राजहंसके वदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो छीर न्यारो नीर है। तैसे समकितीके सुदृष्टिमें सहजरूप न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारो ही शरीर है ॥ जब शुद्ध चेतनके अनुभौ अभ्यास तब, भासे आप अचल न दूजो और सीर है। पूरब करम उद आइके दिखाई देइ, कर्ता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

दोहा।

ज्ञानभाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान।
द्रव्य कर्म पुद्गल करे, यह निश्चै परमाण ॥१७॥
ज्ञान स्वरूपी आतमा, करे ज्ञान नहिं और।
द्रव्य कर्म चेतन करे, यह व्यवहारी दौर ॥१८॥

शिष्यप्रश्न–कर्तृत्व कथन। सवैया २३ सा।

पुद्गल कर्म करे नहिं जीव, कही तुम मैं समझी नहिं तेसी। कौन करे यह रूप कहो, अब को कर्ता करनी कहु

कमी ॥ आप ही आप मिलै बिछुर जड, क्योंकर मो मन मशय ऐसी । शिष्य सदेह निवारण कारण, बात कहै गुरु है कछु जैसी ॥ १९ ॥

दोहा ।

पुद्गल परिणामी दरब, सदा परणवे सोय ।
याते पुद्गल कर्मको, पुद्गल कर्ता होय ॥ २० ॥

पुन शिष्य प्रश्न —अडिल्ल छद ।

ज्ञानवतको भोग निर्जरा हेतु है । अज्ञानीको भोग बन्ध फल देतु है ॥ यह अचरजकी बात हिये नहि आवही । पूछे कोऊ शिष्य गुरु समझावही ॥ २१ ॥

शिष्यका सदेह निवारणेके लिये गुरु यथार्थ उत्तर कहे हैं । सवैया ३१ सा ।

दया दान पूजादिक विषय कषायादिक, दुहूँ कर्म भोगै पै दुहूको एक खेत है । ज्ञानी मूढ कर्म करत दीसे एकसे पै परिणाम, भेद न्यारो न्यारो फल देत है ॥ ज्ञानवन्त करनी करै पै उदासीन रूप, ममता न धरै ताते निर्जराको हेतु हैं । वह करतूति मूढ करै पै मगनरूप, अध भयो ममतामों बध फल लेत है ॥ २२ ॥

निश्चयसे आत्म ... मानि आत्मानुभवमें

रह ... कहे हैं। सवैया २३ सा।

... गाद, धरे न विषाद अलीक
... अंतर, सीतल भाव निरंतर
... विचारत, आकुलता मनकी
... आतम ध्यान, अखंडित ज्ञान

... और व्यवहारसे कर्तापणा

... है। सवैया ३८ सा।

... विलोकत बंधोसो दीसे, निहचे निहारत न ... यह किनही। एक पच्छ बंध्यो एक पक्षसो अबंध सदा, दोउ पच्छ अपने अनादि धरे इनही॥ कोउ कहै समल विमलरूप कोउ कहै, चिदानंद तैसो ही बखान्यो जैसे जिन ही। बंध्यो माने खुल्यो माने द्वै नयके भेद जाने, सोई ज्ञानवंत जीव तत्त्व पायो तिनही॥ २५॥

दोऊ नयकू जानकर समरस भावमें रहे है

ताकी प्रशंसा। सवैया ३८ सा।

प्रथम नियत नय दूजो व्यवहार नय, दुहूकों फलावत अनंत भेद फले है। ज्यों ज्यों नय फैले त्यों त्यों मनके

कल्लोल, फैने, चचल सुमार लोकालोकलों उछले है ॥ ऐसी नय कक्ष ताकी पक्ष तजि ज्ञानी जीव, समरसी भये एकतासों नहि टले है। महा 'मोह' नासे शुद्ध अनुभौ अभ्यासे निज, बल परमानि सुखरासि माहि रले है॥२६॥

ज्ञाता होय सो आत्मानुभवमें विचार करे है।

सवैया ३१ सा।

जैसे महा रत्नकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसे लीन होय जलमें। तैसे शुद्ध आतम दरब परजाय करि, उपजे विनसे थिर रहे निज थलमें॥ ऐसो अविकलपी अजलपी आनद रुपि, अनादि अनंत गहि लीने एक पलमें। ताको अनुभव कीजे परम पीयूष पीजे, बधकों विलाय डारि दीजे पुद्गलमें॥ २८॥

आत्माका शुद्ध अनुभव है सो परम पदार्थ है ताकी प्रशंसा। सवैया ३१ सा।

द्रव्यार्थिक नय परयायार्थिक नय दोउ, श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोक्ष है। शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट ताते, अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोष है॥ अनुभौ प्रमाण भगवान पुरुष पुराण, ज्ञान औ विज्ञानघन महा सुख पोख है। परम पवित्र यो अनंत नाम अनुभौके, अनुभौ विना न कहूँ और ठौर मोख है॥ २९॥

दोहा

ज्यों नहि मिथ्याभाव वहु, धरै मिथ्याती जीव।
ता भावित कर्मको, करता कह्यो सदीव॥३१॥

मिथ्यात्वी है सो कर्मको कर्त्ता है और
ज्ञानी अकर्त्ता है सो कहै है। चौपाई।

करम करै सोई करतारा। जो जानै सो जाननहारा॥
जो करता नहि जानै सोई। जानै सो करता नहि होई॥३३॥

मिथ्यात्वी है सो द्रव्यकर्मका कर्त्ता नहीं,
भावकर्मका कर्त्ता है। छप्पय छंद।

करम पिंड अरु राग भाव, मिलि एक होय नहि।
दोउ भिन्न स्वरूप बसहि दोउ न जीव महि॥
करम पिंड पुद्गल, भाव, रागादिक मूढ भ्रम।
अलख एक पुद्गल अनंत, किम धारहि प्रकृति सम॥
निज निज विलास जुत जगत महि, जथा सहज परिणमहि
तिम। करतार जीव जड करमको, मोह विकल जन कहहि
इम॥ ३४॥

॥ इति कर्ता कर्म क्रिया तृतीय द्वार समाप्त ॥

अथ पुण्य पाप एकत्व करण चतुर्थद्वार प्रारंभ॥४॥

मोहते शुभ अर अशुभ कर्मकी द्विधा दीसे है
सो एकरूप दिखावे है। सवैया ३१ सा।

जैसे काहू चंडाली जुगल पुत्र जने तिन, एक दीयो

ब्रामनकू एक घर राख्या है। बामन कहायो तिन मद्य मास त्याग कीनो, चांडाल कहायो तिन मद्यमास चाख्यो है॥ तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप एक पुन्य नाम भिन्न भाख्यो है। दुहू माहि दौर धूप दोऊ कर्म बंध रूप, याते ज्ञानवंत कोउ नाहि अभिलाख्यो है ॥३॥

मोक्षमार्गमें पापपुण्यका त्याग कह्या तिस मोक्ष पद्धतिका स्वरूप कहे है। सवैया ३१ सा।

शील तप संयम विरति दान पूजादिक, अथवा असंयम कषाय विषै भोग है। कोउ शुभरूप कोउ अशुभ स्वरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है॥ ऐसी बंद पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरममें करम त्याग जोग है। सौ जल तरैया रागद्वेषके हरैया महा मोक्षके करैया एक शुद्ध उपयोग है॥ ७॥

मोक्ष प्राप्तिका कारण अंतर दृष्टि है सो कहे है।

सोरठा।

अंतर दृष्टि लखाव, अर स्वरूपको आचरण,
ए परमातम भाव, शिव कारण येई सदा ॥ ९॥
बंध होनेका कारण बाह्यदृष्टि है सो कहे है।

सोरठा।

कर्म शुभाशुभ दोय, पुद्गलपिंड विभाव मल।
इनसों मुक्ति न होय, नाहि केवल पाइये ॥ ११ ॥

ज्ञान मात्र मोक्षमार्ग है सो कहे हैं।

सवैया ३१ सा।

मुद्धतिके गावरा बाधक करम सब, आतमा अनादि को करम माहि लुक्यो है। येतपरि कहे जो कि पाप बुरा पुन्य भलो, सोइ महा मूढ़ मोक्ष मारगसों चुक्यो ॥ सम्यक् स्वभाव लिये हियेमें प्रगटयो ज्ञान, ऊरध उमगि चल्यो काहूप न रुक्यो है। आरसीसो उज्जल बनारसी कहत आप, कारण स्वरूप ह्वैके कारिजको ढुक्यो है ॥ १२ ॥

ज्ञान का अर कर्मका ब्यौरा कहे हैं।

सवैया ३१ सा।

जोलों अष्ट कर्मको विनाश नाहि सरवथा, तोलों अंतरातमाम धारा दोइ वरनी। एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी। इतनो विशेष जु करम धारा बंध रूप, पराधीन शकति विविध बंध करनी। ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षकी करन हार, दोषकी हरनहार भौ समुद्र तरनी ॥ १४ ॥

मोक्ष प्राप्ति ज्ञान अर क्रियाते होय ऐसा जो स्याद्वाद है तिनकी प्रशंसा करे है। सवैया ३१ सा।

समुझे न ज्ञान कहे करम कियेसों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें। ज्ञान पक्ष गहे कहे आतमा

अवध मदा, वरते सुद्ध तेउ इने है चहलमें ॥ जथा योग्य करम करे पै ममता न धरै, रहे सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें । तेई भव सागरके उपर ह्वै तरे जीव, जिन्ह को निवास स्यादवादके महलमें ॥ १५ ॥

❀ पुण्यपाप एकत्वकरण चतुर्थद्वार समाप्त भया ❀

अथ पचम आश्रवद्वार प्रारंभ ॥ ५ ॥

द्रव्य आस्रवका और भाव आस्रवका तथा सम्यक्ज्ञानका लक्षण कहे है । सवैया २३ सा ।

दर्वित आस्रव सो कहिये जिहिं पुद्गल जीव प्रदेश गरासे । भावित आस्रव सो कहिये जिहि, राग विमोह विरोध विकासे ॥ सम्यक् पद्धति सो कहिये जिहिं, दर्वित भावित आश्रव नासे । ज्ञानकला प्रगटे तिहि थानक, अंतर बाहिर और न भासे ॥३॥

ज्ञाता निराश्रवी है सो कहे है । चौपाई ।

जो द्रव्याश्रव रूप न होई । जहँ भावाश्रव भाव न कोई ॥ जाकी दशा ज्ञानमय लहिये । सो ज्ञाताग निराश्रव कहिये ॥४॥

ज्ञानाका सामर्थ्य (निराश्रवपणा) कहे है ।

सवैया ३१ सा ।

जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिणामनकी ममता हरतु है । मनसो अगोचर अबुद्धि पूरवक भाव,

तिनके विनाशनको ~ रतु हैं ॥ याही भाँति पर पर णतिको पतन करै ~ पातन करै भौ जल तरतु हैं। ऐसे ज्ञानवंत ते ~ रहावे सदा, जिन्हको सुगम सुगुनाचरण करतु हैं।

दोहा।

जो हित भावसु राग है, अनहित भाव विरोध।
भ्रामक भाव विमोह है, निर्मल भावसु बोध ॥ ८ ॥
राग विरोध विमोह मल, येइ आश्रव मूल।
येइ कर्म बढ़ाइके, करें धरमकी भूल ॥ ९ ॥
जहाँ न रागादिक दशा, सो सम्यक् परिणाम।
यातें सम्यक्वंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥ १० ॥

ज्ञाता निराश्रवपणामें विलास करे है सो कहे है।

सवैया ३१ सा।

जे कोइ निकट भव्यरासी जगवासी जीव, मिथ्यामत भेदि ज्ञान भाव परिणये हैं। जिन्हके सुदृष्टिमें न राग द्वेष मोह कहूँ, विमल विलोकनिमें तीनों जीति लये हैं॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलि गये हैं। तेइ बंध पद्धति विडारि पर संग डारि, आप में मगन ह्वै के आप रूप भये हैं ॥ ११ ॥

ज्ञानाके चयोपशम भावते तथा उपशम भावते चचलपणा है सो कहे है।

जेते जीव पडित चयोपशमी उपशमी, इनकी अवस्था ज्यों लुहारकी सडासी है। छिन आगि माहि छिन पानी माहि तसे येउ, छिनमें मिथ्यात छिन ज्ञानकला भामी है॥ जोंलों ज्ञान रहे तोलों सिथल चरण मोह, जसे कीले नागकी शकति गति नामी है। आवत मिथ्यात तब नाना रूप बर करे, जेउ कीले नागकी शकति परगासी है॥१२॥

दोहा।

यह निचोर या ग्रथको, यहे परम रस पोख।
तजे शुद्धनय बध है, गहे शुद्धनय मोख॥ १३॥

जीवके बाह्यविलास अतरविलास बतावे है।

सवैया ३१ सा।

करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, है रह्यो बाहिर मुख व्यापत विषमता। अतर सुमति आई विमल बड़ाई पाई, पुद्गलसों प्रीति टूटी छूटी माया ममता॥ शुद्धन निवास कीनो अनुभौ अभ्यास लीनो, भ्रमभाव छाड़ि दीनो भीनो चित्त समता। अनादि अनत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलबि अवलोके राम रमता॥ १४॥

आत्माका शुद्धपणा सम्यग्दर्शन है तिसकी प्रशसा करे है । सवैया ३१ सा ।

जाके परकाशमें न दीसे राग द्वेष मोह, आस्रव मिटत नहि बधको तरस है । तिहुँ काल जामें प्रतिबिंबित अनतरूप, आपहु अनत सत्ताऽनतत सरस है ॥ भावश्रुत ज्ञान परिणाम जो विचारि वस्तु, अनुभौ करै न जहाँ वाणीको परस है । अतुल अखड अविचल अविनासी धाम, चिदानद नाम ऐसो सम्यग दरस है ॥१४॥

❀ इति पचम आश्रवद्वार समाप्त भया ❀

अथ छट्ठो सवरद्वार प्रारभ ॥ ६ ॥

ज्ञानसे जड़ और चेतनका भेद समझे तथा सवर है तिस ज्ञानकी महिमा कहे है।

सवैया २३ सा ।

शुद्ध सुछद अभेद अबाधित भेद विज्ञान सु तीछन आरा। अतर भेद स्वभाव विभाग, करे जड़ चेतनरूप दुफारा॥ सो जिन्हके उरमें उपज्यो, ना रुचे तिन्हको परसग सहारा। आतमको अनुभौ करिते, हरखे परखे परमातम प्यारा॥३॥

सवरका कारण सम्यक्त्व है तातें सम्यकदृष्टिकी महिमा कहे है । सवैया २३ सा ।

भेदि मिथ्यात्व सु वेदि महारस, भेद विज्ञानकला जिनि

पाई। जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करे उरसों जु पराई॥ उद्धत रीत बसे तिनके घट, होत निरंतर ज्योति सवाई। ते मतिमान सुवर्ण समान, लगे तिनको न शुभाशुभ काइ ॥ ५ ॥

दोहा।

भेदज्ञान तबलौं भलो, जबलौं मुक्ति न होय।
परम ज्योति परगट जहाँ, तहाँ विकल्प न कोय ॥७॥

मुक्तीको उपाय भेद ज्ञान है उसकी महिमा कहे है।

चौपाइ।

भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो। सो चेतन शिवरूप कहायो।
भेदज्ञान जिन्हके घट नाही। ते जड़ जीव बंध जग माही॥८

दोहा।

भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर।
धोबी अंतर आतमा, धोवे निजगुण चीर ॥९॥

भेदज्ञानकी जो क्रिया है सो दृष्टांतते कहे है।

सवैया ३१ सा।

जैसे रज सोधा रज सोधिके दरब काढ़े, पावक कनक काढ़े दाहत उपलको। पङ्कके गरभमें ज्यों डारिये कतक फल, नीर करे उज्जल नितारि डाले मलको॥ दधिके मथैया मथि

चौपाई।

जो बिन ज्ञान क्रिया अवगाहै। जो बिन क्रिया मोक्षपद चाहै॥
जो बिन मोक्ष कहै मैं सुखिया। सो अजान मूढ़नमें मुखिया॥१०॥

दोहा।

जगि विधि जे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव।
जे सोवहिं संसारमें, ते जगवासी जीव॥ १५॥
जो पद भौपद भय हरै, सो पद सेउ अनूप।
जिहि पद परसत और पद, लगैं आपदा रूप॥ १६॥

ज्ञान विना मोक्ष प्राप्ति नहीं सो कहे हैं।

सवैया, ३१ सा।

कोई क्रूर कष्ट सहै तपसों शरीर दहै, धूम्रपान करै अधोमुख ह्वैके झूले हैं। कई महाव्रत गहै क्रियामें मगन रहै, वहै मुनिभार पै पयार कैसे पूले हैं॥ इत्यादिक जीव तिनको सर्वथा मुकति नाहिं, फिरैं जगमाहिं ज्यों बयारके बघूले हैं। जिन्हके हियमें ज्ञान तिन्हहीको निरवाण, करमके करतार भरममें भूले हैं॥ २०॥

दोहा।

लीन भयो व्यवहारमें, उक्ति न उपजै कोय।
दीन भयो प्रभुपद जपे, मुक्ति कहाँतैं होय॥ २१॥

प्रभु सुमरो पूजो पढ़ो, करो विविध व्यवहार।
मोक्ष स्वरूपी आतमा, ज्ञान गम्य निरधार ॥ २२ ॥

सवैया ३१ सा।

ज्ञान उदै जिन्हके घट अंतर, ज्योति जगी मति होत न मैली। बाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यान कला विधि फैली॥ जे जड़ चेतन भिन्न लखेसो, विवेक लिये परखे गुण थैली। ते जगमें परमारथ जानि, गहे रुचि मानि अध्यातम सैली ॥ २४ ॥

दोहा।

बहुविधि क्रिया कलेशसों, शिवपद लहे न कोय।
ज्ञानकला परकाशतें, सहज मोक्षपद होय ॥ ७५ ॥
ज्ञानकला घटघट वसे, योग युक्तिके पार।
निजनिज कला उदोतकरि, मुक्त होइ संसार ॥ २६ ॥

अनुभवी ज्ञानीका सामर्थ्य कहे हैं।

सवैया ३१ सा।

जिन्हके हियेमें सत्य सूरज उद्योत भयो, फैली मति किरण मिथ्याततम नष्ट है। जिन्हके सुदृष्टिमें न परचे विषमतासों समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्ट है॥ जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपथ सधे साधन निरोध जाके तनको

न . ै। जिन्हके घतभरी किलोल यह है ममायी, डोले
ऽ ऽ ऽ जाने न मिष्ट है ॥ २८ ॥

चौपाई ।

ऽ अ ऽ जुज। ज्ञान मगन ममता न ग्रयुजै ॥
ऽ गीतासहिये। यों बुध परिग्रहवत न कहिये ॥३१

ज्ञानीका अवाछक गुण दिखावे है।

सवैया ३१ सा।

ज जे मनवाछित विलास भोग जगतमें, ते ते विनासीक सब राखे न रहत हैं। और जे जे भोग अभिलाष चित्त परिणाम ते ते विनासीक धारारूप ह्वै वहत हैं॥ एकता न दुहा माहि ताते वाछा फुरे नाहि, ऐसे भ्रम कारिजको मूरख चहत है। सतत रह सचेत परसो न करें हत, याते ज्ञानवतको अवछक कहत है ॥ ३२ ॥

सवैया ३१ सा।

जैसे फिटकरीलोद हरडेकी पुट विना, श्वेत वस्त्र डारिये मजीठरग नीरमें। भीग्या रहे चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, भेदे नहि अतर सुपेदी रह चीरमें॥ तैसे समकितवत राग द्वेष मोह विन, रह निशि वासर परिग्रहकी भीरमें। पूरव करम हरे नूतन न बध करे, जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें ॥३३॥

दोहा।

ज्ञानी ज्ञान मगन रहै, रागादिक मल खोय।
चित उदास करणी करे, कर्मबंध नहि होय ॥ ३५ ॥
मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परकास।
मुक्ति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास ॥३६॥

ज्ञानरूप दीपकका स्वरूप कहे है।

सवैया ३१ सा।

जामें धूमको न लेश वातको न परवेश, करम पतंगनि को नाश करे पलमें। दशाको न भोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अंधकारको वियोग जाके थलमें ॥ जामें न तताई नहि राग रकताई रंच, लहलहे समता समाधि जोग जलमें। ऐसे ज्ञानदीपकी सिखा जगी अभंग रूप, निराधार फुरि पै दूरी है पुदगलमें ॥३७॥

सद्गुरु मोक्षका उपदेश करे है।

सवैया ३१ सा।

जोलों ज्ञानको उद्योत तोलों नहिं बंध होत, वरते मिथ्यात्व तब नाना बंध होहि है। ऐसो भेद सुनके लग्यो तू विषय भोगनसूं जोगिनीसूं उद्यमकी रीति तें विछोहि है ॥ सुन तू कहे में समकितवंत, यह तो ...

[illegible] है। विषम निछुन होहि अनुभौ दशा हरोहि मोह
[illegible] नाहि धर्मी मति मोही है ॥३९॥

चौपाई।

[illegible] निजमें दृढ जागी, ते जगमांहि सहज वैरागी।
[illegible] विषसुख माहा, यह विपरीति सभवे नाहीं ॥४०॥

दोहा।

[illegible] शक्ति वैराग्य बल, शिव माधै समकाल।
ज्यों लोचन न्यारे रहे, निरखें दोऊ ताल ॥४१॥

चौपाई।

मूढ कर्मको कर्ता होवे। फल अभिलाष धरे फल जोवे।
ज्ञानी क्रिया करे फल सूनी। लगे न लेप निर्जरा दूनी ॥४२॥

दोहा।

बधे कर्मसों मूढ ज्यों, पाट कीट तन पेम।
खुले कर्मसों समकिती, गोरख धंदा जेम ॥४३॥

ज्ञानी है सो कर्मका कर्त्ता नहीं है सो कहे है।

सवैया २३ सा।

जे निज पूरब कर्म उदै सुख, भुंजत भोग उदास रहेंगे।
जे दुखमें न विलाप करें, निरवैर हिये तन ताप सहेंगे ॥

है जिनके दृढ आतम ज्ञान, क्रिया करिके फलको न चहैं।
ते सु विचक्षण ज्ञायक है, तिनको करता हमतो न कहैं ॥५३॥

ज्ञानीका आचार विचार कहे हैं। सवैया ३१ सा।

जिन्हके सुदृष्टीमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिन्हके आचार सु विचार शुभ ध्यान है। स्वारथको त्यागि जे लगे हैं परमारथको, जिन्हके वनिजमें नफा है न ज्यान है॥ जिन्हके समझमें शरीर ऐसो मानियत, धानकोसो छीलक कृपाणकोसो म्यान है। पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके, तेई साधु तिनहीको यथारथ ज्ञान है॥ ५४ ॥

सम्यक्तके अष्ट अंगका स्वरूप कहे हैं।

सवैया ३१ सा।

धर्ममें न संशे शुभ कर्म फलकी न इच्छा, अशुभको देखि न गिलानि आने चित्त में। सांची दृष्टि राखे काहू प्राणीको न दोष भाखे, चंचलता भानि थिति ठाणे बोध चित्तमें॥ प्यार निज रूपसों उछावकी तरंग उठे, एई आठो अंग जब जागे समकितमें। ताहि समकितको धरेसो समकितवंत, वहि मोक्ष पावे वो न आवे फिर इतमें। ५५॥

ज्ञानचेतना और कर्मचेतनाका वर्णन।

सवैया ३१ सा।

जहाँ परमातमकलाको परकाश तहाँ, धरम

सत्य ... रूप है। जहाँ शुभ अशुभ करमको गढास ... महाअंधेर रूप है॥ फेली फिर ... बीच, चेतनकी चेतना दुहूँधा ... न गही जाय बेनमें न कही जाय, ... पानीमें गुप्त है॥ ३॥

... कारण रागादिक अशुद्ध उपयोग है।

सवैया ३१ सा।

कर्मजाल वर्गणासों जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों। चेतन अचेतनकी हिंसासों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंच विषै विष रोगसों॥ कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसों अबंध जिन, हिंसासों अबंध साधु ज्ञाता विषै भोगसों। इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बँध एक रागादि अशुद्ध उपयोगसों॥ ४॥

कर्मबंधका कारण अशुद्ध उपयोग है।

सवैया ३१ सा।

कर्मजाल वर्गणाको वास लोकाकाश माहिं, मन वच कायको निवास गति आयुमें। चेतन अचेतनकी हिंसा बसे पुद्गलमें, विषै भोग वरते उदैके उरझायमें॥ रागादिक शुद्धता है अलखकी, यहै उपादान हेतु बंधके बढावमें।

याहीते निचक्षण अबध कह्यो तिहूँकाल, राग द्वेष मोह नाहि सम्यक् स्वभावमें ॥ ५ ॥

सवैया ३१ सा।

कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे है, तथापि ज्ञाता उद्यमी बखान्यो जिन वैनमें। ज्ञानदृष्टि देत विषै भोगनिसों हेत दोऊ, क्रिया एक खेत यौंतो बने नाहि जैनमें ॥ उदै बल उद्यम गहै पै फलको न चहै, निरदै दशा न होइ हिरदेके नैनमें। आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यात माहि जहाँ न सँभारै जीव मोह नींद सैनमें ॥ ६ ॥

आलसीका अर उद्यमीका स्वरूप कहे हैं।

चौपाई।

जो जिय मोह नींदमे सोवे। ते आलसी निरुद्यमी होवे ॥
दृष्टि खोलि जे जगे प्रवीना। तिनि आलस तजि उद्यम कीना ॥९

दोहा

बंध बढ़ावे अंध है, ते आलसी अजान।
मुक्त हेतु करणी करे, ते नर उद्यमवान ॥ ११ ॥

जबलग ज्ञान है तबलग वैराग्य है।

सवैया ३१ सा।

जबलग जीव शुद्ध वस्तुकों विचारे ध्यावे, तबलग भोगसों उदासी सरवंग है। भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन

[illegible] अभिलाषकी दशा मिथ्यात अग है ॥ तातें [illegible] तातें भगवानसों मिथ्यात्वी जीव, भोगमें उदासिसो [illegible] अभग है। ऐसे जानि भोगमा उदासि है सुगति [illegible] वन नाग तो कठौती मांहि गग है ॥ १२ ॥

अब बाह्यदृष्टीके अहबुद्धिका वर्णन करे हैं।

चौपाई।

[illegible] मैं कीन्हीं कैसी। अब यों करो कहै जो ऐसी। ए विपरीत भाव है जामें। सो वरते मिथ्यात्व दशामें ॥२४॥

दोहा।

अहबुद्धि मिथ्यादशा, धरे सो मिथ्यावत।
विकल भयो ससारमें, करे विलाप अनत ॥२५॥

विषय मोहकी विकलता नहीं ते साधु है सो कहे हैं। छंद अडिल्ल।

सदा कर्मसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो।
मोह विकलता मानि, मिथ्यात्वी हो रह्यो ॥
करे विकल्प अनत, अहमति धारिके।
सो मुनि जो थिर होइ, ममत्व निवारिके ॥ ३१ ॥

सम्यक्त्वी आतमस्वरूपमें कैसे स्थिर होय है।

सवैया ३१ सा।

असख्यात लोक परमान जे मिथ्यात भाव, तेई व्यव-

हार भाव करली उकत है। जिन्हके मिथ्यात्व गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन व्यवहारमों मुकत हैं ॥ निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि साधि जे सुगुण मोक्ष पथको ढुकत हैं। तेइ जीव परम दशामें थिर रूप ह्वैके, धरममें धुके न करमसो रुकत हैं ॥ ३२ ॥

दोहा।

चेतन लक्षण आतमा, जड लक्षण तन जाल।
तनकी ममता त्यागिके, लीजे चेतन चाल ॥३६॥

आत्माकी शुद्ध चाल कहे हैं। सवैया २३ मा।

जो जगकी करणी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई। देह प्रमाण पै देहसु दूसरो, देह अचेतन चेतन सोई॥ देह धरे प्रभु देहसु भिन्न, रहे परछन्न लखे नहिं कोई। लक्षण वेदि विचक्षण बूझत, अक्षनसो परतक्ष न होई ॥३७॥

जे पिंड ते ब्रह्मांड ये बात साची है।

सवैया ३८ मा।

याहि नर पिंडमें विराजे त्रिभुवन थिति, याहीमें त्रिविधि परिणामरूप सृष्टि है। याहीमें करमकी उपाधि दुःख दावानल याहीमें समाधि सुख वारिदकी वृष्टि है॥ याहीमें करतार करतूति यामें विभूति, यामें भोग याहीमें वियोग याम वृष्टि है। याहीमें

निवास म गर्भित गुपतरूप, ताहिको प्रगट जाके अतर ... ॥ ४६ ॥

... स्वरूपकी झलक ज्ञानसे होय है ।

सवैया २३ सा ।

... कहै प्रभु कारण, कइ कहीं उठि जाहि कहींके ।
... धरे घडि मूरत, कइ पहार चढ़े चढ़ि छीके ॥
... कहै असमानके उपरि, केइ कहै प्रभु हठ जमींके ।
... नहि दूर दिशान्तर, मोहिम है मोहि सूझत नीके ॥४८

दोहा ।

कहै सुगुरु जो समकती, परम उदासी होय ।
सुथिर चित्त अनुभौ करै, यह पद परमें सोय ॥ ४९ ॥

आत्मानुभवमें कैसा विचार करना सो कहे हैं ।

सवैया ३१ सा ।

अलख अमूरति अरूपी अविनाशी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है । नानारूप भेष धरे भेषको न लेश धरे, चेतन प्रदेश धरे चैतन्यका खंध है ॥ मोह धरे मोहीसो विराजे तामें तोहीमें न मोहीमा तोहीमा नरागी निरबंध है। ऐसो चिदानंद याहि घटमें निकट तेरे, ताहि तू विचार मन और सब धंध है ॥ ५४ ॥

आत्मानुभव करनेकी विधिका क्रम कहै हैं।
सवैया ३१ सा।

प्रथम सुदृष्टिसों शरीररूप कीजे भिन्न, तामें और सूक्षम शरीर भिन्न मानिये। अष्ट कर्म भावकी उपाधि सोई कीजे भिन्न, तामें सुबुद्धिकों विलास भिन्न जानिये॥ तामें प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप, वह श्रुतज्ञानके प्रमाण ठीक आनिये। वाहिको विचार करि वाहीमें मगन हूजे, वाको पद साधिवेको ऐसी विधि ठानिये ॥५५॥

आत्मानुभवतें कर्मका बंध नहीं होय है।
चौपाई।

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने। रागादिक निजरूप न माने॥ तातें ज्ञानवंत जग माहीं। करम बंधको करता नाहीं॥५६॥

अनुभवी जो भेदज्ञानी है तिनकी क्रिया कहे हैं।
सवैया ३१ सा।

ज्ञानी भेदज्ञानसों विलछ पुद्गल कर्म, आतमीक धर्मसों निरालो करि मानतो। तांको मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेकों शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो॥ याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आप माहि आपनो स्वभाव गहि आनतो। साधि शिवचाल निरबंध होत तिहूंकाल, केवल विलोक पाई लोकालोक

॥ इति अष्टम बंधद्वार समाप्त ॥

अथ नवमो मोक्षद्वार प्रारंभ ॥

सवैया ३१ सा।

... आगम दुफारा करे ज्ञानी जीव, आ...
... भिन्न भिन्न नाचे । अनुभौ अभ्यास लहै प...
..., करम भरमको खजानो खोलि खरचे ॥ ये...
... पावे केवल निकट आवे, पूरण समाधि...
...भको परचे । भयो निरदोर याहि करनो न कछु औ...
...पो जिननाथ ताहि बनारसि अरचे ॥२॥ काहू एक ...
...गनवान है परम पनि, ऐसी बुद्धि छैनी घटमाहि डार दी...
है । पैठी नो करम भेदि दरव करम छेदि, स्वभाव विभावत...
सधि सोधि लीनी है ॥ तहाँ मध्यपाती होय, लखी ...
धारा दोय, एक सुधामई एक सुधारस भीनी है ॥ सुध...
विरचि सुधासिंधुमें मगन होय, येती सब क्रिया एक...
साँचि कीनी है ॥३॥

दोहा ।

जसी छैनी लोहकी, करे एकसों दोय ।
जड चेतनकी भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होय ॥४॥

सवैया ३१ सा ।

कोउ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें, लक्षण वि...
भिन्न करमको जाल है । जाने आप आपको जु आप...
आपहिमें उतपति नाश ...

विकलप मोंमो न्यारे सरवथा मेरे, निश्चय स्वभाव यह व्यवहार चाल है। मैं तो शुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारि, प्रभुता हमारि एकरूप तिहूँ काल है ॥९॥

दोहा।

चेतन लच्छन आतमा, आतम सत्ता माहि।
सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूँमें नाहि ॥११॥

छन्द अडिल्ल।

जाके चेतन भाव चिदातम सोइ है।
और भाव जो धरे सो औरें कोइ है॥
जो चिन मडित भाव उपादे जानने।
त्याग योग्य परभाव पराये मानने ॥१५॥

सवैया ३१ मा।

जिन्हके सुमति जागी भोगसों भये विरागी, परसंग त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमें। रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन ह्वै न रहे धाम धनमें॥ जे सदैव आपकों विचारे सरवाग शुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापे कछु मनमें। तेई मोक्ष मारगके साधक कहावे जीव, भावे रहो मंदिरमें भावे रहो वनमें ॥१६॥

सवैया २३ मा।

चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो।
राग विरोध विमोह दशा, समझे भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥

[illegible], अरलोकि कहै यह कर्म जु घेरो।
[illegible], सदा तिनकों परमारथ नेरो ॥१७

[illegible]

[illegible] सत्ता है आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य [illegible] लोक परमान एक सत्ता है [illegible] मत्ता अगणित हैं॥ पुद्गल शुद्ध परमाणुकी अनंत सत्ता, जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी [illegible] कोउ सत्ता काहूसों न मिले एकमेक होय सबै असहाय यों अनादिहीकी रीति है॥२१॥ एह छह द्रव्य इनहीं को है जगतजाल, तामें पांच जड एक चेतन सुजान है। काहूकी अनंत सत्ता काहूसों न मिले कोउ, एक एक सत्तामें अनंत गुण गाम है ॥ एक एक सत्तामें अनंत परजाय फिर, एकमें अनेक इहि भांति परमाण है। यहै स्यादवाद यह संतनकी मरयाद, यहै सुख पोष यह मोक्षको निदान है॥२२॥ साधि दधि मथनमें राधि रस पंथनमें, जहाँ तहाँ ग्रंथनमें सत्ताही को सोर है। ज्ञान भानु सत्तामें सुधा निधान सत्ताहीमें, सत्ताकी दुरनि साझ सत्ता मुख भोर है॥ सत्ताको स्वरूप मोख सत्ता भूल यहै दोष, सत्ताके उलंघे धूमधाम चहुँ ओर है। सत्ताकी समाधिमें विराजि रहै सोइ साहु, सत्ताते निकसि और गहै सोई चोर है॥२३॥ जामें लोक वेदनांहि थापना उछेद नाहि, पाप

पुण्य खेद नाहि क्रिया नाहि करनी । जामें रागद्वेष नाहि जामें बंध मोक्ष नाहि, जामें प्रभु दास न आकाश नाहि धरनी ॥ जामें कुल रीति नाहि जामें हार जीत नाहि, जामें गुरु शिष्य नाहि विष्य नाहि भरनी । आश्रम वरण नाहि काहुका मरण नाहि ऐसा शुद्ध सत्तारी समाधि भूमि वरनी ॥ २४ ॥

दोहा ।

शुद्धातम अनुभव जहाँ, शुभाचार तिहि नाहि ।
करम करम मारग विषै, शिव मारग शिव माहि ॥३५

सवैया ३१ सा ।

ज्ञानावरणीके गये जानिये जु है सु सब, दर्शनावरणके गयेते सब देखिये । वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित्र विशेखिये ॥ आयुकर्म गये अवगाहन अटल होय, नामकर्म गयेते अमूरतीक परिखिये । अगुरु अलघु रूप होय गोत्र कर्म गये, अतराय गयेते अनंत बल लेखिये ॥५३॥

❀ इति नवमा मोक्षद्वार समाप्त भया ❀

अथ दशमो सर्वविशुद्धि द्वार प्रारंभ ॥१०॥

चौपाई ।

जीव करम करता नहिं ऐसे । रस भोक्ता स्वभाव नहिं तैसे ॥
मिथ्यामतिमों कर्ता होई । गये अज्ञान अकरता सोई ॥१॥

। ३९ मा ।

तिदे । भाव जाहि आतमाको, आतमीक परम । अतीत अनागत वरतमान काल जाको । तागतेक भामना ॥ सोइ जीव समाव अ । । करतामो दीसे लिये भरम उपा । । यहा समाव यहे मिथ्याचार, यहै मो ि यह भामना ॥ ४ ॥

चौपाई ।

यथा जाव त्या न कहावे। तथा भोगता नाम न पावे ॥
है मागी मिथ्यामति माही। गये मिथ्यातन भोगता नाहीं ॥४॥

दोहा ।

निभिलाप करणी करै, भोग अरुचि घट माहि ।
तातै साधक सिद्ध सम, कर्ता भुक्ता नांहि ॥ ८ ॥

चौपाई ।

चेतन अरु जीव लखि लीना । पुदगल कर्म अचेतन चीना ॥
यामी एक खेतके दोऊ । जदपि तथापि मिले नहि कोउ ॥१०

दोहा ।

निज निज भाव क्रिया सहित, व्यापक व्याप्य न कोय ।
कर्ता पुदगल कर्मको, जीव कहासों होय ॥ ११ ॥

सवैया ३१ सा।

जीव अर पुद्गल करम रह एक खेत, यद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है। लक्षण स्वरूप गुण परजे प्रकृति भेद, दुहूमें अनादि हीकी दुविधा ह्वै रही है॥ एते पर भिन्नता न भासे जीव करमकी, जोलों मिथ्या भाव तोला योंधी वायू वही है। ज्ञानके उद्योत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई जीव कम पिंडको अकरता सही है॥ १२॥

दोहा।

एक वस्तु जसे जु है, वामों मिले न आन।
जीव अकर्ता कर्मको, यह अनुभौ परमान॥ १३॥

चौपाई।

जो दुरमति विकल अज्ञानी। जिन्ह स्वरीत पररीत न जानी॥
माया मगन भरमके भरता। ते जिय भाव करमके करता॥१४॥

दोहा।

जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखे न जीव अजीव।
तेई भावित कर्मको, कर्ता होय सदीव॥ १५॥

दोहा।

क्रिया एक कर्ता जुगल, यों न जिनागम मांहि।
अथवा करणी औरकी, और करे यो नाहि॥२०॥

कर और फल भोगवे, और करे नहि एम।
जो करता सो भोगता, यहै यथावत जेम ॥२३॥
भाव करम करतव्यता, स्वयं सिद्ध नहि होय।
जो जग की करनी करै, जगवासी जिय सोय ॥२४॥

सवैया ३१ सा।

कोई मूढ़ विकल एकांत पक्ष गहे कहे, आतमा अकरतार पूरण परम है। तिनसों जु कोउ कहे जीव करता है तासे, फेरि कहे करमको करता करम है॥ ऐसे मिथ्या मगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव जिन्हके हिये अनादि मोहको भरम है। तिनको मिथ्यात्व दूर करवेको कहे गुरु, स्यादवाद परमाण आतम धरम है॥ २५॥

दोहा।

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान।
नहिं करता नहि भोगता निश्चै सम्यग्ज्ञान ॥२६॥

सवैया ३१ सा।

जैसे सांख्यमति कहे अलख अकरता है, सर्वथा प्रकार करता न होइ कबही। तैसे जिनमति गुरुमुख एक पक्ष सुनि, याहि भाँति माने सो एकांत तजो अबही॥ जोलौं दुरमति तोलौं करमको करता है, सुमती सदा अकरतार

थयो मवही। जाके घट आपक ...नाद चयो जवहीसे.
सा तो जगजालसे निगसो भयो तवहा ॥ ७७ ॥

सवैया ३१ सा।

जैसे काहू चतुर सवारी है मुक्त माल, मालाकी
क्रियामें नाना भांतिको विज्ञान है। क्रियाको विकल्प न
रखे पहिरन वारो मोतिनकी शोभामें मगन सुखवान है॥
तम न करे न सु न अथवा कर सो सु जे, और करे और
सु न सब नय प्रमान है। यद्यपि तथापि विकलपविधि त्याग
निरविकलप अनुभौ अमृत पान है॥ ४७॥

दोहा।

द्रव्यकर्म कर्ता अलख, यह, ववहार कहावे।
निश्चै जो जैसा दरव, तैसो ताको भाव॥ ४८॥

सवैया ३१ सा।

ज्ञानको सहज ज्ञेयाकाररूप परिणमे, यद्यपि तथापि
ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है। ज्ञेय ज्ञेयरूपसों अनादिही मर
याद, काहू वस्तु काहूको स्वभाव नहि गह्यो है॥ तेपरि
कोउ मिथ्यामति कहे ज्ञेयाकार, प्रतिभासतिसों ज्ञ अशुद्ध
है रह्यो है। याही दुरबुद्धिसों विकल भयो डोलत है, सम
झे न धरम यों भर्म मांहि बह्यो है॥ ४९॥

चौपाई।

। जामें सत होइ। वस्तु वस्तुमों मिले न कोई॥
नि जग नेती। सोऊ भिन्न रह मरसेती॥५०॥

दोहा।

न कर फल भोगवे, जीव अज्ञानी कोइ।
यह कथनी व्यवहारकी, वस्तु स्वरूप न होइ॥५१॥

छप्पै।

ज्ञयाकार ज्ञानकी परणति, पै वह ज्ञान ज्ञेय नहि होय।
ज्ञेयरूप षट द्रव्य भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पद सोय॥
जाने भेद भाव सुविचक्षण, गुण लक्षण सम्यक्दृग जोय।
मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहि कोय॥५२॥

दोहा।

शुद्ध द्रव्य अनुभौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमाहि।
ताते सम्यक्वंत नर, सहज उछेदक नाहि॥ ५३॥

सवैया ३१ सा।

जैसे चंद्र किरण प्रगटि भूमि स्वेत करे, भूमिसी न होत सदा ज्योतिसी रहति है। तैसे ज्ञान शकति प्रकाशे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पै न ज्ञेयको गहति है॥ शुद्ध वस्तु शुद्ध परयायरूप परिणमे, सत्ता परमाण माहि ढाहे न ढहति है। सो तो और रूप कबहू न होय सरवथा,

निश्चय अनादि जिनवाणी यों कहति है ॥ ५७ ॥ कोउ शिष्य कहै स्वामी राग द्वेष परिणाम, ताको मूल प्रेरक कहहुँ तुम कौन है। पुद्गल करम जोग किधो इंद्रिनिके भोग, किंधो धन कींधो परिजन कीधो भौन है ॥ गुरु कहे छहों द्रव्य अपने अपने रूप, सबनिको सदा असहाई परिणाम है। कोउ द्रव्य काहूको न प्रेरक कदाचि ताते, राग द्वेष मोह मृषा मदिरा अचान है ॥ ६० ॥

दोहा।

कोउ मूरख यों कहे राग द्वेष परिणाम।
पुद्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ ६१ ॥
ज्यों ज्यों पुद्गल बल करे, धरि धरि कर्म जु भेष।
राग द्वेषको परिणमन, त्यों त्यों होय विशेष ॥ ६२ ॥
यह विधि जो विपरीत पख, गहे सद्दहे कोय।
सो नर राग विरोधसों, कबहूँ भिन्न न होय ॥ ६३ ॥
सुगुरु कहे जगमें रहे, पुद्गल सग सदीव।
सहज शुद्ध परिणामको, औसर लहे न जीव ॥ ६४ ॥
तातें चिद्भावन विषें, समरथ चेतन राव।
राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यकमें शिवभाव ॥ ६५ ॥
ज्यों दीपक रजनी समें, चहुँ दिशि करे उदोत।
प्रगटै घटघट रूपमें, घटघट रूप न होत ॥ ६६ ॥

ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म ।
परिग्रहसे पै, तजे न आतम धर्म ॥ ६७ ॥
अविचल सदा, गहे विकार न कोय ।
विमोह भय, कबहूँ भूलि न होय ॥ ६८ ॥
महिमा ज्ञानकी निश्चय है घटमाहि ।
मिथ्यादृष्टिसों, गहन विलोके नाहि ॥ ६९ ॥
स्वभावमें मगन रह, ठाने राग विरोध ।
धर परिग्रह धारना, करे न आतम शोध ॥ ७० ॥

सवैया ३१ सा ।

जहाँ शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योत दीसे तहाँ, शुद्धता प्रमाण शुद्ध चारित्रको अंश है । ता कारण ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग्य विलास धर्म वाको सरवस है ॥ राग द्वेष मोहकी दशासों भिन्न रहे याते, सर्वथा त्रिकाल कर्म जालसों विध्वंस है । निरुपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरण परम हंस है ॥८१॥

दोहा ।

ज्ञायक भाव जहाँ तहाँ, शुद्ध चरणकी चाल ।
ताते ज्ञान विराग मिलि, शिव साधे समकाल ॥८२॥
यथा अंधके कंध परि, चढे पंगु नर कोय ।
याके दृग वाके चरण, होय पथिक मिलि दोय ॥८३॥

जहाँ ज्ञान कि   नन तहाँ मोक्ष मग मोय।
यह जाने प   प, यह पदमें थिर होय ॥८४॥

ज्ञान आवर   ाना, कर्म जीवकू भूल।
ज्ञान मोक्ष   है, कर्म जगतको मूल ॥८५॥

ज्ञान चेतना   नगे, प्रगट केवल राम।
कर्म चेतनाम   नस, कर्म बंध परिणाम ॥८६॥

चौपाई।

मृषा मोहका परणति फैली। ताते करम चेतना मैली॥
ज्ञान होत हम समझ्या येती। जीव सदीव मिल परसेती ॥९७॥

दोहा।

जीव अनादि स्वरूप मम, कर्म रहित निरुपाधि।
अविनाशी अशरण सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥९८॥

चौपाई।

म त्रिकाल करणीसों न्यारा। चिद्विलास प० जगत उज्यारा॥ राग विरोध मोह मम नांही। मेरो अवलंबन मुझमांही ॥९९॥

सवैया ३ सा।

सम्यक्वंत कहे अपन गुण, मैं निज राग विरोधसा तो। है करतूति कर्म निर्वञ्छ मो ये निप रस लागत तीतो॥ शुद्ध स्वचेतनको अनुभौ करि, मैं नग मोह महा म

सो पीच समीप भयो अर सो कहु, काल अनंत इही
... ... ॥१००॥

दोहा।

ं दिचलण में रहैं, सदा ज्ञान रस राचि।
शुद्धातम अनुभूतिसों, खलित न होहु कदाचि॥१०१॥
पूर्वकर्म विषतरु भये, उदै भोग फलफूल।
मैं इनको नहिं भोगता, सहज होहु निर्मूल॥१०२॥
जो पूर्वकृत कर्मफल, रुचिसे भुंजे नाहिं।
मगन रहै आठों पहर, शुद्धातम पद माहिं॥१०३॥
सो बुध कर्मदशा रहित पावै मोक्ष तुरंत।
भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत॥१०४॥

सवैया ३१ सा।

जबहीते चेतन विभावसों उलटि आप, समै पाय अपनो स्वभाव गहि लीनो है। तबहीतें जो जो लेने योग्य सो सो सब लीनो, जो जो त्यागि योग्य सो सो सब छाडि दीनो है॥ लेवेको न रही ठौर त्यागवेकौं नाहिं और, बाकी कहाँ उबरयो जु कारज नवीनो है। संग त्यागि अंग त्यागि, वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनो है॥१०५॥

दोहा।

शुद्ध ज्ञानके देह नहि, मुद्रा भेष न कोय।
तातें कारण मोक्षको, द्रव्यलिंग नहि होय ॥१०९॥
द्रव्यलिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान।
अष्ट महारिद्धि अष्ट सिद्धि, एहूँ होइ न ज्ञान ॥११०॥
दर्शनज्ञान चरण दशा, करै एक जो कोइ।
थिर ह्वै साधे मोक्षमग, सुधी अनुभवी सोइ ॥१११॥

सवैया ३१ सा।

कोइ दृग ज्ञान चरणातममें बैठि ठौर, भयो निरदोष परवस्तुको न परसै। शुद्धता विचारै ध्यावै शुद्धतासे केलि करै, शुद्धतामें थिर ह्वै अमृतधारा बरसै॥ त्यागि तन कष्ट ह्वै सपष्ट अष्ट करमको, करि थान भ्रष्ट नष्ट करै और करसै। सोई विकलप विजई अलप काल माहि, त्यागि भौ विधान निरवाण पद दरसै ॥११२॥

चौपाई।

जैसे मुगध धान पहिचानै। तुष तंदुलको भेद न जानै।
तैसे मूढमती व्यवहारी। लखै न बंध मोक्ष विधि न्यारी ॥११९॥

दोहा।

जे व्यवहारी मूढ नर, पर्यय बुद्धी जीव।
तिनके बाह्य क्रियाहिको, है अवलंब सदीव ॥१२०॥

[illegible] मगीर [illegible] अब सो वह, काल अनंत इही [illegible] ॥१० ॥

दोहा।

[illegible] मैं रहै, सदा ज्ञान रस राचि।
[illegible] अनुभूतिसों, खलित न होइ कदाचि॥१०१॥
[illegible]कर्म विपरत भये, उदै भोग फलफूल।
[illegible] नहिं भोगता, सहज होइ निर्मूल॥१०२॥
जो परहरत कर्मफल, रुचिसे भुंजे नाहिं।
मगन रहै आठो पहर, शुद्धातम पद मांहि॥१०३॥
सो बुध कर्मदशा रहित पावै मोच तुरत।
भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत॥१०४॥

सवैया ३१ सा।

जबहीतै चेतन विभावसो उलटि आप, समे पाय अपनो स्वभाव गहि लीनो है। तबहीतै जो जो लेने योग्य सो सो सब लीनो, जो जो त्यागि योग्य सो सो सब छांडि दीनो है॥ लेवेको न रही ठौर त्यागवेको नाहिं और, बाकी कहाँ उबरयो जु कारज नवीनो है। संग त्यागि अंग त्यागि, वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनो है॥१०८॥

दोहा।

शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोय।
तातैं कारण मोक्षको, द्रव्यलिंग नहिं होय ॥१०९॥
द्रव्यलिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान।
अष्ट महारिधि अष्ट सिद्धि, एहू होइ न ज्ञान ॥११०॥
दर्शनज्ञान चरण दशा, करै एक जो कोइ।
थिर ह्वै साधै मोक्षमग, सुधी अनुभवी सोइ ॥११४॥

सवैया ३१ सा।

कोइ दृग ज्ञान चरणातममें बैठि ठौर, भयो निरदोष परवस्तुको न परसै। शुद्धता विचार ध्यावै शुद्धतामें केलि करै, शुद्धतामें थिर ह्वै अमृतधारा बरसै॥ त्यागि तन कष्ट ह्वै स्पष्ट अष्ट करमको, करि थान भ्रष्ट नष्ट करै और करसै। सोई विकलप विजई अलप काल माहिं, त्यागि भौ विधान निरवाण पद दरसै ॥११५॥

चौपाई।

जैसे मुगध धान पहिचानै। तुष तंदुलको भेद न जानै।
तैसे मूढमती व्यवहारी। लखै न बंध मोक्ष विधि न्यारी ॥११९॥

दोहा।

जे व्यवहारी मूढ नर, पर्ययबुद्धी जीव।
तिनके बाह्य क्रियादिको, है अवलंब सदीव ॥१२०॥

पै जाहिज दृष्टिसों, बाहिज क्रिया करत ।
मोक्ष परपरा, मनमें हरप धरत ॥१२१॥
ग्राम अनुभौ कथा, कहै समकिती कोय ।
जो जुगतिके तामों कहै, यह शिवपथ न होय ॥१२२॥

सवैया ३१ सा ।

आगारज कहै जिन वचनको विसतार, अगम अपार है कहैंगे हम कितनो । बहुत बोलवेसों न मरम्मद चुप भलो बोलिवेसो वचन प्रयोजन है जितनो ॥ नानारूप जल्पनसो नाना विकलप उठे, तातें जेतो कारिज कथन भलो तितनो । शुद्ध परमातमाको अनुभौ अभ्यास कीजे, ये ही मोक्ष पथ परमारथ है इतनो ॥ १२४ ॥

दोहा

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दौर ।
मुक्ति पथ साधन वहै, वागजाल सब और ॥१२५॥
जगत चक्षु आनंदमय, ज्ञान चेतना भास ।
निर्विकल्प शाश्वत सुथिर, कीजे अनुभौ तास ॥१२६॥
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरण वीतममत्व ।
ज्ञानगम्य बाधारहित, सो है आतम तत्त्व ॥१२७॥

❀ इति दशमो सर्वविशुद्धिद्वार समाप्त भया ❀

अथ श्री समयसार नाटकको एकादशमो स्याद्वादद्वार प्रारंभ ॥११॥

सवैया ३१ सा।

शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीनकी पराधीन जीव एक है कीधो अनेक मान लीजिये। जीव है सदीव कीधो नाहि है जगत माहि, जीव अविनश्वरकी विनश्वर कहीजिये॥ सद्गुरु कहे जीव है सदैव निजाधीन एक अविनश्वर द्रव्य दृष्टि दीजिये। जीव पराधीन क्षणभंगुर अनेकरूप, नाहि जहाँ तहाँ पर्याय प्रमाण कीजिये॥ २०॥

सवैया ३१ सा।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव च्यारों भेद वस्तुहीके, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये। परके चतुष्क वस्तु न अस्ति नियत अंग, ताको भेद द्रव्य पर्याय मध्य जानिये॥ द्रव्य जो वस्तु क्षेत्र सत्ता भूमि काल चाल, स्वभाव सहज मूल शकति बखानिये। याही भांति पर विकलप बुद्धि कलपना, व्यवहार दृष्टि अंश भेद परमानिये॥ २१॥

दोहा।

ज्यों तन कंचुकि त्यागते, विनसे नाहि भुजंग।
त्यों शरीरके नाशते, अलख अखंडित अंग॥ २२॥

॥ इति श्री समयसार नाटकको ग्यारमो स्याद्वादद्वार समाप्त भया ॥

अथ मोक्षद्वार प्रारभ ॥ १२ ॥

दोहा।

[illegible] केवल दशा, अथवा सिद्ध महत।
[illegible] आदि सुन, चीणमोह परयत ॥ १ ॥
[illegible] जो परमात निप, रमे रमे निजरूप।
[illegible] शिव पथको, चिद्विवेक चिद्रूप ॥ ३२ ॥

कवित्त।

ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अतर, निरखे द्रव्य सुगुण परजाय। जिन्हके महज रूप दिन दिन प्रति, स्याद्वाद साधन अधिकाय॥ जे केवलि प्रणीत मारग मुख, चित्र चरण लागे ठहराय। ते प्रवीण करि चीण मोह मल, अविचल होंहि परमपद पाय ॥ ३३ ॥

सवैया ३१ मा।

चाकमो फिरत जाको ससार निकट आयो, पायो जिन्ह मम्यक मिथ्यात्व नाश करिके। निरद्वद मनमा सुभूमि माधि लीनी जिन्हे, कीनी मोक्षकारण अवस्था ध्यान धरिके॥ सोही शुद्ध अनुभौ अभ्यामी अविनाशी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके। मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने ताते, डोले जग जालमें अनत काल भरिके ॥ ३४ ॥

दोहा।

जिनमि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोग।
ता परणतिको बुध कहै, ज्ञानक्रियासों मोख ॥३६॥
जगी शुद्ध सम्यक् कला, बगी मोक्ष मग जोय।
वहै कर्म चूरण करै, क्रम क्रम पूरण होय ॥३७॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम।
जैसे जो दीपक धरै, सो उजियारो धाम ॥३८॥

सवैया ३१ सा।

जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, भयो परकाश शुद्ध समकित भानको। जाकी मोह निद्रा घटि ममता पलक फटि, जान्यो निज मरम अवाची भगवानको॥ जाको ज्ञान तेज बग्यो उदिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधापानको। ताही सुविचक्षणको संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवाणको ॥३९॥

संसारसागरसे पार होनेके लक्षण।

सवैया ३१ सा।

जाके हिरदैमें स्याद्वाद साधना करत, शुद्ध आतमको अनुभौ प्रगट भयो है। जाके संकलप विकलपके विकार मिटि, सदाकाल एक भाव रस परिणयो है॥ जाते बंध विधि

ऐसो अगीकार, ऐसो सुविचार पन मोउ छाडि
ताको तार महिमा उद्योत दिन दिन प्रति,
। । संसार उलघि पार गयो है ॥ ४० ॥

आत्मसुखकी प्राप्तिका उपाय।

नानारूप नामनि अनेक एक चिन्मय, अथिर इत्यादि
न नीन कहिने। दासे एक नयकी प्रतिपक्षी अपर
न ।भी न निवाय वाद विवादमें रहिये॥ थिरता न होय
विकलपकी तरगनिमें, चचलता बढ़े अनुभौ दशा न लहिये।
तातें जीव अचल अबाधित अखड एक, ऐसो पद साधिके
समाधि सुख गहिये ॥४१॥

चौपाई।

स्वपर प्रकाशक शकति हमारी। तातें वचन भेद भ्रम भारी॥
ज्ञेय दशा द्विविधा परकाशी। निजरूपा पररूपा भासी॥४४॥

दोहा।

निज स्वरूप आतम शकति पररूपी पर वस्त।
जिन्ह लखि लीनो पेंच यह, तिन्ह लखि लियो समस्त॥४५॥

सवैया ३१ सा।

करम अवस्थामें अशुद्धसों विलोकियत, करम कलकसों
रहित शुद्ध अग है। उभै नय प्रमाण समकाल शुद्धाशुद्धरूप,
ऐसो परयाय धारी जीव नाना रग है॥ एकही समैमें

त्रिधारूप पै तथापि याकी, अखंडित चेतना शकति सरवंग है। यहै स्याद्वाद याको भेद स्याद्वादी जाने, मूरख न माने जाको हियोदृग भंग है॥ ४६॥ निहचै दरब दृष्टि दीजै तब एक रूप, गुण परयाय भेद भावसों बहुत है। असंख्य प्रदेश संयुगत सत्ता परमाण, ज्ञानकी प्रभामों लोकाऽलोक मान जुत है॥ परजै तरंगनाके अंग छिनभंगुर है, चेतना शकतिमों अखंडित अचुत है। सो है जीव जगत विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अदभुत है॥ ४७॥ विभाव शकति परणतिमों विकल दीसे, शुद्ध चेतना विचारते सहज संत है। करम संयोगसों कहावै गति जोनि वासि, निहचै स्वरूप सदा मुक्त महंत है॥ ज्ञायक स्वभाव धरे लोकाऽलोक परकासि, सत्ता परमाण सत्ता प्रकाशवंत है। सो है जीव जानत जहान कौतुक महान, जाकी कीरति कहान अनादि अनंत है॥ ४८॥ पंच परकार ज्ञानावरणको नाश करि, प्रगटि प्रसिद्ध जग माहिं जगमगी है। ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पै एकताके रस पगी है॥ याही भाँति रहेगी अनादिकाल परयंत, अनंत शकति फेरि अनंतसों लगी है। नरदेह देवल में केवल स्वरूप शुद्ध, ऐसो ज्ञान ज्योतिकी सिखा समाधि जगी है॥ ४९॥

❀ इति बारहमा साध्य साधक द्वार समाप्त ❀

[illegible] गुणस्थानाधिकार प्रारंभ ॥१४॥

सवैया ३१ सा।

[illegible] भेदि जगी निरमल ज्योति, जोगसो
[illegible] प्रमानिये। वहै दुद दशामो कहावै
[illegible], मति श्रुति ज्ञान भेद [illegible] व्यवहार मानिये॥
[illegible] पहिचानि थापा पर वेदे, पौरष अलप तातें
[illegible] अमानिये। करै भेदाभेदको विचार विस्तार रूप,
[illegible] उदाहरण सों विशेष जानिये ॥५१॥

दोहा।

चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय भूल।
आश्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्षको मूल ॥११२॥

चौपाई।

आश्रव संवर परणति जौलों। जगवासी चेतन है तौलों॥ आश्रव संवर विधि व्यवहारा। दोऊ भवपथ शिवपथ धारा ॥ ११३ ॥ आश्रवरूप बंध उतपाता। संवर ज्ञान मोक्ष पद दाता॥ जो संवरसों आश्रव छीजे। ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ ११४ ॥

जैसे वटवृक्ष एक तामें फल हैं अनेक, फल फल बहु बीज बीज बीज वट है। वटमाहि फल फलमाहि बीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है॥ तैसे एक [illegible]

सत्तामें अनत गुण [illegible] में अनत नृत्य [illegible]
ठग है। उसमें अन[illegible] म अनतरूप, रूपने [illegible]
सत्ता ऐसो जीव [illegible]

समयसार [illegible] न, नाटक- भाव [illegible]
सोहै आगम नाममें परमारथ [illegible]

इति सपूर्ण

ज्ञान-पचीसी

(महाकवि बनारसीदास-कृत [illegible]

सुर-नर तिरियग-योनिमें, [illegible]
महामोहकी नींदसों सोये [illegible] २॥
जैसें ज्वरक जोरसों, [illegible]
तसें कुकरमक उदय, [illegible]
लग सूरा ज्वरक [illegible]
अशुभ गये शुभके [illegible] ३॥
जैस पवन [illegible]
त्यो मनमा चंचल [illegible]
जहाँ पवन नहि [illegible]
त्यो सब परिग्रह [illegible]

[illegible] । रुचिसौं नीम चराय ।
[illegible] मगन विषय सुख पाय ॥ ६ ॥
[illegible], निर्विष तन जब होय ।
[illegible] विषय न वाछै कोय ॥ ७ ॥
[illegible], बूडहि अध अदेख ।
[illegible] जिन विवेक घर भेख ॥ ८ ॥
[illegible] लगे, खेवट शुद्ध विचार ।
[illegible], पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥
[illegible] आनै नहीं, महामत्त गजराज ।
[illegible] गिनै न काज अकाज ॥१०॥
[illegible] उपायकै, गहि आनै गज साधि ।
त्यो या मन बस करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥११॥
तिमिर रोगसा नैन ज्यों, लखै औरको और ।
त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्यामतिकी दौर ॥ १२ ॥
ज्यों औषध अंजन किये, तिमिर-रोग मिट जाय ।
त्यो सतगुरु उपदेशतैं, संशय वेग विलाय ॥ १३ ॥
जैसें सब यादव जरे, द्वारावतिकी आगि ।
त्यों मायामें तुम परे, कहॉं जाहुगे भागि ॥ १४ ॥
दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निरग्रथ ।
तजि माया समता गहो, यहै मुकतिको पन्थ । १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेंटसों, घट बढ़ कंचन क्रान्ति ।
पाप पुन्य कर त्यौं भये, मूढ़ातम बहु भाँति ॥ १६ ॥
कंचन निज गुन नहि तजे, हीन वानके होत ।
घट घट अन्तर आतमा, सहज सुभाव उदोत। १७॥
पन्ना पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।
त्यों प्रगटे परमातमा, पुण्य पाप मल खोय ॥ १८ ॥
पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छवि छीन ।
संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होय मलीन ॥१९॥
निम्बादिक चन्दन करै, मलयाचलकी बास ।
दुर्जनतें सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥
जैसें ताल सदा भरै, जल आवै चहुँ ओर ।
तैसें आस्रव द्वारसों, कर्मबन्धको जोर ॥ २१ ॥
ज्यों जल आवत मूंदिये, सूखै सरवर पानि ।
तैसें संवरके किये, कर्म निर्जरा जानि ॥ २२ ॥
ज्यों बूटी संयोगतें, पारा मूर्छित होय ।
त्यों पुद्गलसों तुम मिले, आतम शक्ति समोय ॥२३॥
मेलि खटाई माजिये, पारा परगटरूप ।
शुक्लध्यान अभ्यासतें, दर्शन ज्ञान अनूप ॥ २४ ॥
कहि उपदेश 'बनारसी' चेतन अब कछु चेत ।
आप बुझावत आपको, उदय करनके हेत ॥ २५ ॥

❀ इति ❀

~~ परमार्थवचनिका ~~

(बनारसीदासजी)

... अनन्त गुण अनन्तपर्याय, एक एक ... प्रदेश, एक एक प्रदेशनिविषै अनन्त ... एक कर्मवर्गणानिविषै अनन्त अनन्त पुद्गल ... एक पुद्गल परमाणु अनंत गुण अनन्त पर्याय ... विराजमान, यह एक ममारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था। याही भाँति अनन्त जीवद्रव्य सपिंडरूप जानने। एक जीव द्रव्य अनंत अनंत पुद्गलद्रव्यकरि संयोगित (संयुक्त) मानने। ताकी व्यौरौ—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परनति अन्य अन्यरूप पुद्गलद्रव्यकी परनति, ताको व्यौरो—

एक जीवद्रव्य जा भाँतिकी अवस्थालिये नानाकाररूप परिनमै सो भाँति अन्य जीवसों मिलै नाहीं। बाकी और भाँति। याही भाँति अनंतानंत स्वरूप जीवद्रव्य अनंतानंत स्वरूप अवस्था लिये वर्तहि। काहु जीवद्रव्यके परिनाम काहु जीवद्रव्य औरसौं मिलइ नाहीं। याही भाँति एक पुद्गल परमानू एक समयमाहिं जा भाँतिकी अवस्था धरै, सो अवस्था अन्य पुद्गल परमानू द्रव्यसौं मिलै नाहीं, तातै

पुद्गल (परमाणु) मा भी अन्य अन्यता जाननी।

अथ जीवद्रव्य पुद्गल एक क्षेत्रावगाही अनादिकालके, तामें विशेष इतनौं जु द्रव्य एक, पुद्गल परवानू द्रव्य अनतानत चलाचलरूप आगमनगमनरूप अनताकार परिनमनरूप बधमुक्तिशक्ति लिये वर्त्तहिं।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्त अवस्था तामें तीन अवस्था मुख्य थापी। एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था ससारी जीव द्रव्यकी। ससारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये।

अब तीनहू अवस्थाकौ विचार—एक अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य, अशुद्धनिश्चय द्रव्यको सहकारी अशुद्ध व्यवहार मिश्रद्रव्यको सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यको सहकारी शुद्धव्यवहार।

अथ निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते।

निश्चय तो अभेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथा स्थित भाव। परतु विशेष इतनौं जु यावत्काल ससारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिये। सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातें जु ससार व्यवहार एकरूप दिखायौ। ससारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो ससारी।

[illegible] को विवरण लिख्यते।

[illegible] अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्च-[illegible] व्यवहारी। सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ [illegible] द्वादशम गुणस्थानपर्यन्त मिश्रनिश्चया-[illegible] व्यवहारी। केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक [illegible]।

[illegible] तौ द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार ससारा [illegible] भाव, ताको विवरण कहे हैं,—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नाही जानतौ तातैं परस्वरूपविष मगन होय करि कार्य मानतु है ता कार्य करतौ छतौ अशुद्धव्यवहारी कहिए। सम्यग्दृष्टी अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है। परसत्ता परस्वरूपसौं अपनौ कार्य नाही मानतौ सतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप क्रिया करतु है, तौ कार्य करतौ मिश्र व्यवहारी कहिए। केवलज्ञानी यथाख्यातचारित्रके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है तातैं शुद्धव्यवहारी कहिए। जोगारूढ अवस्था विद्यमान है तातैं व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यवहारकी सरहद त्रयोदशम गुनस्थानकसौं लेकरि चतुर्दशम गुनस्थानकपर्यंत जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहार।

अथ तीनहू व्यवहारको स्वरूप कहै हैं—

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोपयोगमिश्रित स्वरूपाचरनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप। परतु विशेष इनको इतनौ जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तौ सिद्धहूविषै छतौ है, उहाँ भी व्यवहार सज्ञा कहिए—सो यौं नाहीं—जातै ससारी अवस्थापर्यंत व्यवहार कहिए। ससारावस्थाके मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहाँ यह थापना कीनी है तातैं सिद्ध व्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्त ।

अथ आगमअध्यात्मको स्वरूप कथ्यते।

आगम—वस्तुको स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यातम कहिए। आगम तथा अध्यातम स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊ भाव ससार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताकौ व्यौरौ—आगमरूप कर्मपद्धति अध्यातमरूप शुद्धचेतनापद्धति। ताकौ व्यौरौ—कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप पुद्गलपरिणाम, भावरूप पुद्गलाकारआत्माकी अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम—ते दोऊ परिणाम आगमरूप थापे। अब शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा भावरूप। द्रव्यरूप तौ जीवत्वपरिणाम—भावरूप ज्ञानदर्शन सुख वीर्य आदि अनन्तगुण परिणाम, ते

अरु परिणाम अध्यात्मरूप जानने । आगम अध्यातम का पद्धति अनन्तता माननी ।

अनन्तता का ताको विचार—

अनन्तताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसे— वटवृक्षका बीज एक हाथविषै लीजै, ताका विचार, दीर्घ दृष्टि करि । बीज तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है । सो वृक्ष जैसा कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तार-लिये विद्यमान वामें वास्तवरूप छतो है, अनेक-शाखा प्रशाखा पत्र पुष्पफल सयुक्त है, फल फलविषै अनेक बीज होहिं । या भांतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए । भी और सूक्ष्मदृष्टि दीजै तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते अतगर्भित वटवृक्षसयुक्त होंहि । याहीभाति एक वट-विषै अनेक अनेक बीज, एक एक बीज विषै एक एक वट ताको विचार कीजै तौ भाविनयप्रमानकरि न वटवृक्षनिकी वा मर्यादा पाइए न बीजनिकी मर्यादा पाइए ।—याही भाति अनतताको स्वरूप जाननौ । ता अनतताके स्वरूपको केव-लज्ञानी पुरुष भी अनन्त ही देख जाणें कहै—अनन्तको और अन्त है ही नाही जो ज्ञानविषै भासै । तातें अनन्तता अनत-हीरूप प्रतिभासै, या भांति आगम अध्यातमकी अनतता जाननी । तामें विशेष इतनौ जु अध्यातमको स्वरूप अनत आगमको स्वरूप अनतानतरूप, यथापना प्रमानकरि

अध्यात्म एक द्रव्याश्रित। आगम अनतानत पुद्गलद्रव्याश्रित। इन दुहूँको स्वरूप सर्वथा प्रकार तौ केवलगोचर, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानग्राह्य तातैं सर्वथा प्रकार आगमी अध्यात्मी तौ केवली, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, देशमात्र अवधिज्ञानी मन पर्ययज्ञानी, ए तीनौ यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने। मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है। काहे तें ? यातैं जु कथन मात्र तौ ग्रंथपाठके बलकरि आगम अध्यातमको स्वरूप उपदेश मात्र कहै परन्तु आगम अध्यातमको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानै नाहीं। तातैं मूढ़ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात्।

अब मूढ़ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणौ
और भी सुनौ—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै। मूढ़ मोक्षमार्ग न साधि जानै काहे—यातैं सुनौ—मूढ़ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै, अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातैं आगम अंग एकान्तपनौ साधिकै मोक्षमार्ग दिखावै अध्यात्म अंगको व्यवहार न जानै यह मूढ़दृष्टिको स्वभाव, वाहि याही भाँति सूझै काहेतें ?—यातैं—जु आगम अंग बाह्यक्रियारूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम। ता बाह्यक्रिया करतौ संतौ आपकू

मूढ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित जो अध्या-त्मरूप क्रिया सो अंतरदृष्टि ग्राह्य है सो क्रिया मूढ़जीव न जानै। अन्तरदृष्टिके अभावसौं अन्तरक्रिया दृष्टिगोचर नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी जीव मोक्षमार्ग साधिवेको असमर्थ।

अथ सम्यग्दृष्टिको विचार सुनौ—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामें नाहीं सो सम्यग्दृष्टी। संशय विमोह विभ्रम कहा?—ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो—जैसैं च्यार पुरुष काहू एक स्थानकविषै ठाढ़े। तिन्ह च्यारि-हूँके आगे एक सीपको खंड किन्हीं और पुरुषने आनि दिखायो। प्रत्येक प्रत्येकतैं प्रश्न कीनो कि यह कहा है—सीप है कै रूपो है? प्रथम ही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो—कछु सुध नाहीं परत, किधौं सीप है किधौं रूपो है मोरी दृष्टिविषै याको निरधार होत नाहिंनें। सो दूजो पुरुष विमोहवालो बोल्यो कि—कछू मोहि यह सुधि नाहीं कि तुम सीप कौनसौं कहतु हैं रूपौ कौनसौं कहतु हैं? मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाहीं, तातैं हम नाहिनें जानत कि तू कहा कहतु है अथवा चुप ह्वै रहै बोलै नाहीं गहलरूपसौं। सो तीसरो पुरुष विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तौ प्रत्यक्ष

प्रमान रूपो है याको सीप कौन कहै ? मेरी दृष्टिविषै तौ रूपो सूझतु है तातैं सर्वथा प्रकार यह रूपो है। सो तीनों पुरुष तौ वा सीपको स्वरूप जान्यों नाहीं। तातै तीनों मिथ्यावादी। अब चौथो पुरुष बोल्यो कि यह तौ प्रत्यक्ष प्रमान सीपको खंड है यामें कहा धोखो, सीप सीप सीप, निरधार सीप, याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्ष प्रमान भ्रामक अथवा अंध। तैसें सम्यग्दृष्टीकी स्वपरस्वरूपविषै न संशै न विमोह न विभ्रम, यथार्थ दृष्टि है। तातै सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टि करि मोक्षपद्धति साधि जानै। बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो निमित्त नानारूप, एकरूप नाहीं, अन्तरदृष्टिके प्रमान मोक्षमार्ग साधै, सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरनकी कनिका जागै मोक्षमार्ग साचो। मोक्षमार्ग को साधिबो यहै व्यवहार, शुद्धद्रव्य अक्रियारूप सो निश्चै। ऐसें निश्चय व्यवहारको स्वरूप सम्यग्दृष्टी जानै। मूढ़ जीव न जानै न मानै। मूढ़ जीव बंधपद्धतिको साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नाहीं। काहेतैं ?—यातैं—जु बंधके साधते बंध सधै, मोक्ष सधै नाहीं। ज्ञाता जब कदाचित बंधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसौं मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चल्यो आयो है—अब या पद्धतिसों मोह तोरि वहै तौ या पद्धतिको राग पूर्वकी ज्यौं है नर काहे करौ ? मात्र भी बन्धपद्धतिविषै मगन होय नाहीं सो

गाता तातौं स्वरूप विचारै अनुभव ध्यान गावै भजन करै नवधाभक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख होइकरि करै। यह तातैं व्यवहार, याहीतैं नाम मिथ्याव्यवहार।

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चाल ताको विचार लिख्यते—

हेय—त्यागरूप तौ अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—विचाररूप अन्य षटद्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरनरूप अपने द्रव्यकी शुद्धता, ताको व्यौरो—गुणस्थानके प्रमान हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ। ज्यौं ज्यौं ज्ञाताकी हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यौं त्यौं गुणस्थानककी बढ़वारी कही है, गुणस्थानकप्रमान ज्ञान गुनस्थानक प्रमान क्रिया। तामैं विशेष इतनौ जु एक गुणस्थानकवर्त्ती अनेक जीव होहि तौ अनेक रूपको ज्ञान कहिए,अनेक रूपकी क्रिया कहिए। भिन्न भिन्न सत्ताके प्रमानकरि एकता मिलै नाहीं। एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदीक भाव होहि तिन उदीकभावानुसारी ज्ञानकी अन्य अन्यता जाननी। परन्तु विशेष इतनौ जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न होई जु परसत्तावलंबनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै। काहेतैं अवस्थाप्रमान परसत्तावलंबक है। ज्ञानको परसत्ताव लंबी परमार्थता न कहै। जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबन

शीली होइ तारो नाउ ज्ञान । ता ज्ञानकी [illegible] विचि-
चरूप नानाप्रकारके उदीकभाव होंहि । [illegible]
ज्ञाता तमामगीर । न कत्ता न भोक्ता [illegible]
यों कहै कि या भांतिके उदीकभाव होंहि [illegible]
गुनस्थानरू कहिये सो झूठो । तिनि [illegible]
प्रकार जान्यौ नाहीं । काहेतें—[illegible]
निकी कौन बात चलावै केवलीके [illegible] नाना-
त्वता जाननी । केवलीके भी [illegible] नाहीं ।
काहू केवलीकै दंड कपाट [illegible] काहू [illegible]
नाहीं । तौ केवलीविषै भी [illegible] और गुन-
स्थानकी कौन बात चलावै । [illegible] मगिमें
ज्ञान नाहीं, ज्ञान स्वशक्तिप्रमान है । [illegible] ज्ञानकी
शक्ति ज्ञायकप्रमान ज्ञान स्व[illegible] यथा अनुभव
प्रमान यह ज्ञाताको सामर्थ्य है । [illegible] कहा-
ताई लिखिये कहांताई कहिये । [illegible] ज्ञाना-
तीत, तातैं यह विचार [illegible] । जो ज्ञाता होइगा
सो थोरीही लिख्यो [illegible], जो अज्ञानी होइगा
सो यह चिट्ठी सुनैगा [illegible] नहीं यह [illegible]
यथार्थ यथा [illegible] जिनवचनानुसारी है ।

याहि गुणका मरनका मरदहैगो ताहि ज्ञापणगामी है भाग्यमाय।

॥ इति परम धर्मचनिका ॥

॥ स्वरूपसंबोधन ॥

(श्रीमदकलङ्कदेव प्रणीत)

मुक्ताऽमुक्तैकरूपो य, कर्मभि संविदादिना।
अक्षय परमात्मान, ज्ञानमूर्ति नमामि तम् ॥ १ ॥

अर्थ–मगलाचरण करते हुए श्री अकलंकभट्टाचार्य कहते हैं कि जो अविनश्वर, ज्ञानमूर्ति, परमात्मा, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मोंसे, रागादिक भावकर्मोंसे, व शरीररूप नोकर्मसे मुक्त (रहित) है और सम्यग्ज्ञान आदि अपने स्वाभाविक गुणोंसे अमुक्त (युक्त) है उन परमानन्दमय परमात्माको नमस्कार करता हूँ।

अर्थात् उपर्युक्त तीन प्रकारके कर्मोंको नष्ट कर देनेके कारण जो मुक्तरूप हैं और अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्त वीर्य आदि गुणोंसे युक्त होनेके कारण जो अमुक्तरूप हैं और ज्ञान ही जिनकी मूर्ति है ऐसे अविनश्वर परमात्माको इसमें नमस्कार किया गया है।

मीमांसक, परमात्माको कर्मरहित नहीं मानते इसलिये उनके मतका निराकरण करनेके लिये "कर्ममुक्त" विशेषण दिया गया है। नैयायिक व वैशेषिक, मुक्तजीवमें ज्ञानादि विशेष गुणका भी अभाव मानते हैं इसलिये "ज्ञानादिसे अमुक्त" विशेषण दिया है। कोई कोई मतावलम्बी मुक्तिसे फिर वापिस आना मानते हैं इसलिये "अचल" विशेषण दिया गया है। सांख्य मतावलम्बी, परमात्माको ज्ञानरहित मानता है इसलिये "ज्ञानमूर्ति" विशेषण दिया गया है और मुक्तामुक्त कहनेसे स्याद्वादकी सिद्धि भी की गई है तथा आगे भी प्राय प्रत्येक श्लोकमें स्याद्वादकी सिद्धि की जायगी ॥ १ ॥

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं क्रमाद्धेतुफलावह ।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्त स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मक ॥ २ ॥

अर्थ—वह परमात्मा आत्मरूप होनेसे कारणस्वरूप है और ज्ञानदर्शनरूप होनेसे कार्य स्वरूप भी है। इसी तरह केवलज्ञानके द्वारा जानने योग्य होनेसे ग्राह्यस्वरूप है और इन्द्रियोंके द्वारा न जानने योग्य होनेसे अग्राह्य स्वरूप भी है।

द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा नित्यरूप है और परिणमनशील होनेसे पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा उत्पाद विनाश

यदि उपाया मम या मगदहैगो ताते रत्याणकारी है
भागवमाग ।

* इति परम वचनिका *

* स्वरूपसंबोधन *

(श्रीमद्भट्टाकलङ्क प्रणीत)

मुक्ताऽमुक्तैकरूपो य, कर्मभि संविदादिना ।
अक्षय परमात्मान, ज्ञानमूर्तिं नमामि तम् ॥ १ ॥

अर्थ-मंगलाचरण करते हुए श्री अकलंकभट्टाचार्य कहते हैं कि जो अविनश्वर, ज्ञानमूर्ति, परमात्मा, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मोंसे, रागादिक भावकर्मोंसे, व शरीररूप नोकर्मसे मुक्त (रहित) है और सम्यग्ज्ञान आदि अपने स्वाभाविक गुणोंसे अमुक्त (युक्त) है उन परमानन्दमय परमात्माको नमस्कार करता हूँ ।

अर्थात् उपर्युक्त तीन प्रकारके कर्मोंको नष्ट कर देनेके कारण जो मुक्तरूप है और अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि गुणोंसे युक्त होनेके कारण जो अमुक्तरूप है और ज्ञान ही जिनकी मूर्ति है ऐसे अविनश्वर परमात्माको इसमें नमस्कार किया गया है ।

मीमांसक, परमात्माको कर्मरहित नहीं मानते इसलिये उनके मतका निराकरण करनेके लिये "कर्ममुक्त" विशेषण दिया गया है। नैयायिक व वैशेषिक, मुक्तजीवमें ज्ञानादि विशेष गुणका भी अभाव मानते हैं इसलिये "ज्ञानाग्नि अमुक्त" विशेषण दिया है। कोई कोई मतावलम्बी मुक्तिमें फिर वापिस आना मानते हैं इसलिये "अचल" विशेषण दिया गया है। सांख्य मतावलम्बी, परमात्माको ज्ञानरहित मानता है इसलिये "ज्ञानमूर्ति" विशेषण दिया गया है और मुक्तामुक्त कहनेसे स्याद्वादकी सिद्धि भी की गई है तथा आगे भी प्राय प्रत्येक श्लोकमें स्याद्वादकी सिद्धि की जायगी ॥ १ ॥

सोऽस्त्यात्मा सोपयोगोऽयं क्रमाद्धेतुफलावहः ।
यो ग्राह्योऽग्राह्यनाद्यन्तः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ॥ २ ॥

अर्थ—वह परमात्मा आत्मरूप होनेसे कारणस्वरूप है और ज्ञानदर्शनरूप होनेसे कार्य स्वरूप भी है। इसी तरह केवलज्ञानके द्वारा जानने योग्य होनेसे ग्राह्यस्वरूप है और इन्द्रियोंके द्वारा न जानने योग्य होनेसे अग्राह्य स्वरूप भी है।

द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा नित्यरूप है और परिण मनशील होनेसे पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा उत्पाद विनाश

ावत की है। इस प्रकार परमात्मामें अनेक तरहसे
चेतनत्व सिद्ध होता है ॥ २ ॥

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः ।
ज्ञानदर्शनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः ॥ ३ ॥

अर्थ-प्रमेय आदिक धर्मोंकी अपेक्षासे यह परमात्मा
अचेतनरूप है और ज्ञान दर्शनकी अपेक्षासे चेतनरूप भी है
इसतरह दोनों अपेक्षाओंसे चेतन अचेतन स्वरूप है।

भावार्थ-आत्मामें एक चेतना नामक गुण है, जिस
गुणकी ज्ञान व दर्शन ये दो पर्यायें होती हैं और इस चेतना
गुण अथवा इसकी ज्ञान दर्शन पर्यायोंकी अपेक्षासे ही आत्मा
चेतन कहलाता है। इस चेतना गुणके अतिरिक्त आत्मामें
और जो प्रमेयत्व (जिसके होनेसे वस्तु ज्ञानका विषय होती
है) आदि अनंत गुण ऐसे हैं जो कि पुद्गलादि अचेतन
पदार्थोंमें भी पाये जाते हैं उन गुणोंकी अपेक्षा आत्मा एवं
परमात्माको अचेतन भी कह सकते हैं और इसीलिये आत्मामें
चेतनपना व अचेतनपना सिद्ध होता है ॥३॥

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो, भिन्नाभिन्नः कथंचन ।
ज्ञानं पूर्वापरीभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः ॥ ४ ॥

अर्थ-यह परमात्मा ज्ञानसे भिन्न है और ज्ञानसे भिन्न

नहीं भी है। अर्थात् ज्ञानसे कथञ्चित् (किसी अपेक्षासे) भिन्न है सर्वथा (सब अपेक्षाओंसे) भिन्न भी नहीं है। इसी प्रकार यह परमात्मा ज्ञानसे अभिन्न है और ज्ञानसे अभिन्न भी नहीं है अर्थात् ज्ञानसे कथंचित् अभिन्न है सर्वथा अभिन्न भी नहीं है, क्योंकि पहिले पिछले सब ज्ञानोंका समुदाय ही मिलकर आत्मा कहलाता है।

भावार्थ—आत्मा नित्य परिणमनशील पदार्थ है और उसमें अनंत गुण हैं जिनमें ज्ञानगुण एक ऐसा है जो हमारे अनुभवमें आता है और जिसके द्वारा हम अपने व दूसरेकी आत्माको जान सकते हैं इस कारण ज्ञानगुणको ही यहाँ आत्मा कहा गया है। दूसरी बात यह है कि यह ज्ञान या चेतना गुण आत्मामें हमेशा रहते हुए भी परिणमता (बदलता) रहता है इस कारण किसी एक समयके ज्ञान मात्र ही आत्मा न होनेसे ज्ञानसे आत्मा भिन्न है और सर्व समयोंके ज्ञानोंका समुदाय रूप होनेसे ज्ञानसे आत्मा अभिन्न है इसी कारण ज्ञानसे आत्माको सर्वथा भिन्न वा अभिन्न न मानकर कथंचित् भिन्न अथवा अभिन्न माना गया है॥ ४॥

स्वदेहप्रमितश्चायं, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
ततः सर्वगतश्चायं, विश्वव्यापी न सर्वथा॥ ५॥

[illegible]–वह अरहंत परमात्मा अपने परम औदारिक [illegible] बराबर है और बराबर नहीं भी है अर्थात् समुद्घात [illegible] शरीरमें रहते हुए भी आत्माके प्रदेशोंका कारण [illegible] प्रमाण आदि शरीरोंके साथ बाहर निकलना) [illegible] जिस समय केवली भगवानकी आत्माके प्रदेश [illegible] लोकाकाशमें फैल जाते हैं उस समय आत्मा औदारिक [illegible] बराबर नहीं है। इसी तरह वह परमात्मा ज्ञानमात्र [illegible] और ज्ञानमात्र नहीं भी है अर्थात् ज्ञानगुणको मुख्य करके व अन्य समस्त गुणोंको गौण करके यदि विचारा जाय तो आत्मा या परमात्मामें ज्ञानमात्र ही दृष्टिमें आता है और यदि अन्य गुणोंको मुख्य किया जाय तो ज्ञानमात्र दृष्टिमें नहीं भी आता है। इसी तरह जब केवलज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण लोक व अलोकको जानने की अपेक्षा लेते हैं तब परमात्माको सर्वगत भी कह सकते हैं क्योंकि सम्पूर्ण पदार्थ परमात्मासे गत हैं अर्थात् ज्ञात हैं और सम्पूर्ण पदार्थोंको जानते हुए भी अरहंत परमात्मा अपने दिव्य औदारिक शरीरमें ही स्थित रहता है इसलिये वह विश्वव्यापी नहीं भी है।

भावार्थ–परमात्मामें उपर्युक्त धर्म कथंचित् सिद्ध होते हैं, सर्वथा सिद्ध नहीं होते।

नानाज्ञानस्वभावत्वादेकोऽनेकोपि नैव सः ।
चेतनैकस्वभावत्वादेकानेकात्मको भवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–उस आत्मामें मतिज्ञान, (इन्द्रिय व मनसे वस्तु को जानना) श्रुतज्ञान (मतिज्ञानसे जाने हुए पदार्थके सम्बन्धीको जानना) आदि अनेक ज्ञान होते हैं तथा और भी सम्यक्त्व (सच्चा श्रद्धा) चारित्र (सच्चा आचरण) आदि अनेक गुण होते हैं जिनके कारण यह आत्मा यद्यपि अनेकरूप हो रहा है तथापि अपने चेतन स्वरूपकी अपेक्षा एकपनेको नहीं छोडता। इसलिये इस आत्माको कथंचित् एक रूप भी जानना चाहिये और कथंचित् अनेक रूप भी जानना चाहिये।

भावार्थ–जैसे एक पुरुष एक स्वरूप होकर भी पिता, पुत्र, चचा, भतीजा आदिरूप कहलाता है क्योंकि पिताकी अपेक्षा उसको पुत्र और पुत्रकी अपेक्षा उसीको पिता, भतीजेकी अपेक्षा चचा और चचाकी अपेक्षा भतीजा कहते हैं। उसी तरह एक आत्मा अभावनेकी अपेक्षा एक स्वरूप होकर भी अपने धर्मोंकी अपेक्षा अनेक रूप कहा जाता है।

नाऽवक्तव्यः स्वरूपाद्यैर्निर्वाच्यः परभावतः ।
तस्मान्नैकान्ततो वाच्यो नापि वाचामगोचरः ॥ ७ ॥

भा०- यह आत्मा अपने स्वरूपकी अपेक्षा वक्तव्य (कहा जाने योग्य) जाने सर्वथा अवक्तव्य (न कहे जाने योग्य) भी नहीं है। और पर पदार्थोंके स्वरूपकी अपेक्षा अवक्तव्य होनेपर सर्वथा वक्तव्य भी नहीं है।

भाव-प्रत्येक पदार्थ अपने धर्मों की अपेक्षासे कहा जाता या पुकारा जाता है परके धर्मोंकी अपेक्षासे नहीं पुकारा किया जाता जैसे कि आमका फल आमके नाम से कहा जाता है, केला अमरूद आदि के नामसे नहीं कहा जाता। इसलिए प्रत्येक वस्तुमें अपने स्वभावसे कहे जाने की योग्यता व अन्य पदार्थोंके स्वभावसे न कहे जाने की योग्यता समझते हुए आत्मामें भी ऐसा ही समझना चाहिये।

स स्याद्विधिनिषेधात्मा स्वधर्मपरधर्मयोः ।
समूर्तिर्बोधमूर्तित्वादमूर्तिश्च विपर्ययात् ॥ ८ ॥

अर्थ-यह आत्मा अपने धर्मोंका विधान करनेवाला व अन्य पदार्थोंके धर्मोंका अपनेमें निषेध करनेवाला है और ज्ञानके आकार होनेसे यह आत्मा मूर्तिक तथा पुद्गलमय शरीरसे भिन्न होनेके कारण अमूर्तीक है।

भावार्थ-आत्मामें जैसे स्वरूपकी अपेक्षा विधिरूप धर्म है वैसे पररूपकी अपेक्षा निषेधरूप धर्म भी है।

क्योंकि जैसे ज्ञानादि आत्मिक धर्मोंकी अपेक्षा आत्माकी सत्ता सिद्ध होती है वैसे स्पर्शादिक पुद्गलके धर्मोंकी अपेक्षा आत्माकी सत्ता नहीं सिद्ध होती, इसके अतिरिक्त ज्ञानका पुंज होनेके कारण जैसे आत्मा मूर्तिक कहा जा सकता है उसी तरह पुद्गल परमाणुओंका बना हुआ न होनेसे अमूर्तिक भी कहलाता है ॥ ८ ॥

इत्याद्यनेकधर्मत्वं बंधमोक्षौ तयोः फलम् ।
आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्कारणैः स्वयमेव तु ॥ ९ ॥

अर्थ–इस प्रकार पहले कहे हुए क्रमके अनुसार यह आत्मा अनेक धर्मोंको धारण करता है और उन धर्मोंके फलस्वरूप, बंध व मोक्षरूप फलको भी उन २ कारणोंसे स्वयं अपनाता है।

भावार्थ–यह आत्मा रागद्वेषादि कारणोंसे कर्मका बंध करके पराधीन व दुःखी भी अपने आप होता है और ज्ञान, ध्यान, तप, जप आदि कारणोंसे बंध अवस्थाको नष्ट करके मुक्तिको प्राप्त कर स्वाधीन भी स्वयं ही हो जाता है ॥ ९ ॥

कर्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु ।
बहिरन्तरुपायाभ्यां तेषां मुक्तत्वमेव हि ॥ १० ॥

अर्थ—जो आत्मा बाह्य शत्रु मित्र आदि व अंतरंग रागद्वेष आदि कारणोंसे ज्ञानावरणादिक कर्मोंका कर्ता व उनके सुख दुःखादि फलोंका भोक्ता है, वही आत्मा बाह्य स्त्री, पुत्र धन, धान्यादिका त्याग करनेसे कर्मोंके कर्तापनके व्यवहारसे मुक्त भी है। अर्थात् जो संसार-दशामें कर्मोंका कर्ता व भोक्ता है वही मुक्तदशामें कर्मोंका कर्ता भोक्ता नहीं भी है ॥ १० ॥

आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका उपाय—

सम्यग्दृष्टिज्ञानचारित्रमुपायः स्वात्मलब्धये ।
तत्त्वे याथात्म्यसंस्थित्यमात्मनो दर्शनं मतम् ॥ ११ ॥
यथावद्वस्तुनिर्णीतिः सम्यग्ज्ञानं प्रदीपवत् ।
तत्स्वार्थव्यवसायात्म कथञ्चित्प्रमितेः पृथक् ॥ १२ ॥
दर्शनज्ञानपर्यायेषूत्तरोत्तरभाविषु ।
स्थिरमालम्बनं यद्वा माध्यस्थ्यं सुखदुःखयोः ॥ १३ ॥
ज्ञाता दृष्टाहमेकोऽहं सुखे दुःखे न चापरः ।
इतीदं भावनादार्ढ्यं, चारित्रमथवा परम् ॥ १४ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों अपने शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति अर्थात् संसारसे मुक्त होनेके कारण हैं। आत्माके वास्तविक स्वरूप या

मात तत्त्वोंके सच्चे श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं। पदार्थोंके याथात्म्यरूपसे निर्णय करनेको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। यह सम्यग्ज्ञान दीपकका तरह अपना तथा अन्य पदार्थों का प्रकाशक होता है। कर्मोंसे निर्मित जो द्रव्य है उससे कथंचित् भिन्न भी है। जो कर्मों का क्रम क्रमसे होनेवाला ज्ञान दर्शनादिक पर्यायोंमें निर्विकार आलम्बन है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। अथवा मानादिक सुख दु खोंमें मध्यस्थभाव रखनेको सम्यक्चारित्र कहते हैं। या मैं जाता हूँ, देखता हूँ अपने कर्मोंके उदयरूप सुख दु खों का भोगनेवाला स्वयं अकेला ही हूँ। शरीर स्त्री पुत्रादि पदार्थोंका मेरेसे कोई सम्बन्ध नहीं है इत्यादि अनेक प्रकारसे शुद्ध आत्मस्वरूप में तल्लीन करनेवाली भावनाओंकी दृढ़ताको भी सम्यक्चारित्र कहते हैं ॥११॥ ॥१२॥ ॥१३॥ ॥१४॥

> तदेतन्मूलहेतोः स्यात्कारणं सहकारकम्।
> यद्बाह्यं देशकालादि तपश्च बहिरङ्गकम् ॥ १५ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रको जो ऊपरके श्लोकोंमें मोक्षप्राप्तिका मूल कारण बताया है। उनके सहकारीकारण देशकालादिकको व अनशन अवमौदर्य आदि तपोंको समझना चाहिये।

[illegible] मोक्षकी प्राप्तिमें जैसे रत्नत्रय अंतरंग कारण है वैसे ही उत्तम संहनन [illegible] वज्रवृषभनाराचसंहनन, उत्तम [illegible] बाह्य कारण हैं।

[illegible] यथाशक्ति, मौक्ष्ये द्वौ स्व्ये च शक्तित । [illegible] रागद्वेषविवर्जितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—इस प्रकार तर्क वितर्क साथ आत्मेश्वरपकी [illegible] सुखमें व दुःखमें यथाशक्ति आत्माको [illegible] रागद्वेष रहित चिन्तवन करना चाहिये। अर्थात् [illegible] सामग्रीके मिलने पर राग नहीं करना चाहिये और अनिष्ट समागममें द्वेष नहीं करना चाहिये। क्योंकि ये सब इष्ट अनिष्ट पदार्थ आत्माकी कुछ भी हानि नहीं कर सकते। इनका संबंध केवल शरीरसे रहता है ऐसा विचार रखना चाहिये ॥ १६ ॥

कषायै रञ्जित चेतस्तत्त्व नैवावगाहते।

नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयो हि कौङ्कुम ॥ १७ ॥

अर्थ—जैसे नीले कपडेपर केशरका रंग नहीं चढ़ सकता, वैसे ही क्रोधादि कषायोंसे रंजायमान हुए मनुष्य का चित्त, वस्तुके असली स्वरूपको नहीं पहचान सकता।

भावार्थ—वस्तुके यथार्थ स्वरूपको जाननेका यत्न करनेसे भी पहले हृदयसे क्रोधादि कषायोंको दूर करना

चाहिये तभी वस्तुका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। जैसे अग्निसे जली हुई भूमिमें अंकुर नहीं उगता, वैसे ही कषायसे दग्ध हृदयमें धर्मांकुर नहीं आता। इस दृष्टान्तको भी हृदयगम करके प्रत्येकको निरंतर कषायोंको दूर करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करते रहना चाहिये जिससे कि वे संसारसागरमें डूबी अपनी आत्माका उद्धार कर सकें।

ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः ।
उदासीनत्वमाश्रित्य तत्त्वचिंतापरो भव ॥ १८ ॥

अर्थ—आचार्य व्यवहारी जीवसे कहते हैं कि हे भाई! जब रागद्वेष के बिना दूर किये आत्महित नहीं हो सकता तब तुमको रागद्वेष दूर करनेके लिए शरीरादिक पर पदार्थोंका मोह त्यागकर और संसार शरीर भोगोंसे उदासीन भाव धारण करके तत्त्व विचारमें तन्मय रहना चाहिये॥१८॥

हेयोपादेयतत्त्वस्य, स्थितिं विज्ञाय हेयतः ।
निरालम्बो भवान्यस्मादुपेये सावलम्बनः ॥ १९ ॥

अर्थ—हेय (त्यागने योग्य) व उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्वका स्वरूप जानकर पररूप जो हेय तत्त्व, उससे निरालंबी होकर उपादेयस्वरूपका आलंबन करना चाहिये।

भावार्थ—शुभाशुभभावोंको भला माननेरूप पर्याय बुद्धि तथा मिथ्यात्व कषायादि, आश्रव व बंधतत्व, हेय तत्व हैं और अपना शुद्धजीवतत्व उपादेय है ऐसा जानकर हेयसे निरालंबी होकर शुद्धात्माका ही आलंबन करना चाहिये।

स्व स्व नेति वस्तुत्वं, वस्तुरूपेण भावय।
उपेक्षाभावनोत्कर्षपर्यन्ते, शिवमाप्नुहि ॥ २० ॥

अर्थ—अपनी आत्मामें व पर पदार्थोंके असली स्वरूपका बार बार चिन्तवन करना चाहिये और समस्त संसारी पदार्थोंकी इच्छाका त्याग करके उपेक्षा भावना (रागद्वेषके त्यागकी भावना) को बढ़ाते बढ़ाते मोक्षपद प्राप्त करना चाहिये ॥ २० ॥

मोक्षेऽपि यस्यनाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति।
इत्युक्तत्वाद्धिता वेषी, कांक्षा न क्वापि योजयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ—जब किसी साधु महात्मा पुरुषके हृदयसे मोक्षकी भी इच्छा निकल जाती है तभी उसको मुक्ति प्राप्त होती है। इस सिद्धान्त वाक्यके ऊपर ध्यान देते हुए आत्महितके इच्छुक जीवोंको सभी पदार्थोंकी इच्छाका त्याग करना चाहिये।

भावार्थ–किसी भी पदार्थकी प्राप्ति प्रयत्न करने से होती है, इच्छामात्रसे नहीं होती। यहाँ तक कि मोक्षकी इच्छा करनेसे मोक्ष भी प्राप्त नहीं होता, किन्तु इच्छा करने से मोक्ष प्राप्तिमें उलटी बाधा उपस्थित होती है। इसलिए आत्माका हित चाहने वाले पुरुषोंको इच्छा सर्वथा त्याज्य समझना चाहिये ॥ २१ ॥

सोऽपि च स्वात्मनिष्ठत्वात्सुलभो यदि चिन्त्यते।
आत्माधीने सुखे तात, यत्नं किं न करिष्यसि ॥ २२ ॥

अर्थ–यदि कोई यह कहे कि इच्छा करना तो अपने आधीन होनेसे सुलभ है किन्तु फल प्राप्ति अपने आधीन न होनेसे कठिन है इसलिए इच्छा किसीभी वस्तुकी की जा सकती है। ऐसा कहने वालेको आचार्य करुणापूर्वक कहते हैं कि हे भाई! जैसे इच्छा करना आत्माधीन होने से सुलभ है वैसेही परमानन्दमय सुखका पाना भी तो आत्माके ही आधीन है। इसलिये तुम उसकी प्राप्तिका प्रयत्न ही क्यों नहीं करते, जिससे कि संसारके झगड़ोंसे छूटकर हमेशाके लिये निराकुलित हो जाओ ॥ २२ ॥

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोहं छिन्धि किन्त्विमम्।
अनाकुलं स्वसंवेद्ये, स्वरूपे तिष्ठ केवले ॥ २३ ॥

अर्थ–आचार्य कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त करना भी अपने

ही या ज्ञान स्वरूप स्व और परको जानना चाहिये तथा राग द्वेषादिकि मोहको नष्ट करना चाहिये और आकुलता रहित स्वानुभवगम्य केवल अपने निज स्वरूपमें ही स्थिर होना चाहिये ॥ २३ ॥

स्व स्व स्वेन स्थित स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम् ।
स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत्स्वोत्थमानंदममृत पदम् ॥ २४ ॥

अर्थ—इस श्लोकमें आचार्य आत्मामें ही सातो कारक सिद्ध करते हुए कहते हैं कि व्यवहारी जीवोंको अपनी ही आत्मामें अपने ही आत्महितके लिये अपने ही द्वारा अपने आप ही अपना ध्यान करना चाहिये और अपनी ही आत्मासे उत्पन्न हुए परमानन्दमय अविनश्वर पदको प्राप्त करना चाहिये ॥ २४ ॥

इति स्वतत्त्व परिभाव्य वाङ्मयम्,
य एतदाख्याति शृणोति चादरात् ।
करोति तस्मै परमार्थसम्पदम्,
स्वरूपसंबोधनपंचविंशति ॥ २५ ॥

अर्थ—श्री अकलङ्क भट्टाचार्य उपसहार करते हुए ग्रथका माहात्म्य वर्णन करते हैं कि जो पुरुष पचीस श्लोकोंमें कहे हुए इस स्वरूपसंबोधन ग्रथको आदरसे पढ़ेंगे सुनेंगे

और इसके वाक्यों द्वारा कहे हुए आत्म तत्त्वका वारम्वार मनन करेंगे उनको यह ग्रन्थ परमार्थकी सम्पत्ति अर्थात् मोक्षपद प्राप्त करावेगा।

॥ इति सम्पूर्ण ॥

ीत ॥

ामनी)

। मेरा सहज सनेही श्री
तमराम । मीरा सुमति
ो कत मिलनको चाव।
रा०॥ ७ ॥ मैं विरहिन
ल विन मीन ॥ मेरा०
नट दर्से घटमें स्तू
रभार । ...
अमूरति दरसे ...।
० ॥ ६ ॥ ...
...॥ मेरा० ॥ ७॥

नेउ दरसों पियको उनहार । तन मन सरवस डारों वार ॥ मेरा० ॥ ८॥ होहुं मगन मैं दरसन पाय। ज्यौं दरियामें

... समझकर स्व और परको जानना चाहिये तथा ... मोहको नष्ट करना चाहिये और आकुलता ... स्वानुभवगम्य केवल अपने निज स्वरूपमें ही स्थिर ... रहें ॥ २३ ॥

... स्व स्वेन स्थितं स्वस्मै स्वस्मात्स्वस्याविनश्वरम् ।
... ध्यात्वा लभेत्सोरव्यमानंदममृतं पदम् ॥ २४ ॥

... इस श्लोकमें आचार्य आत्मामें ही मानो कारक ... करते हुए कहते हैं कि व्यवहारी जीवोंको अपनी ही आत्मामें अपने ही आत्महितके लिये अपने ही द्वारा अपने आप ही अपना ध्यान करना चाहिये और अपनी ही आत्मासे उत्पन्न हुए परमानन्दमय अविनश्वर पदको प्राप्त करना चाहिये ॥ २४ ॥

इति स्वतत्त्वं परिभाव्य वाङ्मयम्,
य एतदाख्याति शृणोति चादरात् ।
करोति तस्मै परमार्थसम्पदम्,
स्वरूपसंबोधनपंचविंशति ॥ २५ ॥

अर्थ—श्री अकलङ्क भट्टाचार्य उपसंहार करते हुए ग्रन्थका माहात्म्य वर्णन करते हैं कि जो पुरुष पच्चीस श्लोकोंमें कहे हुए इस स्वरूपसंबोधन ग्रन्थको आदरसे पढ़ेंगे सुनेंगे

मैं रसरीति । पिय व्योहारिया म परतीति ॥मेरा० ॥२५॥ जहाँ पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध । जहाँ पिय ठाकुर तहाँ मैं रिद्ध ॥ मेरा० ॥ २६ ॥ जहाँ पिय राजा तहाँ मैं नीति । जहँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥ मेरा० ॥ २७ ॥ पिय गुणग्राहक म गुणपंति । पिय बहुनायक मैं बहुभाँति ॥ मेरा० ॥ २८ ॥ जहँ पिय तहँ म पियके संग । ज्यों शशि हरिमें ज्योति अभंग ॥ मेरा० ॥ २९ ॥ पिय सुमिरन पियको गुणगान । यह परमारथपंथ निदान ॥ मेरा० ॥ ३० ॥ कहइ व्यवहार बनारसिनाव । चेतन सुमति सटी इकठाव ॥ मेरा० ॥ ३१ ॥

❀ इति चेतनसुमति गीत ❀

❀ प्रश्नोत्तर दोहा ❀

❀ प० बनारसीदासजी ❀

प्रश्न—कौन वस्तु वपु माहि है, कहाँ आवै कहाँ जाय।
ज्ञानप्रकाश कहा लखै, कौन ठौर ठहराय ॥ १ ॥
उत्तर—चिदानंद वपुमाहि है, भ्रममहि आवै जाय।
ज्ञान प्रकट आपा लखै, आपमाहि ठहराय ॥ २ ॥
प्रश्न—जाको खोजत जगतजन, कर कर नानाभेष।
ताहि बतावहु, है कहा जाको नाम अलेष ॥ ३ ॥

दूर ... ॥मेरा०॥ ९ ॥ पियको मिलों अपनपो खोय। ... पाणी ज्यों होय ॥ मेरा० ॥ १० ॥ मैं जग ... टोर। पियके पटतर रूप न और ॥ मेरा० ॥ ११ ॥ पिय जगनायक पिय जगसार। पियकी महिमा ... अपार ॥ मेरा० ॥ १२ ॥ पिय सुमिरत सब दुख ... जाहि। भोरनिरख ज्यों चोर पलाहि ॥ मेरा०॥ १३ ॥ ... पियकी गुनवाद। गजगंजन ज्यों केहरिनाद ॥ मेरा० ॥ १४ ॥ भागइ भरम करत पियध्यान। फटइ ... ज्यों ऊगत भान ॥ मेरा० ॥ १५ ॥ दोष दुरइ ... पिय ओर। नाग डरइ ज्यों बोलत मोर ॥ मेरा० ॥ १६ ॥ बसा सदा मैं पियके गोंउ। पियतज और कहाँ मैं जाउ ॥ मेरा० ॥१७॥ जो पिय जाति जाति मम सोइ। जातहिं जात मिलै सब कोइ ॥ मेरा० ॥ १८ ॥ पिय मोरे घट, म पियमाहि। जलतरंग ज्यों द्विविधा नाहि ॥ मेरा० ॥ १९ ॥ पिय मो करता मैं करतूति। पिय ज्ञानी मैं ज्ञानविभूति ॥ मेरा० ॥ २० ॥ पियसुखसागर मैं सुखसींव। पिय शिवमन्दिर मैं शिवनींव ॥ मेरा० ॥ २१ ॥ पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम। पिय माधव मो कमला नाम ॥ मेरा० ॥ २२ ॥ पिय शंकर मैं देवि भवानि। पिय जिनवर म केवलवानि ॥ मेरा० ॥ २३ ॥ पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष पिय जोगी मैं मुद्रा भेष ॥ मेरा० ॥ २४ ॥ पिय मो रसिया

पुनि विकलिंद्री इंद्री पंच परकार चार
नरक तिर्यंच देव, पुनि पुनि संचरयो ॥
बनारसीदास अब नरभव कर्म भूमि,
गहि भेद कीन्हों मोक्षमारगमें पै धरयो।
चेतरे चतुर नर अजहूं तू क्यों न चेतै?
इस अवसर आयो एते घाट उतरयो ॥ ३७ ॥

निमित्तउपादानके दोहे।

(प० बनारसीदासजी)

गुरुउपदेश निमित्त बिन, उपादानबलहीन।
ज्यों नर दूजे पांव बिन, चलवेको आधीन ॥ १ ॥
हौं जाने था एक ही, उपादानसों काज।
थकै सहाई पौन बिन, पानीमांहि जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोंका उत्तर।

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार।
उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त व्यौहार ॥ ३ ॥
उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥ ४ ॥
उपादान बल जहँ तहाँ, नहिं निमित्तको दाव।
एक चक्रसों रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥

उत्तर–जग शोधत कछु और को, वह तो और न होय।
यह अलख निरपेक्ष मुनि खोजनहारा सोय ॥ ४ ॥

प्रश्न–उपन जिनमें थिर रहै, वह अविनाशी नाम।
ऐसो तुम भाखी भला, मोहि बतावहु ठाम ॥ ५ ॥

उत्तर–उपन बिनसै रूप जड, वह चिद्रूप अखंड।
जोग जुगति जगमग लखै, बसै पिंड ब्रह्मंड ॥ ६ ॥

प्रश्न–शब्द अगोचर वस्तु है, कछू कहौ अनुमान।
जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहौ सुजान ॥ ७ ॥

उत्तर–शब्द अगोचर कहत है, शब्दमाहिं पुनि सोय।
स्याद्वाद शैली अगम, विरला बूझै कोय ॥ ८ ॥

प्रश्न–यह अरूप है रूपमय, दुरिकै कियो दुराव।
जैसे पावक काठमें, प्रगटे होत लखाव ॥ ९ ॥

उत्तर–हुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसो नाहिं।
है अनादि ज्यों खानिमें कंचन पाहनमाहिं ॥ १० ॥

❀ इति प्रश्नोत्तर दोहा ❀

ज्ञान बावनी।

(पं० बनारसीदासजी) घनाक्षरी।

भूयो तु निगोद कोउ काल पाय हाँकि आयो,
प्रत्येक शरीर पंच थावरमें तें धरयो।

पुनि विकलिंगी इंद्री पंच परकार चार,
नरक तिर्यंच देव, पुनि पुनि संचरयो ॥
बनारसीदास अब नरभव कर्म भूमि,
गहि भेद कीन्हो मोखमारगमें पै धरयो ।
चेतरे चतुर नर अजहूं तू क्यों न चेतै ?
इस अवतार आयो एते घाट उतरयो ॥ ३२ ॥

निमित्तउपादानके दोहे ।

(प० बनारसीदासजी)

गुरुउपदेश निमित्त बिन, उपादानबलहीन ।
ज्यों नर दूजे पाव बिन, चलवेको आधीन ॥ १ ॥
हौ जानै था एक ही, उपादानसों काज ।
थकै सहाई पौन बिन, पानीमाहि जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोंका उत्तर ।

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार ।
उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त व्यौहार ॥ ३ ॥
उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय ।
भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥ ४ ॥
उपादान बल जहँ तहाँ, नहि निमित्तको दाव ।
एक चक्रसों रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥

उत्तर—गुण अविधत कहुँ और को, यह तो और न होय।
यह अलेस निर्लेप मुनि खोजनहारा सोय ॥ ४ ॥

प्रश्न—उपजै विनसै थिर रहै, यह अविनाशी नाम।
सो तुम भाखी भला, मोहि बतावहु ठाम ॥ ५ ॥

उत्तर—उपजै विनसै रूप जड, यह चिद्रूप अखंड।
राग जुगति जगम लसै, बसै पिण्ड ब्रह्मंड ॥ ६ ॥

प्रश्न—शब्द अगोचर वस्तु है, कछु कही अनुमान।
जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहो सुजान ॥ ७ ॥

उत्तर—शब्द अगोचर वस्तु है, शब्दमाहि पुनि सोय।
स्याद्वाद शैली अगम, विरला बूझै कोय ॥ ८ ॥

प्रश्न—यह अरूप है रूपमें, दुरिके कियो दुराव।
जसें पावक काठमें, प्रगटै कौत लगाव ॥ ९ ॥

उत्तर—दुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसो नाहिं।
है अनादि ज्यो खानिमें, कंचन पाहनमाहि ॥ १० ॥

❀ इति प्रश्नोत्तर दोहा ❀

ज्ञान बावनी।

(पं० बनारसीदासजी) घनाक्षरी।

भूल्यो तू निगोद कोउ काल पाय दौरि आयो,
प्रत्येक शरीर पंच थावरमें तें धरयो।

पुनि त्रिकलिंदी इंद्री पंच परकार चार,
नरक तिर्यंच देव, पुनि पुनि संचरयो ॥
बनारसीदास अब नरभव कर्म भूमि,
गठि भेद कीन्हों मोक्षमारगमें पै धरयो।
चेतन चतुर नर अजहूँ तू क्यों न चेते?
इम अवतार आयो एते घाट उतरयो॥ ३२ ॥

निमित्तउपादानके दोहे।

(पं० बनारसीदासजी)

गुरुउपदेश निमित्त बिन, उपादानबलहीन।
ज्यों नर दूजे पाव बिन, चलवेको आधीन ॥ १ ॥
हौ जाने था एक ही, उपादानसों काज।
थकै सहाई पौन बिन, पानीमाहिं जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोंका उत्तर।

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार।
उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त व्यौहार ॥ ३ ॥
उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान परवान विधि, बिरला बूझै कोय ॥ ४ ॥
उपादान बल जहँ तहाँ, नहि निमित्तको दाव।
एक चक्रसों रथ चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥

एक वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कौन।
ज्यों जहाज परवाहमें, तिरै सहज विन पौन॥ ६॥
उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेस।
वसै जु जैसे देशमें, करै सु तैसे भेस॥ ७॥

❀ इति निमित्त उपादानके दोहे ❀

❀ उपादान निमित्तकी चिट्ठी ❀

(पं० बनारसीदासजी)

प्रथम ही कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा? ताको ब्यौरो—निमित्त तौ संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति। ताको ब्यौरो—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताको ब्यौरो–द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुनभेदकल्पना। पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोग–कल्पना। ताकी चौभंगी, प्रथम ही गुनभेद कल्पनाकी चौभंगीको विस्तार कहौं सो कैसे,—ऐसे—सुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्तगुन, सब गुन असहाय स्वाधीन सदाकाल। तामें दोय गुण प्रधान मुख्य थापे, तापर चौभंगीको विचार एक तौ जीवको ज्ञानगुन दूसरो जीवको चारित्रगुन।

ये दोनों गुण शुद्धरूप भी जानने। अशुद्धरूप भी

ज्ञानने यथायोग्य स्थानक मानने ताको व्यौरौ–इन दुहूँकी गति न्यारी न्यारी, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताको व्यौरौ,—ज्ञानगुणकी तौ ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता, परतु एक विशेष इतनौ जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाहीं, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यंत, यह तौ ज्ञान गुणको निर्णय भयो। अब चारित्र गुणको व्यौरौ कहे है,—सक्लेश विशुद्धरूप गति, थिरता अथिरता शक्ति, मदी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता। परतु एक विशेष जु मदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यंत। तीव्रताकी स्थिति, पचमगुणस्थानक पर्यन्त। यह तौ दुहुको गुण भेद न्यारौ न्यारौ कियौ। अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्रके आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन। दोऊ असहाय रूप यह तौ मर्यादा बध।

अब चौभगीको विचार ज्ञानगुन निमित्त चारित्रगुण उपादानरूप ताको व्यौरौ–

एक तौ अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। ताको व्यौरौ–

… दशारि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लनी, मध्य… मिथ्यात्व सम्यक्तकी बात नाहीं चलावनी। काहू … जीवकी अवस्था या भांति होतु है जु ज्ञानरूप … चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र काहू समैं ज्ञानरूप ज्ञान सकलेसरूप चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान सक्लेश चारित्र, जा समैं … गति ज्ञानकी, सक्लेशरूप गति चारित्रकी … निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध। काहू समै अज्ञान रूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमैं अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान। काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान सकलेसरूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान। काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान विशुद्धरूप चारित्र तासमैं शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान या भांति अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताकौ व्यौरौ–ज्ञानरूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्रकी शुद्धता कहिए। अज्ञानरूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए सक्लेश रूप चारित्रकी अशुद्धता कहिय। अब ताकौ विचार सुनो—मिथ्यात्व अवस्थाविषे काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाणरूप है तब कहा जानतु है ? ऐसौ जानतु है–कि लक्ष्मी पुत्र कलत्र इत्यादिक मौसा न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण। हौं मरुंगो ए इहा ही रहैंगे सो जान तु है। अथवा ए जाहिंगे, हौं रहूँगो, कोई काल इन्हस्यौं मोहि

एक दिन विशेष है ऐसे [illegible] ज्ञानी मिथ्यात्व [illegible] है
सो तो शुद्धता चहिए। [illegible] स्वरूप शुद्धता [illegible]
शुद्धता, सब वस्तुको [illegible] ज्ञान पर स्व[illegible] [illegible]ने
भविभेद बिना होई ना [illegible]तु चारित्र [illegible] [illegible]
काम निर्जरा है वाहीतें [illegible] और सबै ज्ञान [illegible] [illegible]
रूप है गहलरूप ताकी [illegible] स्वरूप है। [illegible]
मिथ्यात्व अवस्थाविषे का[illegible] चारित्र गुण [illegible] है
तातै चारित्रावरण कर्म म[illegible] [illegible] [illegible] है।
काहू समै चारित्र गुण [illegible] [illegible] है तातैं [illegible]
है। या मालिकरि मिथ्या[illegible] अवस्थाविषै [illegible] ज्ञानरूप
ज्ञान है और विशुद्धतारूप चारित्र है ता[illegible] निर्जरा है।
जा समै अज्ञानरूप ज्ञान है सकलतारूप [illegible] है तातैं
बन्ध है तामैं विशेष इतनौ [illegible] अल्प निर्जरा [illegible] बन्ध, तातैं
मिथ्यात अवस्थाविषै केवल बन्ध कह्यो। [illegible] कहौ अपेक्षा,
जैसे—काहू पुरुषकौं नफो थोड़ो टोटो बहुत [illegible] पुरुष टोटाउ
ही कहिए। परन्तु बंध निर्जरा बिना जीव काहू अवस्था-
विषे नाहीं। दृष्टान्त ऐसौ—जु विशुद्धतासौं निर्जरा न होती
तो एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थासौं व्यवहारराशि कौनके
बल आवतौ? उहां तौ ज्ञान गुन अज्ञानरूप गहलरूप है अबु
द्धरूप है तातैं ज्ञानगुनकौ तौ बल नाहीं। विशुद्धरूप चारित्रके
बलकरि जीव व्यवहार राशि चढ़तु है। जीव द्रव्यविषे

[illegible] शुद्धता होतु है तातैं निर्जरा होतु है। याही [illegible] शुद्धता जाननी। अब और भी विस्तार सुनो—

[illegible] ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्र [illegible] दोऊ मोक्ष [illegible] है तातैं दोऊविषै विशुद्धता माननी। परतु [illegible] गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाहीं। इन [illegible] गर्भित शुद्धता जबनाई ग्रंथिभेद होय नाहीं [illegible] मोक्षमार्ग न [illegible]। परतु ऊर्ध्वताको करहि अवश्य [illegible]। ए दोउ गुणकी गर्भित शुद्धता जब ग्रंथिभेद [illegible] तब इन दुहूँकी शिखा फूटै तब दोऊ गुन धाराप्रवाह-रूप मोक्षमार्गकौं चलहि। ज्ञानगुनकी शुद्धताकरि ज्ञानगुण निर्मल होहि। चारित्र गुणकी शुद्धताकरि चारित्र गुण निर्मल होइ। वह केवल ज्ञानको अंकूर, वह जथाख्यात चारित्रको अंकूर।

इहा कोऊ उटक्ना करतु है,—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपणो अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहुस्यो निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपणो सो निर्जरा यह हम मानी। चारित्रकी विशुद्धतामा निर्जरा कैसे? यह हम नाहीं समुझी—ताको समाधान,—

सुनि भैया! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसा कहिये-सो थिरता जथाख्यातको अंश है तातैं विशुद्धतामें शुद्धता

निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथो—वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध २ उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभंगी साधी।

❀ इति निमित्तउपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका ❀

❀ इष्टोपदेश ❀

(श्री पूज्यपादस्वामी विरचित)

मंगलाचरण—

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने॥ १ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कर्मोंके अभाव हो जाने पर जिन्हें स्वयं ही स्वभावकी प्राप्ति हो गई है उस सम्यग्ज्ञानरूप परमात्मा के लिये नमस्कार होओ॥ १ ॥

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता॥ २ ॥

अर्थ—योग्य (कार्यके उत्पादन करनेमें समर्थ) उपादान कारणके संयोगसे जैसे पाषाण विशेष (जिसमें सुवर्ण

न्यु लागि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कह्यौ
ताको ब्यौरो—सम्यक्रूप ज्ञानधारा विशुद्धरूप चारित्रधार
दोऊधारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसौं, ज्ञानकी शुद्धत
क्रियासो क्रियाकी शुद्धता। जो विशुद्धतामें शुद्धता है तौ जथा
ख्यातरूप होत है। जो विशुद्धता मैं ता न होती तौ ज्ञान गुण
शुद्ध होते क्रिया अशुद्ध रहती,केवली विषै, सो यौं तौ नहीं
तामें शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई। इहा कोई कहैग
कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो,यौं नाही
कोउ गुन काहू गुनके सारे नहीं, सब असहायरूप है
और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती त
अशुद्धताकी एती शक्ति नाही जु मोक्षमार्गको चल ता
विशुद्धतामें जथाख्यातको अंश है ताते वह अंश क्रम क
पूर्ण भयौ। ए भइया उटकनहारे—तै विशुद्धताम शुद्धत
मानी कि नाहीं ? जो तौ मै मानी तौ,कछु और कहिवे
कार्य नाहीं। जो तै नाहीं मानी तौ तेरौ द्रव्य याको भाति
कौ परनयौ है हम कहा करि है जो मानी तौ स्याबासि
यो तौ द्रव्याथिककी चौभगी पूरन भई।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अब पर्यायार्थिककी चौभगी सुनौ एक तौ वक्ता अज्ञा
नी, श्रोता भी अज्ञानी, सो तौ निमित्त भी अशुद्ध उप
दान भी अशुद्ध। दूसरो,वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी

निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध। तीसरे वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध। चौथे-वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध २ उपादान भी शुद्ध। यह पर्यायार्थिककी चौभंगी मानी।

❀ इति निमित्तउपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका ❀

इष्टोपदेश

(श्री पूज्यपादस्वामी विरचित)

मंगलाचरण —

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः ।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ॥ १ ॥

अर्थ—संपूर्ण कर्मोंके अभाव हो जाने पर जिन्हें स्वयं ही स्वभावकी प्राप्ति हो गई है उस सम्यग्ज्ञानरूप परमात्मा के लिये नमस्कार होओ ॥ १ ॥

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता ।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता ॥ २ ॥

अर्थ—योग्य (कार्यके उत्पादन करनेमें समर्थ) उपादान कारणके संयोगसे जैसे पाषाण विशेष (जिसमें सुवर्ण-

...उसकी योग्यता पाई जाती है। स्वर्ण बन जाता ... उत्तम द्रव्य क्षेत्रादिरूप सामग्रीकी प्राप्ति हो ... जीव (संसारी आत्मा) भी चैतन्यस्वरूप आत्मा ... जाता है। अर्थात् संसारी प्राणी जीवात्मासे परमात्मा ... जाता है॥ २॥

विशेष-उपादान=(उप+आदान) उपका अर्थ समीप है और आदान का अर्थ ग्रहण होना है। जिस पदार्थके समीपसे कार्यका ग्रहण हो वह उपादान है। अर्थात् वस्तुकी निजकी शक्ति। और उस समय जो परपदार्थके अनुकूल उपस्थिति हो सो निमित्त है।

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्बत नारकं।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्॥ ३॥

अर्थ-व्रतोंके द्वारा देवपद प्राप्त करना अच्छा है, किन्तु अव्रतोंके द्वारा नरकपद प्राप्त करना अच्छा नहीं है। छाया और धूपमें बैठने वालोंमें जैसे महान् अन्तर पाया जाता है ठीक वैसे ही व्रत और अव्रतके आचरण करने वालोंमें महान अंतर है।

विशेष—अशुभभावोंकी अपेक्षा शुभ भाव करना अच्छा है, परंतु शुद्धभावकी दृष्टिसे दोनों ही हेय हैं।

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी ।
यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति ॥ ४ ॥

अर्थ—जो आत्मपरिणाम मोक्ष प्रदान करता है उस मोक्ष देनेमें समर्थ आत्मपरिणामके लिए स्वर्ग कितनी दूर है ? देखो, जो अपने भारको दो कोस तक शीघ्रताके साथ लेजा सकता है तो क्या वह अपने भारको आधा कोस ले जाते हुए खिन्न होगा ? नहीं। अर्थात् जिससे महान फल की प्राप्ति हो सकती है उससे अल्पफल का प्राप्त हो जाना तो स्वाभाविक ही है।

हृषीकजमनातंकं दीर्घकालोपलालितं ।
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव ॥५॥

अर्थ—स्वर्गमें निवास करनेवाले देवोंका स्वर्गीय सुख सर्वांगीण हर्ष देने वाला आतंक रहित और दीर्घ (सागरोपम) काल तक बना रहने वाला होता है। अधिक क्या कहें, स्वर्गमें निवास करनेवाले देवोंको सुख स्वर्गवासी देवोंके समान ही हुआ करता है। अर्थात उस सुखकी उपमा किसी दूसरेकी नहीं दी जा सकती है, वह सुख अनुपमेय है।

फिर मोक्षसुख चाहनेसे क्या लाभ ? उत्तर।

वासनामात्रमेवैतत्सुखं दुःखं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते भोगा रोगा इवापदि ॥ ६ ॥

अर्थ-संसारी देहधारियोंका यह सुख और दुःख मात्र वासनाजन्य ही है। क्योंकि आपत्तिके समयमें ये भोग रोगोंके समान आकुलता देने वाले होते हैं।

संसारी जीव इस सुखदुःखको वासनाजन्य ही क्यों नहीं मानते ? उत्तर।

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः ॥ ७ ॥

अर्थ-मोहसे ढका हुआ ज्ञान पदार्थोंके वास्तविक स्वरूपको वैसे ही नहीं जान पाता है जैसे मद पैदा करने वाले कोदो धानके खानेसे मतवाला आदमी पदार्थोंको ठीक२ रूपसे नहीं जान पाता है।

मूढ प्राणी वस्तुस्वरूप कैसे लखता है ? उत्तर।

वपुर्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ-शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र और शत्रु आदि

सभी हरक प्रकारसे आत्मस्वभावसे भिन्न स्वभाववाले ही हैं परंतु मूढ (मोही) जीव इन्हें आत्मा व आत्माके मानता है।

बाह्य पदार्थोंका सयोग कैसा है? उत्तर।

दिग्देशेभ्य खगा एत्य संवसंति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ॥ ९ ॥

अर्थ–भिन्न२ दिशाओं व देशोंसे उड उड़कर आते हुए पक्षिगण वृक्षोंपर (रातके समय) बसेरा करते हैं और (सवेरा होनेपर) अपने२ कार्यके वशसे भिन्न भिन्न दिशाओं व देशोंमें उड़ जाते हैं।

विशेष–ठीक पक्षिगणके समान ही संसारी जीवोंकी दशा है। अपने२ कर्मोंके वश भिन्न२ गतियोंसे आकर अपनी आयुपर्यंत उनका सयोग हो जाता है और अंतमें अपने२ कर्मानुसार भिन्न२ स्थानोंमें चले जाते हैं फिर इनमें आत्मीय बुद्धि करनेसे क्या लाभ?

विराधक कथं हन्त्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते ॥ १० ॥

अर्थ–स्वयं विराधना करनेवाला प्राणी (वर्तमानमें) अपनेको मारनेवालेके प्रति क्यों कुपित होता है? अरे! जो

...सा ... ऊरा वचरा आदिके समेटनेके कामम आने वाले ... परासे गिरता है वह स्वय दण्डके द्वारा गिरा दिय ... है अथात् अपकारका फल अपकार ही है कि ... पर दुषित होनेसे क्या लाभ ?

... द्वेष करनेसे क्या हानि होती है ? उत्तर।

रागद्वेषद्वयीदीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा ।

अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ॥ ११ ॥

अर्थ–अज्ञानवश यह संसारी जीव रागद्वेषरूपी दो लम्बी डोरियोकी खींचातानीसे संसाररूपी समुद्रमें चिरकाल तक भ्रमण करता रहता है । अर्थात् रागद्वेषको छोडे बिना संसारसे छुटकारा नहीं मिल सकता ।

विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिवाह्यते ।

यावत्तावद्भवन्त्यन्या प्रचुरा विपदः पुरः ॥ १२ ॥

अर्थ–संसाररूपी पैरसे चलाये जानेवाले दु खरूप घटीयत्रमें जबतक लक्ष्मी सरीखी एक विपत्ति भुगतकर तय की जाती है तबतक उसी समय दूसरी २ बहुतसी विपत्तियाँ सामने आ उपस्थित हो जाती हैं अथ संसार दु खोका समुद्र है ।

[illegible] ।

[illegible] मणिषा ॥१३॥

[illegible] पीते [illegible]
उसको [illegible] आप ठीक
उसी [illegible] जिनका कि उपार्जन
करना [illegible] जो रक्षा करते भी
नष्ट हो [illegible] अपने आपको
सुखी [illegible] मानना वस्तुतः भूल है ।

[illegible] नचत ।
[illegible] ॥ १४ ॥

[illegible] चलते हुए हिरणसम
[illegible] मनुष्यके
समान [illegible] तरह अपने ऊपर
आनेवाला [illegible] है ।

[illegible] निर्गमम् ।
[illegible] सुतरां धनम् ॥ १५ ॥

अर्थ—[illegible] आयुके चयका कारण है
[illegible] ([illegible]) बढ़नेका कारण है

... जीनेको चाहने वाले धनियोंको अपने जीवन से ... धन प्यारा है।

भावार्थ—धनी चाहता है कि जितना काल बीत जायगा ... ब्याजकी आमदनी बढ़ जायगी। परन्तु साथ ही ... विचार नहीं करता कि जितना काल बीत जायगा उतनी ही मेरी आयु घट जायगी। धनवृद्धिकी यह मूढ़ता उसे जीवनके विनाशकी ओर तनिक भी लक्ष्य नहीं होने देती। फलतः धनियोंको प्राणोंकी अपेक्षा धन अधिक प्यारा है।

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं स पंकेन स्नास्यामीति विलिम्पति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो निर्धन पुण्यप्राप्तिके लिये दान करनेके निमित्त से धन कमाता या जोड़ता है वह "स्नान कर लूंगा" ऐसे विचारसे अपने शरीरको कीचड़में लिप्त करता है।

आरम्भे तापकान्प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।
अंते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः ॥१७॥

अर्थ—आरम्भमें तापके कारण और प्राप्त होनेपर अतृप्तिके करनेवाले तथा अंतमें बड़ी कठिनाइयों व प्रयत्नों

से भी नहीं छोड़े जा सकनेवाले भोगोपभोगोंको कौन विद्वान् (ज्ञानी) आसक्ति साथ सेवन करेगा ?

विशेष—"भोग और उपभोगके लिये धन साधन है" ऐसा जो विचार करते हैं उन्हें सावधान करनेके हेतु ऊपर भोगोपभोगोंका यथार्थ स्वरूप दर्शाया है।

शरीरकी सेवामें रत रहनेवालोंको शरीरका यथार्थ स्वरूप दर्शाते हैं —

भवति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥ १८ ॥

अर्थ—जिस शरीरके सम्बन्धसे प्राप्त होकर पवित्र भी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं एवं वही शरीर हमेशा अपायों (उपद्रवों तथा विनाशों) करके सहित है अतः उसके लिये भोग और उपभोगोंकी चाहना वृथा है।

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकं।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम् ॥ १९ ॥

अर्थ—जो (साधन) जीव (आत्मा) का उपकार करनेवाले हैं वे (उन्हीं साधनों-द्वारा) शरीरका अपकार (बुरा) करनेवाले होते हैं। जो वस्तुएँ शरीरका उपकार

... हैं वही वस्तुएँ आत्माका अहित करनेवाली होती ... इनादिकके द्वारा आत्माका लेशमात्र भी उपकार ... उसका उपकारक तो मात्र धर्मानुष्ठान ...

... तामणिर्दिव्य इत पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः ॥ २० ॥

अर्थ—ध्यानद्वारा दिव्य चिन्तामणि भी मिल सकती है और खलीके टुकडे भी मिल सकते हैं। जब कि ध्यानद्वारा दोनों ही मिल सकते हैं तब विवेकी (ज्ञानी) लोग किस ओर आदरबुद्धि करेंगे? अर्थात् इसलोक सम्बन्धी सुखाभिलाषा छोडकर आत्मस्वरूप प्राप्तिके लिये ही आत्माका ध्यान करना चाहिये।

आत्माका स्वरूप —

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः ।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥ २१ ॥

अर्थ—आत्मा लोकालोकको देखने जाननेवाला, अनन्तसुख स्वभाववाला, शरीरप्रमाण, नित्य एवं स्वसंवेदन द्वारा तथा योगिजनोंद्वारा अच्छी तरह अनुभवमें आया हुआ है।

आत्मध्यान करनेका उपायः—

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः ।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ॥२२॥

अर्थ–इन्द्रियसमूहको संयमद्वारा वशमें करके तथा मनकी एकाग्रताद्वारा आत्मवान् पुरुष आत्मामें ही स्थित आत्माको आत्माके द्वारा (स्वसंवेदन–ज्ञानद्वारा) ध्यावे ।

आत्माकी उपासनासे लाभ —

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः ।
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः ॥ २३ ॥

अर्थ–ज्ञानरहित शरीरादिककी सेवा तथा मिथ्याज्ञानी कुगुरु आदिककी सेवा अज्ञानको देती है और ज्ञानस्वभाव आत्मा सेवा तथा आत्मज्ञानसम्पन्न सुगुरुओंकी सेवा ज्ञान (आत्मबोधरूप) को देती है । "जिसके पास जो कुछ होता है वह वही उसीको देता है" यह बात लोकमें सुप्रसिद्ध है ।

स्वात्मध्यानका फल —

परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी ।
जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा ॥ २४ ॥

... आत्मध्यानद्वारा लीन हो जानेके कारण ... परीषहादिककी बाधाका तनिक भी ... आगमनरूप आस्रवको रोक देने- ... कर्मनिर्जरा होती है।

... कर्ताहमिति सम्बधः स्याद्द्वयोर्द्वयो।
... ध्येय यदात्मैव सम्बधः कीदृशस्तदा ॥ २५ ॥

अर्थ—"मैं चटाईका बनानेवाला हूँ" इस प्रकार का ... पृथक्पृथक् दो पदार्थोंमें हुआ करता है। जहाँ ध्यान, ... और ध्याता आत्मा ही है वहाँ सम्बध कैसा?

बध्यते मुच्यते जीव सममो निर्मम क्रमात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्मम[illegible] विचिन्तयेत् ॥ २६ ॥

अर्थ—मोही जीव बधता है और निर्मोही जीव मुक्त होता है। अत हरएक प्रयत्नसे निर्ममताका ही विशेषरूपसे चिंतवन करे।

निर्मोही होनेका उपाय —

एकोऽहं निर्मम शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचर।
बाह्या संयोगजा भावा मत्त सर्वेऽपि सर्वथा ॥ २७ ॥

अर्थ—मैं एक, मोहरहित, शुद्ध, ज्ञानी तथा योगीन्द्रोंके द्वारा जानने योग्य हूँ। संयोगजन्य सभी भाव मुझसे सर्वथा भिन्न हैं।

'निर्मोहीकी भावना'—

दु खसन्दोहभागित्वं संयोगादिह देहिनाम् ।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ २८ ॥

अर्थ—इस संसारमें देहादिकके संबंधसे देहधारियोंको दु खसमूह भोगना पडता है अत मन, वचन, कायद्वारा इस समस्त संबंधको छोडता हूँ।

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा ।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ॥ २९ ॥

अर्थ—मेरी मृत्यु नहीं होती तब मुझे भय किसका? मुझे व्याधि नहीं होती तब पीडा कैसे? न मैं बालक हूँ, न बूढा हूँ और न जवान हूँ, ये सब दशाएँ पुद्गलमें ही पाई जाती हैं।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥ ३० ॥

अर्थ—मोहद्वारा मैंने समस्त ही पुद्गलोंको बारबार भोगकर छोड दिया। जूठनके समान अब उन पदार्थोंमें मुझ ज्ञानीको क्या चाहना हो सकती है? अर्थात् उनमें मेरी चाहना नहीं हो सकती।

...स्पृहितामभि जीवो जीवहितस्पृह ।
...न स्वार्थं को वा न वाञ्छति ॥ २१

...-कर्म, कर्मका हित चाहते हैं और जीव, जीव
...ता है। सो ठीक ही है अपने २ प्रभावके रहने
...न स्वार्थको नहीं चाहता ?

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव ।
उपकुर्वन् परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत् ॥ ३०

अर्थ–पर (देहादिक) का उपकार करना छोड
अपना (आत्माका) उपकार करनेमें तत्पर हो जाओ
बाहिय इन्द्रियोंके द्वारा दिखाई देते हुए देहादिकोंका उप
करते हुए तुम अज्ञ हो रहे हो। जिस प्रकार संसारी लोग अ
उपकार करनेमें लगे रहते हैं उसी प्रकार तुम भी आ
उपकार (स्वाधीन शुद्ध बनानेरूप आत्मोपकार) कर
तत्पर हो जाओ।

भेदविज्ञानका लाभ –

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरांतरं ।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरंतरम् ॥३

अर्थ–जो गुरुके उपदेशसे और उस उपदेशके अभ्यास
ज्ञानके द्वारा अपने और परके अंतरको (स्वात्माको

देहादिकसे भिन्न) जानता देखता है वह सदैव मोक्षसुखको अनुभवन करता रहता है।

स्वस्मिन् सद (दा) भिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वत ।
स्वय हित (त)प्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मन ॥३४॥

अर्थ–स्वय आत्मकल्याणका अभिलाषी होनेसे, चाहे हुए हितके-उपायोंको जतलाने वाला होनेसे और आत्महितम प्रवृत्ति करानेवाला होनेसे यह आत्मा स्वय ही आत्माका गुरु है।

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।
निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥ ३५ ॥

अर्थ–जिस जीव के अन्दर तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी निजी योग्यता नहीं है ऐसा जीव (अयोग्य अभव्य आदिक जीव) तत्त्वज्ञानको (धर्माचार्यादिकाके सहस्रा उपदेशाके मिलनेसे भी) नहीं प्राप्त कर सकता है, इसी तरह तत्त्वज्ञानी जीव अज्ञत्वको प्राप्त नहीं कर सकता। अन्य (साधन सामग्री) सभी केवल निमित्तमात्र है। जैसे गतिरूप कार्योंमें धर्मास्तिकाय मात्र उदासीन कारण है। अर्थात् कार्यके उत्पादनादिमें द्रव्यकी निजी योग्यता ही साक्षात साधक होती है, अवशिष्ट सभी सामग्री मात्र निमित्त होती है।

रागादित्तविनिप एकात तत्त्वसस्थित ।
तत्त्वम्वद्गतियोगी योगी तत्त्व निनाभन ॥ ३६॥

अर्थ—नहीं उत्पन्न हो रह हैं रागादि विक्षेप विकल्प- लमें जिनके तथा (हेय उपादेय) तत्त्वमें (गुरुके उप- देशसे) जिनकी बुद्धि स्थिर हो गई है अर्थात् जो आम- स्वरूपमें स्थित है ऐसा योगी सावधानी पूर्वक एकान्त स्थानमें अपने आत्मस्वरूपका अभ्यास करे।

यथा यथा समायाति सवित्ती तत्त्वमुत्तमम् ।
तथा तथा न रोचते विषया सुलभा अपि ॥ ३७ ॥

अर्थ—ज्यों ज्यों (योगीको) स्वानुभवरूप सवेदनमें उत्तम तत्त्वरूप विशुद्ध आत्माका अनुभवन होता जाता है त्यों त्यों उस योगी को सुलभतासे प्राप्त होनेवाले भी (रमणीक इन्द्रिय) विषय रुचिकर नहीं लगते ।

यथा यथा न रोचते विषया सुलभा अपि ।
तथा तथा समायाति सवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

अर्थ—ज्यों ज्यों आसानीसे प्राप्त होनेवाले भी (रमणीक इन्द्रिय) विषय भोगोंके प्रति अरुचि होती जाती है। त्यों त्यों निजात्मानुभवनरूप सवेदनमें उत्तम तत्त्वरूप विशुद्ध आत्मा का अनुभव वृद्धिको प्राप्त होता रहता है ।

निशामयति निःशेषमिंद्रजालोपमं जगत् ।
स्पृहयत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते ॥ ३९ ॥

अर्थ—(निजात्मानुभवनरूप संवेदनमें आनंद लेने वाला योगी) समस्त संसारको इन्द्रजालके समान देखता है, आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये अभिलाषा करता है और अपनी आत्माको छोड़कर किसी अन्य विषयमें चित्तपरिणतिके प्राप्त हो जानेपर (हा ! यह मैंने कितना आत्मा का अहित कर डाला, इत्यादिरूप) पश्चात्ताप करता है।

इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः ।
निजकार्यवशात्किंचिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम् ॥ ४० ॥

अर्थ—निर्जनताको चाहनेवाला योगी एकान्तवासको चाहता है और अपने कार्यके वशसे कुछ कहकर भी उसे उसी क्षण भूल जाता है।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति ।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४१ ॥

अर्थ—अपने आत्मस्वरूपमें स्थित योगी बोलते (धर्मादिका व्याख्यान करते) हुए भी नहीं बोलता, चलते हुए भी नहीं चलता और देखते हुए भी नहीं देखता है। अर्थात् आत्मस्वरूपमें स्थित योगीकी आत्मस्वरूपको छोड़

कर और सभी क्रियाएँ अनासक्तिपूर्वक हैं अत नहीं होने के समान हैं।

किमिदं कीदृशं कस्य कस्मात्क्वेत्यविशेषयन् ।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ॥ ४२ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपमें समरसीभावको प्राप्त हुआ योगी यह क्या है? कैसा है? किसका है? क्यों है? कहाँ है? इत्यादिक विकल्पोंको न करता हुआ अपने शरीर तकको भी नहीं जानता है।

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम् ।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ॥ ४३ ॥

अर्थ—जो जहाँ निवास करने लग जाता है वह वहाँ रमने लग जाता है और जो जहाँ रमने लग जाता है वह वहाँसे दूसरी जगह नहीं जाता है।

विशेष—ऊपर सामान्य नीति बतलाई है जो सभी पर समानरूपसे लागू होती है। इसलिये समझो कि निरा-स्मरत योगीको आत्मामें लौ लग जानेसे जब अननुभूत और अपूर्व आनन्दका अनुभव प्राप्त होने लगता है तब वह उस अपूर्व आनन्दका रसास्वादन छोड़ अन्यत्र नहीं जाता है।

अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते ।
अज्ञाततद्विशेषस्तु बद्धयते न विमुच्यते ॥ ४४ ॥

अर्थ—स्वात्मतत्त्वमें स्थिर हुआ योगी स्वात्मासे भिन्न शरीरादिकी सुन्दरता असुन्दरता आदि विशेषोंसे अन भिज्ञ हो जाता है और जब उनके विशेषोंको नहीं जानता तब उनमें रागद्वेष पैदा न होनेके कारण वह बंधको प्राप्त नहीं होता बरन् कर्मोंसे छूटता है

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम् ।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ॥ ४५ ॥

अर्थ—पर पर ही है अतः (उसे आत्मा या आत्माके मान लेनेसे) उससे दुःख होता है और आत्मा आत्मा ही है अतः उससे सुख होता है। इसीलिये महात्माओंने आत्माके स्वरूपमें स्थिर होनेके लिये ही अप्रमत्त हो उद्यम किया है।

परद्रव्योंमें अनुराग करनेका फलः—

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनंदति तस्य तत् ।
न जातु जंतोः सामीप्यं चतुर्गतिषु मुंचति ॥ ४६ ॥

अर्थ—जो अज्ञानी जीव पुद्गलद्रव्यका स्वागत करता है अर्थात् [illegible] आनन्द लाता है तब वह पुद्गलद्रव्य उस

जीवको चारों गतियोंमें कभी भी नहीं छोड़ता है।

आत्मनिष्ठ रहनेका फल —

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहि स्थिते ।
जायते परमानन्द कश्चिद्योगेन योगिन ॥ ४७ ॥

अर्थ—आत्मस्वरूपमें स्थित रहनेवाले तथा प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण व्यवहारसे बाह्य दूर स्थित रहनेवाले योगी पुरुषके आत्मयोगद्वारा वचनातीत परमानन्द उत्पन्न होता है।

परमानन्दप्राप्तिका फल —

आनन्दो निर्दहत्युद्ध कर्मेन्धनमनारत ।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दु खेष्वचेतन. ॥ ४८ ॥

अर्थ—जिस प्रकार अग्नि ईंधनको जला डालती है उसी प्रकार आत्मजन्य परमानन्द कर्मसन्ततिको जला डालता है और वह परमानन्दप्राप्त योगी (आनन्दमें मग्न रहनेके कारण) बाहिरी दु खोंके अनुभवसे रहित हो जाता है फलत खेदको प्राप्त खेदको प्राप्त नहीं होता है।

अविद्याभिदुर ज्योति पर ज्ञानमय महत् ।
तत्प्रष्टव्य तदेष्टव्य तद्द्रष्टव्य मुमुक्षुभि ॥ ४९ ॥

अर्थ–अज्ञानको नष्ट करनेवाली महान् उत्कृष्ट ज्ञानमयी ज्योति है। सो मोक्षार्थियोंको उसीके विषयमें पूछना

चाहिये, उसीकी अभिलाषा करनी चाहिये और उसे ही अनुभवमें लाना चाहिये।

तत्त्वका सार —

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः ।
यदन्यदुच्यते किंचित् सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ॥५०॥

अर्थ—जीव पृथक् है और पुद्गल पृथक् है, बस इतना ही तत्त्वके कथनका सार है। इसके सिवाय जो कुछ भी कहा जाता है वह सब इसी का ही विस्तार है।

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य ।
मुक्ताग्रहो विनिवसन्सजने वने वा
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः ॥५१॥

अर्थ—इस प्रकार "इष्टोपदेश" (मोक्षसुख [illegible] कारणभूत आत्मप्रधान सदुपदेश) को [illegible] यन चिन्तन कर, हिताहितकी परीक्षा [illegible] प्राणी, आत्मज्ञानसे मान अपमानमें रागद्वेषरूप [illegible] ममता का विस्तार कर छोड़ दिया है [illegible] मेरेपनका हठाग्रह जिसने ऐसा होकर [illegible] पूर्वक रहता हुआ निरुपम मोक्षलक्ष्मी [illegible] है।

॥ इति ॥

परमानन्द स्तोत्र

भाषानुवाद सहित ।

परमानन्दसंयुक्तं, निर्विकारं निरामयम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम् ॥१॥

अर्थ—परमानन्द युक्त, विकाररहित, रोगोंसे मुक्त और (निश्चयनयसे) अपने शरीर में ही विराजमान परम त्माको ध्यानहीन पुरुष नहीं देखते हैं ।

अनंतसुखसंपन्नं, ज्ञानामृतपयोधरम् ।
अनंतवीर्यसंपन्नं, दर्शनं परमात्मनः ॥ २ ॥

अर्थ—अनंतसुखसे परिपूर्ण, ज्ञानरूपी अमृतसे भरे हु समुद्रके समान और अनन्तबल युक्त परमात्माके स्वरूप ही अवलोकन करना चाहिये ।

निर्विकारं निराबाधं सर्वसंगविवर्जितम् ।
परमानन्दसम्पन्नं, शुद्धचैतन्यलक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—विकारोंसे रहित, बाधाओंसे मुक्त, सम्पूर्ण प ग्रहोंसे शू य और परमानन्द विशिष्ट शुद्ध (केवलज्ञानरू चैतन्य ही (परमात्माका) लक्षण जानना चाहिये ।

उत्तमा स्वात्मचिंता स्यान्मोहचिंता च मध्यमा ।
अधमा कामचिंता स्यात्, परचिंताऽधमाधमा ॥४॥

अर्थ-अपनी आत्माके (उद्धारकी) चिंता करना उत्तम चिंता है, शुभरागवश (दूसरे जीवोंके भले करनेकी) चिंता करना मध्यम चिंता है, काम भोगकी चिंता करना अधम चिंता है और दूसरोंके (अहित करनेका) विचार करना अधमसे भी अधम चिंता है।

निर्विकल्पसमुत्पन्न ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमञ्जुलिं कृत्वा, तत्पिबन्ति तपस्विनः ॥ ५ ॥

अर्थ—संकल्पविकल्पोंको नाश करनेसे समुत्पन्न जो ज्ञानरूपी सुधारस उसको तपस्वी महात्मा ज्ञानरूपी अंजुलिसे पीते हैं।

सदानन्दमयं जीवं यो जानाति, स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ-जो पुरुष सदा ही परमानन्दविशिष्ट आत्माको जानता है वही (वास्तवमें) पंडित है और वही पुरुष परमानन्दकी कारणभूत अपनी आत्माकी सेवा करता है।

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः ॥ ७ ॥

अर्थ—जैसे कमलपत्रके उपर पानीकी बूंद कमलसे सदा ही भिन्न रहती है, उसी प्रकार यह निर्मल आत्मा

शरीरके भीतर रहकर भी स्वभावकी अपेक्षा शरीरसे सदा भिन्न ही रहता है। अथवा सांगोपांग शरीरके भीतर रहकर भी शरीरजन्य रागादि मलोंसे सदा अलिप्त रहता है।

द्रव्यकर्ममलैर्मुक्तं भावकर्मविवर्जितम् ।
नोकर्मरहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः ॥ ८ ॥

अर्थ—इस चैतन्य आत्माका स्वरूप निश्चयनयसे ज्ञानावरणादिरूप द्रव्यकर्मोंसे रहित, रागद्वेषादि भावकर्मोंसे शून्य और औदारिकादि शरीररूप नोकर्मोंसे पृथक् जानो।

आनन्दं ब्रह्मणोरूपं, निजदेहे व्यवस्थितम् ।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम् ॥९॥

अर्थ—जैसे जन्मांध पुरुष सूर्यको नहीं जानता है वैसे ही शरीरके भीतर स्थित परमात्माके आनन्दमय स्वरूपको ध्यानहीन पुरुष नहीं जान पाते हैं।

तद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते ।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं चिच्चमत्कारलक्षणम् ॥१०॥

अर्थ—जिस ध्यानके द्वारा यह चंचल मन स्थिर होकर परमानन्द स्वरूपमें विलीन (मग्न) हो जाता है वही ध्यान (मोक्षके इच्छुक) भव्य जीव करते हैं तथा उसी समय चैतन्यचमत्कारमात्र शुद्ध परमात्माका साक्षात् दर्शन होता है।

ये ध्यानशीला मुनय प्रधाना ,स्ते दुखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्र परमात्मतत्त्वम्, व्रजन्ति मोक्ष क्षणमेकमेव ॥११

अर्थ—उत्तम ध्यान करने वाले जो मुनि हैं वे निय मसे सभी दु खासे छूट जाते हैं तथा शीघ्र ही परमात्मपद को प्राप्त करके (और बादमें अयोगकेवली होकर) क्षण मात्रमें ही मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ११ ॥

आनन्दरूप परमात्मतत्त्व, समस्तसकल्पविकल्पमुक्त ।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्य, जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वम् ॥ १२ ॥

अर्थ—निज स्वभावमें लीन हुए मुनि ही परमात्माके समस्त सकल्प विकल्पोंसे रहित परमानदमय स्वरूपमें निर तर तन्मय रहते हैं। और इस प्रकारके योगी महात्मा ही परमात्म स्वरूपको स्वय जानते हैं ॥ १२ ॥

परमात्माका स्वरूप ।

चिदानन्दमय शुद्ध निराकार निरामय ।
अनन्तसुखसम्पन्न सर्वसगविवर्जितम् ॥ १३ ॥
लोकमात्रप्रमाणोऽय निश्चये न हि सशय ।
व्यवहारे तनूमात्र कथित परमेश्वरै ॥ १४ ॥

अर्थ—श्री सर्वज्ञदवने परमात्माका स्वरूप चिदानन्दमय,

शुद्ध, स्पर्शादि पाषाणसे रहित, अनेक प्रकारके रोगोंसे नाथा श्राप्त अनन्तगुण विशिष्ट व सर्व परिग्रह रहित बता गया है। निश्चयनयसे आत्माका आकार लोकाकाशके प्रमाण असंख्यातप्रदेशी तथा व्यवहारनयसे प्राप्त छोटे व बड़े शरीरके समान बताया है ॥ १३ । १४ ॥

यत्रा दृश्यते शुद्ध तत्क्षण गतविभ्रम ।
स्वस्थचित्त स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधिना ॥ १५ ॥

भाव—इस प्रकार ऊपर कहे हुए परमात्माके शुद्ध स्वरूपको योगीपुरुष जिस समय निर्विकल्पसमाधि द्वारा जान लेता है, उसी समय उस योगीका चित्त आकुलता-रहित स्थिर होता है और अज्ञानका नाश हो जाता है ॥१५॥

स एव परम ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गव ।
स एव परमं तत्त्व, स एव परमो गुरु ॥ १६ ॥
स एव परम ज्योति, स एव परम तप ।
स एव परम ध्यान, स एव परमात्मन ॥ १७ ॥
स एव सर्वकल्याण, स एव सुखभाजन ।
स एव शुद्धचिद्रूप, स एव परम शिव ॥ १८ ॥
स एव परमानन्द, स एव सुखदायक ।
स एव परचैतन्य, स एव गुणसागर ॥ १९ ॥

अर्थ—वह परमध्यानी योगी मुनि ही परमब्रह्म, कर्मों को जीतनेसे जिन, शुद्धरूप हो जानेसे परम आत्मतत्त्व, जगतमात्रके हितका उपदेशक हो जानेसे परमगुरु, समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले ज्ञानसे युक्त हो जानेसे परम-ज्योति, ध्यान ध्याताके अभेदरूप हो जानेसे शुक्लध्यानरूप परमध्यान, व परम तपरूप परमात्माके यथार्थ स्वरूपमय हो जाता है। वही परमध्यानी मुनिही सर्व प्रकारके कल्याणोंसे युक्त, परमसुखका पात्र, शुद्ध चिद्रूप, परम शिव कहलाता है और वही परमानंदमय, सर्व सुखदायक, परम चैतन्य आदि अनन्त गुणोंका समुद्र हो जाता है ॥ १६ । १७ । १८ । १९ ॥

परमाल्हादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम् ।
अर्हन्तं देहमध्ये तु, यो जानाति स पण्डितः ॥२०॥

अर्थ—परम आह्लादयुक्त, रागद्वेषरहित अरहन्तदेवको जो ज्ञानी पुरुष अपने देहरूपी मन्दिरमें विराजमान देखता व जानता है, वस्तुतः वही पुरुष पंडित है ॥ २० ॥

आकाररहितं शुद्धं, स्वस्वरूपव्यवस्थितम् ।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरञ्जनम् ॥ २१ ॥

अर्थ—आकाररहित, शुद्ध, निज स्वरूपमें विराजमान, विकाररहित, कर्ममलसे शून्य और क्षायिक सम्यग्दर्शनादि

गुणोंसे सहित सिद्धपरमेष्ठियोंके स्वरूपका चिन्तवन करे ॥ २१ ॥

सिद्धसम निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे ।
सम्यग्ज्ञानचैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः ॥२२॥

अर्थ—सिद्धपरमेष्ठीके समान परमज्योतिस्वरूप केवलज्ञानादि गुणोंकी प्राप्तिके लिये जो पुरुष अपनी आत्माको परमात्ममय, चैतन्य चमत्कारयुक्त जानता है, वही वास्तवमें पंडित है ॥ २२ ॥

पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम् ।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः ॥ २३ ॥

काष्ठमध्ये यथा वह्नि, शक्तिरूपेण तिष्ठति ।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः ॥२४॥

अर्थ—जिस प्रकार सुवर्ण-पाषाणमें सोना, दूधमें घी और तिलोंमें तेल रहता है उसी प्रकार शरीरमें शिवरूप आत्मा विराजमान है। जैसे काष्ठके भीतर आग शक्तिरूप से रहती है उसी प्रकार शरीरके भीतर यह शुद्ध आत्मा विराजमान है। इस प्रकार जो समझता है वही वास्तवमें पण्डित है ॥ २३ ॥ २४ ॥

❀ इति ❀

❀ पंडितप्रवर टोडरमलजीकी रहस्यपूर्ण चिट्ठी ❀

॥ श्री ॥

सिद्ध श्री मुल्तान नग्र महाशुभस्थान विषै साधर्मी भाई अनेक उपमा योग्य अध्यात्मरस रोचक भाई श्री खानचन्दजी, गंगाधरजी, श्रीपालजी, सिद्धारथदासजी अन्य सर्व साधर्मी योग्य लिषत टोडरमल्लके श्री प्रमुख विनयशब्द अवधारना। यहाँ जिया सम्भव आनन्द है, तुम्हारे चिदानंद घनके अनुभवसे सहजानन्दकी वृद्धि चाहिए।

अपरञ्च पत्र १ तुम्हारो भाईजी श्रीरामसिंहजी भुवानीदासजीको आया था तिसके समाचार जहाना बादतैं और साधर्मियोंने लिखा था। सो भाईजी ऐसे प्रश्न तुम सारिषे ही लिखें। अवार वर्तमान कालमें अध्यात्मके रसिक बहुत थोडे हैं। धन्य हैं जे स्वात्मानुभवकी वाता भी करै हैं, सो ही कहा है —

श्लोक—तत्प्रतिप्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो, भाविनिर्वाणभाजनम्॥

अर्थ—जिहि जीव प्रीतिकर चित्तकर तत्त्वकी वात भी सुनी, सो जीव निश्चयकर भव्य है। अल्पकालविषै मोक्षका पात्र है। सो भाईजी तुम प्रश्न लिखे तिनका उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार

[illegible] है सो जानना। और अध्यात्म आगमकी चर्चागर्भित पत्र तो शीघ्र २ देवो करोगे। मिलाप कभी होगा तब होगा। अर निरन्तर स्वरूपानुभवमें रहना। श्रीरस्तु।

अब स्वानुभवदशाविषै प्रत्यक्षपरोक्षादिक प्रश्ननिके उत्तर बुद्धिअनुसार लिखिये है।

तहाँ प्रथम ही स्वानुभवका स्वरूप जानने निमित्त लिखिये है।

जीवपदार्थ अनादितैं मिथ्यादृष्टी है सो आपापरके यथार्थरूप विपरीत श्रद्धानका नाम मिथ्यात्व है। बहुरि जिस काल किसी जीवकै दर्शनमोहके उपशम, क्षयोपशम, क्षयतैं आपापरका यथार्थ श्रद्धानरूप तत्त्वार्थ श्रद्धान होय, तब जीव सम्यक्ती होय है। तातैं आपापरका श्रद्धानविषै शुद्धात्म श्रद्धानरूप निश्चयसम्यक्त्व गर्भित है। बहुरि जो आपापरका श्रद्धान नहीं है अर जिनमतविषै कहे जे देव, गुरु, धर्म तिनहीकूं माने है, वा अन्यमतविषै कहे देवादिक वा तत्त्वादि तिनको नहीं माने है तो ऐसे केवल व्यवहार सम्यक्तकरि सम्यक्ती नाम पावै नहीं। तातैं स्वपर भेदविज्ञानको लिए जो तत्त्वार्थश्रद्धान होय सो सम्यक्त जानना।

बहुरि ऐसे सम्यक्ती होते संते जो ज्ञान पंचेन्द्री, छट्ठा मनके द्वार, क्षयोपशमरूप मिथ्यात्वदशामें कुमति, कुश्रुति-

रूप होय रह्या था सोई ज्ञान अर मति श्रुतिरूप सम्यग्ज्ञान भया। सम्यक्ती जेता कछु जाने सो जानना सर्व सम्यग्ज्ञानरूप है।

जो कदाचित् घटपटादिक पदार्थनकूं अयथार्थ भी जानें तो यह आवरणजनित उदयकी अज्ञानभाव है सो क्षयोपशमरूप प्रकट ज्ञान है सो तौ सर्व सम्यग्ज्ञान ही है। जातें जानन विषै विपरीतरूप पदार्थनकौं न साधै है। सो यह सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानका अंश है। जैसे थोडासा मेघपटल विलय भये कछु प्रकाश प्रकटै है सो सर्व प्रकाशका अंश है।

जो ज्ञान मतिश्रुतिरूप प्रवर्तै है सो ही ज्ञान वधिता वधिता केवलज्ञानरूप होय सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा जाति एक है। बहुरि इस सम्यक्तीकै परिणामविषै सविकल्प निर्विकल्प रूप होय दो प्रकार प्रवर्ते तहाँ जो विषय कषायादिरूप वा पूजा, दान शास्त्राभ्यासादिकरूप प्रवर्तै है सो सविकल्परूप जानना।

यहाँ प्रश्न—

जो शुभाशुभरूप सम्यक्तका अस्तित्व कैसे पाइए?

ताका समाधान—जैसे कोई गुमास्ता साहूके कार्यविषै प्रवर्तै है, उस कार्यको अपना भी कहै है हर्षविषादको भी पावै है, तिस [illegible] है, तहाँ अपना और

माहूका ज्याईका नाहीं विचार है परंतु अंतरंग श्रद्धान ऐसा है कि यह सब कारज नाहीं। ऐसा कार्यकर्ता गुमास्ता साहूकार है।

जो साहूके धनकू चुराय अपना मानै तो गुमास्ता, चोर ही कहिए। तैसे कर्मजनित शुभाशुभरूप कार्यको करता तद्रूप परणाम है। तथापि अंतरंग ऐसा श्रद्धान है कि यह कार्य मेरा नाहीं। जो शरीराश्रित व्रत संयमको भी अपना मानै तो मिथ्यादृष्टि होय सो ऐसे सविकल्प परिणाम होय।

अब सविकल्पहीके द्वारकर निर्विकल्प परिणाम होनेका विधान कहिए है —

सो सम्यक्ती कदाचित् स्वरूप ध्यान करनेको उद्यमी होय है तहाँ प्रथम भेदविज्ञान स्वपरस्वरूपका करै नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म रहित चैतन्यचमत्कारमात्र अपना स्वरूप जानै, पीछैं परका भी विचार छूट जाय, केवल स्वात्मविचार ही रहै है। तहाँ अनेकप्रकार निजस्वरूपविषैं अहंबुद्धि धरै है। चिदानन्द हौं, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ, इत्यादिक विचार होते सते सहज ही आनन्दतरंग उठै है, रोमांच होय है, ता पीछे ऐसा विचार तो छूट जाय, केवल चिन्मात्र स्वरूप भासने लागै। तहाँ सर्व परिणाम उस रूपविषैं एकाग्र

होय प्रवत्त। दर्शन ज्ञानादिकका वा नय प्रमाणादिकका भी विचार विलय जाय।

चैतन्य स्वरूप जो सविकल्प तातैं निश्चय कियाथा तिसही विषै व्याप्यव्यापकरूप होय ऐसे प्रवर्त्तै जहां ध्याता ध्यायपनो दूर भयो सो ऐसी दशाका नाम निर्विकल्प अनुभव है। सो बडे नयचक्रविषै ऐसें ही कहा है –

गाथा।

तच्चाणेसण काले समयं बुज्झेदि जुत्तमो गएणो।
ण्णाराहणसमिरा पच्चक्खो अणुहवो जम्हा॥ १॥

अर्थ–तत्त्वका अवलोकनका जो काल ता विषै समय जो है शुद्धात्मा ताको जुक्ता जो नय प्रमाण ताकरि पहिलें जानें। पीछें आराधनसमय जो अनुभवकाल, तिहिविषै नय प्रमाण नाही है। जातैं प्रत्यक्ष अनुभव है। जैसे रत्नकी खरीदविषै अनेकविकल्प करै हैं, प्रत्यक्ष वाको पहरिये तब विकल्प नाहीं, पहिरनेका सुख ही है। ऐसे सविकल्पके द्वार निर्विकल्प अनुभव होय है।

बहुरि निर्विकल्प अनुभवविषै जो ज्ञान पंचेन्द्री, छट्ठा मनके द्वार प्रवत्त था सो ज्ञान सब तरफसौं सिमटकर केवल स्वरूप सन्मुख भया। जातै यह ज्ञान क्षयोपशमरूप है सो एक कालविषै एक ज्ञेयहीको जानै, सो ज्ञान स्वरूप

जाननेकी प्रवर्त्ती, तब अन्यका जानना सहज ही रह गया। तहां ऐसा दशा भई जो बाह्य विचार होंय तो भी स्वरूप जाननाका कछु सबर नाहीं, ऐसे मतिज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। बहुरि नयादिकके विचार मिटते श्रुतज्ञान भी स्वरूप सन्मुख भया। ऐसा वर्णन समयसारकी टीका आत्मख्याति विषै किया है तथा आत्मा अवलोकनादिक विषै है, इस ही वास्ते निर्विकल्प अनुभवको अतीन्द्रिय कहिए है, जातें इन्द्रीनको धर्म तो यह है जो फरस, रस, गन्ध वर्णको जान सो यहा नाहीं। अर मनका धर्म यह है जो अनेक विकल्प करे सो भी नाहीं, तातें जब जो ज्ञान इन्द्री मनके द्वार प्रवृत्त था सो ही ज्ञान अनुभवविषै प्रवर्त है तथापि ज्ञानको अतीन्द्रिय कहिये। बहुरि इस स्वानुभवको मन द्वार भया भी कहिये जातें इस अनुभवविषै मतिज्ञान श्रुतिज्ञान ही है, और कोई ज्ञान नहीं।

मतिश्रुत इन्द्री मनके अवलम्ब बिना होय नाहीं सो इन्द्री मनका तो अभाव ही है जातें इन्द्रियका विषय मूर्तीक पदार्थ ही है। बहुरि यहा मतिज्ञान है जातें मनका विषय मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ है, सो यहा मन सम्बन्धी परिणाम स्वरूपविषैं एकाग्र होय अन्य चिंताका निरोध करै है तातें याको मन द्वार कहिए।

"एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानम्" ऐसा ध्यानका भी लक्षण है, ऐसा अनुभवदशाविषें संभवै है। तथा नाटकके कवित्तविषें कहा है –

दोहा।

वस्तु विचारत भावतैं, मन पावै विश्राम।
रसस्वादत सुख ऊपजै, अनुभव याकौ नाम॥

ऐसे मन विना जुदा परिणाम स्वरूपविषें प्रवर्त्तै नाहीं तातैं स्वानुभव है सो मनजनित भी कहिए। सो अतेन्द्री कहने में अरु मनजनित कहनेमें कछु विरोध नहीं, विवक्षा भेद है।

बहुरि तुम लिख्या "जो आतमा अतेन्द्रिय है" सो अतेन्द्रि ही कर ग्रह्या जाय सो मन अमूर्तिकका भी ग्रहण करै है, जातैं मतिश्रुत ज्ञानका विषय सर्व द्रव्य कहे हैं। उक्तं च तत्त्वार्थसूत्रे—

"मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु।"

बहुरि तुमने "प्रत्यक्ष परोक्षका प्रश्न लिख्या" सो भाईजी, प्रत्यक्ष परोक्षके तौ भेद है नाहीं। चौथे गुणस्थान सिद्धसमान क्षायक सम्यक्त्व हो जाय है, तातैं सम्यक्त्व तौ केवल यथार्थ श्रद्धानरूप ही है, सो शुभाशुभ कार्यकर्त्ता भी रहै है तातैं तुमने जो लिख्या था कि "सम्यक्त्व प्रत्यक्ष है व्यवहार सम्यक्त्व परोक्ष है" सो ऐसा नाहीं है, सम्यक्त्वके

तौ ताके भेद हैं–तहाँ उपशम सम्यक्त अरु क्षायक सम्यक्त तो निर्मल हैं, जातें मिथ्यात्वके उदयकरि रहित है, अर क्षयोपशम सम्यक्त समल है। बहुरि इस सम्यक्तविषै प्रत्यक्ष परोक्ष भेद तौ नाहीं हैं।

क्षायकसम्यक्तकै शुभाशुभरूप प्रवर्तता वा स्वानुभवरूप प्रवर्तता सम्यक्तगुण तौ सामान्यही है तातें सम्यक्तके तौ प्रत्यक्ष परोक्ष भेद न मानना। बहुरि प्रमाणके प्रत्यक्ष परोक्ष भेद हैं सो प्रमाण सम्यग्ज्ञान है तातें मतिज्ञान श्रुतज्ञान तौ परोक्ष प्रमाण हैं। अवधि मन पर्यय केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। "आद्य परोक्ष प्रत्यक्षम यत्"ऐसा सूत्र कहा है तथा तर्कशास्त्रविषै ऐसा लक्षण प्रत्यक्ष परोक्षका कहा है–

"स्पष्टप्रतिभासात्मक प्रत्यक्षमस्पष्ट परोक्ष।"

जो ज्ञान अपने विषयकौ निर्मलतारूप नीकै जानै सो प्रत्यक्ष अर स्पष्ट नीकै न जानै सो परोक्ष, सो मतिज्ञान श्रुतज्ञानका विषय तौ घना परंतु एक ही ज्ञेयकौ सम्पूर्ण न जान सकै तातें परोक्ष है। और अवधि मन पर्ययके विषय थोरे हैं, तथापि अपने विषयको स्पष्ट नीकै जानै तातें एक देश प्रत्यक्ष है, अर केवल सर्व ज्ञेयकौं आप स्पष्ट जानै तातें सर्व प्रत्यक्ष है।

बहुरि प्रत्यक्षके दोय भेद हैं–एक परमार्थप्रत्यक्ष व्यवहारप्रत्यक्ष है। सो अवधि मन पर्यय केवल तौ स्पष्ट प्रतिभासरूप है ही तातैं पारमार्थिक है। बहुरि नेत्रादिकतैं वरणादिकका जानिए है। तातैं इनकौं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए परतु जो एक वस्तुमें मिश्र अनेक वर्ण हैं ते नेत्रकर नीके ग्रह जाय हैं तातैं याकौं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहिए।

बहुरि परोक्षप्रमाणके पाच भेद हैं–१ स्मृति, २ प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान, ५ आगम।

तहा जो पूर्व वस्तु जानीकौं याद करि जानना सो स्मृति कहिये।

दृष्टान्तकरि वस्तु निश्चय कीजिये सो प्रत्यभिज्ञान कहिए।

हेतुके विचारतैं लिया जो ज्ञान सो तर्क कहिए।

हेतुतैं साध्य वस्तुका जो ज्ञान सो अनुमान कहिए।

आगमतै जो ज्ञान होय सो आगम कहिए।

ऐसे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणके भेद किये हैं सोर्टे स्वानुभव दशामें जो आत्माकौं जानिए सो श्रुतज्ञानकरि जानिए है। श्रुतज्ञान है सो मतिज्ञानपूर्वक ही है। सो मतिज्ञान श्रुतज्ञान परोक्ष यह तातैं यहा आत्माका जानना प्रत्यक्ष नाहीं।

[illegible] करि मन पयपका विषय रूपी पदार्थ ही है
[illegible] अमूर्तीक है नाहीं तातें अनुभवविषै अवधि
[illegible] करि आत्माका जानना नाहीं। बहुरि यहां
[illegible] स्पष्ट नाही जाने है, तातें पारमार्थिक प्रत्यक्षपना
[illegible] नाहीं। बहुरि जैसे नेत्रादिक जानिए है तातें [illegible]
[illegible] जानना विषै भी आत्माके असंख्यात प्रदेशादिक न
[illegible] है तातें सांव्यवहारिक प्रत्यक्षपणो भी सम्भवै नाहीं।
[illegible] आगम अनुमानादिक परोक्षज्ञानकरि आत्माका
अनुभव होय है। जैनागमविषै जैसा आत्माका स्वरूप कहा
है ताकै तैसा जान उस विषै परिणामनिकौं मग्न करै है तातें
आगम परोक्ष प्रमाण कहिए, अथवा मैं आत्मा ही हूँ तातें
मुझविषै ज्ञान है। जहां जहां ज्ञान तहां तहां आत्मा है
जैसे सिद्धादिक है। बहुरि जहां आत्मा नाहीं तहां ज्ञान भी
नाहीं, जैसे-मृतक कलेवरादिक है ऐसे अनुमानकरि वस्तुका
निश्चयकर उस विषै परिणाम मग्न करै है, तातें अनुमान
परोक्षप्रमाण कहिए। अथवा आगम अनुमानादिककर जो
वस्तु जाननेमैं आया तिसहीकौं याद राखै उस विषै परि
णाम मग्न करै है तातें स्मृति कहिए, ऐसे इत्यादिक प्रकार
स्वानुभवविषै परोक्षप्रमाण कर ही आत्माका जानना होय
है, पाछै जो स्वरूप जाना तिसही विषै परिणाम मग्नहो
तारा कछू विशेष जानपना होता नाहीं। बहुरि यहां प्रश्न—

जो सविकल्प निर्विकल्पविषे जाननेका विशेष नाहीं तो अधिक आनन्द कैसे होय है ?

ताका समाधान=सविकल्प दशाविषैं ज्ञान अनेक ज्ञेयकौ जाननरूप प्रवर्तथा स निर्विकल्प दशाविषैं केवल आत्मा हीका जानना है, एक तो यह विशेष है दूसरा यह विशेष जो परिणाम नाना विकल्पविषे परिणम था सो केवल स्वरूप ही सौं तदात्मरूप होय प्रवर्त्या, दूसरा यह विशेष भया। ऐसे विशेष होत कोई वचनातीत ऐसा अपूर्व आनन्द होय है जो विषयसेवनविषे उसके अंशकी भी जात नाहीं, तातै उस आनन्दकौ अतेन्द्रिय कहिये। बहुरि यहां प्रश्न —

जो अनुभवविषैं भी आत्मा परोक्ष ही है तौ ग्रन्थनविषैं अनुभवकूं प्रत्यक्ष कैसे कहिए ?

ऊपरकी गाथाविषे ही कहा है। "पच्चक्खो अणुहवो जम्हा" ताका समाधान–अनुभवविषे आत्मा तौ परोक्ष ही है, कछू आतमाके प्रदेश आकार तौ भासते नाहीं परन्तु जो स्वरूपविषैं परिणाम मग्न होते स्वानुभव भया, सो यह स्वानुभव प्रत्यक्ष है। स्वानुभवका स्वाद कछू आगम अनुमानादिक परोक्ष प्रमाणादिक कर न जानै हैं। आपही अनुभवके रस स्वादकौ वेदै है। जैसे कोई आंधा पुरुष मिश्रीकौ आस्वादै है, तहां मिश्रीके आकारादिक तो परोक्ष

है सो वह स्वाद प्रत्यक्ष

होय तिसकी भी प्रत्यक्ष
इसने स्वप्नविषया ध्यान
सो प्रत्यक्ष देखा नाही,
यथार्थ देखौ तातै प्रत्यक्ष
आत्मा प्रत्यक्षकी नाई यथार्थ
आत्मा का भी प्रत्यक्ष
दोष नाही कथन अनेक
आगम शास्त्रनमैं विरोध न
जानना। यहां प्रश्न —
कौन गुणस्थानमें कहे है?

ताका समाधान — चौथाही होय है परन्तु चौथै तो बहुत कालकै अन्तराल होय है और उपरके गुणठाने शीघ्र होय है। बहुरि प्रश्न —

जो अनुभव तो निर्विकल्प है तहा उपरके और नीचेके गुणस्थाननिविषै भेद कहा?

ताका उत्तर—परिणामनकी मग्नताविषै विशेष है जैसे दोय पुरुष नाम ले है अर दोही का परिणाम नाम विषै है तहा एकके तो मग्नता विशेष है अर एकके स्तोक है तैसे जानना। बहुरि प्रश्न —

जो निर्विकल्प अनुभवविषैं कोई विकल्प नाहीं तो शुक्लध्यानका प्रथम भेद पृथक्त्ववितर्क वीचार कहा तहां पृथक्त्ववितर्क वीचार नाना प्रकार श्रुत अर वीचार, अर्थ, व्यञ्जन, योग, संक्रमण ऐसे क्यों कहा ?

तिसका उत्तर —कथन दोय प्रकार है—एक स्थूलरूप है, एक सूक्ष्मरूप है। जैसे स्थूलताकरि तो छठे ही गुणस्थाने सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत कहा, अर सूक्ष्मताकर नवमें ताईं मैथुन सज्ञा कही तैसे यहां अनुभवविषैं निर्विकल्पता स्थूलरूप कहिये है। बहुरि सूक्ष्मताकरि पृथक्त्ववितर्क वीचारादिक भेद वा दशमा ताईं कषायादि कहे हैं। सो अर आपके जाननेमें वा अन्यके जाननेमें आवे ऐसा भाव-का कथन स्थूल जानना अर जो आपभी न जानै केवली भगवान ही जानैं सो ऐसे भावका कथन सूक्ष्म जानना अर चरणानुयोगादिकविषैं स्थूल कथनकी मुख्यता है अर करणानुयोगादिकविषैं सूक्ष्म कथनकी मुख्यता है ऐसा भेद और भी ठिकानै जानना। ऐसे निर्विकल्प अनुभवका स्वरूप जानना।

बहुरि भाई जी, तुम तीन दृष्टांत लिखे वा दृष्टांतविषैं प्रश्न लिखा सो दृष्टांत सर्वांग मिलता नाहीं सो दृष्टांत है

ग्य है सो यहाँ द्वितीयाका निजु ... पश्चिमाका ग तौ एकदेश है अर ... ग सर्वदेश है। तैसे ही चौथे ... ादिगुण एकदेश प्रगट भये गए ... आत्माके ज्ञानादिक गुण ... तिनकी एक जाति है तहा तुम

... है जैसे केवली सर्वज्ञेयकौ प्रत्यक्ष ... चौथेवाला भी आत्माकौ प्रत्यक्ष ... होगा ?

... भाईजी, प्रत्यक्षताकी अपेक्षा एक जाति नाहीं सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षा एक जाति है। चौथे वालेके मतिश्रुत रूप सम्यग्ज्ञान है। तेरहैं केवलरूप सम्यग्ज्ञान है। बहुरि एकदेश सर्वदेशका तौ अन्तर इतना ही है जो मतिश्रुत वाला अमूर्तिक वस्तुकौ अप्रत्यक्ष अमूर्तिक वस्तुकौ भी प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किंचित अनुक्रमसौं जाने है। अर सर्वथा सर्वकौ केवलज्ञान युगपत् जानै है वह परोक्ष जानै यह अप्रत्यक्ष जाने, इतना ही विशेष है अर सर्वप्रकार एक ही जाति कहिए तौ जैसे केवली युगपत् अप्रत्यक्ष अप्रयोजनरूप

निर्विकल्परूप ज्ञेयकौं जानै तैसे ए भी जानै सो तौ है नाहीं, तातैं प्रत्यक्ष परोक्षका विशेष जानना।

उक्तंच अष्टसहस्रीमध्ये—श्लोक —

स्याद्वाद केवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदसाक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्तुतमो भवेत् ॥

याका अर्थ—स्याद्वाद जो श्रुतज्ञान अर केवलज्ञान दोय सर्व तत्त्वनिके प्रकाशनहार हैं, विशेष इतना—केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, श्रुतज्ञान परोक्ष है। बहुरि वस्तु है सो और नाहीं। बहुरि तुम लिख्या —

निश्चय सम्यक्तका स्वरूप अर व्यवहार सम्यक्तका स्वरूप

सो सत्य है, परंतु इतना जानना, सम्यक्तीकै व्यवहार सम्यक्तविषै निश्चय सम्यक्त गर्भित है सदैव गमनरूप है। बहुरि लिखी —

कोई साधर्मी कहै हैं आत्माकौं प्रत्यक्ष जानैं तौ कर्मवर्गणाकौं क्यों न जानैं ?

सोई कहा है। आत्माका प्रत्यक्ष तौ केवली ही जानैं तौ कर्मवर्गणाको अवधिज्ञान भी जानै है। बहुरि तुम लिखा —

द्वितीयाके चन्द्रमाकी ज्यों आत्माके प्रदेश थोरे खुले कहौ ?

[illegible] पदस्थनकी सापेक्षा नहीं, यह दृष्टांत गुणकी [illegible] सम्यक्त्वविषै अनुभवविषै प्रत्यक्षादिकके [illegible] तुमने तिनका उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार [illegible] तुम हू जिनवाणीतैं अपनी परणतिसैं मिलाय [illegible] करनाई लिखिये। जो बात जानिए सो [illegible] आव नहि। मिलै कछु कहिये भी मो मिलना [illegible] बात भला यह है चैतन्यस्वरूपके उद्यमका अनुभव रहना वतना। सो वर्तमान कालविषै अध्यात्म तत्त्व [illegible]।

तिस समयसार ग्रंथकी अमृतचन्द्र आचार्यकृत टीका संस्कृतविषै है अर आगमकी चर्चा गोमटसारविषै है। तथा और भी अन्यविषै है, सो जानी है, सो सर्व लिखनेमें आवै नाहिं। तातैं तुम अध्यात्म आगम ग्रंथका अभ्यास रखना अर स्वसुरसविषै मग्न रहना अर तुम कोई विशेष ग्रंथ जान होवे तो मुझको लिख भेजना। साधर्मीके तो परस्पर चर्चा ही चाहिए, अर मेरी तौ इतनी बुद्धि है नाहीं। परंतु तुम सारिखे सायनसौं परस्पर विचार है, सो अब

कहा तक लिखिये ? जैतैं मिलना नहीं तैतैं पत्र तौ शीघ्र ही लिखा करौ।

मिति फागुन बदी ५ विक्रम स० १८११।

टोडरमल

श्री ज्ञानुभव दर्पण

दोहा।

निर्मल ध्यान लगायके, कर्मकलंक जलाय।
भये सिद्ध परमातमा, वन्दों मन वच काय ॥ १ ॥
चार घातिया घाति विधि, लिये अनन्त चतुष्ट।
तिन जिनवरको प्रणमिके, करों काव्य कछु सुष्ट ॥२॥
भव दुखसे डर मोक्ष हित, निज सम्बोध निमित्त।
भविजन हत रचतहों, दोहा दर्पण चित्त ॥ ३ ॥
जीव काल ममार ये, कह अनाद अनन्त।
गहि मिथ्या श्रद्धान निय, भ्रमे न सुख लहन्त ॥ ४ ॥
जो चउ गति दुखसे डर, तो तज सब पर भाव।
कर शुद्धातम चिन्तवन, शिव सुख यही उपाव ॥ ५ ॥
त्रिविधि आतमा जानके, तज बहिरातम भाव।
अन्तरात्मा होय कर, परमातमको ध्याव ॥ ६ ॥
मिथ्यादर्शन वश फसे, अहंकार ममकार।
जिनवर ... कह, सो भ्रमि है ममार ॥ ७

निज पद का अनुभव करें, पर तन ध्यान आप ।
लय ते जीवको नाश करे त्रय ताप ॥ ८ ॥
नं ... इन्द्र शिव, सिद्ध विष्णु बुध सन्त ।
... नाम जिन, भाषे एम अनन्त ॥ ९ ॥
... पा कह, सो जाने निजरूप ।
... जम जिन कहे, कर अमण भवरूप ॥ १० ॥
पुद्गलमयी, सो जड है परजान ।
... आप तू, चेतन निज पहचान ॥ ११ ॥
... आपने स्पर्शो, जाने सो शिव होय ।
... अपनी कल्पना, करे भ्रमे जग मोय ॥ १२ ॥
... इच्छा शुचि तप करे, लखे आप गुण आप ।
निश्चय पावे परमपद, फिर न तप भवताप ॥ १३ ॥
... विभाव प्रमाद हो, शिव स्वभावसे जान ।
बन्ध मोक्ष परणामसे, कारण और न आन ॥ १४ ॥
आतमको जाने नहीं, कर पुण्य बस पुण्य ।
तदपि भ्रमे संसारमें, शिवसुख कभी न होय ॥ १५ ॥
निजदर्शन बस एकको, मोक्षहेतु तू जान ।
हे योगी ! नहि और को, निश्चयसे पहिचान ॥ १६ ॥
गुणस्थान वा मार्गणा, कहत दृष्टि व्यवहार ।
निश्चय आतम ज्ञान ही, परमेष्ठी पद सार ॥ १७ ॥

गेह कार्य यद्यपि करै, तदपि स्वानुभव दक्ष ।
ध्यावें सदा जिनेश पद, होंय मुक्त प्रत्यक्ष ॥ १८ ॥
जिन सुमरो निज चिंतवो, जिन ध्यावो मनशुद्ध ।
लहो परमपद क्षणकमें, हाकरक प्रतिबुद्ध ॥ १९ ॥
जिनवर अरु शुद्धात्मम, किंचित् भेद न जान ।
मोक्ष अर्थ ह योगिजन, निश्चयसे यह मान ॥ २० ॥
जो जिन सो आतम लखो, निश्चय भेद न रंच ।
यही सार सिद्धान्तका, छोडो सर्व प्रपंच ॥ २१ ॥
जो परमातम सो हि मैं, मैं जो वहि परमात्म ।
ऐसा जान जु योगिजन, करिये कुछ न विकल्प ॥२२॥
अगणित शुद्ध प्रदेशयुत, लोकाकाश प्रमाण ।
सो शुद्धातम अनुभवो, शीघ्र लहो निर्वाण ॥ २३ ॥
निश्चय लोकप्रमाण है, तनु प्रमाण व्यवहार ।
ऐसे आतम अनुभवें, सो पावें भवपार ॥ २४ ॥
चौरासी लख योनि में, भ्रम्यो जु काल अनंत ।
सम्यग्दर्शनके बिना, यह जानो निर्भ्रान्त ॥ २५ ॥
शुद्ध सचेतन बुद्ध जिन, केवलज्ञान स्वभाव ।
वह आतम जानों सदा, जो चाहो शिवलाभ ॥ २६ ॥
जब तक आतमज्ञान ना, मिथ्या क्रिया कलाप ।
भटको तीनों लोकमें, शिवसुख लहो न आप ॥ २७ ।

रागद्वेष [illegible], निज में कर निवास।
जिनवर भाषित धर्म यह परम गति ले जाय ॥ ४८ ॥
आयु गले मन ना गले, इच्छाशा न गलन्त।
तृष्णा [illegible], यामें भव भटकन्त ॥ ४९ ॥
ज्यों मन विषयों में रमे, त्यों हो आतम लीन।
मिलत शिव सम्पत्ति [illegible], क्यों भव भ्रमे न [illegible] ॥५०॥
नरकवास सम जर्जरित, जानो मलिन शरीर।
कर शुद्धातम भावना, शीघ्र लहो भवतीर ॥ ५१ ॥
व्यवहारिक धंधा फंसे, करें न आतम ज्ञान।
इस कारण जगजीव ये, पावें नहिं निर्वाण ॥ ५२ ॥
शास्त्र पढ़े भी मूर्ख है, जो निजतत्व अजान।
इस कारण ये जीव भी, पावें नहिं निर्वाण ॥ ५३ ॥
मन इन्द्रीसे दूर हो, क्या बहु पूछे बात।
रागप्रसार जु तजत ही, सहज स्वरूप उत्पाद ॥ ५४ ॥
जीव पुद्गल दोउ भिन्न हैं भिन्न सकल व्यवहार।
तज पुद्गल ग्रह जीव तो, शीघ्र लह भवपार ॥ ५५ ॥
जो ना जाने जीव क्या, जो न कहै है जीव।
सो नास्तिक भव ? भ्रमे, जिनवर कहत सदीव ॥५६॥
रत्न दीप रवि दूध दधि, घृत पत्थर अरु हेम।
रजत स्फटिक अरु अग्नि नव, उदाहरण जिय एम ॥५७॥

देहादिक को पर गिनें, जैसे शून्य अकाश।
तो पावे परब्रह्म भट, केवल करे प्रकाश ॥ ५८ ॥
जैसे शुद्ध अकाश है, त्यों ही शुचि है जीव।
जड जानो आकाशको, चैतन्य लक्षण जीव ॥ ५९ ॥
ध्यान द्वार अंतर लखे, देह रहित जो जीव।
गर्भजनक जन्म न धरे, पिवे न जननी छीर ॥ ६० ॥
ज्ञानमयी चैतन्य तन, पुद्गल मन जड जान।
मिथ्या मोह जु दूरकर, तन को मम नहि मान ॥६१॥
आप आप अनुभव करे, को फल सो न लहंत।
प्रगटत केवलज्ञान अरु, शाश्वत सुख निलसंत ॥ ६२ ॥
जो पर भावहि त्यागकर, आतम भाव लखंत।
केवल ज्ञान सरूप हो, भव २ ना भटकन्त ॥ ६३ ॥
धन्य अहो! भगवत बुध, जिन त्यागे पर भाव।
लोकालोक प्रकाश कर, जाने विमल स्वभाव ॥ ६४ ॥
अनागार सागार जो, ध्यान करें निज रूप।
शीघ्र मुक्ति सुख पावही, यो भाषत जिन भूप ॥६५॥
विरला जानैं तत्त्वको, विरला तत्त्व सुनन्त।
विरला ध्यावे तत्त्वको, विरला श्रद्धावन्त ॥ ६६ ॥
पुत्रादिक न कुटुम्ब मम, विषय भोग दुख खान।
ज्ञानीजन इम चिंतकर, शीघ्र करत भवहान ॥ ६७ ॥

[illegible] नहीं शरण दातार।
[illegible] मुनि करत विचार ॥६८॥
[illegible] सुख सुख मांगे एक।
[illegible] यह इक करो विवेक ॥ ६९ ॥
[illegible] यह लाग तज परमात।
[illegible] शीघ्र पावो शिवसार ॥ ७० ॥
[illegible] पाप जो, जानत जग सब कोई।
पुण्य [illegible] पाप है, कहत अनुभवी कोई ॥ ७१ ॥
[illegible] लोहकी, त्यों सोने की जान।
[illegible] शुभाशुभ [illegible] जो, ज्ञानी मर्म जु जान ॥ ७२ ॥
[illegible] जो निर्ग्रन्थ मन, तो तू भी निर्ग्रन्थ।
[illegible] पावे निर्ग्रन्थता, तहाँ [illegible] शिवपथ ॥ ७३ ॥
यथा बीजमें वट प्रगट वट में बीज सुजान।
तथा देह में जीव है, अनुभव से पहिचान ॥ ७४ ॥
जो जिन वह मैं, वह हि मैं, कर अनुभव निर्भ्रान्त।
हे योगी! शिवहेतु ये, अन्य न मंत्र न तंत्र ॥ ७५ ॥
दो त्रय, चार रु पांच छह, सात छ पांच रु चार।
नवगुण युत परमातमा, कर तू यह निर्धार ॥ ७६ ॥
दो त्यागी दो गुण सहित, जो आतम रस लीन।
जिनवर भाष सो लहै, शीघ्र मुक्ति पद लीन ॥ ७७ ॥

तीन रहित त्रयगुण सहित स्वातम करे निवास।
सो पावे सुख शाश्वता, जिनवर कहत प्रकाश ॥ ७८ ॥
कषाय सबा चार बिन, अनन्त चतुष्ट सहित।
हे जिव! निजरूप जान यह, होगा परम पवित्र ॥७९॥
सग रहित दश सहित दश, लक्षण दश गुण युक्त।
सो ही निश्चय आतमा यो कहते जिनभूप ॥ ८० ॥
आतम दर्शन ज्ञानमय, आतम चारित्रवान।
आतम सयम शील तप, आतम प्रत्याख्यान ॥ ८१ ॥
जो जाने निज आत्मको, पर त्यागे निर्भ्रान्त।
सो ही है सन्यास वर, भाषे जिन बड भाग ॥ ८२ ॥
सम्यग्दर्शन है यही, आतम विमल श्रद्धान।
फिर २ ध्याव आतमा, सो शुचि चारित्रवान ॥ ८३ ॥
रत्नत्रय युत जीव जो, उत्तम तीर्थ पवित्र।
हे योगी! शिवहेतु य, अन्य न तत्र न मत्र ॥ ८४ ॥
जह चेतन तह सकल गुण, कहहि जिन भगवान।
इससे निश्चय योगिजन, शुद्धातमा जान ॥ ८५ ॥
एकाकी इन्द्रिय रहित, करो योग त्रय शुद्ध।
निज आत्मा को जानकर, शीघ्र लहो शिव सुख ॥८६॥
बन्ध मोक्ष की पक्ष से, निश्चय बाधे कर्म।
सहज रमे निज रूपमें, तो पावे शिव शर्म ॥ ८७ ॥

[illegible] दुर्गति गमन न होय ।
[illegible] सम्यक् दोष न होय ॥ ८८ ॥
[illegible] त्याग सर्व व्यवहार ।
[illegible] शीघ्र लहै भवपार ॥ ८९ ॥
[illegible] गुणका निलय, सम्यक श्रद्धावान ।
[illegible] विधि, पूर्व निर्जरा ठान ॥ ९० ॥
[illegible] सुख, सो हि त्रिलोकप्रधान ।
[illegible] सासत सौख्य निधान ॥ ९१ ॥
[illegible] हो कमल, तैसे सम्यक्ज्ञान ।
लिप्त न होत कर्म मल, स्वातम दृढ़ श्रद्धान ॥ ९२ ॥
जो समता रसलीन हो, फिर फिर करत अभ्यास ।
अखिल कर्म सो चय करे, शीघ्र करै शिववास॥ ९३ ॥
पुरुषाकार पवित्र अति, देखे आतमराम ।
निर्मल तेजोमय अरु अनंत गुणगणधाम ॥ ९४ ॥
अशुचि देहसे भिन्न निज, शुद्ध लखै चिद्रूप ।
सो ज्ञाता सब शास्त्रका, पावै सुख अनूप ॥ ९५ ॥
स्व पर रूप जानै न जो, नहीं तजै पर भाव ।
सकल शास्त्र न जाने तदपि, मिटै न भव भटकाव॥९६॥
छोड़ कल्पना जाल सब, परमसमाधी लीन ।
वेद निज आनंदको, शिवसुख कहते वीर ॥ ९७ ॥

जो पिंडस्थ पदस्थ अरु, रूपस्थ रूपातीत।
जिन भाषित ये ध्यानचतु, ध्यावो शुचिकर मीत।९८॥
सर्व जीव हैं ज्ञानमय जानि समता भाव।
सो सामायिक जिन कह्या, प्रगट करै भवपाव॥ ९९॥
रागद्वेष जो त्यागकर, धारै समता भाव।
सामायिक चारित्र सो, तीर्थपति दर्शाव॥ १००॥
हिंसादिक तज निज रमै, आतमस्थिति कर सोइ।
छेदोपस्थापन चरित है शिवपथ कारण लोय॥ १०१॥
मिथ्यात्वादिक परिहरण, सम्यग्दर्शन शुद्ध।
सो परिहारविशुद्धि है, शीघ्र लहै शिवसिद्धि॥ १०२॥
सूक्ष्म लोभके नाशसे, जो सूक्षम परिणाम।
जीव सूक्षम चारित्र है, वह जो शाश्वत सुखधाम॥१०३॥
आतमा सो अर्हंत है निश्चय सिद्ध जु सो हि।
आचारज उवझाय अरु, निश्चय साधू सो हि॥ १०४॥
(सो शिव शंकर विष्णु अरु, रुद्र बुद्ध जिन सो हि।
ब्रह्मा ईश्वर आदि सो, सिद्ध अनंत सि सोहि॥ १०५॥
ऐसे लक्षण युक्त जो, परम विदेही देव।
तनवासी इस जीवमें, अरु उसमें नहिं फेर॥ १०६॥
जो सीझे जो सीझते, जो होंगे भगवान।
वे निज आतमदर्शसे यह जानों निर्भ्रान्त॥ १०७॥

सर्वभित [illegible] पार्गीन्दु मुनिराज ।
[illegible] निज सम्बोधन काज ॥ १०८ ॥
'तिन [illegible] लखि, भाषा दोहा कीन ।
[illegible] न लखि तिस आशय पीन ॥''
[illegible] सशोधित हिन्दी पद्यानुवाद सम्पूर्णम् ॥
[illegible] गुलाबचन्द जी जैन)

—— श्री सामायिकपाठ संस्कृत ——

भाषानुवाद सहित ।

सिद्धस्तुतवा भक्त्या, सिद्धान् प्रणमत सदा ।
सिद्धकार्याः शिवं प्राप्ताः, सिद्धिं ददतु नोऽव्ययाम् ॥१॥

अर्थ—श्री सिद्धपरमेष्ठी व जगतसिद्ध सभी पदार्थोंके कहने वाले जैन आगमको अथवा आगमके मूलकर्ता श्री अरहंत भगवानको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके तथा जिन्होंने संसार दुःखका नष्ट करना रूप कार्य सिद्ध कर लिया है ऐसे जीवनमुक्त अरहन्तदेव व मोक्षप्राप्त सिद्धपरमेष्ठी हमको भी अविनश्वर सिद्धि प्राप्त करावें ।

नमोऽस्तु धौतपापेभ्य सिद्धेभ्य ऋषिपर्षदि ।
सामायिकं प्रपद्येऽहं, भवभ्रमणसूदनम् ॥ २ ॥

अर्थ—समस्त कर्मकलङ्कको नष्ट कर देनेवाले श्री सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार हो । महर्षि पुरुषोंके रहने योग्य पवि

स्थानमें स्थित होकर समोर दुःखको नाश करनेवाली सामा यिककी मैं प्रारंभ करता हूँ अर्थात् उसका प्ररूपण करता हूँ।

साम्यं मे सर्वभूतेषु वैरं मम न केनचित् ।
आशा सर्वां परित्यज्य समाधिमहमाश्रये ॥ ३ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण जीवमात्रमें मेरा समताभाव है। किसी भी जीवके प्रति मेरा वैरभाव नहीं है और समस्त आशाओं (सांसारिक इच्छाओं) को छोड़कर मैं आत्मध्यानमें तल्लीन होता हूँ ॥ ३ ॥

रागद्वेषान्ममत्वाद्वा हा मया ये विराधिता ।
क्षमन्तु जंतवस्ते मे, तेभ्य क्षमाम्यहं पुनः ॥ ४ ॥

अर्थ—मैंने रागद्वेष व मोहवश जिन जीवोंका घात किया है वे मुझे क्षमा करें। मुझे अपनी इस दुर्बुद्धिका बड़ा खेद है। जिन जीवोंसे मेरे प्रति कुछ अपराध बन गया हो उन्हें मैं सरल हृदयसे क्षमा करता हूँ ॥ ४ ॥

मनसा वपुषा वाचा, कृतकारितसम्मतैः ।
रत्नत्रयभवं दोषं, गर्हे निन्दामि वर्जये ॥ ५ ॥

अर्थ—मन वचन कायसे व कृत कारित अनुमोदना द्वारा जो मैंने अपने रत्नत्रयमें दोष लगाया है उसकी मैं गर्हणा करता हूँ, निन्दा करता हूँ और उस दोषका परित्याग करता हूँ ॥ ५ ॥

[illegible] महत्मुना ।
[illegible] त्यजामि विशुद्धित ॥ ६ ॥

[illegible]—सामायिक करते हुए मैं इस समय तिर्यंच, [illegible] उपसर्गको शान्तिपूर्वक सहन [illegible] और सामायिक के कालतक शरीर-[illegible], आहार तथा क्रोधादि कषायोंको शुद्ध मन [illegible] त्यागता हूँ ॥ ६ ॥

[illegible] द्वेष भय शोक, प्रहर्षा उत्सुकदीनता ।
व्युत्सृजामि त्रिधा सर्वमरतिं रतिमेव च ॥ ७ ॥

अर्थ—राग द्वेष, भय, शोक हर्ष, उत्सुकता, दीनता, रति, अरति आदि सभी दोषोंको मैं मन वचन कायपूर्वक त्यागता हूँ ॥ ७ ॥

जीवने मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये ।
बन्धावरौ सुखे दुःखे सर्वदा समता मम ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवन मरणमें, लाभ अलाभमें, संयोग वियोगमें, शत्रु मित्रमें व सुख दुःखमें मेरा सदा ही समता भाव बना रहे ॥ ८ ॥

आत्मैव मे सदा ज्ञाने, दर्शने चरणे तथा ।
प्रत्याख्याने ममात्मैव, तथा संवरयोगयोः ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, व सम्यक्

त्यागमें और कर्मोंके रोकने व ध्यान आदि करने में मेरे एक आत्मा ही शरण है । ९ ॥

एको मे शाश्वतश्चात्मा, ज्ञानदर्शनलक्षण ।
शेषा बहिर्भवा भावा, सर्वे सयोगलक्षणा ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप, एक और नित्य ऐसी आत्मा ही वस्तुत मेरी निधि है । बाकी सभी क्रोधादि परिणाम व स्त्री पुत्रादि बाह्य पदार्थ कर्मोंके सयोगसे होनेवाले हैं उनसे मेरा कोई सबध नहीं है ॥ १० ॥

सयोगमूला जीवेन, प्राप्ता दु खपरम्परा ।
तस्मात्सयोगसबध, त्रिधा सर्वं त्यजाम्यहम् ॥११॥

अर्थ—जीवद्वारा अनादिकालसे प्राप्त दुखपरम्परा सयोगजन्य ही है । अत अब मैं मन वचन कायपूर्वक सभी सयोगसबधको त्यागता हूँ ॥ ११ ॥

एव सामायिकात्सम्यक्, सामायिकमखडितम् ।
वर्तते मुक्तिमानिन्या, वशीभूतायते नम ॥ १२ ॥

अर्थ—इस प्रकार सामायिक पाठमें कही हुई रीतिके अनुसार जिसके परम अखडित सामायिक पाई जाती है तथा जो मुक्तिरूपी स्त्रीके वशीभूत हो गये हैं अर्थात् जिनको मुक्ति प्राप्त हो गई है उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

❀ इति श्रीसामायिकपाठ सस्कृत समाप्त ❀

तस्य [illegible] महत्पुना ।
[illegible], नयनामि विशुद्धित ॥ ६ ॥

[illegible] हुए में इस समय तिर्य
[illegible] उपसर्गको शान्तिपूर्वक सह
[illegible] और सामायिक के कालतक शरीर
[illegible] तथा [illegible] कषायोंको शुद्ध म
[illegible] त्यागता हूं ॥ ६ ॥

[illegible] द्वेष भय शोक, प्रहर्षा सुत्स्यदीनता ।
[illegible] सर्वमरति रतिमेव च ॥ ७ ॥

अर्थ—राग द्वेष, भय, शोक हर्ष, उत्सुकता, दीनत
रति, अरति आदि सभी दोषोंको मैं मन वचन कायपूर्व
त्यागता हूँ ॥ ७ ॥

जीवने मरणे लाभऽलाभे योगे विपर्यये ।
बन्धावरी सुखे दु खे सर्वदा समता मम ॥ ८ ॥

अर्थ—जीवन मरणमें, लाभ अलाभमें, सयोग वियो
गमें, शत्रु मित्रमें व सुख दु खमें मेरा सदा ही समता भ
बना रहे ॥ ८ ॥

आत्मैव मे सदा ज्ञाने, दर्शने चरणे तथा ।
प्रत्याख्याने ममात्मैव, तथा संवरयोगयो ॥ ९ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, व स

त्यागमें और कर्मोंके रोकने व ध्यान आदि करने में मेरे एक आत्मा ही शरण है । ९ ॥

एको मे शाश्वतश्चात्मा, ज्ञानदर्शनलक्षणः ।
शेषा बहिर्भवा भावा सर्वे संयोगलक्षणा ॥ १० ॥

अर्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप, एक और नित्य ऐसा आत्मा ही वस्तुत मेरी निधि है । बाकी सभी क्रोधादि परिणाम व स्त्री पुत्रादि बाह्य पदार्थ कर्मोंके संयोगसे होनेवाले हैं उनसे मेरा कोई सबंध नहीं है ॥ १० ॥

संयोगमूला जीवेन, प्राप्ता दुःखपरम्परा ।
तस्मात्संयोगसबंध, त्रिधा सर्वं त्यजाम्यहम् ॥११॥

अर्थ—जीवद्वारा अनादिकालसे प्राप्त दुःखपरम्परा संयोगजन्य ही है। अत अब मैं मन वचन शरीरसे सभी संयोगसबंधको त्यागता हूँ ॥ ११ ॥

एवं सामायिकात्सम्यक्, सामायिकमखण्डितम् ।
वर्तते मुक्तिमानिन्या, वशीभूतान्नमाम्यहम् ॥ १२ ॥

अर्थ—इस प्रकार सामायिक पाठमें कही हुई रीतिके अनुसार जिनके परम अखण्डित सामायिक पाई जाती है तथा जो मुक्तिरूपी स्त्रीके वशीभूत हो गए हैं अर्थात् जिनको मुक्ति प्राप्त हो गई है उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

ॐ इति श्रीसामायिकपाठ सार्थ समाप्त ॐ

पाठ भाषा

[illegible] ग्रह करे इम नेमको ।
[illegible] गुणिजनोंसे प्रेमको ॥
[illegible], जो दुःख ग्राह ग्रहीत है ।
[illegible] जो ममत्व विपरीत है ॥ १ ॥

[illegible] शक्ति ऐसी, दीजिये मुझमें प्रभो ।
[illegible] ध्यानसे, करते विलग हैं हे विभो ॥
[illegible] शक्तिशाली, है मिली मम अंगसे ।
उसका [illegible] उस भाँति, करनेके लिए ऋजुढंगसे ॥ २ ॥

हे नाथ ! मेरे चित्तमें, ममता सदा भरपूर हो ।
सम्पूर्ण ममताकी कुमति, मेरे हृदयसे दूर हो ॥
वनमें भवनमें दुःखमें, सुखमें नहीं कुछ-भेद हो ।
अरि मित्रमें मिलने बिछुड़ने, में न हर्ष न खेद हो ॥ ३ ॥

अतिशय घनी तम-राशिको, दीपक हटाते हैं यथा ।
दोनों कमल पद आपके, अज्ञान-तम हरते तथा ॥
प्रतिबिम्बसम स्थिररूप, वे, मेरे हृदयमें लीन हों ।
मुनिनाथ ! कीलित तुल्य वे, उरपर सदा आसीन हों ॥ ४ ॥

यदि एक इन्द्रिय आदि देही, घूमते फिरते मही ।
जिनदेव ! मेरी भूलसे, पीड़ित हुए होवें कहीं ॥

टुकड़े हुए हों, मिल गये हों, चोट खाय हों कभी ।
तो नाथ! वे दुष्टाचरण, मेरे बनें झूठे सभी ॥ ५ ॥

सन्मुक्तिके सन्मार्गसे, प्रतिकूल पथ मैंने लिया ।
पचेन्द्रियों चारों कषायों में स्वमन मैंने दिया ॥
इस हेतु शुद्ध चरित्रका जो, लोप मुझसे हो गया ।
दुष्कर्म वह मिथ्यात्वको, हो प्राप्त प्रभु! करिए दया ॥६॥

चारों कषायोंसे, वचन, मन, कायसे जो पाप है—
मुझसे हुआ है नाथ! वह, कारण हुआ भव-ताप है ॥
अब मारता हूँ मैं उसे, आलोचना निन्दादिसे ।
ज्यों सकल विषको वैद्यवर, है मारता मत्रादि से ॥ ७ ॥

जिनदेव! शुद्ध चरित्रका मुझसे अतिक्रम जो हुआ ।
अज्ञान और प्रमादसे, व्रतका व्यतिक्रम जो हुआ ॥
अतिचार और अनाचरण, जो जो हुए मुझसे प्रभो!
सबकी मलिनता मेटनेको, प्रतिक्रम करता विभो ॥ ८ ॥

मनकी विमलता नष्ट होने, को अतिक्रम है कहा ।
औ शीलचर्याके विलंघन, को व्यतिक्रम है कहा ॥
हे नाथ! विषयोंमें लपटन, को कहा अतिचार है ।
आसक्त अतिशय विषय में, रहना महाऽनाचार है ॥ ९ ॥

यदि अर्थ, मात्रा, वाक्यमें, पदमें पड़ी त्रुटि हो कहीं।
तो भूलसे ही वह हुई, मैंने उसे जाना नहीं ॥

... उसको सुरत कर दीजिए।
... ज्ञानको भर दीजिए ॥ १० ॥
... मैं कर रहा हूँ इसलिए।
... वरदान इनके लिए ॥
... भावि मुझमें, बोधिका मचार हो।
... जिनमौरखको, भवपार हो ॥११॥
... वृन्द जिनको स्मरण करते हैं सदा।
... नर अमरपति, भी स्तवन करते हैं सदा।
... वेद पुराण जिनको, सदा हैं गा रहे ॥
... की दव नम, मेरे हृदयमें आ रहे ॥ १२ ॥
जो अन रहित सुबोध दर्शन, और सौख्य स्वरूप है।
जो मन विकारोंसे रहित जिससे अलग भवरूप है ॥
मिलता बिना न समाधि जो, परमात्म जिसका नाम है।
दवेश वह उर आ बसे, मेरा खुला हृद्धाम है ॥ १३ ॥
जो काट देता है जगतके, दुख निर्मित जालको।
जो देख लेता है जगतकी, भीतरी भी चालको ॥
योगी जिसे हैं लख सकते, अन्तरात्मा जो स्वयम्।
दवेश वह मेरे हृदय पुरका निवासी हो स्वयम् ॥ १४ ॥
वैराग्यके सन्मार्गको, दिखला रहा है जो हमें।
जो जननके या मरणके, पडता न दुख सन्दोह में ॥

अशरीर हो त्रैलोक्यदर्शी दूर है कुकर्मसे ।
देवेश वह आकर लगे, मेरे हृदयके अङ्कसे ॥ १५ ॥

अपना लिया है निखिल तनु वाणी निरखने ही जिसे।
रागादि दोषव्यूह भी, छू तक नहीं सकता जिसे ॥
जो ज्ञानमय है, नित्य है सर्वेन्द्रियासे हीन है ।
जिनदेव देवेश्वर वही मेरे हृदयमें लीन है ॥ १६ ॥

संसारकी सब वस्तुओंमें, ज्ञान जिसका व्याप्त है ।
जो कर्म बंधन हीन, बुद्ध, विशुद्ध, सिद्धि प्राप्त है ॥
जो ध्यान करनेसे मिटा, देता सकल कुविकारको ।
देवेश वह शोभित करे, मेरे हृदय आगार को ॥ १७ ॥

तम संघ जैसे सूर्य किरणों, को न छू सकता कहीं ।
उस भाँति कर्म कलङ्क दोषाकर जिसे छूता नहीं ॥
जो है निरञ्जन वस्त्वपेक्षा, नित्य भी है एक है ।
उस आप्त प्रभुकी शरणमें हूँ, प्राप्त, जोकि अनेक है ॥१८॥

यह दिवसनायक लोकका, जिसमें कभी रहता नहीं ।
त्रैलोक्य भासक ज्ञान रवि, पर है वहाँ रहता सही ॥
जो देव स्वात्मामें सदा, स्थिर-रूपताको प्राप्त है ।
मैं हूँ उसीकी शरणमें, जो देववर है आप्त है ॥ १९ ॥

अवलोकने पर ज्ञानमें, जिसके सकल संसार ही-
है स्पष्ट दीखता, एकसे, है दूसरा मिलकर नहीं ॥

या शुद्ध शिव है, शान्त भी है, नित्यताको प्राप्त है।
उसका ...ता पास है, जो इतर है आप्त है॥ १०
...ताको ... लपटमें रहती नहीं।
... पन्नग ... रहने दिया जिसमें नहीं॥
... नाद, विषाद, चिंता, भी न जिसको व्याप्त है
... है गिरा जो इतर है, आप्त है॥ ...
... शुभासन ..., या भूमिका बनता नहीं।
... शुभासन, मानती बुधता नहीं॥
... इन्द्रियाँ, ... हैं नहीं।
... लिए, है आत्मा निर्मल वही॥ ...
... भद्र! आसन, लोकपूजा, संघकी संगति तथा।
य सब समाधिक न साधन, वास्तविक म है प्रथा॥
सम्पूर्ण बाहर वासनाको, इसलिए तू छोड़ द।
अध्यात्मम नू हरघड़ी, होकर निरत रति जोड़ द॥ ...
जो बाहरी हैं वस्तुयें वे हैं नहीं मेरी कहीं।
उस भाँति हो सकता कहीं, उनका कभी म भी नहीं।
या समझ बाह्याडम्बरोंको, छोड़ निश्चितरूपसे।
हे भद्र! हो जा स्वस्थ तू, बच जायगा भवरूपसे॥
निजको निजात्मा मध्यमें ही, सम्यगवलोकन करे।
तू दर्शन ज्ञानमय है, शुद्ध ... है परे॥

एकाग्र जिसका चित्त है, तू सत्य इसको मानना।
चाहे कहीं भी हो, समाधि प्राप्त उसको जानना ॥ २५ ॥
मेरी अकेली आतमा, परिवर्तनोंसे हीन है।
अतिशय विनिर्मल है सदा, सद्ज्ञान में ही लीन है।
जो अन्य सब हैं वस्तुयें, वे उपरी ही हैं सभी।
निज कर्मसे उत्पन्न हैं, अविनाशिता क्यों हो कभी ॥२६॥
है एकता जब देहके भी, साथमें जिसकी नहीं।
पुत्रादिकोंके साथ उसका, ऐक्य फिर क्यों हो कहीं॥
जब अंग भरसे मनुजके, चमडा अलग हो जायगा।
तो रोगटोंका छिद्रगण, कैसे नहीं खो जायगा ॥ २७ ॥
संसाररूपी गहन में है जीव बहु दुख भोगता।
वह बाहरी सब वस्तुओंके, साथ कर संयोगता॥
यदि मुक्तिकी है चाह तो, फिर जीवगण! सुन लीजिये।
मनसे वचनसे कायसे, उसको अलग कर दीजिए ॥२८॥
देही! विकल्पित जालको, तू दूरकर दे शीघ्र ही।
संसार वन में डालनेका, मुख्य कारण है यही॥
तू सर्वदा सबसे अलग, निज आतमाको देखना।
परमात्माके तत्त्वमें, तू लीन निजको लेखना ॥ २९ ॥
पहले समयमें आतमाने, कर्म हैं जैसे किए।
वैसे शुभाशुभ फल यहाँ पर, सांप्रतिक उसने लिए॥

जो निज तत्त्वहि जाने नाहिं तसु थिरता नाहि आतम माहि।
सो तन चेतन भिन्न पिछान, कर न सके मोहित अज्ञान ॥२
निजपर भेद लखे नहि जोय, आत्मलाभ ताको नहि होय।
ता बिन निज परोक्ष अंकूर आपनि स्वप्नमाहि अति दूर।३
तातैं शिव अभिलाषी जेह, आतम निश्चय प्रथम करेह।
जो पर पर्यय रूप विकल्प वर्जित निजगुण सहित अनल्प ॥४
सोहै त्रिविध आतमाराम, सब मूर्तावित निज गुणधाम।
बहिरातम अंतर आतमा, परमातम जानो अनुपमा ॥५
जाकी देहादिक पर माहं, आतमबुद्धि भरम निज छाह।
सो जानो बहिरातम रूप मोहनीद साव भरपूर ६
परभावनतैं होय उदास आप रूप में रुचि है जास।
सो अंतर आतम बुध कहे जे भय तम हर निजगुण लहैं।७
निर्मल निष्कल शुद्ध निपन्न, सबै स्वरूप रचित चैतन्य।
शुद्धातम परमातम सोय ज्ञानमूर्ति आप गुनिलाय ॥८

प्रश्न—

लखके देहादिकतें भिन्न, शुद्ध अतीन्द्रिय चेतनचिह्न।
आतमतत्त्व अमूरत नाम, कैसे करें ध्यान अभिराम? ।९

उत्तर—

'तनके बहिरातमता भिन्न, 'अंतरातमा' होय सुचित्त
ध्यावहु परमातम अति शुद्ध, अव्यय शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध

तन [illegible] [illegible], बहिरातम शठ रहित विवेक।
[illegible] [illegible], देहादिकतें निज चित चिन ॥११
आतम [illegible] [illegible] [illegible], करण विषय चल परिणतिरत।
[illegible] [illegible] तनको आतम लख सदीव ॥१२
[illegible] [illegible] [illegible] पर्याय, नामकर्मके उदय लहाय।
[illegible] [illegible] पशु नारकी, जानै मूढ अविद्या थकी ॥१३
[illegible] [illegible], जो भाषो जिनवर निकलंक।
[illegible] [illegible] ज्ञान अवातीत, सदा अमूरत देव पुनीत ॥१४
[illegible] चेतन निज तनम जेम, मानै मठ आपो कर प्रेम।
[illegible] [illegible] पराइ देह, पर आतम मानैं भ्रम गेह ॥१५
इम निज तनमें निज निय जान, पर तनमें पर जीव पिछान।
यादी बुद्धि ठगो ससार, जड़में चेतन तत्त्व निहार। १६
ताहितें निज भिन्न अत्यंत पर सुत दारादिक बहु भंत।
मानत मूढ तिनहि आपने, मोह ज्वर व्याकुल मति घने ॥१७
चेतन और अचेतन द्रव्य तिन मानीके अपने सर्व।
निनमन उपजनादि पर रूप, निज ही क जानें भ्रमकूप ॥१८
यह अज्ञान विषम ग्रह क्रूर, लगो अनादि जीवके भूर।
जानें देहादिकको मूढ, आप रूप जानें अतिरूढ ॥१९
जो तनमें आतम बुधि अघ, सो ही रचै देह सबंध।
चिद्गुणमें आतम बुधि जोय, करत सो भिन्न देहतें सोय ॥२०
तनमें अह बुद्धि ही जनें, बंधु धनादि विकल्प सु घनें।

तिनको लख अपने सउ जीव, आप ठगात सकल सदीव ॥२१
आतम भाव टहमें जोय, स्थिति भवबृक्ष तयर सोय ।
तात ध्यांवहु अंतर इष्ट, तज इन्द्रिय रज बाहिज दिष्ट ॥२२
तातैं इन्द्रिय वश निज त्याग, म विषियनम कानो राग ,
सो म इनहोंके परमग, जानों नहिं निज रूप अमग ॥२३
तन बाहिज दग विषय अनिष्ट अतरामा होय सुदिष्ट ।
यो ही योग कर परकाम, परम जोग निर्मल गुण राम ॥२४
जो कछु रूप दरसवे योग, सो मा ते पर निन उपयोग ।
ज्ञानरूप दीसत नहि नैन, तो कासोंमें भाखों बैन ॥२५
जो मैं परसों शिवा लेउ, या म परको शिक्षा दउँ ।
सो है यह भ्रम बुद्धि असार, मैं तो स्वय बुद्धि अविकार ॥२६
जो निज चिद्गुण ही को ग्रहे, निर्जत भिन्न न परगुण गहें ।
सो में विज्ञानी अविकल्प, स्वसवद्य रूपरू अनल्प ॥२७
जो सॉकलको सर्प पिछान, करे क्रिया भ्रम जोय अजान ।
तसे मेरी पूरव क्रिया दहादिकमें निज भ्रमविश ॥२८
ज्यों सॉकलमें अहि बुधि नशे, भ्रमविन क्रिया सकल तव लसे ।
त्यों देहादिक माहीं भ्रम, अरु बुद्धि विनशी मम सबै ॥२९
लिंग पुरुष नारी पुन क्लीव, एक दोय बहु वचनन जीव ।
जातैं मैं अवाच गुन धाम, ज्ञाता निजपर निजमें राम ॥३०
मैं मोयो जाके बिनज्ञान, जग्यो ततक्षण जाहि पिछान ।
सो स्वरूप मम अर्चातीत, स्वसवद्य चैतन्य पुनीत ॥३१

परम [illegible], जाहि विलसित हीततकाल।
[illegible] धार, तात अरि प्रिय काऊ न मोर॥३[illegible]
[illegible] चोर, मो जनमम अरि प्रियनहिं होय
[illegible] मम मची, मो भी शत्रु मित्र मो नहीं ॥३३
[illegible] मत्र, नानाविध सा भासत अर्थें।
[illegible], जानो हम निय चिद्व चिद्रप ॥३[illegible]
[illegible] आतमा सोय, ज्योति स्वरूप मनातन सोय।
[illegible] नात निज धाम, अनतोशीं अच्युत निज राम॥३[illegible]
[illegible] तनक भीर, गन्तर दगतें टारे धीर।
[illegible] जाल विशुद्ध, परमातम ज्ञानी अविरुद्ध ॥३[illegible]
[illegible] मोच य दाइ तत्त्व, है भ्रम अभ्रम कारण तत्व।
[illegible] जान पर मगति दाप, भद गातें उपजे मोच ॥३[illegible]
चरन अलौकिक नानी तना, अद्भुत काप जानतु मना।
अज्ञानी जिहि नाचे दम, तहँ ज्ञाना माव शिव शर्म ॥३[illegible]
जो भव दनम भवन अतयत, मैं पूरव दुःख लह्यो अनत।
गो जिनपरको भेद विज्ञान पावे जिन यह निश्चय जान॥३[illegible]
जो स ज्ञान प्रदीपक सार, लोकालोक प्रकाशन हार।
तो क्या जगवासी जन धीर, टरे भव कर्दमर्म हीन ॥४[illegible]
निजमें निजकर आपस्वरूप, अनुभव करिये सदा अनूप।
तातेनिज को जानन हेत, परमें विरुत भयाम समेत ॥४[illegible]
सो ही मैं मैं सो भी शुद्ध इम अभ्यासत सदा सुबुद्ध।

कर विकल्प वासना नाश, पावे आप आपमें वास ॥४२
फरत अज्ञानी जहँ जहँ प्रीत, सो सो आपद धाम प्रतीत ।
जा पद ते पुनि यह डर त्याग, चिदानंद मन्दिर मा लाग ॥४३
इंद्रिय चपल चित्तको रोक, होय प्रसन्न अनुभव ही लोक ।
ततक्षण भ्रमरहित चिद्रूप, भासे सो परमात्म स्वरूप ॥४४
जो सिद्धातम मैं हूँ सोय, जो मैं सो परमेश्वर होय ।
मों को पर न उपासन जोग, पर कर मैं न उपासन योग ॥४५
करण विषय ह्रियमुख ततखेंच निजको निजकर बिन भ्रम पेंच।
मैं निजमें थिर भयो अटल्ल चिदानंदमय निज असल्ल ॥४६
या प्रकार तनतें जो भिन्न, लख न भ्रम बिन चेतन चिह्न ।
सो अति तीव्र कोटि तप करै तो भी लघु शिवि न अन फरे॥४७
जो आत्मा पर भेद विज्ञान सुधापान आनन्दित जान ।
देहिजनित कलेशनते सोय, तपमें खेद खिन्न नहि होय ॥४८
रागादिक कनकको जोय, जाको चित्त अति निर्मल होय ।
सो ही लखै आपको आप अन्य हेतु है नाहि कदापि ॥४९
तत्त्वरूप निर्विकल्पचित्त, सहित विकल्प अतत्त्व सुमित्त ।
तातें तत्त्वसिद्धिके अर्थ, निर्विकल्प चित करहु समर्थ ॥५०
जो निज चित्त अज्ञान समेत, सो नाहिं निज अनुभव हेत ।
सो ही ज्ञान वासनालीन, लखे परमपद आप प्रवीन ॥५१
जो मन होय मोहमें मग्न, चवल रागादिकतें भग्न ।
सो मुनि सो मन निजमें थाप, ततक्षण हनें राग सताप॥५२

मूढ़ [illegible], तातें भिन्न सुबुद्धि होय ।
[illegible] कर रागसतति सब भग्न ॥५३
[illegible], सो सुनान ही तें क्षय होय।
[illegible], त तपहु न कर न छीन ॥५४
[illegible] प्रार्थी नह अज्ञानी पनी ।
[illegible] दशा, चाहत प्रगट आतम रमा ॥५५
[illegible] निजकी बाध निजच्युत मूढ़ ।
[illegible] बुधि धार, ज्ञानी करहि बंध विध चार ॥५६
[illegible] देह प्रतीत, ताहि अनात मानि आत्मीक।
[illegible] निज रूप, लिंग मा रचित चिद्रूप ॥५७
[illegible] से जानो पुन ठीक, निश्चय कियो तत्त्व आत्मीक ।
जो अनादि भ्रमकारण पाय, फुनि हूं क जु खलित हो जाय ।५८
जो दिखाय सो चेतन नाहि, चेतन नहि आवै दृग माहिं ।
तातें निष्फल अन्य रागादि, ध्याऊँ मैं स्वरूप आह्लादि ।५९
त्यजन ग्रहण बाहिज मूढ़ कर, ज्ञानी अन्तरतें अनुसर ।
त्यजन ग्रहण बहिरंतर दोय, शुद्धातम न करे कछु सोय ॥६०
वचन कायतें त्याग जान, मनसे करे आतम का ध्यान ।
वचन देहसे कारज और, करे नहीं पुनि मनसे दौर ॥६१
अज्ञानी जनको ससार, भासे सुख प्रतीत भडार ।
तिनहि कहाँ सुख कहा विश्राम, भासे निज पायो निज धाम॥६२
जे ववेक बिन अन्य विचार ज्ञानी करै न छिन मन मार।

जो विवेक कछु कारज करे, सो सब तनतें बिन आदर ॥६३
अबुधिपय मय जो मूर्तीक, सो स्वरूपतें पर यह ठीक ।
निजानंद निर्भय चेत न, जोतिमई मम रूप न अन्य । ६४
अन्तर दृग बाहिज सुख ति ह योगाभ्यास उद्यमी जन ।
इनतें उल्टी तिनकी चाल, निज पायो निज योग रसाल ॥६५
सो जाने सोई उचरे, सोई सुने ध्यान तसु धरे ।
तातें होय भरम तम नाश पावे आप आपमें वास । ६६
विषयनमें कछु नाहीं सोय तात कहित जीवके हार ।
तो पुनि प्रीति करे तिन माहि, अज्ञानी उर समता नाहिं ॥६७
भाख्यो भी बिन भाखो जम, मूरख तत्त्व न जाने केम ।
तातें पर समझावन काज, उद्यम वृथा हमारे साज ॥६८
जो उपदेश नहीं मैं सोय सो स्वरूप पर ग्राह्य न होय ।
तात पर सबोधन तनो, आग्रह वृथा हमारो भनो ॥६९
अज्ञानी अन्तर दृग बिना, परम तुष्ट होत निशदिना ।
रहित बाह्य भ्रम ज्ञानी जीव, तुष्ट आपमें आप सदीव ॥७०
यावत मन वच तनमें धार, आत्मबुद्धि तावत संसार ।
इनतें भेदज्ञान जब करे तब ही भवसागरतें तरे ॥७१
जीरन रक्त पुष्ट सुच जोर वस्त्र होत जिमि पुरुष न होय ।
त्यों जीर्णादि होत वपु रूप, नहि पुन आतम चिद गुन भूप॥७२
चल भी अचल तुल्य भासत जाके ज्ञान माहिं अत्यन्त ।
ज्ञान योग चालत बिन सोय, शिवपद पावै निश्चय होय ।७३

... त्य तरें रूप निज ज्ञान।
... ाला यर अभाव न होय ॥७४
... तन वहु रूप्य गनिन मर तन्।
... ान त न न आगम गूढ ॥७५
... म जाकी थिति मु र आतम राम।
... ा आतम थिान नहि जोय ॥७६
... , नारग गौरण लघु गुरु पून।
... ठ आद, लखत न आतम ज्ञानरूप ॥७७
... ... चपल चित्त तह मनभ्रम तह।
... त्यागो लौकिक जन परमग ॥७८
... मादर गीच, निज २ गाज होय जन टीच।
... अवस्था थिर, निन निराम निज हाम दिस ॥७९
दह माहि जो आतम थ्याव, तन मतातिको कारण जान।
जो चिद् गुणमें निज बुध सोय, तन मतति नाशन मलधोय ॥८०
निज कर निनको रचन करे, निज ही निजको शिव सुख भरे।
तातें आप आपका होय, रिपु गुरु, अन्य नहा पुन कोय ॥८१
जान आपने न्यारो काय, तनते भिन्न लख निदराय।
तव निमक होय त्यागे अंग, जसे वस्त्र घिनावन रंग ॥८२
अन्तरंग निजरूप निहार पुन शरीरको बाह्य विचार।
तिनके भद ज्ञानमें मग्न, चिग गो निज निश्चय निज लग्न ॥८३
जिनने निरुट लग्यो निजतत्त्व प्रथम लखें त जगके मत्त।

तातें जब शातामृत चखै, लोष्ठ समान भागै तब सखै ॥८४
तनतें भिन्नहि आतमराम जो यै सुनत कहत वसु जाम ।
तो पै तन ममत्व नहि तजे, यावत भेदज्ञान नहि भजे । ८५
तनसे भिन्न जान निजरूप, ऐसे अनुभव करहु अनूप ।
जसे फेरहु स्वप्नमाहि तनमें निजमति उपजे नाहि ॥८६
किया शुभाशुभ दोई अघ, कारण पुण्य पाप विधि बंध ।
तिन ताते निजपरणति शिव हेत, ताते त्यागो क्रिया सुचेत ॥८७
प्रथम असयम त्यागहु बुद्ध सयम चरण होय तब शुद्ध ।
फिर स्वरूपको पाय अनल्प, त्यागे सयम चरण विकल्प॥८८
जातलिंग मुनि आतमरूद, देहाश्रित वरत भ्रम दृढ ।
तनु मत तिं भव ताते मुनी द्रव्यलिंगमें ममता धुनै ॥८९
पगुल अध कर आरूढ, मनयन ताहि लखै जाम मूढ ।
त्यों मठ आतमके सयोग, अगमाहि जाने उपयोग ॥९०
पगुल नेत्र यथकै माहिं, लखै भेद ज्ञानी जिमि नाहि ।
त्यों ज्ञानी तनमें निज नाव, जाने नाहि भिन्न पहिचान॥९१
मत्तोन्मत्त अवस्था नीच, भूले निज स्वरूप जिमि चनी ।
त्यों ज्ञानी कहूँ भूले नाहि आपा मस्त अवस्थामाहिं ॥९२
बहिरातम जन मोक्ष न लहै, जो पै जगी पाठ श्रुत कहै ।
ज्ञानी सुप्त तथा उन्मत्त, शिव पावे जाने जो तत्व ॥९३
आप आपको सिद्धस्वरूप, आराधै हुव सिद्ध अनूप ।
बाती ज्यों दीपकको पाय, अपहि दीपरूप हो जायें ॥९४

आप आप ही को आराधि, होय परम आतम [illegible]
[illegible] आपको जेम, [illegible] होय यह नम [illegible]
ऐसे [illegible] अगोचररूप जो अनुभवै परम गुन भूप [illegible]
पावै [illegible] सोय, जहँ न फेर चलित नहिं होय [illegible]
जो यह आतम आपा माहि, चाह [illegible] मात्र पर नहि [illegible]
सो बिन जतन परम पद पावै, [illegible] नियत हम [illegible]
[illegible] निज मरनो वृथा मान मूढ़ भरमतें [illegible]
[illegible] जागत निज मानै नाश, निश्चय आप परम गुण [illegible]
[illegible] अगोचर है, मूरत बिन [illegible] न [illegible]
[illegible] आप सुजान, जिनमें [illegible] बिन सो गुनवान
[illegible] शिव नाहि लहैं, जो तनमे आतम बुधि [illegible]
[illegible] बुधि जाम सो श्रुत शून्य लहैं शिव नाम [illegible]
[illegible] स्वाद विरक्त, जो न होय स्वरूपासक्त
[illegible] सुखरूप, आप अनुभवै चेतन भूप [illegible]
[illegible] दुख फल सो नश जाय निदा[illegible]
[illegible] होय, [illegible] निज लोग [illegible]

गीतिकाछन्द।

[illegible] पदार्थ [illegible] प्रकाशते [illegible]
[illegible] आप उपाधिय [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible]

यह ध्येय साधारण कहो, धर्म शुक्ल सुध्यानकों।
तिन शुद्ध स्वामि विशेष जानो दश सूत्र वखानकों॥
अधिकार शुद्धोपयोगरूप विचार यह निज हित भनो।
कछु भागचद विचारके अनुसार ज्ञानार्णव तनो॥१८४॥

७ इति ९

श्रीमद्राजचन्द्रकृत श्रीआत्मसिद्धिशास्त्र के कतिपय पद।

(श्री सद्गुरुचरणाय नमः)

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्या दुःख अनन्त।
समजाव्यु[1] ते पद नमु, श्रीसद्गुरु भगवत॥ १ ॥
वर्तमान आ कालमा, मोक्षमार्ग बहु लोप।
विचारवा आत्मार्थिने[3], भाख्यो अत्र अगोप्य[4]॥ २ ॥
कोई क्रियाजड थई रह्या[5], शुष्कज्ञानमा कोई।
माने मारग मोक्षनो[6], करुणा उपजे जोई[7]॥ ३ ॥
बाह्य क्रियामा राचता, अतर्भेद न काई[8]।
ज्ञानमार्ग निषेधता, तेह क्रियाजड आंहि[9]॥ ४ ॥

१ समझाया। २. इस वर्तमानकालमें। ३ आत्मार्थी जीवोंके विचारने के लिये। ४ स्पष्टरूपमे। ५. हैं। ६ मोक्षका। ७ देखकर। ८ कोई। ९ वे। १० यहाँ।

ते ... भाखे वाणीमांहि ।
... ते आदि ॥ ५ ॥
... तो गहे आतमज्ञान ।
... , पामितणा[4] निदान ॥ ६ ॥
... त्यागमा, थाय न तेने[5] भान ।
... त्यागमा, तो भूले निजभान ॥ ७ ॥
... योग्य छे, तहाँ समजवुं तेह ।
... त आचरे, आत्मार्थी जन एह । ८ ॥
... सद्गुरु चरणने, त्यागी दई निजपक्ष ।
... परमार्थने निजपदनो ले लक्ष ॥ ९ ॥
आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदयप्रयोग ।
अपूर्व वाणी परमश्रुत सद्गुरुलक्षण योग्य ॥ १० ॥
प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार ।
एवो लक्ष थया[1] विना, उगे न आत्मविचार ॥ ११ ॥
सद्गुरुना उपदेशवण[3] समजाय न जिनरूप ।
समज्यावण उपकार शो ? समज्ये जिनस्वरूप ॥ १२ ॥
आत्मादि अस्तित्वना, जेह-निरूपक शास्त्र ।
प्रत्यक्ष सद्गुरुयोग नहीं, त्यां आधार सुपात्र ॥ १३ ॥

१, ... २ मोक्षने आत्मामें। ३, वे। ४ प्राप्तिके। ५ होता। ६ उसे। ७ जहाँ। ८ जो। ९ वहाँ। १०, उगे। ११ पाता है। १२ ... १३ उपदेशके विना। १४ क्या ?

अथवा सद्गुरुए[1] कह्यां, जे अवगाहन काज ।
ते ते नित्य विचारवां, करी मतांतर त्याज ॥ १४ ॥
रोके जीव स्वच्छंद तो, पामे अवश्य मोक्ष ।
पाम्या एम अनंत छे, भाख्युं जिन निर्दोष ॥ १५ ॥
प्रत्यक्ष सद्गुरुयोगथी, स्वच्छंद ते रोकाय ।
अन्य उपाय कर्या थकी, प्राये बमणो थाय ॥ १६ ॥
स्वच्छंद मत आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष ।
समकित तेने भाखियुं, कारण गणी प्रत्यक्ष ॥ १७ ॥
मानादिक शत्रु महा, निजछंदे न मराय ।
जातां सद्गुरुशरणमां, अल्प प्रयासे जाय ॥ १८ ॥
होय मतार्थी तेहने, थाय न आतमलक्ष ।
तेह मतार्थीलक्षणो, अहीं कह्यां निर्पक्ष ॥ १९ ॥
बाह्य त्याग पण ज्ञान नहीं, ते माने गुरु सत्य ।
अथवा निजकुलधर्मना, ते गुरुमां ज ममत्व ॥ २० ॥
जे जिनदेहप्रमाणने, समवसरणादि सिद्धि ।
वर्णन समजे जिननुं, रोकी रहे निजबुद्धि ॥ २१ ॥
प्रत्यक्ष सद्गुरुयोगमां, वर्ते दृष्टि विमुख ।
असद्गुरुने दृढ करे, निजमानार्थे मुख्य ॥ २२ ॥

१ सद्गुरुने । २ करने पर भी । ३ दुगुना । ४ निष्पक्ष (समझकर) । ५ अपनी चतुराईसे चलनेमें नाश नहीं होते ।

[illegible] समजे श्रुतज्ञान।
[illegible] ग्रह मुक्तिनिदान ॥ २३ ॥
[illegible] व्रत अभिमान।
[illegible] लौकिक मान ॥ २४ ॥
[illegible] मात्र शब्दनी माय।
[illegible] साधनरहित थाय ॥ २५ ॥
[illegible] साधनदशा न कांइ।
[illegible] ते बूडे भव मांहि ॥ २६ ॥
[illegible] निजमानादि काज।
[illegible] परमार्थने, अनअधिकारिमां ज ॥ २७ ॥
[illegible] कषाय उपशांतता, नहीं अंतवैराग्य।
सरलपणुं न मध्यस्थता, ए मतार्थी दुर्भाग्य। २८।
लक्षण कह्यां मतार्थीनां, मतार्थ जावा काज।
हवे कहुं आत्मार्थीना, आत्म अर्थ सुखसाज ॥२९॥
आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं, ते साचा गुरु होय।
बाकी कुलगुरु कल्पना आत्मार्थी नहीं जोय ॥३०॥
प्रत्यक्ष सद्गुरुप्राप्तिनो, गणे परम उपकार।
त्रणे योग एकत्वथी वर्ते आज्ञाधार ॥ ३१ ॥

१ डूब जाता है। २ अनधिकारी (ज्ञान प्रवेश होने योग्य नहीं) जीवोंमें गिना जाता है। ३ दूर करनेके लिये। ४ अथ, [illegible] समझता है। ६ मन, वचन और कायाकी एकतासे।

एक होय त्रण कालमां, परमारथनो पंथ।
प्रेरे ते परमार्थने, ते व्यवहार समंत[1] ॥ ३२ ॥
एम विचारी अंतरे, शोधे सद्गुरुयोग।
काम एक आत्मार्थनुं, बीजो नहि मनरोग ॥ ३३ ॥
कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे खेद[2] प्राणी दया त्यां आत्मार्थ निवास ॥३४॥
दशा न एवी[3] ज्यांसुधी[4], जीव लहे नहि जोग।
मोक्षमार्ग पामे नहीं, मटे न अंतररोग ॥ ३५ ॥
आवे ज्यां एवी दशा सद्गुरुबोध सुहाय।
ते बोधे सुविचारणा, त्यां प्रगटे सुखदाय ॥ ३६ ॥
ज्यां प्रगटे सुविचारणा, त्यां प्रगटे निजज्ञान।
जे ज्ञाने क्षय मोह थई, पामे पद निर्वाण ॥ ३७ ॥
उपजे ते सुविचारणा, मोक्षमार्ग समजाय।
गुरुशिष्यसंवादथी[5], भाखुं षट्पद आंहि ॥ ३८ ॥

षट्पदनामकथन—

आत्मा छे, ते नित्य छे छे कर्ता निजकर्म।
छे भोक्ता, वली मोक्ष छे, मोक्षउपाय सुधर्म ॥३९॥
षट्स्थानक संक्षेपमां षट्दर्शन पण तेह।

१ मान्य रखना चाहिए। २ संसारसे वैराग्य। ३ ऐसी।
४ जबतक। ५ गुरु शिष्यके संवादरूपमें।

समजावो[1] परमार्थने, वर्त्यो ज्ञानीए एह ॥ ४० ॥

१ शंका शिष्य उवाच—

नथी[2] दृष्टिमां आवतो, नथी जणातुं रूप।
बीजो पण अनुभव नहीं, तेथी न जीवस्वरूप ॥४१॥

अथवा देह ज आतमा, अथवा इन्द्रिय प्राण।
मिथ्या जुदो[3] मानवो, नहीं जुदुं एंधाण[4] ॥ ४२ ॥

वळी जो आतमा होय तो, जणाय ते नहीं केम[5]।
जणाय जो ते होय तो, घटपट आदि जेम[6] ॥४३॥

माटे छे नहीं आतमा, मिथ्या मोक्षउपाय।
ए अंतर शंका तणो, समजावो सदुपाय ॥ ४४ ॥

समाधान सद्गुरु उवाच—

सद्गुरु समाधान करते हैं कि आत्माका अस्तित्व है—

भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देहसमान।
पण ते बन्ने[8] भिन्न छे, प्रगटलक्षणे भान ॥ ४५ ॥

भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देहसमान।
पण ते बन्ने भिन्न छे जेम असि ने म्यान ॥४६॥

जे द्रष्टा छे दृष्टिनो, जे जाणे छे रूप।
अबाध्य अनुभव जे रहे, ते छे जीवस्वरूप ॥ ४७ ॥

---

१ समझनेके लिये। २ नहीं। ३ भिन्न। ४ भिन्न चिह्न दिखाई नहीं देता। ५. यह मालूम क्यों नहीं होती? ६ जैसे। ७. अबाध्य। ८ दोनों।

छे इन्द्रिय प्रत्येकने, निज निज विषयनु ज्ञान।
पॉच इन्द्रिना विषयनु, पण आत्माने भाण ॥४८॥
देह न जाणे तेहने, जाणे न इन्द्रिय प्राण।
आत्मानी सत्तावडे[१], तेह प्रवर्ते जाण ॥ ४९ ॥
सर्व अवस्थाने विषे, न्यारो सदा जणाय।
प्रगटरूप चैतन्यमय, ए एधाणे सदाय ॥ ५० ॥
घट पट आदि जाण तु, तेथी तेने मान।
जाणनार[२] ते मान नहीं, कहिये केवु ज्ञान? ॥ ५१ ॥
परमबुद्धि कृष देहमा स्थूल देह मति अल्प।
देह होय जो आतमा, घटे न आम विकल्प ॥५२॥
जड चेतनो भिन्न छे केवल प्रगट स्वभाव।
एक पणु पामे नहीं त्रणे[३] काल द्वय भाव ॥५३॥
आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते[४] आप।
शंकानो[५] करनार[६] ते, अचरज एह अमाप[७] ॥५४॥

२ शंका—शिष्य उवाच—

शिष्य कहता है कि आत्मा नित्य नहीं है —

आत्माना अस्तित्वना, आप कह्या प्रकार।
संभव तेनो थाय छे, अतर कर्ये[८] विचार ॥ ५५ ॥

१ सत्तासे हो। २ जानने वाला। ३ तीनों। ४ स्वयं। ५ शंकाका। ६ करने वाला। ७ अमाप। ८ अंतरमें विचार करने

बीजी शंका शिष्यनी, आत्मा नहीं अविनाश।
देहयोगथी उपजे देहवियोगे नाश ॥ ५६ ॥
अथवा वस्तु क्षणिक छे क्षणे क्षणे पलटाय।
ए अनुभवथी पण नहीं आत्मा नित्य जणाय ॥५७॥

समाधान—सद्गुरु उवाच—

[illegible] कहते हैं कि आत्मा नित्य है —

देहमात्र संयोग छे, वळी जडरूपी दृश्य।
चेतनना उत्पत्ति लय[3], कोना[4] अनुभव वश्य ?॥५८॥
जेना अनुभव वश्य ए, उत्पन्न लयनुं[7] ज्ञान।
ते तेथी जुदा विना, थाय न केमे भान ॥५९॥
जे संयोगो देखिये, ते ते अनुभव दृश्य।
उपजे नहीं संयोगथी, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष ॥६०॥
जडथी चेतन ऊपजे, चेतनथी जड थाय।
एवो अनुभव कोईने, क्यारे कदी न थाय ॥६१॥
कोई संयोगोथी नहीं, जेनी[11] उत्पत्ति थाय।
नाश न तेनो[12] कोईमां, तेथी नित्य सदाय ॥६२॥
क्रोधादि तरतम्यता, सर्पादिकनी मांय।

१ दूसरी। २ देहके संयोगसे। ३ उत्पत्ति और नाश। ४ किसके। ५ आधीन। ६ जिसके। ७ नाशका। ८ किसीके भी। ९ किसीको। १० कभी भी। ११ जिसकी। १२ उसका। १३ किसीके साथ।

पूर्वजन्म सम्कार ते, जीव नित्यता त्याय ॥ ६३ ॥
आत्मा द्रव्ये नित्य छे पर्यायो पलटाय ।
बालादि वय त्रएयनु, ज्ञान एकने थाय ॥ ६४ ॥
अथवा ज्ञान क्षणिकनु, जे जाणी वदनार ।
व नारो ते क्षणिक नहीं, कर अनुभव निर्धार ॥६५॥
क्यारे कोई वस्तुनो, केवल[1] होय न नाश ।
चेतन पामे नाश तो, केमा[3] भल तपास[4] ॥ ६६ ॥

३ शङ्का–शिष्य उवाच —

शिष्य कहता है कि आत्मा कर्मका कर्त्ता नहीं है —

कर्त्ता जीव न कर्मनो, कर्म ज कर्त्ता कर्म ।
अथवा सहज स्वभाव का, कर्म जीवनो धर्म ॥६७॥
आत्मा सदा असंगने, करे प्रकृति बन्ध ।
अथवा ईश्वर प्रेरणा, तेथी जीव अबंध ॥ ६८ ॥
माटे मोक्ष उपायनो, कोई न हेतु जणाय ।
कर्मतणु कर्त्तापणु, का नहीं का नहीं जाय ॥६९॥

समाधान–सद्गुरु उवाच —

सद्गुरु समाधान करते हैं कि आत्मा कर्मका कर्त्ता किस तरह है—

होय न चेतन प्रेरणा, कोण ग्रहे तो कर्म ?
जडस्वभाव नहीं प्रेरणा, जुओ विचारी धर्म[5] ॥७०॥

१ जानने वाला । २ सर्वथा । ३ किसम, किस प्रकारके । ४ खोज कर । ५ जड और चेतन दोनोंके धर्मोंको विचार करके देखो ।

जो चेतन करतुं नथी, नथी थतां तो कर्म ।
तेथी सहज स्वभाव नहीं, तेमज नहीं जीवधर्म ॥७१॥
केवल होत असंग जो, भासत तने न केम ?
असंग छे परमार्थथी पण निजभाने तेम ॥ ७२ ॥
कर्ता ईश्वर कोई नहीं, ईश्वर शुद्ध स्वभाव ।
अथवा प्रेरक ते गणये, ईश्वर दोषप्रभाव ॥ ७३ ॥
चेतन जो निजभानमां कर्ता आप स्वभाव ।
वर्ते नहीं निजभानमां, कर्ता कर्मप्रभाव ॥ ७४ ॥

४ शंका—शिष्य उवाच —

जीव कर्मकर्ता कहो पण भोक्ता नहीं सोय ।
शुं समजे जड कर्म के फलपरिणामी होय ? ॥७५॥
फलदाता ईश्वर गणये, भोक्तापणुं सधाय ।
एम कहे ईश्वरतणुं, ईश्वरपणुं ज जाय ॥७६॥
ईश्वर सिद्ध थया विना, जगत् नियम नहीं होय ।
पछी शुभाशुभ कर्मनां, भोग्यस्थान नहीं कोय ॥७७॥

समाधान—सद्गुरु उवाच —

सद्गुरु समाधान करते हैं कि जीव अपने किये हुए कर्मको भोगता है —

भावकर्म निजकल्पना, माटे चेतनरूप ।
जीववीर्यनी स्फुरणा, ग्रहण करे जडधूप ॥ ७८ ॥

१ फल देनेकी शक्ति । २ ईश्वरका । ३ ईश्वरत्व । ४ अपनी भ्रान्तिसे ही ।

झेर सुधा[1] समजे नहीं, जीव खाय फल थाय ।
एम शुभाशुभ कर्मनुं, भोक्तापणुं जणाय ॥ ७९ ॥
एक रांक ने एक नृप, ए आदि जे भेद ।
कारण विना न कार्य ते, ए ज शुभाशुभ वेद्य ॥८०॥
फलदाता ईश्वरतणी, एमां नथी जरूर ।
कर्म स्वभावे परिणमे, थाय भोगथी दूर ॥ ८१ ॥
ते ते भोग्य विशेषना, स्थानक द्रव्य स्वभाव ।
गहन वात छे शिष्य आ, कही संक्षेपे साव॥ ८२ ॥

शङ्का-शिष्य उवाच —

शिष्य कहता है कि जीवको उस कर्मसे मोक्ष नहीं है —

कर्ता भोक्ता जीव हो, पण तेनो नहीं मोक्ष ।
वीत्यो काल अनंत पण, वर्तमान छे दोष ॥ ८३ ॥
शुभ करे फल भोगवे, देवादि गति मांय ।
अशुभ करे नरकादि फल, कर्मरहित न क्यांय[2] ॥८४॥
जेम शुभाशुभ कर्मपद, जाण्यां सफल प्रमाण ।
तेम निवृत्ति सफलता, माटे मोक्ष सुजाण ॥ ८५ ॥
वीत्यो काल अनंत ते, कर्म शुभाशुभ भाव ।
तेह शुभाशुभ छेदतां, उपजे मोक्ष स्वभाव ॥ ८६ ॥
देहादि संयोगनो, आत्यंतिक वियोग ।
सिद्ध मोक्ष शाश्वतपदे, निज अनंत सुख भोग ॥८७॥

१ जहर और अमृत । २ किसीभी जगह ।

५ शंका-शिष्य उवाच —

शिष्य कहता है कि मोक्षका उपाय नहीं है —

होय कदापि मोक्षपद, नहीं अविरोध उपाय।
कर्मों काल अनंतना, शाथी छेद्या जाय? ॥८८॥
अथवा मत दर्शन घणा, कहे उपाय अनेक।
तेमां मत साचो कयो[2] ? बने न एह विवेक ॥८९॥
तेथी एम जणाय छे, मले[3] न मोक्ष उपाय।
जीवादि जाण्यातणो, शो उपकार ज थाय[4] ॥९०॥
पांचे उत्तरथी थयु[5], समाधान सर्वांग।
समजु मोक्ष उपाय तो, उदय उदय सद्भाग(ग्य)॥९१॥

समाधान सद्गुरु उवाच —

सद्गुरु समाधान करते हैं कि मोक्षका उपाय है —

पांचे उत्तरनी थई, आत्मा विषे प्रतीत।
थाशे[7] मोक्षोपायनी, सहज प्रतीत ए रीत ॥ ९२ ॥
कर्मभाव अज्ञान छे मोक्षभाव निजवास[8]।
अंधकार अज्ञान सम, नाशे ज्ञानप्रकाश ॥ ९३ ॥
जे जे कारण बंधना, तेह बंधनो पंथ।
ते कारण छेदक दशा, मोक्षपंथ भवअंत ॥ ९४ ॥

१ कैसे। २. कौनसा। ३ प्राप्त होना है। ४ जानने से भी। ५ हो सकता है। ६ जो पांच उत्तर कहे हैं। ७ इसी तरह। ८ आत्मस्वरूपमें स्थित होना।

राग द्वेष अज्ञान ए, मुख्य कर्मनी ग्रंथ।
थाय निवृत्ति जेहथी[1], ते ज मोक्षनो पंथ ॥ ९५ ॥
आत्मा सत् चैतन्यमय, सर्वाभासरहित।
जेथी केवल पामिये, मोक्षपंथ ते रीत ॥ ९६ ॥
कर्म अनंत प्रकारना, तेमां मुख्ये आठ।
तेमां मुख्ये मोहिनीय, हणाय ते कहुं पाठ ॥ ९७ ॥
कर्म मोहनीय भेद बे[2], दर्शन चारित्र नाम।
हणे बोध वीतरागता, अचूक उपाय आम ॥ ९८ ॥
कर्मबंध क्रोधादिथी, हणे क्षमादिक तेह।
प्रत्यक्ष अनुभव सर्वने, एमां शो सन्देह[3]? ॥ ९९ ॥
छोडी मत दर्शन तणो, आग्रह तेम विकल्प।
कह्यो मार्ग आ साधशे[4], जन्म तेहना अल्प ॥१००॥
षट्पदना षट्प्रश्न तें, पूछ्यां करी विचार।
ते पदनी सर्वांगता, मोक्षमार्ग निरधार ॥१०१॥
कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे खेद[5] अंतर दया, ते कहिये जिज्ञास ॥१०२॥
ते जिज्ञासु जीवने, थाय सद्गुरुबोध।
तो पामे समकितने[6], वर्ते अंतरशोध ॥१०३॥

१ जिससे। २ दो। ३ तो इसमें फिर क्या सन्देह करना? ४ साधन करेगा। ५ संसारके भोगोंके प्रति उदासीनता। ६ तो वह समकितको पा जाता है।

मत दर्शन आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरुलक्ष ।
लहे शुद्ध समकित ते, जेमां भेद न पक्ष ॥१०४॥
वर्ते निजस्वभावनो, अनुभव लक्ष प्रतीत ।
वृत्ति वहे निजभावमां, परमार्थे समकीत ॥१०५॥
वर्धमान समकित थई, टाले मिथ्याभास ।
उदय थाय चारित्रनो वीतरागपद वास ॥१०६॥
केवल निजस्वभावनु अखंड वर्ते ज्ञान ।
कहिए केवलज्ञान ते, देह छतां[3] निर्वाण ॥१०७॥
कोटि वर्षनु स्वप्न पण, जाग्रत थतां शमाय[4] ।
तेम विभाव अनादिनो, ज्ञान थतां दूर थाय ॥१०८॥
छूटे देहाध्यास[5] तो, नहीं कर्ता तु कर्म ।
नहीं भोक्ता तु तेहनो, एज[6] धर्मनो मर्म ॥१०९॥
एज[6] धर्मथी मोक्ष छे तु छे मोक्षस्वरूप ।
अनंत दर्शन ज्ञान तु, अव्याबाध स्वरूप ॥११० ॥
शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति सुखधाम ।
बीजु कहिये केटलु[8]? कर विचार तो पाम[9] ॥१११॥

---

१ प्रगटित होता है। २ स्वभाव समाधिरूप चारित्रका। ३ देहके विद्यमान रहनेपर भी (अर्हंत दशारूप मोक्ष) ४ जाग्रत होने पर तुरन्त ही शान्त हो जाता है। ५ देह में आत्मबुद्धि। ६ यही। ७ तुम्ही। ८ अधिक कितना कहें? ९ पावेगा।

निश्चय सर्वे ज्ञानीनो, आवी अत्र शमाय¹।
धरी मौनता एम कही, सहजसमाधि माय ॥११२॥

शिष्य को बोधबीज प्राप्ति कथन —

अर्थ सद्गुरु आत्मज्ञानकी प्राप्तिके मूलकारणका वर्णन करते हैं—

सद्गुरुना उपदेशथी, आव्युं² अपूर्व भान।
निजपद निज मांही लह्युं, दूर थयुं³ अज्ञान ॥११३॥
भास्युं निजस्वरूप ते, शुद्ध चेतनारूप।
अजर अमर अविनाशी ने, देहातीत स्वरूप ॥११४॥
कर्ता भोक्ता कर्मनो, विभाव वर्ते ज्यांय⁴।
वृत्ति वही निजभावमां, थयो अकर्त्ता त्यांय⁵ ॥११५॥
अथवा निजपरिणाम जे शुद्ध चेतनारूप।
कर्त्ता भोक्ता तेहनो, निर्विकल्पस्वरूप ॥११६॥
मोक्ष कह्यो निजशुद्धता, ते पामे ते पंथ।
समजाव्यो संक्षेपमां, सकल मार्ग निर्ग्रन्थ ॥११७॥
अहो! अहो! श्रीसद्गुरु, करुणासिंधु अपार।
आ पामरपर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार ॥११८॥
शुं प्रभु चरणकने धरुं⁶? आत्माथी सौ हीन⁷।
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन ॥११९॥

१ इसीमें आकर समा जाता है। २ हुआ। ३ दूर हो गया। ४ जहाँ। ५ वहाँ। ६ मैं प्रभुके चरणोंके समक्ष क्या रक्खूं? ७ वे सब आत्माकी अपेक्षासे तो मूल्यहीन ही हैं।

नग्नभाव मुंडभाव सह अस्नानता, अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो, केश रोम नख के अंगे[1] शृंगार नहीं, द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रंथ सिद्ध जो। अपूर्व० ॥ ९ ॥

शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता, मान अमाने वर्ते ते ज स्वभाव जो, जीवित के मरणे नहीं न्यूनाधिकता, भव[2] मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो। अपूर्व० ॥ १० ॥

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां, वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो, अडोल आसन, ने[3] मनमां नहीं क्षोभता, परम मित्रनो जाणे पाम्या[4] योग जो। अपूर्व० ॥ ११ ॥

घोर तपश्चर्यामां पण मनने ताप नहीं, सरस[5] अन्ने नहीं मनने प्रसन्नभाव जो, रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी[6], सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो। अपूर्व० ॥ १२ ॥

एम[7] पराजय करीने[8] चारित्रमोहनो, आवुं त्यां[9] ज्यां[10] करण अपूर्व भाव जो, श्रेणी क्षपकतणी करीने[11] आरूढता, अनन्यचिंतन अतिशय शुद्ध स्वभाव जो। अपूर्व० ॥ १३ ॥

मोह स्वयंभूरमण समुद्र तरी करी[12] स्थिति त्यां ज्यां क्षीणमोह गुणस्थान जो, अंत समय त्यां पूर्णस्वरूप वीतराग थई, प्रगटावुं निज केवलज्ञान निधान जो। अपूर्व० ॥ १४ ॥

---

१ शरीरका। २ संसार। ३ से। ४ प्राप्त हुआ। ५ स्वादिष्ट। ६ देवोंकी। ७ इस तरह। ८ करके। ९ वहाँ। १० जहाँ। ११ आरूढ होकर। १२ स्वयंभूरमणरूपी मोहसमुद्रको पार करके।

चार कर्म घनघाती ते व्यवच्छेद ज्यां, भवना[1] बीज तणो आत्यंतिक नाश जो, सर्वभाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता, कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जो । अपूर्व० ॥ १५ ॥

वेदनीयादि चार कर्म वर्ते जहां, बळी सींदरीवत्[2] आकृति मात्र जो, ते देहायुष्[3] आधीन जेनी[4] स्थिति छे, आयुष् पूर्णे, मटिये[5] दैहिकपात्र जो । अपूर्व० ॥ १६ ॥

मन, वचन, काया ने कर्मनी वर्गणा, छूटे जहाँ सकल पुद्गल संबंध जो, एवुं[7] अयोगि गुणस्थानक त्यां वर्ततुं[8], महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबंध जो । अपूर्व० ॥ १७ ॥

एक परमाणु मात्रनी मळे न स्पर्शता, पूर्ण कलंकरहित अडोलस्वरूप जो, शुद्ध निरंजन चैतन्यमूर्ति अनन्यमय, अगुरुलघु, अमूर्त सहजपदरूप जो । अपूर्व० ॥ १८ ॥

पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी, ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो, सादि अनंत अनंत समाधि सुखमां, अनंत दर्शन, ज्ञान अनंत सहित जो । अपूर्व० ॥ १९ ॥

जे पद श्रीसर्वज्ञे दीठुं[9] ज्ञानमां, कही शक्या नहीं पण ते श्रीभगवान जो; तेह[10] स्वरूपने अन्य वाणी ते शुं[11] कहे ? अनुभवगोचर मात्र रह्युँ ते ज्ञान जो । अपूर्व० ॥२०॥

१ संसारके । २ जली हुई रस्सीकी आकृतिके समान । ३ देहकी आयुके । ४ जिसकी । ५ है । ६ नाश हो जाता है । ७ ऐसा । ८ है । ९ समाधिसुखमें । १० देखा । ११ उस । १२ क्या ।

नग्नभाव मुंडभाव सह अस्नानता, अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो, केश रोम, नख के अंगे शृंगार नहीं, द्रव्यभाव संयममय निर्ग्रंथ सिद्ध जो। अपूर्व० ॥ ९ ॥

शत्रु मित्र प्रत्ये वर्ते समदर्शिता, मान अमाने वर्ते ते ज स्वभाव जो, जीवित के मरणे नहीं न्यूनाधिकता, भव[2] मोक्षे पण शुद्ध वर्ते समभाव जो। अपूर्व० ॥ १० ॥

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां, वळी पर्वतमां वाघ सिंह संयोग जो, अडोल आसन, ने[3] मनमां नहीं क्षोभता, परम मित्रनो जाणे पाम्या[4] योग जो। अपूर्व० ॥ ११ ॥

घोर तपश्चर्यामां पण मनने ताप नहीं, सरस[5] अन्ने नहीं मनने प्रसन्नभाव जो, रजकण के ऋद्धि वैमानिक देवनी[6], सर्वे मान्या पुद्गल एक स्वभाव जो। अपूर्व० ॥ १२ ॥

एम पराजय करीने चारित्रमोहनो, आवुं त्यां[7] ज्यां करण अपूर्व भाव जो, श्रेणी क्षपकतणी करीने[11] आरूढता, अनन्यचिंतन अतिशय शुद्ध स्वभाव जो। अपूर्व० ॥ १३ ॥

मोह स्वयंभूरमण समुद्र तरी करी[12] स्थिति त्यां ज्यां क्षीणमोह गुणस्थान जो, अंत समय त्यां पूर्णस्वरूप वीतराग थई, प्रगटावुं निज केवलज्ञान निधान जो। अपूर्व० ॥ १४ ॥

---

१ शरीरका। २ संसार। ३ से। ४ प्राप्त हुआ। ५ रसादिष्ट। ६ देवोंकी। ७ इस तरह। ८ करके। ९ वहाँ। १० जहाँ। ११ आरूढ होकर। १२ स्वयंभूरमणरूपी मोहसमुद्रको पार करके।

चार कर्म घनघाती ते व्यवच्छेद ज्यां, भवना[1] बीज-तणो आत्यंतिक नाश जो, सर्वभाव ज्ञाता दृष्टा सह शुद्धता, कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जो। अपूर्व० ॥ १५ ॥

वेदनीयादि चार कर्म वर्ते जहां, बली सींदरीवत्[2] आकृति मात्र जो, ते देहायुष्[3] आधीन जेनी[4] स्थिति छे[5], आयुष् पूर्णे, मटिये[6] दैहिकपात्र जो। अपूर्व० ॥ १६ ॥

मन, वचन, काया ने कर्मनी वर्गणा, छूटे जहां सकल पुद्गल संबंध जो, एवुं[7] अयोगि गुणस्थानक त्यां वर्ततुं[8], महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबंध जो। अपूर्व० ॥ १७ ॥

एक परमाणु मात्रनी मले न स्पर्शता, पूर्ण कलंकरहित अडोलस्वरूप जो, शुद्ध निरंजन चैतन्यमूर्ति अनन्यमय, अगुरुलघु, अमूर्त सहजपदरूप जो। अपूर्व० ॥ १८ ॥

पूर्व प्रयोगादि कारणना योगथी, ऊर्ध्वगमन सिद्धालय प्राप्त सुस्थित जो, सादि अनंत अनंत समाधि सुखमां, अनंतदर्शन, ज्ञान अनंत सहित जो। अपूर्व० ॥ १९ ॥

जे पद श्रीसर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां, कही शक्या नहीं पण ते श्रीभगवान जो, तेह[11] स्वरूपने अन्य वाणी तेशुं[12] कहे ? अनुभवगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो। अपूर्व० ॥२०॥

---

१ संसारके। २ जली हुई रस्सीकी आकृतिके समान। ३-देहकी आयुके। ४ जिसकी। ५ है। ६ नाश हो जाता है। ७ ऐसा। ८ है। ९ समाधिसुखमें। १० दीखा। ११ उस। १२ क्या।

एह परमपदप्राप्ति क्व कथन में 'गमानगर' ने
मनोहर जो, न परम शुद्ध रामचन्द्र मनने
प्रख्यापए श्रीशु न ... स्वरूप जो । अपूर्व० ॥ ७

परमपूज्य आचार्योंके अध्यात्ममय पद्योंका स

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं —

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सदा रूवी
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं वि

अर्थ—मैं एक अकेला हूँ, निश्चयसे शुद्ध हूँ,
ज्ञानमई हूँ, सदा अरूपी हूँ तथा अन्य एक परमाणु
भी मेरा नहीं है।

परमट्ठम्मिय अठिदो जो कुणदि तव वद च धारयि
त सव्व बालतव बालवद विंति सव्वण्हु ॥ २

अर्थ—परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मामें स्थित न
जो तप और व्रतको धारण करता है उस सबको श्री
देवने बालतप (अज्ञानतप) और बालव्रत (अज्ञा
कहा है। क्योंकि ज्ञान बिना इन दोनोंसे कर्मोंक
होता है।

१ शक्ति बिना। २ इस समय। ३ प्रभुकी आ
४ होवूँ। ५ उस।

ववहारभासिदेण दु परदव्व मम भणति विदिदत्था ।
जाणंति णिच्छयेण दु णय इह परमाणुमित्त मम किंचि ॥३॥

अर्थ—जिन्होंने यथार्थ तत्त्वको नहीं जाना है वे पुरुष व्यवहारके कहे हुए वचनोंको लेकर कहते हैं कि परद्रव्य मेरा है और जो निश्चयरूप यथार्थ तत्त्वके ज्ञाता हैं वे कहते हैं कि परमाणुमात्र भी कुछ मेरा नहीं है।

अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णो कीरइ गुणविघादो ।
तह्मा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण ॥ ४ ॥

अर्थ—अन्य द्रव्यसे अन्य द्रव्यके गुणका विघात नहीं किया जा सकता। अत, यह सिद्धान्त है कि सभी द्रव्य अपने अपने स्वभावसे उपजते हैं।

णिंदिदसथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि ।
ताणि सुणिऊण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो ॥५॥

अर्थ—निंदा व स्तुतिके वचनरूप बहुत प्रकारके पुद्गल परिणमन करते हैं। उनको सुनकर अज्ञानी जीव यह समझता है कि ये वचन मुझे कह गए ऐसा जान क्रोध करता है तथा खुश होता है।

पोग्गलदव्वं सद्दत्तह परिणदं तस्स जदि गुणो अण्णो ।
तह्मा ण तुम भणिदो किंचिवि किं रूससे अबुहो ॥६॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य शब्दरूप परिणमन होता है यदि

[illegible] [illegible] में, गजानन्द[1] ने हाल[2]
मनोरथ [illegible] रामानन्द मनने रखो,
प्रभु आज्ञा[3] [illegible] चो। अपूर्व० ॥ २१ ॥

॥ ॥

परमपूज्य आचार्यके कुछ समय पद्योंका संकलन

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं —

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदा रूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि ॥१॥

अर्थ—मैं एक अकेला हूँ, निश्चयसे शुद्ध हूँ, दर्शन ज्ञानमइ हूँ, सदा अरूपी हूँ तथा अन्य एक परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है।

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि।
तं सव्वं बालतवं बालवदं बिंति सव्वण्हू ॥ २ ॥

अर्थ–परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मामें स्थित न होकर जो तप और व्रतको धारण करता है उस सबको श्रीसर्वज्ञ देवने बालतप (अज्ञानतप) और बालव्रत (अज्ञानव्रत) कहा है। क्योंकि ज्ञान बिना इन दोनोंसे कर्मोंका बंध होता है।

---

१ शक्ति बिना। २ इस समय। ३ प्रभुकी आज्ञासे।
४ होवूँ। ५ उस।

ववहारभासिदेण दु परदव्वं मम भणंति विदिदत्था।
जाणंति णिच्छयेण दु णय इह परमाणुमित्तमम किंचि॥३॥

अर्थ—जिन्होंने यथार्थ तत्त्वको नहीं जाना है वे पुरुष व्यवहारके कहे हुए वचनोंको लेकर कहते हैं कि परद्रव्य मेरा है और जो निश्चयकर यथार्थ तत्त्वके ज्ञाता हैं वे कहते हैं कि परमाणुमात्र भी कुछ मेरा नहीं है।

अण्णदवियेण अण्णदवियस्स णो कीरए गुणविघादो।
तम्हा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण॥४॥

अर्थ—अन्य द्रव्यसे अन्य द्रव्यके गुणका विघात नहीं किया जा सकता। अतः यह सिद्धान्त है कि सभी द्रव्य अपने अपने स्वभावसे उपजते हैं।

णिंदिदसंथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।
ताणि सुणिऊण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भणिदो॥५॥

अर्थ—निंदा व स्तुतिके वचनरूप बहुत प्रकारके पुद्गल परिणमन करते हैं। उनको सुनकर अज्ञानी जीव यह समझता है कि वे वचन मुझे कहे गये ऐसा जान क्रोध करता है तथा खुश होता है।

पोग्गलदव्वं सद्दत्तह परिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो।
तम्हा ण तुमं भणिदो किंचिवि किं रूससि अबुहो॥६॥

अर्थ—पुद्गलद्रव्य शब्दरूप परिणत होता है यदि

[illegible] हैं तब वह शत्रु तुम्हें कुछ भी [illegible] और क्यों क्रोध करता है?
[illegible] शुद्ध आत्माके स्वरूपसे [illegible] जीवका क्या बिगडा? कुछ [illegible] नहीं करना चाहिये।

[illegible] पंचास्तिकायमें कहते हैं --

[illegible] दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो।
[illegible] कारामओ जायए अगणी ॥ १ ॥

[illegible] परिणामोंमें राग, द्वेष मोह नहीं है और [illegible] क्रिया है, उसीके परिणाममें शुभ [illegible] करनेवाली स्वात्मानुभवरूपी ध्यानमें अग्नि पैदा हो जाती है।

जस्स हिदयणुमत्त वा परदव्वम्हि विज्जद रागो।
सो ण विजाणदि समय सगस्स सव्वागमधरोवि ॥२॥

अर्थ-जिसके हृदयमें परमाणुमात्र भी (जरासा भी) राग परद्रव्यमें है वह सर्व आगमको जानता हुआ भी अपने आत्माको नहीं जानता है। (आत्मा तो सबसे भिन्न एक शुद्ध ज्ञायक स्वभाव है, उसमें रागद्वेष मोहका रच मात्र भी लेश नहीं है।)

अत्ता कुणदि सहाव तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं ।
गच्छंति कम्मभाव अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥ ३ ॥

अर्थ–आत्माके अपने ही रागादि परिणाम होते हैं उनका निमित्त पाकर कर्म पुद्गल अपने स्वभावसे ही आकर कर्मरूप होकर आत्माके प्रदेशोंमे एक क्षेत्रावगाह बंधरूप होकर ठहर जाते हैं, जीव उनको बांधता नहीं है ।

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्म च अहिदभीरुत्त ।
जस्स ण विज्जदि णिच्च त समणा विंति अज्जीव ॥ ४ ॥

अर्थ–जिसमें सदा ही सुख व दुःखका ज्ञान, हितमें प्रवृत्ति व अहितसे भय नहीं पाया जाता है उसीको मुनियोंने अजीव कहा है ।

अरहतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्ममिम जा य खलु चेट्ठा ।
अणुगमण पि गुरुण पसत्थरागोत्ति वुच्चति ॥ ५ ॥

अर्थ—प्रशस्त या शुभराग (पुण्य) उसको कहते हैं जहाँ अरहत, सिद्ध व साधुकी भक्ति हो, धर्म साधनका उद्यम हो व गुरुओंकी आज्ञानुसार वर्तन हो ।

जोगणिमित्त गहण जोगो मणवयणकायसभूदो ।
भावणिमित्तो बधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥ ६ ॥

अर्थ–योगके निमित्तसे कर्मवर्गणाओंका ग्रहण होता है, वह योग मन, वचन, कायके द्वारा होता है । अशुद्ध

... होता है। यह भाव रति, राग, ...

... तत्थ कुणदि मा किंचि।
... यो भरसायर तरदि ॥ ७ ॥

... है, अत मर्न इच्छाओंको ... पदार्थों में किंचित् भी राग नहीं ... वीतराग भव्यजीव संसारसागरको तर ... है।

आ. शिवकोटि आचार्य भगवती आराधनामें ... कहते हैं।

दसणणाणचरित्त, तवो य ताणं च होइ सरणं च।
जीवस्स कम्मणासण, हेदु कम्मे उदिरणम्मि ॥ १ ॥

अर्थ—जीवके कर्मकी उदीरणा या तीव्र उदय होते हुए कर्मके नाश करनेको सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप ही परम शरण है और कोई अन्य रक्षक नहीं है।

रोगादिवेदणाओ, वेदयमाणस्स णिययकम्मफल।
पेच्छता वि समक्ख, किंचिवि ण करंति से णियया ॥२॥

अर्थ—अपने कर्मका फल रोगादि वेदना है उसको भोगते हुए जीवको कोई दुःख दूर नहीं कर सकता। कुटुम्ब परिवारके लोग सामने बैठे देखते रहते हैं तो भी वे कुछ नहीं कर सकते हैं तब और कौन दुःख दूर करेगा।

णीया अत्था देहा, दिया य मंगा ण फस्स इह होति।
परलोगं अणुगिणता, जदि वि दट्टवंति ते सुट्टु ॥ ३ ॥

अर्थ—परलोकको जाते हुए जीवके साथ स्त्री, पुत्र, मित्र, धन, देहादिक परिग्रह कोई नहीं जाते हैं, यद्यपि इसने उनके साथ बहुत प्रीति करी है तो भी वे निरर्थक हैं, साथ नहीं रहते।

होऊण अरी वि पुणो, मित्त उवकारकारणा होइ।
पुत्तो वि खणेण अरी, जायदि अवयारकरणेण ॥ ४ ॥
तम्हा ण कोइ कस्सइ, सयणो व जणो व अत्थि, ससारे।
कज्ज पडि हुवि जगे, णीया व अरी व जीवाण ॥५॥

अर्थ—वैरी भी हो, परन्तु यदि उसको उपकार करो, तो मित्र हो जाता है। अपना पुत्र भी अपकार किये जाने पर क्षणमें अपना शत्रु हो जाता है। अतः इस ससारमें कोई किसीका मित्र व शत्रु नहीं है। स्वारथके वश ही ससारमें मित्र व शत्रु होते है।

वयर रदणेसु जहा, गोसीस चदण च गधसु।
वेरुलिय व मणीण, तह झाण होइ खवयस्स ॥६॥

अर्थ—जैसे रत्नोंमें हीरा प्रधान है, सुगध द्रव्योंमें गोसीर चदन प्रधान है, मणियोंमें वैडूर्यमणि प्रधान है उसी प्रकार साधुके सर्व व्रत व तपोंमें आत्मध्यान प्रधान है।

दलवाहणडहयो राया ।
डओ होइ जह राया ॥ ७ ॥
भयसे बलवान वाहनपर चढ़ा
ता है उसी प्रकार कषायरूपी
आरूढ़ो वाहनपर चढ़ा आत्मध्यान
है ।

, मुहस्स चक्खू तरुस्स जह मूल ।
णाणचरणवीरियतवाण ॥ ८ ॥

नगरकी शोभा द्वारसे है, मुखकी शोभा
है वृक्षकी स्थिरता मूलसे है उसी प्रकार ज्ञान,
तप और वीर्यकी शोभा सम्यग्दर्शनसे है ।

सम्मत्तरत्न य लभो, तेलोक्कस्स य हवेज्ज जो लभो ।
सम्मद्दंसणलभो, वर खु तलोक्कलभादो ॥ ९ ॥
लध्दूण य तेलोक्कं, परिवडदि परिमिदेण कालेण ।
लध्दूण य सम्मत्तं, अक्खयसोक्खं लहदि मोक्खं ॥१०॥

अर्थ—एक तरफ सम्यग्दर्शनका लाभ होता हो दूसरी तरफ तीन लोकका राज्य मिलता हो तो तीन लोकके लाभसे सम्यग्दर्शनका लाभ श्रेष्ठ है । तीन लोकका राज्य पा करके भी नियतकाल पीछे वहांसे पतन होगा । और यदि सम्यग्दर्शनका लाभ हो जायेगा तो अविनाशी मोक्षसुखको पाएगा ।

कोहि डहिज्ज जह च,-दण णरो दारग च बहुमोल्लं ।
णासेइ मणुस्सभव, पुरिमो तह विसयलोभेण ॥ ११ ॥

अर्थ–जैसे कोई मानव बहुमूल्य चंदनके वृक्षको लकडी या ईंधनके लिये जला डाले तैसे ही अज्ञानी पुरुष इन्द्रिय विषयोंके लोभसे इस मनुष्य भवको नाश कर देता है।

गतूग णदणवण, अमिय छडिय विस जहा पियइ ।
माणुसभवे वि छडिय, धम्म भोगेऽभिलसदि तहा ॥१२॥

अर्थ–जैसे कोई पुरुष नंदनवनमें जाकर अमृतको छोड विष पीवे तैसे ही अज्ञानी इस मनुष्य भवमें धर्मको छोड कर भोगोंकी अभिलाषा करता है।

छट्ठट्ठमदसमदुवादसेहिं अण्णाणियस्स जा सोधी ।
तत्तो बहुगुणदरिया, होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स ॥१३॥

अर्थ–शास्त्रज्ञानके मनन विना जो अज्ञानीको बेला, तेला, चौला आदि उपवासके करनेसे शुद्धता होती है उससे बहुतगुणी शुद्धता सम्यग्ज्ञानीको आत्मज्ञानको मनन करते हुए जीमते रहनेपर भी होती है।

अक्खेविणी कहा सा, विज्जाचरण उवदिस्सदे जत्थ ।
ससमयपरसमयगदा, कहा दु विक्खेविणी णाम ॥१४॥
सवेयणी पुण कहा, णाणचरित्ततवविरियइड्ढिगदा ।
णिव्वेयणी पुण कहा, सरीरभोगे भवोघेण ॥ १५ ॥

[illegible] होती है—१ आक्षेपिणी
[illegible] स्वरूप बताकर दृढ़ता करनेवाली
[illegible] जो संशयात्मक मार्ग पोषक व एकांत
[illegible] वाली है। ३ संवेजिनी कथा जो
[illegible] भीषण भव दिखानेवाली व धर्मानुराग
[illegible]। ४ निर्वेदिनी जो संसार, शरीर भोगोंसे
[illegible] वाली है।

५ [illegible] होंति हु, सव्वा सुहसीलता परिचत्ता ।
[illegible] य सरीरं, ठविदो अप्पा य संवेगे ॥ १६ ॥
[illegible] इंदियाणि य, समाधिजोगा य फासिया होंति ।
अणिगूहिदवीरियदा, जीविदतण्हा य वोछिण्णा ॥१७॥

अर्थ—अनशन, ऊनोदर आदि बाहरी तपके साधन करनेसे सुखिया रहनेका स्वभाव दूर होता है। शरीरमें कृशता होती है। संसार, देह भोगोंसे वैराग्यभाव आत्मामें होता है। पाँचों इन्द्रियाँ वशमें होती हैं। समाधि योगाभ्यासकी सिद्धि होती है। अपने आत्मबलका प्रकाश होता है। जीवन की तृष्णाका छेद होता है।

णत्थि अणूदो अप्पं, आयासादो अणूणयं णत्थि ।
जह तह जाण महल्लं, ण वयमहिंसासमं अत्थि ॥१८॥
जह पव्वएसु मेरू, उच्चाओ होइ सव्वलोयम्मि ।
तह जाणसु उच्चायं, सीलेसु वदेसु य अहिंसा ॥ १९ ॥

अर्थ—जैसे परमाणुसे कोई छोटा नहीं है और आकाशसे कोई बड़ा नहीं है उसी प्रकार अहिंसाके समान महान व्रत नहीं है। जैसे लोकमें सबसे ऊँचा मेरु पर्वत है उसी प्रकार सर्व शीलोंमें व सर्व व्रतोंमें अहिंसाव्रत ऊँचा है।

सव्वगंथविमुक्को, सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।
जं पावइ पीइसुहं, ण चक्कवट्टी वि तं लहदि ॥ २० ॥
रागविवागसतण्हा, इगिद्धियविलित्ति चक्कवट्टिसुहं।
णिस्संगणिव्वुदिसुहस्स, कह अग्घइ अणंतभागं पि ॥ २१ ॥

अर्थ—जो महात्मा सर्व परिग्रह रहित है, शांतचित्त है व प्रसन्नचित्त है, उसको जो सुख और प्रेम प्राप्त होता है वह चक्रवर्ती भी नहीं पा सकता है। चक्रवर्तीका सुख रागसहित तृष्णासहित व बहुत गृद्धतासहित है तथा तृप्ति रहित है जबकि असंग महात्माओंको जो स्वाधीन आत्मीक सुख है उसका अनन्तवाँ भाग भी सुख चक्रीको नहीं है।

इंदियकसायवसगो, बहुस्सुदो वि चरणे ण उज्जमदि।
पक्खी व छिण्णपक्खो, ण उप्पडदि इच्छमाणो वि ॥ २२ ॥

अर्थ—यदि बहुत शास्त्रोंका ज्ञाता भी है परंतु पाँच इन्द्रियोंके विषयोंके और कषायोंके आधीन है तो वह सम्यक्चारित्रका उद्यम नहीं कर सकता है। जैसे पंखरहित पक्षी इच्छा करते हुए भी उड़ नहीं सकता है।

ज्ञानमिंद्रियकषायसम्मिस्म।
ज्ञ जय मक्राकढिद ॥२३॥

र कषायोंसे मिला हुआ बहुत
ता है। जसे मिश्री मिलाकर
पके मिलनेसे नष्ट हो जाता है।

समाधिशतकमें कहते हैं —

आत्मा पुत्रभार्यादिकल्पना।
स्ताभिर्मन्यते हा! हत जगत् ॥ १ ॥

र में आत्मबुद्धि करनेसे ही पुत्र, स्त्री आदि
ताएँ हो जाती हैं। हा! अज्ञानी जगत् उन्हीं
पुत्रादिको अपना मानता हुआ नष्ट हो रहा है।

येना मानुभूयेऽहमात्मनैवात्मनात्मनि।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहु ॥२॥

अर्थ—जिस स्वरूपसे मैं अपनेमें अपनेद्वारा अपनेको
अपने समान ही अनुभव करता हूँ, वही मैं हूँ। न मैं पुरुष
हूँ, न स्त्री हूँ, न नपुंसक हूँ, न मैं एक हूँ, न दो हूँ और
न मैं बहुवचन हूँ।

क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्त्वतो मां प्रपश्यत।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रियः ॥ ३ ॥

अर्थ—जब मैं वस्तुतः अपने ज्ञान स्वरूपको अनुभव

करता हूँ तब मेरे रागादिभाव सब नाश हो जाते हैं। अतः इस संसारमें न कोई मेरा शत्रु है, न कोई मित्र है।

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः ।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥४॥

अर्थ—जो परमात्मा है वही मैं हूँ, जो मैं हूँ वही परमात्मा है अतः मैं ही अपने द्वारा उपासना करने योग्य हूँ, अन्य कोई नहीं।

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं तत्तत्त्वं नेतरो जनः ॥५॥

अर्थ—रागद्वेष, मोहादिकी लहरोंसे जिसका अन्तःकरणरूपी जल चंचल नहीं हुआ है, वही साधक आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करता है। अन्य लोग उस तत्त्वको नहीं जानते हैं।

यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः ।
अन्तः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मैं जो कुछ इन्द्रियोंसे देखता हूँ वह मेरा नहीं है। जब मैं इन्द्रियोंको रोककर अपने भीतर देखता हूँ तो वहाँ परमानन्दमई उत्तम ज्ञानज्योतिको पाता हूँ। वही मैं हूँ।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे ।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७॥

... व्यवहारमें सोता है वही ... है। परंतु जो इस लोक व्यवहार ... आत्माके मननमें सोता रहता है।

... परो भवति तादृश।
... भिन्ना भवति तादृशी ॥ ८ ॥

अर्थ-यह आत्मा अपनेसे भिन्न सिद्ध परमात्माको ... ध्यान करते भी वह दृढ़ अभ्याससे आत्मा ... परमात्माके समान परमात्मा हो जायेगा। ... जैसे अपनेसे भिन्न दीपककी सेवा करके स्वयं दीपक हो जाती है।

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वाऽऽत्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरु ॥ ९ ॥

अर्थ-अथवा यह आत्मा अपने ही आत्माकी आराधना करके परमात्मा हो जाता है। जैसे वृक्ष स्वयं लड़कर आप ही अग्निरूप हो जाता है।

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात्किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥ १० ॥

अर्थ-आत्मज्ञानके अतिरिक्त और कार्यको बुद्धिमें चिरकाल तक धारण न करे। यदि प्रयोजनवश कुछ दूसरा काम करना भी पड़े तो वचन और कायसे अतत्पर होता हुआ कर डाले, मनको उसमें आसक्त न करे।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं—

शमबोधवृत्ततपसा पाषाणस्येव गौरव पुंस ।
पूज्य महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥ १ ॥

अर्थ—शांत भाव, ज्ञान, चारित्र, तप इन सबका मूल्य सम्यक्त्वके बिना कंकड पत्थरके समान है। परंतु यदि ये सम्यग्दर्शन सहित हों तो इनका मूल्य महामणिके समान अपार है।

शास्त्राग्नौ मणिवद्भव्यो विशुद्धो भाति निर्वृत ।
अङ्गारवत् खलो दीप्तो मली वा भस्म वा भवेत् ॥२॥

अर्थ—जैसे रत्न अग्निमें पडकर विशुद्ध हो जाता है व शोभता है वैसे रुचिवान भव्यजीव शास्त्रमें रमण करता हुआ विशुद्ध होकर मुक्त हो जाता है। परंतु जैसे अङ्गार अग्निमें पडकर कोयला हो जाता है या राख हो जाता है वैसे दुष्ट पुरुष शास्त्रको पढता हुआ भी रागी, द्वेषी होकर कर्मोंसे मैला हो जाता है।

अधीत्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो ।
यदीच्छसि फलं तयोरिह हि लाभपूजादिकम् ॥
छिनत्सि सुतपस्तरो प्रसवमेव शून्याशय ।
कथं समुपलप्स्यसे सुरसमस्य पक्वं फलम् ॥ ३ ॥

अर्थ—सर्व शास्त्रोंको पढकर तथा दीर्घ कालतक घोर

तप साधकर ... और तपका फल इस
लोकमें ... है तो तू विवेकशून्य
होकर ... ही तोड़ डालता है,
... उसको कैसे पा सकेगा?

...दस्तन्निषधनम् ।
...परित्यजेत् ॥ ४ ॥

...है । उन्हींका न होना
... पदार्थोंके सबधसे होते हैं
... देना ही योग्य है ।

... विहितकर्मोदयवशात्,
... दुःख इति विकल्पाद्यदि भवेत् ।
उदासीनस्तस्य ... हि नर,
समादध्यान्येन स्फुरति सुविदग्धो मणिरिव ॥ ५ ॥

अर्थ—अपने ही किये हुए कर्मोंके उदयके वशसे जब सुख या दुःख होता है तब उनमें हर्ष या विषाद करना किसलिये? ऐसा विचारकर, जो रागद्वेष न करके उदासीन रहते हैं उनके पुरातन कर्म झड जाते हैं और नए नहीं बँधते हैं । ऐसे ज्ञानी, तपस्वी मणिके समान प्रकाशमान रहते हैं ।

श्री अमितिगति आचार्य तत्त्वभावनामें कहते हैं—

विशोपायविवर्धितोपि न निजो देहोपि यत्रात्मनो,
माता पुत्रकलत्रमित्रतनयाजामातृतातादय ।
तत्र स्व निजकर्मपूर्ववशगा केपा भवन्ति स्फुट,
विज्ञायेति मनीषिणा निजमतिः कार्या सदात्मस्थिता ॥१॥

अर्थ–अनेक प्रकारके उपायोंसे बढ़ाने पर भी यह देह भी जहाँ इस आत्माकी नहीं हो सकती तो पुत्र, स्त्री, मित्र, पुत्री, जमाई, बधु आदि जो अपने२ पूर्वकर्मके वश आए हैं व जायेंगे, अपने कैसे हो सकते हैं? ऐसा जानकर बुद्धिमानको अपनी बुद्धि सदा ही आत्माके हितमें करनी योग्य है।

माता मे मम गेहिनी मम गृह मे बाधवा मेऽगजा ।
तातो मे मम सपदो मम सुख मे सज्जना मे जना ।
इत्थ घोरममत्वतामसवशव्यस्तावबोधस्थिति,
शर्माधानविधानत स्वहितत प्राणी मनीस्त्रस्यते ॥२॥

अर्थ–मेरी माता है, मेरी स्त्री है, मेरा घर है, मेरे बधु हैं, मेरा पुत्र है, मेरा भाई है, मेरी सम्पदा है, मेरा सुख है, मेरे सज्जन हैं, मेरे नौकर हैं, इस तरह घोर ममताके वशसे तत्त्वज्ञानमें ठहरनेको असमर्थ होकर परम सुख देनेवाले आत्महितसे यह प्राणी दूर खिसकता चला जाता है।

न वैद्या न पुत्रा न विप्रा न शक्रा, न कान्ता न माता

न भृत्या न भूपा । यमा नगिन रचितु सति शक्ता,त्रिविं त्वेति कार्ये निन कायमाग ॥

अर्थ—निम शगर मासे जुदा होते हुए न तो नव वचा सक्त है, न पु प्रालिए, न इन्द्र, न स्त्री, न माना, न नौकर, नगाज मा जानकर आर्य पुरुषोंको आत्माके हितकी वन्न शरीरके मोहमें आत्म हितको न भूलना चाहि

विविधैरुपायैः मान, स्वकीयो न देह मम यत्र याति। व त्र ना निनानि तत्र, प्रबुद्ध ेति कृत्यो न कुत्रापि मोह ।

अर्थ—नाना उपाया पालते रहते भी जहाँ यह अपना देह माय नहा ना तब वाहरी पदार्थ किस तरह हमार हो सक्त है? जानकर किसी भी पर पदा थेमें मोह करना उचित न ।

विविधमग्रहककमपम गिना । वनऽकुटुम्बहतवे ।
अनुभवत्यसुख पुग नरकामसुपत्य सुदुस्सहम् ॥४॥

अर्थ—प्राणी, शरीर व कुटुम्बके लिये नाना प्रकारके पापोंको सचता है परन्तु उनका फल उस अकेलेको ही नरकमें जाकर असहनीय दुःख भोगना पडता है ।

यो गाहनार्थं तपसि यतते गाहयमापन्नतेऽसौ ।
-यस्तामार्थं लघु स लभते मतमात्मानमेव ॥

न प्राप्यते क्वचन कलमा कोद्रवे गोप्यमाणे-
पिज्ञायेत्थ कुशलमनय कुर्वते स्वार्थमेव ॥ ६ ॥

अर्थ-जो बाहरी इंद्रिय भोगाके लिये तप करता है वह बाहरी ही पदार्थोंको प्राप्त करता है। जो आत्मपदकी प्राप्तिके लिये तप करता है वह शीघ्र पवित्र आत्माको ही पाता है। कोदनोंके बोनेसे कभी भी चावल नहीं प्राप्त हो सकते, ऐसा जानकर प्रवीण बुद्धिवालोंको आत्माके हितमें ही उद्यम करना योग्य है।

चक्री चक्रमपाकरोति तपसे यत्तन्न चित्र सताम्,
सूरीणा यदनश्वरीमनुपमा दत्ते तप सपदम्।
तच्चित्र परम यदत्र विषय गृह्णाति हित्वा तपो,
दत्तेऽसौ यदनेकदु खमवरे भीमे भवाम्भोनिधौ ॥७॥

अर्थ-चक्रवर्ती तप करनेके लिये सुदर्शन चक्रका त्याग कर देते हैं इसमें सत्पुरुषोंको कोई आश्चर्य नहीं होता है क्योंकि यह तप वीर साधुओंको अविनाशी अनुपम मोक्षकी सपदाको देता है। किंतु परम आश्चर्यकी बात तो यह है कि जो कोई तपको छोडकर इन्द्रिय-विषयको ग्रहण कर लेता है, वह इस महाभयानक ससारसमुद्रमे पडकर अनेक दु खोंमे अपनेको पटक देता है।

श्री यो ... आरंभमें कहते हैं —

... जो अप्पाणि वसेइ ।

सो ... जिणवरु एम भणेइ ॥६४॥

... है, जो कोई आत्मस्वरूपमें

रमण ... सुख प्राप्त करेगा ऐसा जिनेन्द्र

... होते हैं ।

विरला ... विरला णिसुणहिं तत्तु ।

विरला झायहिं तत्तु जिय विरला धारहिं तत्तु ॥६६॥

... ही पंडित आत्मतत्त्वको जानते हैं, विरले

ही ... तत्त्वको सुनते हैं, विरले जीव ही तत्त्वको ध्याते हैं और विरले ही तत्त्वको धारण करके स्वानुभवी होते हैं ।

संसारमें कोई अपना नहीं है ।

इंद फणिंद णरिंदय वि जीवह सरणु ण होंति ।

असरणु जाणिवि मुणि धवला अप्पा अप्प मुणंति ॥६८॥

अर्थ—इन्द्र, धरणेन्द्र व चक्रवर्ता कोई भी संसारी कोई भी संसारी प्राणियोंके रक्षक नहीं हो सकते । उत्तम मुनि अशरण जानकर अपने आत्मा द्वारा आत्माका अनुभव करते हैं ।

जीव सदा अकेला है ।

इक उपजइ मरइ कु वि दुहु सुहु भुंजइ इक्कु ।

णरयहँ जाइ वि इक जिउ तह णिव्वाणहँ इक्कु ॥६९॥

अर्थ—जीव अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही दुःख और सुख भोगता है, अकेला ही नरकमें जाता है तथा अकेला ही जीव निर्वाणको प्राप्त होता है।

निर्मोही होकर आत्माका ध्यान कर।

एक्कुलउ जइ जाइसिहि तो परभाव चएहि ।
अप्पा झायहि णाणमउ लहु सिव सुक्ख लहेहि ॥७०॥

अर्थ—यदि तू अकेला ही जायगा तो रागद्वेष मोहादि परभावोंको त्याग दे। ज्ञानमय आत्माका ध्यान कर तो शीघ्र ही मोक्षका सुख पाएगा।

भावनिर्ग्रंथ ही मोक्षमार्गी है।

जइया मणु णिग्गंथु जिय तइया तुहुँ णिग्गंथु ।
जइया तुहुँ णिग्गंथु जिय तो लब्भइ सिवपंथु ॥ ७३ ॥

अर्थ—हे जीव! जब तेरा मन निर्ग्रंथ है तब तू सच्चा निर्ग्रंथ है। हे जीव! जब तू निर्ग्रन्थ है तो तूने मोक्षमार्ग पा लिया।

श्री अमृतचन्द्राचार्य तत्त्वार्थसारमें कहते हैं—

कस्यापत्यं पिता कस्य कस्याम्बा कस्य गेहिनी ।
एक एव भवाम्भोधौ जीवो भ्रमति दुस्तरे ॥ १ ॥

अर्थ—किसका पुत्र, किसका पिता, किसकी माता,

... स्वय अकेला ही इस दुस्तर ससार

... जीवो ऽपुरन्यदचेतनम् ।
... मन्यन्ते नानात्वमनयोर्जना ॥ २ ॥
—... जीव अन्य है और अचेतन (जड़
... अन्य है । खेद है । कि तो भी ससारी प्राणी
... नहीं समझते हैं ।

... मनिरुपस्थापितमतेस्तत्त्व समुत्पश्यतो
नैकद्रव्यगत चकास्ति किमपि द्रव्यान्तर जातुचित् ।
ज्ञान ज्ञेयमवैति यत्तु तदय शुद्धस्वभावोदय ,
किं द्रव्यान्तरचुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जना ॥ ३॥

अर्थ—शुद्ध द्रव्यकी दृष्टिसे तत्त्वका यह स्वरूप है कि एक द्रव्यके भीतर दूसरा द्रव्य कदापि भी नहीं झलकता है । ज्ञान जो पदार्थोंको जानता है वह ज्ञानके शुद्ध स्वभावका प्रकाश है, फिर क्या मूढ जन परद्रव्यके साथ राग भाव करते हुए आकुलव्याकुल होकर अपने स्वरूपसे भ्रष्ट होते हैं ?

श्री अमितिगति आचार्य सामायिकपाठमें कहते हैं —

न सति बाह्या मम केचनार्था, भवामि तेषा न कदाचनाहम् ।
इत्थ विनिश्चित्य विमुच्य बाह्य,स्वस्थ सदा त्व भव भद्र मुक्त्यै॥१।

अर्थ—आत्मासे भिन्न बाह्य पदार्थ मेरे नहीं हैं न मैं उनका कदापि होता हूँ, ऐसा निश्चय करके सभी बाह्य पदार्थोंसे ममत्वबुद्धि त्यागकर, हे भद्र ! सदा तू अपने स्वरूपमें स्थिर हो जिससे कि मुक्तिका लाभ हो।

एक सदा शाश्वतिको ममा मा, विनिर्मल साधिगमस्वभाव ।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वता कर्मभवा स्वकीया ॥२॥

अर्थ—मेरा आत्मा सदा ही एक, अविनाशी एवं निर्मल ज्ञान स्वभावी है, अन्य सभी रागादि भाव, जो अपने २ कर्मोंके उदयसे भए हैं, मेरे आत्मस्वरूपसे भिन्न हैं एवं नश्वर हैं।

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः ।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपा, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ॥३॥

अर्थ—जिस आत्माका शरीरके भी साथ एकपना नहीं है तो फिर पुत्र, स्त्री, मित्र आदिके साथ कैसे समन्ध हो सकता है ? यदि शरीरका ऊपरका चमड़ा पृथक् कर दिया जावे तो फिर उसमें रोमोंके छिद्र कैसे पाए जा सकते हैं ? अर्थात् नहीं।

संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी ।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥४॥

अर्थ—इस शरीरके संयोगसे ही यह शरीरधारी, संसाररूपी वनमें अनेक दुःखोंको भोगता है। अतः जो

... है उसे मन, वचन, कायसे ... त्याग कर देना चाहिये ।

... स्मारकातारनिपातहेतुम् ।
... निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे॥४॥

... नमें भ्रमण करानेके कारणभूत ... दूर करके और सबसे भिन्न ... अनुभव करते हुए तू अपने ही परमात्म ... है।

... समन्तभद्राचार्य रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहते हैं—

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ १ ॥

अर्थ—मिथ्यात्वरूपी अंधकारके मिटजानेसे और सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानके लाभ हो जानेपर मुनि राग द्वेषको दूर करनेके लिये चारित्रको पालते हैं ।

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवा परिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ २ ॥

अर्थ—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पाप कर्मके आनेकी मोरियोंसे विरक्त होना—त्याग करना सम्यग्ज्ञानीका चारित्र कहलाता है ।

श्रीदेवसेनाचार्य तत्त्वसारमें [illegible]

जं अवियप्पं तच्चं तं सारं मोक्ख [illegible]

तं णाऊण विसुद्धं झायह [illegible]

अर्थ–जो निर्विकल्प आत्मतत्त्व [illegible]
मोक्षका कारण है। उसीको [illegible]
उसी निर्मल तत्त्वका ध्यान कर।

रायद्दोसादीहि य डहुलिज्जइ [illegible]
सो णियतच्चं पिच्छइ णा [illegible]
सरसलिले थिरभूए दीसइ [illegible]
मणसलिले थिरभूए दीसइ [illegible]

अर्थ–जिसका मन [illegible]
द्वारा चचल नहीं होता [illegible]
कर सकता, है उससे [illegible]
सकता। जब सरोवरका [illegible]
भीतर पड़ा हुआ रत्न [illegible]
प्रकार निर्मल मनमें [illegible]
साक्षात्कार हो जाता है।

परदव्वं देहाई [illegible]
परसमयरदो [illegible]

अर्थ–शरीर आदि [illegible]

... पदार्थोंमें रत ... कर्मोंसे बंधता है।

... गलियमाहप्प।
... ॥ ५ ॥

... रानाकी सेना प्रभावहित ... है उसी प्रकार मोह रानाके नाश ... कर्म नाश हो जाते हैं।

... करते हैं—

... दिवौकसां।
... परमात्मना ॥ ६ ॥

... सुख यहांपर चक्रवर्तियोंको है व स्वर्गमें ... परमात्माके सुखकी तुलनामें अंशमात्र भी नहीं है।

ममकारका लक्षण

...कर्मजनितेषु।
आत्मीयाभिनिवेशो ममकारो मम यथा देह ॥ ७ ॥

अर्थ—... सदा भिन्न हैं ऐसे कर्मजनित अपने शरीर आदि (स्त्री, पुत्र, मकान आदि) पदार्थोंमें आत्मीय भावना हो जाना सो ममकार (ममत्व बुद्धि) है। जैसे अपने शरीरमें, जो कि आत्मासे पृथक् है, 'यह मेरा है,' ऐसी बुद्धि होना।

अहंकारका लक्षण ।

ये कर्मकृता भावा परमार्थनयेन चात्मनो भिन्ना ।
तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपति ॥ ३ ॥

अर्थ–कर्मोंद्वारा किये गये विभाव परिणामोंमें, निश्चयनयसे जो आत्मासे भिन्न हैं, अपनेपनकी भावना करना सो अहंकार बुद्धि है। जैसे, "मैं राजा हूँ"।

मोक्षका मार्ग ।

यो मध्यस्थ पश्यति जानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा ।
दृगवगमचरणरूपस निश्चयान्मुक्तिहेतुरिति जिनोक्ति ॥४॥

अर्थ–"जो आत्मा आत्माके द्वारा आत्माको आत्मामें स्वयं अवलोकन करती है परिज्ञान करती है, आचरण करती है और मध्यस्थ हो जाती है ऐसी सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रस्वरूप आत्मा ही निश्चयसे मोक्षका मार्ग है।" ऐसा जिनेन्द्रदेवका कथन है।

षट्कारकमयी आत्माका ही नाम ध्यान है।

स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन ध्यायेत्स्वस्मै स्वतो यत ।
षट्कारकमयस्तस्माद्ध्यानमात्मैव निश्चयात् ॥ ५ ॥

अर्थ–निश्चयनयकी अपेक्षा इस आत्माके द्वारा आत्माके लिये-अपनी ही आत्मासे अपनी आत्मामें-आत्माका

नित्य- ... ... कारकरूप जो आत्मा है

... के उपाय ।

... प्रवृत्तौ च मन प्रभु ।
... ते तस्मिन् जितेन्द्रिय ॥ ६ ॥

... प्रवृत्ति और निवृत्तिमें मन ही
... वशमें करना चाहिये। मनपर
... र आत्मा जितेन्द्रिय सहज ही हो

... रज्ज्वा नित्यमुत्पथवर्तिन ।
... शक्यन्ते धर्तुमिन्द्रियवाजिन ॥ ७ ॥

अर्थ—मनविजेता प्राणीके द्वारा नित्यही कुमार्गकी ओर मुडने वाले इन्द्रियरूपी घोडे, ज्ञान और वैराग्यरूपी लगामके द्वारा वशमें किये जा सकते हैं। अर्थात् मनके जीतने वाला पुरुष ही ज्ञान व वैराग्यकी सहायतासे इन्द्रियोंको अपने वशमें कर सकता है।

मनको वशमें करनेका उपाय ।

सचिंतयन्ननुप्रेक्षा स्वाध्याये नित्यमुद्यत ।
जयत्येव मन साधुरिन्द्रियार्थपराङ्मुख ॥ ८ ॥

अर्थ—स्पर्शनादि इन्द्रियोंके विषयोंसे उदासीन हुआ

साधु, अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करता हुआ व नित्य ही स्वाध्यायमें तत्पर होता हुआ, मनको अवश्य ही वशमें कर लेता है।

स्वाध्यायः परमस्तावज्जपः पंचनमस्कृते ।
पठनं वा जिनेन्द्रोक्तशास्त्रस्यैकाग्रचेतसा ॥ ९ ॥

अर्थ—एकाग्र मनसे पंच णमोकार मंत्रका जप करना सबसे बडा स्वाध्याय है। अथवा जिनेन्द्रदेवके द्वारा उपदिष्ट शास्त्रोंका पढ़ना भी भी परम स्वाध्याय कहलाता है।

स्वाध्यायाद्ध्यानमध्यास्तां ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत् ।
ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ १० ॥

अर्थ—स्वाध्यायको समाप्त कर लेनेपर ध्यान करना चाहिये और ध्यान करनेसे भी ऊब जानेपर स्वाध्याय करनेमें लग जाना चाहिये। ध्यान और स्वाध्याय करते रहनेसे ही कर्ममलरहित शुद्ध आत्मा (परमात्मा) प्रकाशित होने लगता है।

स्वसंवेदनका स्वरूप ।

वेद्यत्वं वेदकत्वं च यत्स्वस्य स्वेन योगिनः ।
तत्स्वसंवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम् ॥ ११ ॥

अर्थ—योगियोंको जो स्वयंके द्वारा, जो स्वयंका वेद्यत्व व वेदकत्व होता है वही स्वसंवेदन कहलाता है। उसीको आत्माका अनुभव या दर्शन कहते हैं।

र्हाय न यथास्थिति ।
मेवात्तु पश्यतु ॥ १२ ॥

परका यथार्थ स्वरूप जान
को अकार्यकारी ममका
न जाने ।

आत्मानमात्मवित् ।
पाधि स्फटिको यथा ॥१३॥

जिस भावसे जिस स्वरूपका ध्यान
उसी तरह तन्मय हो जाता है । जैसे
साथ जिस प्रकारके रंगकी उपाधि होती
तन्मय हो जाती है ।

श्री कुलभद्राचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

आत्माधीन तु यत्सौख्य तत्सौख्य वर्णित बुधै ।
पराधीन तु यत्सौख्य दु खमेव न तत्सुख ॥ १ ॥

अर्थ—आत्माधीन जो सुख है उसीको ज्ञानियोंने सुख कहा है । पराधीन जो सुख है वह दु ख ही है, वह सुख नहीं है ।

धर्मामृत सदा पेय दु खातङ्कविनाशनम् ।
यस्मिन् पीते पर सौख्य जीवाना जायते सदा ॥ २ ॥

अर्थ— दु खरूपी रोगको नाश करनेवाले धर्मरूपी अमृ

तका पान सदा ही करना चाहिये । जिसके पीनेसे जीवोंको सदा ही उत्तमसुखकी प्राप्ति होती है ।

धर्म एव सदा त्राता जीवानां दुःखसङ्कटात् ।
तस्मात्कुरुत भो यत्नं यत्रानन्तसुखप्रदे ॥ ३ ॥
यस्त्वया न कृतो धर्मः सदा मोक्षसुखावहः ।
प्रसन्नमनसा येन तेन दुःखी भवानिह ॥ ४ ॥

अर्थ–जीवोंको धर्म ही सदा दुःख सङ्कटोंसे रक्षा करनेवाला है । अतः अनन्तसुख देनेवाले धर्ममें प्रयत्न करना चाहिये । तूने प्रमुदित मन होकर अबतक मोक्षसुखको देनेवाले धर्मका साधन नहीं किया, इसीसे तू दुःखी हो रहा है ।

नो सङ्गाज्जायते सौख्यं मोक्षसाधनमुत्तमम् ।
सङ्गाच्च जायते दुःखं संसारस्य निबन्धनम् ॥ ५ ॥

अर्थ–मोक्षका कारणभूत उत्तमसुख परिग्रहकी ममतासे उत्पन्न नहीं होता है । क्योंकि परिग्रहसे तो संसारके कारणभूत दुःखकी ही प्राप्ति होती है ।

ज्ञानदर्शनसम्पन्न आत्मा चैको ध्रुवो मम ।
शेषा भावाश्च मे बाह्या सर्वे संयोगलक्षणाः ॥ ६ ॥
संयोगमूलजीवेन प्राप्ता दुःखपरम्परा ।
तस्मात्संयोगसंबन्धं त्रिविधेन परित्यजेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–मेरा आत्मा ज्ञानदर्शन स्वभावसे पूर्ण है, एक है,

अविनाशी है ... भाव मेरे स्वभावसे बाहर कर्मके सर्वे ... और कर्मके सयोगसे जीव बारबार ... इस सयोग सबधको मन, ...

ज्ञाननीरेण चारुणा ।
...ो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ८ ॥

... ...से नित्य ही आत्माको स्नान ... जन्म जन्मके पाप धुल जाते हैं ।

... ...ि य ज्ञानन ...यन च ।
मा पुशमनसायुस्य पश्चात्तापो भविष्यति ॥ ९ ॥

अर्थ–हे भव्यजीव ! नित्य हो आत्माके शुद्ध स्वरूपकी भावना ज्ञानके साथ नियमपूर्वक करो, नहीं तो मरनेपर बहुत पश्चात्ताप होगा कि कुछ न कर सके । यानी मरणका समय निश्चित नहीं है इससे आत्मज्ञानकी भावना सदा करनी योग्य है ।

नृजन्मन फल सार यदेतज्ज्ञानसेवनम् ।
अनिगूहितवीर्यस्य सयमस्य च धारणम् ॥ १० ॥

अर्थ–मानव जन्मका सार फल यही है जो सम्यग्ज्ञानकी भावना की जावे और अपनी शक्तिको न छिपाकर सयमको धारण किया जावे ।

ज्ञान नाम महारत्न यन्न प्राप्त कदाचन ।
ससारे भ्रमता भीमे नानादु खविधायिनि ॥ ११ ॥
अधुनातत्त्वया प्राप्त सम्यग्दर्शनसंयुतम् ।
प्रमाद मा पुन कार्षीर्विषयास्वादलालस ॥ १२ ॥

अर्थ–आत्मज्ञान महारत्न है उसको अबतक कभी भी तूने इस अनेक दु खोंसे भरे हुए भयानक ससारमें भ्रमते हुए नहीं पाया। उस महारत्नको आज तूने सम्यग्दर्शन सहित प्राप्त कर लिया है तब आत्मज्ञानका अनुभव कर, विषयोंके स्वादकी लालसामें पडकर प्रमादी मत बन ।

शुद्धे तपसि सद्वीर्यं ज्ञान कर्मपरिक्षये ।
उपयोगिधन पात्रे यस्य याति स पडित ॥ १३ ॥

अर्थ–वही पडित है जिसका आत्माका वीर्य शुद्ध तपमें खर्च होता है, जो ज्ञानको कर्मोंके क्षयमें लगाता है तथा जिसका धन योग्य पात्रोंके काम आता है ।

नियत प्रशम याति कामदाह सुदारुण ।
ज्ञानोपयोगसामर्थ्याद्विष मन्त्रपदैर्यथा ॥ १४ ॥

अर्थ–भयानक भी कामका दाह आत्मध्यान व स्वाध्यायमें ज्ञानोपयोगके बलसे नियमसे शात हो जाता है। जैसे मन्त्रके पदोंसे सर्पका विष उतर जाता है ।

सत्येन शुद्ध्यते वाणी मनो ज्ञानेन शुद्ध्यति ।
गुरुशुश्रूषया काय शुद्धिरेष सनातन ॥ १५ ॥

... वचनमें रहती है, मन ... और गुस्सेवासे शरीर शुद्ध रहता ... है।

...विषमाहित ।
... दहिनाम् ॥ १६ ॥

... सर्पसे डसा हो व जिसको ... मूर्छा ... गई हो उसके लिये प्रथम ही ... अर्थात प्राणियोंका रक्षक है।

... यत्नेन मा भवस्व मृतोपम ।
... जीवित सफल भवेत् ॥ १७ ॥
मृता नैव मृतास्ते तु ये नरा धर्मकारिण ।
जीवन्तोऽपि मृतास्ते वै ये नरा पापकारिण ॥१८॥

अर्थ–भो प्राणी ! तू यत्नपूर्वक धर्मका आचरण कर, मृतकसमान मत बन । जिन मानवोंके चित्तमें सच्चा धर्म है उनहीका जीवन सफल है। जो धर्माचरण करनेवाले हैं वे मरनेपर भी अमर हैं परंतु जो मानव पापके मार्गमें जानेवाले हैं वे जीते हुए भी मृतकके समान हैं।

चित्तसदूषक कामस्तथा सद्गतिनाशन ।
सद्वृत्तध्वंसनश्चासौ कामोऽनर्थपरम्परा ॥ १९ ॥
दोषाणामाकर कामो गुणानां च विनाशकृत् ।
पापस्य च निजो बन्धु परापदा चैव सगम ॥२०॥

तस्मात्कुरुत मद्वृत्त जिनामार्गरता सदा।
ये मत्खडिता यांति स्मरशल्य सुदुर्धरम् ॥ २१ ॥

अर्थ–कामभाव चित्तको दूषित करनेवाला है, सद्वृत्तिका नाशक है, सम्यक्चारित्रको नष्ट करनेवाला है, अनर्थोंकी परम्परा बढानेवाला है, दोषोंकी खान है, गुणोंका नाशक है, पापका खास बंधु है, बडी२ आपत्तियोंको बुलानेवाला है अत सदा जिनधर्मरत होकर सम्यक्चारित्रका पालन करो जिससे अति कठिन कामकी शल्य चूर्ण चूर्ण हो जावे।

सम्पत्तौ विस्मिता नैव विपत्तौ नैव दु खिता ।
महता लक्षण ह्येतन्न तु द्रव्यसमागम ॥ २२ ॥

अर्थ–महान् पुरुषोंका यह लक्षण है कि सम्पत्ति होने पर आश्चर्य न माने और विपत्ति पड़नपर दु खी न हों, केवल लक्ष्मीका होना ही महापुरुषका लक्षण नहीं है।

श्री शुभचन्द्र आचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

यत्सुख वीतरागस्य मुने प्रशमपूर्वकम् ।
न तस्यानन्तमागोऽपि प्राप्यते त्रिदशेश्वरैः ॥ १ ॥

अर्थ–वीतराग मुनिको शांतभाव पूर्वक जो आत्मसुख प्राप्त होता है उसका अनतवा भाग भी सुख इन्द्रोंको नहीं मिलता है।

म र ~ १ गनगगस्य जायते।
य। अचिन्त्य तुणायते ॥ २ ॥

त ,हात्माको ऐसी कोई परमानन्दकी
प्रा ागी तीन लोकका अचिन्त्य ऐश्वर्य
प्र ाता है।

र ाि तस्य तस्यव पदमव्ययम्।
  गमत्व यस्य योगन ॥ ३ ॥

जिन योगके समता भाव है उसीके ही निश्चल
मान गुरु है, उसीके ही भवका नाश है और उसीको ही
अविनाशी पद प्राप्त होता है।

अनन्तवीर्यविज्ञानदृगानन्दात्मकोऽप्यहम्।
किं न प्रोन्मूलयाम्यद्य प्रतिपक्षविषद्रुमम् ॥ ४ ॥

अर्थ—मैं अनन्तवीर्य, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसु
खरूप हूं, क्या मैं अपने प्रतिपक्षी कर्मरूपी विषके वृक्षको
आज उखाड़ न डालूंगा ?

अहं न नारको नाम न तिर्यग्नापि मानुषः।
न देवः किंतु सिद्धात्मा सर्वोऽयं कर्मविक्रमः ॥ ५ ॥

अर्थ—मैं न नारकी हूँ, न तिर्यंच हूँ, न मानव हूँ, न
देव हूं, किंतु सिद्धस्वरूप हूँ। ये सब नारकी आदि अव
स्थाएँ कर्मोंके उदयसे होती हैं।

य स्वमेव समादत्ते नादत्ते य. स्ततोऽपरम् ।
निर्विकल्प स विज्ञानी स्वसवेद्योऽस्मि केवलम् ॥ ६ ॥

अर्थ–ज्ञानी अपनेको ही ग्रहण करता है अपनेसे भिन्न परको नहीं ग्रहण करता है। ऐसा मे आत्मा हूँ, उसमें कोई विकल्प नहीं है, ज्ञानमय है, केवल एक अकेला है और वह स्वानुभवगम्य ही है।

आत्मन्येवात्मनात्माय स्वयमेवानुभूयत ।
अतोऽन्यत्रैव मा ज्ञातु प्रयास कार्यनिष्फल ॥ ७ ॥

अर्थ–यह आत्मा आत्माके द्वारा आत्मामें ही स्वयमेव अनुभव किया जाता है अत इसछोडकर अन्य स्थानमें आत्माके जाननेका जो खेद है सो निष्फल है।

स एवाह स एवाहमित्यभ्यस्यन्ननारतम् ।
वासनां दृढयन्नेव प्राप्नोत्यात्मन्यवस्थितिम् ॥ ८ ॥

अर्थ–वही मैं परमात्मा हूँ, वही मे परमात्मा हूँ, इस प्रकार निरतर अभ्यास करता हुआ पुरुष इस वासनाको दृढ करता हुआ आत्मामें स्थिरताको पाता है। आत्म ध्यान जग उठता है।

अतुलसुखनिधानं सर्वकल्याणबीज,
जननजलधिपोत भव्यसत्त्वैकपात्रम् ।
दुरिततरुकुठार पुण्यतीर्थप्रधान,
पिवत जितविपक्ष दर्शनाख्य सुधाम्बुम् ॥९॥

… गान करते हैं कि हे भव्य जीवो !
… इसको पीओ, यह अनुपम अतीन्द्रिय
… है, सर्व कल्याणका बीज है,
… लिये जहाज है, इसको धारण
… पात्र भव्य जीव ही है, यह पापरूपी
… कुठार है, पवित्र तीर्थोंमें यही प्रधान है
… पत्तिरूपी शत्रुको जीतनेवाला है
… सब प्रथम इसे ही धारण करना चाहिये

शाम्यन्ति जन्तव क्रूरा बद्धवैरा परस्परम् ।
यदि स्वार्थे प्रवृत्तस्य मुने साम्यप्रभावत ॥ १० ॥

अर्थ—आत्मध्यान मलगलीन श्री मुनिमहाराजके सम… तामायक प्रभावसे उनके पास परस्पर वैर करनेवाले क्रू… जीव भी शान्त हो जाते हैं।

अगम्य यन्मृगाङ्कस्य दुर्भेद्य यद्रवेरपि ।
तदद्युर्बोधोद्धत ध्वान्त ज्ञानभेद्य प्रकीर्त्तितम् ॥ ११

अर्थ—जिस दुनयके अधकारको चद्रमा नहीं… सकता, सूर्य नहीं भेद सकता उस अज्ञानाधकारको सम… ज्ञान नष्ट कर देता है ऐसा कहा गया है।

दुरिततिमिरहस मोक्षलक्ष्मीसरोज,

मदनभुजगमत्रचित्तमातङ्गसिंह ।

व्यसनघनसमीर विश्वतत्त्वैकदीप,
विषयशफरजालं ज्ञानमाराधय त्वं ॥ १२ ॥

अर्थ–हे भव्यजीव! सम्यग्ज्ञानका आराधना करो। यह सम्यग्ज्ञान,पापरूपी अंधकारके नष्ट करनेको सूर्यसमान है, मोक्षलक्ष्मीके निवासके लिये कमलसमान है, कामसर्पके कीलनेको मंत्रसमान है, मनरूपी हाथीके वश करनेको सिंहसमान है, आपदारूपी मेघोंके उडानेके लिये पवनसमान है, समस्त तत्त्वोंके प्रकाश करनेके लिये दीपकसमान है, तथा पाँचोंइन्द्रियोंके विषयोंको पकड़नेके लिये जालसमान है।

शरीरं शीर्यते नाशा गलत्यायुर्न पापधीः ।
मोहः स्फुरति नात्मार्थः पश्य वृत्तं शरीरिणाम् ॥१३॥

अर्थ–देखो! इन जीवोंकी प्रवृत्ति कैसी आश्चर्यकारक है कि, शरीर तो प्रतिदिन छीजता जाता है और आशा नहीं छीजती है, किंतु बढ़ती जाती है। तथा आयुर्बल तो घटता जाता है और पापकार्योंमें बुद्धि बढ़ती जाती है। मोह तो नित्य स्फुरायमान होता है और यह प्राणी अपने हित वा कल्याण मार्गमें नहीं लगता है। सो यह कैसा अज्ञानका माहात्म्य है?

निरुंध निरुंध सद्यासुक्ष्म सुक्ष्म प्रपंच,
निमृज निमृज मोहं विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्।

[illegible] पश्य पश्य स्वरूप,
[illegible] निर्वृतानन्दहतो ॥ १४ ॥

[illegible] उपदेश करते हैं कि हे आत्म-
[illegible] विरक्त हो, जगतके प्रपंच
[illegible] छोड़, जगतके मोहको दूर कर दूर
[illegible] समक्ष समक्ष, चारित्रका अभ्यास कर
[illegible] आत्मस्वरूपको देख देख तथा मोक्षके
[illegible] बार बार कर। अर्थात् इस प्रकार
[illegible] इसे आचार्य महाराजने अत्यंत प्रेरणा की है,
[illegible] महाराज बड़े दयालु हैं सो बारबार हितके
[illegible] प्रेरणा करते हैं।

[illegible] जन्मोघपङ्काय शिवायाशाविपर्ययः ।
इति सम्यक्समालोच्य यद्धितं तत्समाचर ॥ १५ ॥

अर्थ—भो प्राणी! देखो, संसारके पदार्थोंकी आशा संसाररूपी कर्दममें फँसानेवाली है, जबकि आशाका त्याग मोक्षको देनेवाला है। इन दोनों बातोंका भले प्रकार विचार कर, जिसमें अपना हित समझे उसी प्रकार आचरण कर।

श्रीज्ञानभूषण भट्टारक तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें कहते हैं—
स कोऽपि परमानन्दश्चिद्रूपध्यानतो भवेत् ।
[illegible] तदंशोऽपि न जायेत त्रिजगत्स्वामिनामपि ॥ [illegible] ॥

अर्थ–शुद्ध चेतन्न स्वरूपके ध्यानसे कोई ऐसा ही सहज परमानन्द प्राप्त होता है उसका अंश भी इन्द्रादिको प्राप्त नहीं होता।

ये याता यांति यास्यंति योगिनः शिवसंपदं ।
समासाद्यैव चिद्रूपं शुद्धमानंदमंदिरं ॥ २ ॥

अर्थ–जो योगी मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त कर चुके, कर रहे हैं और करेंगे उसमें शुद्ध चिद्रूपका ध्यान ही प्रधान कारण है, वही परमानंदका धाम है।

सर्वेषामपि कार्याणां शुद्धचिद्रूपचिंतनं ।
सुखसाध्यं निजाधीनत्वादीहामुत्र सौख्यकृत् ॥ ३ ॥

अर्थ–सब ही कार्योंमें शुद्ध चिद्रूपका चितवन सुखसाध्य है क्योंकि यह अपने ही आधीन है और इसके द्वारा इस लोक तथा परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है।

विषयानुभवे दुःखं व्याकुलत्वात् सतां भवेत् ।
निराकुलत्वतः शुद्धचिद्रूपानुभवे सुखं ॥ ४ ॥

अर्थ–विषयोंके भोगनेमें प्राणियोंको दुःख ही होता है क्योंकि वहाँ आकुलता है। किंतु शुद्ध चिद्रूपके अनुभवमें सुख ही प्राप्त होता है क्योंकि वहाँ निराकुलता है।

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानंदमये सदा।
स्वे निवृत्तिं तदा स्वस्थं कथ्यते परमार्थतः ॥ ५ ॥

अर्थ- ... निज सहजानन्दमई शुद्ध चिद्रूप स्वरूप ... उसमें जो सदा ठहरता है वही ... है।

... विभावो हि चिदात्मनि।
... स्यात त विना नास्ति सत्सुख ॥६॥

अर्थ- रंजायमान परिणामको विभाव कहते ... रहित शुद्ध चिद्रूपमें मात्र हो तो ... । इस स्वभावमें तन्मय हुए विना सच्चा सहज सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

... संगतिमगस्य त्यागे चेन्मे पर सुख।
अत संगतिमगम्य भवेत् किं न ततोऽधिक ॥ ७ ॥

अर्थ—बाहरी स्त्री, पुत्रादिकी संगतिके त्यागनेसे ही जब सहजसुख होता है तो अंतरगमें सर्व रागादि व विकल्पक त्यागसे और भी अधिक सुख क्या नहीं प्राप्त होगा?

बहून् वारान् मया भुक्त सविकल्प सुख तत ।
तन्नापूर्वं निर्विकल्पे सुखेऽस्तीहा ततो मम ॥ ८ ॥

अर्थ—मैंने बहुत बार, विकल्पमय सांसारिक सुखको भोगा है, वह कोई अपूर्व नहीं है। इसलिये उस सुखकी तृष्णा छोड़कर अब मेरी इच्छा निर्विकल्प सहज सुख पानेकी है।

क्व यांति कार्याणि शुभाशुभानि, क्व यांति सगाश्चिद-चित्स्वरूपाः । क्व यांति रागाद्य एव शुद्धचिद्रूपकोऽहं स्मरणे न विद्म. ॥ ९ ॥

अर्थ–मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ ऐसा स्मरण करते ही न जाने कहाँ शुभ व अशुभ कार्य चले जाते हैं, न जाने कहाँ चेतन व अचेतन परिग्रह चले जाते हैं तथा न जाने कहाँ रागादि विला जाते हैं ।

नाहं किंचिन्न मे किंचिद् शुद्धचिद्रूपकं विना ।
तस्मादन्यत्र मे चिंता वृथा तत्र लयं भजे ॥ १० ॥

अर्थ–शुद्ध चिद्रूपको छोडकर न मैं और कुछ हूँ न कुछ और मेरा है । अतः दूसरेकी चिंता करना वृथा है, ऐसा जानकर मैं एक शुद्ध चिद्रूपमें ही लय होता हूँ ।

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानादन्यत्कार्यं हि मोहजं ।
तस्माद् बन्धस्ततो दुःखं मोह एव ततो रिपुः ॥ ११ ॥

अर्थ–शुद्ध चिद्रूपके ध्यानके सिवाय जितने कार्य हैं वे सब मोहसे होते हैं । उस मोहसे कर्मबंध होता है, बंधसे दुःख होता है, इससे जीवका वैरी मोह ही है ।

रत्नत्रयाद्विना चिद्रूपोपलब्धिर्न जायते ।
यथर्द्धिस्तपसः पुत्री पितुर्वृष्टिर्बलाहकात् ॥ १२ ॥

अर्थ–जिस तरह तपके बिना ऋद्धि नहीं होती, पिताके

...बिना वृष्टि नहीं होती उसी ...बिना रसायनके नहीं होती है।

...वो मोचन न ममेत्यत ।
...न मोचन त्रिभिरक्षरैः ॥ १३ ॥

...ार्थ मेरा है ऐसे चिंतनसे बंध होता है तथा ...नहीं है ऐसे चिंतनसे मुक्ति होती है 'मम' ...है और 'न मम' इन तीन अक्षरोंसे ...।

...यथास्थितान् सर्वान् सम जानाति पश्यति ।
...कुलो गुणी योऽसौ शुद्धचिद्रूप उच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ—जो सर्व पदार्थोंको, जैसा उनका स्वरूप है उसी रूपसे, एक ही साथ देखता है व जानता है तथा जो निराकुल है और गुणोंका भण्डार है उसे शुद्ध चैतन्य ब्रह्म परमात्मा कहते हैं।

दुर्लभोऽत्र जगन्मध्ये चिद्रूपरुचिकारकः ।
ततोऽपि दुर्लभं शास्त्रं चिद्रूपप्रतिपादकम् ॥ १५ ॥
ततोऽपि दुर्लभो लोके गुरुस्तदुपदेशकः ।
ततोऽपि दुर्लभं भेदज्ञानं चिंतामणिर्यथा ॥१६॥

अर्थ—इस लोकमें शुद्ध चैतन्यके स्वरूपकी रुचि रखने वाला मानव दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ चैतन्य स्वरूपके

बतानेवाले शास्त्रका मिलना है। उससे भी दुर्लभ उसके उपदेशक गुरुका लाभ होना है। यह भी मिल जाय तो भी चिन्तामणि रत्नके समान भेदविज्ञानका प्राप्त होना दुर्लभ है। यदि कदाचित् भेदविज्ञान हो जावे तो आत्मक ल्याणमें प्रमाद न करना चाहिये।

ज्ञेयावलोकन ज्ञान सिद्धाना भविना भवेत्।
आद्याना निर्विकल्प तु परेषा सविकल्पक ॥१७॥

अर्थ—जानने योग्य पदार्थोंका देखना व जानना सिद्ध और ससारी दोनोंके होता है। सिद्धोंके वह ज्ञानदर्शन निर्विकल्प है, निराकुल स्वाभाविक समभावरूप है जबकि ससारी जीवोंके ज्ञानदर्शन सविकल्प है, आकुलतासहित है।

सत्पूज्याना स्तुतिनुतियजन षट्कर्मावश्यकाना,
वृत्तादीना दृढतरधरण सत्तपस्तीर्थयात्रा।
सगादीना त्यजनमजनन क्रोधमानादिकाना—
माप्तैरुक्त वरतरकृपया सर्वमेतद्धि शुद्धय ॥१८॥

अर्थ—परमपूज्य देव, शास्त्रकी स्तुति, वन्दना और पूजन करना, सामायिक प्रतिक्रमण आदि छह प्रकारके आवश्यकोंका आचरण करना, सम्यक्चारित्रका दृढ रूपसे धारण करना, उत्तम तप और तीर्थयात्रा करना, बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग करना, और—

...नाको उत्पन्न न होने देना।
... यत कृपा करके आत्माकी
... ये स्पष्ट हैं। अथात् जो अपने
... ... अभिलाषा है वे उपर्युक्त बातोंको
... ... अपनी आत्माको शुद्ध बनावें।

... ... धर्मोपदेशामृतमें कहते हैं —

...ज्योतिरुदेति मोहतमसो भेद समुत्पद्यते।
...न कृतकृत्यता च महसा स्वाते समुन्मीलति॥
यस्यैकस्मृतिमात्रतोपि भगवानत्रैव देहान्तरे।
देवः तिष्ठति मृग्यतां सरभसादन्यत्र किं धावति॥१४६॥

अर्थ—जब मोहरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है तभी ज्ञानज्योति उदीयमान होती है और आनन्ददशा व कृतकृत्यता महसा ही अति.स्फुरणम झलकती है। जिसकी स्मृति मात्रमें ही आत्मा परमात्मा हो जाता है वह आत्मा देह शरीरके भीतर ही है। उसको तू शीघ्र ही खोज, बाहर और कहाँ दौडता है?

भिन्नोऽहं वपुषो बहिर्मलकृतान्नानाविकल्पौघतः।
शब्दादेश्च चिदेकमूर्तिरमलः शांतः सदानन्दभाक्॥
इत्यास्था स्थिरचेतसो दृढतरं साम्यादनारम्भिणः।
संसाराद् भयमस्ति किं यदि तदप्यन्यत्र कः प्रत्ययः॥१४८॥

अर्थ—मैं रहिर्मलकृत शरीर व नानाविकल्पसमूहसे भिन्न हूँ और शब्दादिसे भी भिन्न हूँ। मैं एक चैतन्यमात्र मूर्ति, निर्मल, शांत और सदानंदधारी हूँ। यदि शांत, आरंभरहित और स्थिरचित्ताके ऐसी दृढ़ श्रद्धा है तब उसको संसार से क्या भय ? और क्या अन्यत्र आस्था ?

सततास्यस्तभोगानामप्यसत्सुखमात्मजम्।
अप्यपूर्वं सदित्यास्था चित्ते यस्य स तत्त्ववित् ॥१५०॥

अर्थ—सदैव अभ्यासमें आए हुए इन्द्रियभोगोंका सुख असत्य है, किंतु आत्मजन्य सुख ही अपूर्व सुख है ऐसी जिसके चित्तमें श्रद्धा है वही तत्त्वज्ञानी है।

एकमेव हि चैतन्य शुद्धनिश्चयतोऽथवा।
कोऽवकाशो विकल्पाना तत्राखण्डैकवस्तुनि ॥१५॥

अर्थ—शुद्ध निश्चयनयसे एक चेतन्य ही मोक्षमार्ग है। एक, अखंड वस्तु आत्मामें विकल्प उठानेको अवकाश ही कहाँ ?

साम्य निःशेषशास्त्राणा सारमाहुर्विपश्चित।
साम्य कर्ममहादावदाहे दावानलायते ॥ ६८ ॥

अर्थ—समताभाव ही सर्व शास्त्रोंका सार है ऐसा विद्वानोंने कहा है। समताभाव ही कर्मरूपी महावनके जलानेको दावानलके समान है।

अभ्यस्यतान्तरम्भ किमु लोकभक्त्या, मोह कृशी कुरुत किं वपुषा कृशेन। एतद्द्वय यदि न किं बहुभिर्नियोगैः, क्लेशैश्च किं किमपरैः प्रचुरैस्तपोभिः ॥५०॥

अर्थ–हे मुन! अपने भीतर शुद्ध ज्ञानानंद स्वरूपका अभ्यास करो, लोगोंको रिझानेसे क्या लाभ? मोह भावको कृश करो शरीरको कृश करनेसे क्या लाभ? यदि मोहकी कृशता और आत्मानुभवका अभ्यास ये दो बातें न हों तो बहुत भी नियम, व्रत, संयमसे व कायक्लेशरूप भारी तपसे क्या लाभ?

श्रीपद्मनंदि मुनि एकत्वसप्ततिमें कहते हैं—

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।
तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम् ॥ १ ॥

अर्थ–यह आत्मा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन अनन्तसुख, और अनंतवीर्यधारी है। उसको जान लेने पर क्या नहीं जाना उसको देख लेने पर क्या नहीं देखा और उसका आश्रय लेने पर क्या नहीं आश्रय किया?

साम्यं सद्बोधनिर्माणं शश्वदानन्दमन्दिरम्।
साम्यं शुद्धात्मनो रूपं द्वारं मोक्षैकसद्मनः ॥ २ ॥

अर्थ–समताभाव ही सम्यग्ज्ञानका निर्माता है समताभाव ही शाश्वत आनंदका मन्दिर है, समताभाव ही शुद्धात्मस्वरूप है, समताभाव ही मोक्षमहलका एकमात्र द्वार है।

नित्यानन्दमयं शुद्धं चित्स्वरूपं सनातनम् ।
पश्यत्यात्मनि परं ज्योतिरद्वितीयमनव्ययम् ॥ ३ ॥

अर्थ—मैं नित्यानन्दमय, शुद्ध, चित्स्वरूप, सनातन, परमज्योति, अनुपम व अविनाशी हूँ, ऐसे ज्ञानी आत्मामें अपनेको लखता है।

संयोगेन सदा यात मत्तस्तत्सकलं परम् ।
तत्परित्यागयोगेन मुक्तोऽहमिति मे मतिः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो जो वस्तु या अवस्था परके संयोगसे आई है वह सब मुझसे भिन्न है। उस सबको त्याग कर देनेसे मैं मुक्त ही हूँ, ऐसी मेरी बुद्धि है। ऐसा ज्ञानी जीव विचारता है।

क्रोधादिकर्मयोगेऽपि निर्विकारं परं महः ।
विकारकारिभिर्मेघैर्न विकारि नभो भवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ—क्रोधादि कर्मोंके संयोग होनेपर भी यह उत्कृष्ट आत्मज्योति विकारी नहीं होती है। जैसे विकार करनेवाले मेघोंसे आकाश विकारी नहीं होता है। यथार्थतः ऐसा आत्माका स्वरूप है।

किं मे करिष्यतः क्रूरौ शुभाशुभनिशाचरौ ।
रागद्वेषपरित्यागमोहमन्त्रेण कीलितौ ॥ ६ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि विचारता है कि मैंने रागद्वेषके त्याग-

रूप सामग्मान महामत्रसे शुभ व अशुभ कर्मरूपी दुष्ट नागाको कील दिया है तब वे बिचारे मेरा क्या बिगाड कर सकते है?

श्री पद्मनंदि मुनि धम्मरसायण में कहते हैं—

णाणमयं परमाणुमाण आदमणुत्थचिय विपयातीद।
अजरमरण च सुद्ध अगोयम ज च सिद्धाण ॥१९०॥

अर्थ–आत्मासे समुत्पन्न, विषयातीत, अविनाशी, अनुपम सुख जैसा सिद्धभगवानको है वसा मनुष्योंको भी नहीं है।

श्री अमृतचन्द्राचार्य पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहते हैं—

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति ॥ १ ॥

अर्थ–जितने अश सम्यग्दर्शन होता है उतने अशसे बंध नहीं होता है। परतु उसीके साथ जितना अश रागका होता है उसी रागके अशसे बंध होता है।

योगात्प्रदेशबंधः स्थितिबन्धो भवति यः कषायात्तु।
दर्शनबोधचारित्रं न योगरूपं कषायरूपं च ॥ २ ॥

अर्थ–योगोंसे प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध होता है,कषायोंसे स्थितिबंध व अनुभागबंध होता है। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र न योगरूप है, न कषायरूप है। अतः रत्नत्रय बंधका कारण नहीं है।

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः॥ ३॥

अर्थ—निश्चयनय वह है जो सत्यार्थ मूल पदार्थको कहे। व्यवहारनय वह है जो असत्यार्थ पदार्थको कहे। प्राय सभी ही संसारी प्राणी सत्यार्थ वस्तुके ज्ञानसे विमुख हो रहे हैं।

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्त्वेन भवति मध्यस्थः।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलमविकलं शिष्यः॥ ४॥

अर्थ—जो व्यवहारनय और निश्चयनय दोनोंको जानकर मध्यस्थ हो जाता है वही शिष्य जिनवाणीके उपदेशका पूर्ण फल पाता है।

चारित्रं भवति यतः समस्तसावद्ययोगपरिहरणात्।
सकलकषायविमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत्॥ ५॥

अर्थ—सर्व पापमयी मन, वचन, कायकी प्रवृत्तिका त्याग व्यवहारसम्यक्चारित्र है और सर्व कषायोंसे रहित, वीतरागमय, निर्मल आत्माके स्वरूपका अनुभव निश्चय सम्यक्चारित्र है, वह आत्मस्वरूप ही है।

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥ ६॥

अर्थ—अपने परिणामोंमें रागादि भावोंका प्रगट न

होने देना ही अहिंसा है और उन्हीका प्रगट होना सो ही हिंसा है। यह जिनागमका सार है।

श्री पद्मनंदि मुनि सद्बोधचन्द्रोदयमें कहते हैं—

तत्त्वमात्मगतमेव निश्चितं योऽन्यदेशनिहितं समीक्षते।
वस्तु मुष्टिविधृतं प्रयत्नतः कानने मृगयते स मूढधीः॥ १ ॥

अर्थ—आत्मतत्त्व निश्चयसे आत्मामें ही है। जो कोई उस तत्त्वको अन्य स्थानमें खोजता है वह ऐसा मूढ है जो अपनी मुट्ठीमें धरी वस्तुको वनमें ढूढता है।

अतिशुद्धपरमात्मभावना सतिशुद्धपदकारणं भवेत्।
हेमतरकृते सुवर्णतो लोहतश्च विकृती तदाश्रिते॥२॥

अर्थ—शुद्ध परमात्माकी भावना शुद्ध पदका कारण है। अशुद्ध आत्माकी भावना अशुद्ध पदका कारण है। जैसे सुवर्णसे सुवर्णके पात्र बनते हैं और लोहेसे लोहेके पात्र बनते हैं।

श्रीपद्मनंदि मुनि उपासक संस्कारमें कहते हैं—

क्षीरनीरवदेकत्र स्थितयोर्देहदेहिनो।
भेदो यदि ततोऽन्येषु कलत्रादिषु का कथा॥ १ ॥

अर्थ—दूध और पानीके समान एक क्षेत्रमें स्थित शरीर और आत्मामें ही जब भेद है तब अन्य स्त्री आदि की तो कथा ही क्या है? वे तो जुदे हैं ही।

कर्मबंधकलितोऽप्यबंधनो द्वेषरागमलिनोऽपि निर्मल ।
देहवानपि न देहवर्जितश्चित्रमेतदखिल चिदात्मन ॥२॥

अर्थ–यह आत्मा कर्मबंध सहित होनेपर भी कर्मबंधसे रहित है, रागद्वेषसे मलीन होनेपर भी निर्मल है, देहवान होनेपर भी देह रहित है। आत्मा का सर्व माहात्म्य ही आश्चर्यकारी है।

व्याधिनाङ्गमभिभूयते पर तद्गतोऽपि न पुनश्चिदात्मक ।
उच्छ्रितेन गृहमेव दह्यते वह्निना न गगन तदाश्रितम् ॥३॥

अर्थ–रोगोंसे शरीरको पीडा होती है परंतु उस शरीरमें व्याप्त चैतन्य प्रभुको पीडा नहीं होती है। जैसे अग्निकी ज्वालासे घर जलता है परंतु घरके भीतरका आकाश नहीं जलता है। अर्थात् आत्मा आकाशके समान निर्लेप तथा अमूर्तीक है, जल नहीं सकता।

बोधरूपमखिलरुपाधिभिर्वर्जित किमपि यत्तदेव न ।
नान्यदल्पमपि तत्त्वमीदृश मोक्षहेतुरिति योगनिश्चय ॥४

अर्थ–सर्व रागादि उपाधियोंसे रहित जो कोई एक ज्ञानस्वरूप है सो ही हमारा है। अन्य कुछ भी परमाणु मात्र भी हमारा नहीं है। मोक्षका कारण यही एक तत्त्व है, यही योगियोंका निश्चित मत है।

आत्मबोधशुचितीर्थमद्भुत, स्नानमत्रकुरुतोत्तम बुधा ।
यन्न यात्यपरतीर्थकोटिभि , क्षालयत्यपि मल तदन्तरम् ॥५॥

अथ–पामणा हा एक पवित्र अद्भुत तीर्थ है। इसी ता इसी नहाम नानीनन उत्तम स्नान करो। जो अात्मा कममल धोता नित्यादि स्नानसे नहा नाश होता है, उस पर लोग वो दना है।

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने॥ ६॥

अर्थ–देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम तप और दान ये गृहस्थोंके नित्य प्रतिदिन करनेके षट कर्म हैं।

श्रीपद्मनंदि मुनि सिद्धस्तुतिमें कहते हैं —

य सिद्धे परमात्मनि, प्रविततज्ञानैकमूर्तौ किल,
ज्ञानी निश्चयत स एव सकलप्रज्ञावतामग्रणी।
तर्कव्याकरणादिशास्त्रसहितै किं तत्र शून्यस्तो,
यद्योगं विदधाति वध्यविषये तद्बाणमावर्जनं॥ १॥

अथ—जो विस्तीर्ण ज्ञानाकार श्री सिद्ध परमात्माको जानता है वही सर्व बुद्धिमानोंमें शिरोमणि है। यदि सिद्ध परमात्माके ज्ञानसे शून्य है तो तर्क, व्याकरण आदि शास्त्रोंको जाननेसे क्या प्रयोजन? बाण तो उसे ही कहते हैं जो निशानीको वेध सके, अन्यथा वाण है। अर्थात् आत्मज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है, उसके बिना अनेक विद्याओंका ज्ञान भी आत्महितकारी नहीं है।

श्री पद्मनन्दिमुनि निश्चयपञ्चाशत्‌मे कहते हैं —

व्याधिस्तुदति शरीरं न माममूर्तं विशुद्धबोधमयम् ।
अग्निर्दहति कुटीरं न कुटीरासक्तमाकाशम् ॥ १ ॥

अर्थ—रोग शरीरको पीडा करता है, न कि अमूर्तीक शुद्ध ज्ञानमयी मेरी आत्माको। जैसे अग्नि कुटीको जलाती है परन्तु कुटीके भीतरके आकाशको नहीं।

नैवात्मनो विकारः क्रोधादिः किंतु कर्मसंबन्धात् ।
स्फटिकमणेरिव रक्तत्वमाश्रितात्पुष्पतो रक्तात् ॥ २ ॥

अर्थ—निश्चयसे क्रोध आदि आत्माके स्वाभाविक विकार नहीं हैं, परन्तु कर्मके सम्बन्धसे हैं। जैसे स्फटिक मणि स्वयं लाल नहीं है परन्तु लालपुष्पके सम्बन्धसे [illegible] दीखती है। आत्मा तो स्फटिक मणिके समान स्वच्छ है।

कुर्यात् कर्म विकल्पं किं मम तेनातिशुद्ध[illegible]
मुखसंयोगजविकृतेर्न विकारी दर्पणो [illegible]

अर्थ—कर्मोंके द्वारा विकल्प होवे [illegible] रूप मुझे उससे क्या ? अर्थात् मैं इन [illegible] विकारी नहीं होता हूँ। जैसे [illegible] दर्पणमें दिखनेपर भी दर्पण स्वयं [illegible] है।

आस्तां बहिरुपधिचयस्तनुवचन[illegible]
कर्मकृतत्वान्मत्तः कुतो विशुद्ध[illegible] । ३ ।

अर्थ—कर्मादिकसे उत्पन्न बाहरी उपाधिकी बात तो दूर रहो। शरीर, वचन और मनके विकल्पोंका समूह भी मुझसे भिन्न है। क्योंकि मैं तो परम विशुद्ध हूँ, मेरा रागादि कैसे हो सकता है?

कर्म परं तत्कार्यं सुखमसुखं वा तदेव परमेव ।
तस्मिन् हर्षविषादौ मोही विदधाति खलु नान्य ॥ ५ ॥

अर्थ—कर्म भिन्न है और उसके कार्य सुख व दुःख भी भिन्न हैं। उनमें मोही जीव हर्ष विषाद करता है, निर्मोही ज्ञानी जीव नहीं।

श्री वट्टकेरस्वामी मूलाचार द्वादशानुप्रेक्षामें कहते हैं-

जह धादू धम्मंतो सुज्झदि सो अग्गिणा दु संतत्तो ।
तवसा तहा विसुज्झदि जीवो कम्मेहिं कणय व ॥ १ ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण धातु अग्निसे धौंके जानेपर मल रहित सुवर्णमें परिणत हो जाती है वैसे ही यह जीव आत्मामें तपतरूप तपके द्वारा कर्ममलसे छूटकर शुद्ध हो जाता है।

णाणवरमारुदजुदो सीलवरसमाधिसंजमुज्जलिदो ।
दहइ तवो भवबीयं तणकट्ठादी जहा अग्गी ॥ २ ॥

अर्थ—जैसे अग्नि तृण व काष्ठको जला देती है ऐसे ही आत्मध्यानरूपी तपकी अग्नि उत्तम आत्मज्ञानरूपी पव-

नके द्वारा बढ़ती हुई तथा शील समाधि और सयमके द्वारा जलती हुई ससारके बीजभूत कर्मोंको जला देती है।

श्रीवट्टकेरस्वामी मूलाचारवृहत्प्रत्याख्यानमें कहते हैं–

सम्म मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झ ण केणवि ।
आसा वोसरित्ताण समाहिं पडिवज्जए ॥ १ ॥

अर्थ—मैं सर्व प्राणियोंपर समभाव रखता हूँ, मेरा किसीसे वैरभाव नहीं है, मैं सब आशाओंको त्यागकर आत्माकी समाधिको धारण करता हूँ।

खमामि सव्वजीवाण सव्वे जीवा खमतु मे ।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झ ण केणवि ॥ २ ॥

अर्थ–मैं सब जीवोंपर क्षमाभाव लाता हूँ। सर्व प्राणी भी मुझपर क्षमा करो। मेरा सर्व जीव मात्रसे मैत्री भाव है, मेरा वेरभाव किसीसे भी नही है।

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।
आलंबण च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ॥ ३ ॥

अर्थ–मैं ममताको त्यागता हूँ, निर्ममत्व भावसे तिष्ठता हूँ, मैं मात्र एक आत्माका ही अवलम्बन लेता हूँ और सब आलम्बनों को त्यागता हूँ।

इंदियकसायदोसा णिग्घिप्पंति तवणाणविणएहिं ।
रज्जूहि [illegible] ति हु उप्पहगामी जहा तुरया ॥ ४॥

अर्थ—जैसे कुमार्गमें जानेवाले घोड़े लगामोंसे रोक लिये जाते हैं उसी प्रकार तप, ज्ञान और विनयके द्वारा उत्कृष्ट ... नष्ट कर दिये जाते हैं।

... ... विनयमुद्दविषयश्च अमिदभूदं।
... सव्वदुक्खाणं ॥ ४ ॥

... जिनवाणीका पठन, पाठन, मनन एक ऐसी औषधि ... जो इन्द्रियविषयके सुखसे वैराग्य उत्पन्न करने ... आत्मीक सुखरूपी अमृतको पिलाने वाली है, ... मरण व रोगादिसे उत्पन्न होनेवाले सर्व दुःखोंको क्षय करनेवाली है।

श्री वट्टकेरस्वामी मूलाचार समयसार अधिकारमें कहते हैं—

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थो पुण सेयासेयं वियाणादि ॥ १ ॥
सेयासेयविदण्हू उद्धददुस्सील सीलवं होदि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहदि णिव्वाणं ॥ २ ॥

अर्थ—सम्यग्दर्शनसे सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्ज्ञानसे सर्व पदार्थ का यथार्थ ज्ञान होता है। जिसको पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान है वह हितकर व अहितकर मार्गोंको ठीक २ जानता है। जो श्रेय व कुश्रेयको पहचानता है व कुआचा

रको छोड देता है, शीलवान हो जाता है। शीलके फलसे सपूर्ण चारित्र को पाता है। पूर्णचारित्रको पाकर निर्वाणको प्राप्त कर लेता है।

सज्झाय कुव्वंतो पंचदियसंपुडो तिगुत्तो य।
हवदि य एयग्गमणो विणएण समाहिओ भिक्खू ॥ ३ ॥

अर्थ–शास्त्र स्वाध्याय करनेवालके स्वाध्याय करते हुए पाँचों इंद्रय वशमें होती हैं, मन, वचन, काय स्वाध्यायमें रत हो जाते हैं, ध्यानमें एकाग्रता होती है, विनय गुणसे युक्त होता है। स्वाध्याय परमोपकारी है।

बारसविधह्मि य तवे सब्भंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे।
ण वि अत्थि ण वि य होहदि सज्झायसमं तवोकम्मं ॥४॥

अर्थ–तीर्थंकरोंद्वारा प्रतिपादित बाहरी, भीतरी बारह प्रकार तपमें स्वाध्याय तपके समान कोई तप नहीं है न होवेगा। अतः स्वाध्याय सदा करना योग्य है।

थोवह्मि सिक्खदे जिणइ बहुसुद जो चरित्तसंपुण्णो।
जो पुण चरित्तहीणो किं तस्स सुदेण बहुएण ॥ ५ ॥

अर्थ–अल्प शास्त्रज्ञ हो या बहु शास्त्रज्ञ हो जो चारित्रसे पूर्ण है वही संसारको जीतता है। जो चारित्र रहित है उसके बहुत शास्त्रोंके जाननेसे क्या लाभ है? सत्य सच्चे सुखका साधन आत्मानुभव है।

श्रीकुन्दकुन्दस्वामी मूलाचार अनगारभावनामें कहते हैं.—

... ... परामत्त भुजंति मुणी पाणधारणणिमित्त ।
... ... च धम्म पि चरंति मोक्खट्ठं ॥ १ ॥

... ... गाड़ीके पहियेमें तेल देकर रक्षा की जाती ... ... प्राणोंकी रक्षार्थ भोजन करते हैं, प्राणोंको ... ... रखते हैं, धर्मको मोक्षके अर्थ आचरण ... हैं

श्रीकुन्दकुन्दस्वामी मूलाचार पंचाचार अधिकारमें कहते हैं --

विणएण सुदमधीद जदि वि पमादेण होदि विस्सरिदं ।
तमुवट्ठादि परभवे केवलणाणं च आवहदि ॥ १ ॥

अर्थ–जो विनयपूर्वक शास्त्रोंको पढ़ा हो और प्रमादसे कालांतरमें भूल भी जावे तो भी परभवमें शीघ्र ही याद हो जाता है तथा विनयसहित शास्त्र पढ़नेका फल केवलज्ञान होता है ।

णाणं सिक्खदि णाणं गुणेदि णाणं परस्स उवदिसदि ।
णाणेण कुणदि णायं णाणविणीदो हवदि एसो ॥ २ ॥

अर्थ—जो ज्ञानी होकर दूसरेको सिखाता है, ज्ञानका पुन पुन मनन करता रहता है, ज्ञानमें दूसरोंको धर्मोपदेश

करता है तथा ज्ञानपूर्वक चारित्र पालता है वही सम्यग्ज्ञानकी विनय करता है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़में कहते हैं—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे॥ १॥

अर्थ—जो योगी जगतके व्यवहारमें सोता है वही अपने आत्माके कार्यमें जागता है और जो लोक व्यवहारमें जागता है वह अपने आत्माके कार्यमें सोता है।

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो॥२॥

अर्थ—चारित्र आत्माका धर्म है। धर्म है वही आत्माका समभाव है। और समभाव उसे कहते हैं जो रागद्वेषरहित आत्माका अपना अनन्य परिणाम है।

परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सग्गई होई।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरय इयरम्मि॥ ३॥

अर्थ—पर द्रव्यमें रति करनेसे दुर्गति होती है किंतु स्वद्रव्यमें रति करनेसे सुगति होती है ऐसा जानकर पर द्रव्यसे विरक्त होकर स्वद्रव्यमें प्रेम करो।

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण॥ ४॥

अथ सिरणाता ि ोर तप करके निज कर्मोंकी बहुत जन्मोम क्षय करते हैं । क्योंकि आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टि मन वचन कायको रोक ध्यानके द्वारा एक अंतर्मुहूर्तमें क्षय कर डालता है।

सुहजोगेसु पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स ।
सो तेसु हु अण्णाणी णाणी एत्तो हु विवरीओ ॥५॥

अर्थ—शुभ पदार्थोंके संयोग होनेपर जो कोई साधु रागभावसे उन पदार्थोंमें प्रीतिभाव करता है वह अज्ञानी है । जो सम्यग्ज्ञानी है वह शुभ संयोग होने पर भी राग नहीं करता है, समभाव रखते हैं ।

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो ।
तम्हा णाणतवेण संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥ ६ ॥

अर्थ—तपरहित जो ज्ञान है और सम्यग्ज्ञान रहित जो तप है सो दोनों ही मोक्षसाधनमें अकार्यकारी हैं अतः जो ज्ञानसहित तप है उससे ही निर्वाण प्राप्त होता है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य दर्शनपाहुडमें कहते हैं—

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं ।
सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥ १ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे ही भ्रष्ट हैं क्योंकि सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट जीवको कभी भी निर्वाणका लाभ नहीं

हो सकता है। जो चारित्रसे भ्रष्ट हैं परंतु सम्यक्त्वसे भ्रष्ट नहीं हैं वे पुनः ठीक चारित्र पालकर सिद्ध हो सकेंगे परंतु जो सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हैं वे कभी भी सिद्धि न प्राप्त करेंगे।

जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं॥ २॥

अर्थ—व्यवहारनयसे जीवादि तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है परंतु निश्चयनयसे आत्मरुचि ही सम्यग्दर्शन है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य भावपाहुडमें कहते हैं—

बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं॥१॥

अर्थ—जिन महात्माओंके भावोंमें शुद्धात्माका अनुभव नहीं है उनका बाहरी परिग्रहका त्याग, पर्वत, गुफा, नदीतट, कंदरा आदि स्थानोंमें तप करना तथा सर्व ध्यान व आगमका पढ़ना निरर्थक है।

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स॥ २॥

अर्थ—बाहरी परिग्रह का त्याग भावोंकी शुद्धताके निमित्त किया जाता है। यदि भीतर परिणामोंमें कषाय है या ममत्व है तो बाहरी त्याग निष्फल है।

अब द्वादशानुप्रेक्षामें कहते हैं—

जो जीवो पावं विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण ।
णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एको ॥ १ ॥

अर्थ—जो प्राणी विषयोंके लिये तीव्र लोभी होकर पाप कमाता है, वही जीव नारकी व तिर्यंच होकर अकेला ही उस पापकर्मका फल भोगता है।

एगोहं णिम्ममो सुद्धो णाणदंसणलक्खणो ।
सुद्धेयत्तमुपादेयमेवं चिंतइ सव्वदा ॥ २ ॥

अर्थ—वस्तुतः मैं एक अकेला हूँ मेरा कुछ भी नहीं है, मैं शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शन लक्षणवाला हूँ तथा शुद्ध भावकी एकतासे ही अनुभव करने योग्य हूँ, ऐसा ज्ञानी सदा चिंतवन करता है।

जाइजरमरणरोगभयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा ।
तम्हा आदा सरणं बंधोदयसत्तकम्मवदिरित्तो ॥ ३ ॥

अर्थ—जन्म, जरा, मरण, रोग व भयसे आत्मा ही अपनी रक्षा आप कर सकता है। अतः बन्ध, उदय, सत्त्वरूप कर्मोंसे मुक्त शुद्ध आत्मा ही अपना रक्षक है।

संसारछेदकारणवयणं सुहवयणमिदि जिणुद्दिट्ठं ।
णिग्गंथादिसु पूजा सुहकायत्ति य हवे चेट्ठा ॥ ४ ॥

अर्थ—जिन वचनोंसे संसारके छेदका साधन बताया जावे

वे शुभ वचन हैं ऐसा जिनेंद्रने कहा है। श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, सामायिक, संयम तथा दान आदिमें चेष्टा व उद्यम सो शुभ काम है।

श्रीकुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हि समो ॥१॥

अर्थ—निश्चयसे चारित्र धर्म है। जो धर्म है वह सम भावरूप है ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा है मोहक्षोभरहित जो आत्माका स्वभाव है सो ही समभाव है।

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥ २ ॥

अर्थ—रागी जीव कर्मोंसे बंधता है और रागरहित (वीतरागी) जीव कर्मोंसे छूटता है। यह जीवोंके बंध तत्त्वका संक्षेपस्वरूप निश्चयनयसे जानो। अर्थात् रागद्वेष संसारके कारण हैं और वीतरागभाव मोक्षका कारण है।

णाहं होमि परेसिं ण मे परे सन्ति णाणमहमेको।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा ॥३॥

अर्थ—न मैं किन्हीं पर पदार्थोंका हूँ न पर पदार्थ मेरे हैं। मैं एक अकेला ज्ञानमय हूँ। इस प्रकार जो ध्याता ध्यानमें ध्याता है वही आत्माका ध्यानी है

पस्माणुप्पमाणं वा मुच्छा देहादियेसु जस्स पुणो।
[illegible] सिद्धि ण लहदि सव्वागमधरोवि ॥ ४ ॥

[illegible] देह आदि पर पदार्थोंमें पर
[illegible] सब शास्त्रको जानता हुआ भी सिद्धि

[illegible] गुणो, विणा ण अप्पाणो।
[illegible] अप्पा गुणो व अण्णो वा ॥५॥

[illegible] आत्मस्वरूप कहा गया है। आत्माको
[illegible] और कहीं नहीं रहता है अतः ज्ञानगुण
[illegible] और आत्मा ज्ञानस्वरूप है, तो भी गुण
[illegible] अपेक्षासे नामादि भेदसे ज्ञान अन्य है
[illegible] परंतु प्रदेश भेद नहीं है। जहाँ आत्मा है
[illegible] सर्वत्र व्यापक है।

णाणी णाणसहावो अत्था णेयप्पगा हि णाणिस्स।
रूवाणि व चक्खूणं, णेवण्णोण्णेसु वट्टंति ॥ ६ ॥

अर्थ—नाना आत्मा ज्ञान स्वभावको रखने वाला है तथा सब पदार्थ उस ज्ञानीद्वारा ज्ञेयरूप हैं जानने योग्य हैं। यह ज्ञानी ज्ञेयोंको उसी तरह जानते हैं जिस तरह आँख रूपी पदार्थोंको जानती है। अर्थात् आँख पदार्थोंमें नहीं जाती पदार्थ आँखमें नहीं प्रवेश करते हैं उसी तरह केवल-

ज्ञानीका ज्ञान, ज्ञेय पदार्थोंमें नहीं जाता और ज्ञेय पदार्थ, ज्ञानमें आकर प्रवेश नहीं कर जाते हैं। आत्मा अपने स्थान पर है, पदार्थ अपने स्थानपर रहते हैं। ज्ञेयज्ञायक सबबसे आत्माका शुद्ध ज्ञान सर्व ज्ञेयोंको जान लेता है।

आचार्यकल्प पंडितप्रवर आशाधरजी धर्मामृतमें कहते हैं—

यति और श्रावकका लक्षण।

सुदृग्बोधो गलद् वृत्तमोहो विषयनि स्पृह ।
हिंसादेर्विरत कात्स्न्याद्यतिः स्याच्छ्रावकोंऽशतः ॥ १ ॥

अर्थ—जो सम्यग्दृष्टी पुरुष चारित्रमोहनीय कर्मके क्षयोपशम होनेपर विषयोंस निस्पृह होता हुआ, हिंसादिक पाँच पापोंका सर्वदेश त्याग करता है वह मुनि कहलाता है तथा जो एकदेश त्याग करता है वह श्रावक कहलाता है।

सागार धर्मको धारण करनेके योग्य श्रावकके १४ आवश्यक गुण।

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गीस्त्रिवर्गं भज-
न्नन्योन्यानुगुणं तदर्हगृहिणीस्थानालयो ह्रीमयः।
युक्ताहारविहार आर्यसमितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी,
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरघभीः सागारधर्मं चरेत् ॥२॥

अर्थ—१ न्यायसे धन कमाना—स्वामिद्रोह, मित्र द्रोह, विश्वासघात, ठगना, चोरी करना आदि धन कमानेके निंदित उपायोंसे रहित धन कमानेका उपायभूत अपने २ वर्णके अनुकूल जो सदाचार है उसको न्याय कहते हैं और उस न्यायके द्वारा उपार्जन किये गये धनको न्यायोपार्जित धन कहते हैं। धार्मिक जननेमें न्याय्य आजीविका करना प्रधान गुण है।

२ गुणकी, गुरुओंकी और गुण गुरुओंकी पूजा करना—अपना तथा परका उपकार करनेवाले गुणोंका, इन गुणोंसे युक्त व्यक्तियोंके बहुमान, प्रशंसा और नाना प्रकारसे उनकी सहायता आदि करनेके द्वारा आदर, प्रशंसा आदि करना गुणपूजा कहलाती है। माता, पिता और आचार्यकी त्रिकाल वंदना सेवा करना गुरुपूजा कहलाती है तथा सम्यक्त्व, ज्ञान, संयमादिक गुणोंसे शोभायमान पूज्य गुरुओंकी वैयावृत्य करना, उनको हाथ जोड़ना, उनके सामने आनेपर आसनसे उठना आदि उपचार विनयके द्वारा उनकी विनय करना गुणगुरुपूजा कहलाती है। इस प्रकार गुण, गुरु तथा गुणयुक्त गुरुओंकी पूजन करना, उपासना करना अपनेमें गुण विकासके लिये साधक गुण है।

३ सद्गी—दूसरेकी झूठी निंदा और कठोरता आदि

वचनोंके दोषोंसे रहित प्रशस्त तथा उत्कृष्ट वचन बोलना।

४ परस्परमें अविरोधभावसे त्रिवर्गको सेवन करना–धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थोंको त्रिवर्ग कहते हैं। इनमेंसे कामका कारण अर्थ है अर्थका कारण धर्म है और जो जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुड़ाकर उत्तम सुख देवे उसे धर्म कहते हैं। बुद्धि, श्रम और जमीनको अर्थोत्पादक होनेसे अर्थ कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा ऐहिक कार्योंकी सिद्धि होती है उसको अर्थ कहते हैं। तथा पञ्चेन्द्रियोंके विषयोंको काम कहते हैं इनमें स्पर्शन व रसना इन्द्रियके विषयको भोग और शेष इन्द्रियोंके विषयको काम कहते हैं। धर्मके विना अर्थकी और अर्थके विना कामकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अत. प्रत्येक गृहस्थको परस्परमें अविरोध भावसे ही धर्म, अर्थ, और काम इन तीनों पुरुषार्थोंका सेवन करना चाहिये।

५. योग्य स्त्री, स्थान तथा आलय—त्रिवर्गके सेवन करनेमें बाह्यकारणभूत कुलीनता आदि गुणोंसे युक्त योग्य स्त्री, धर्म तथा अर्थोपार्जनप्रधान स्थान और योग्य मकान होना चाहिये।

६. लज्जाशील होना। ७. योग्य शास्त्रविहित आहार तथा विहार करनेवाला। ८ आर्यपुरुषोंकी

महूनि करने वाला । ९ हिताहित विचार करनेवाला । १० दूसरेके द्वारा अपने ऊपर किये गये उपकारोंको मानने न माननेवाला । ११ इन्द्रियोंको वशमें करने वाला । १२ धर्मकी विधिको सुननेवाला । १३ दुखी प्राणियोंपर दया करनेवाला और १४ पापोंसे डरनेवाला ।

इस प्रकार उपर्युक्त चौदह गुणोंके द्वारा युक्त पुरुष सागारधर्मको धारण करनेके योग्य माना गया है ।

श्रावकोंका सम्पूर्ण धर्म ।

सम्यक्त्वममलममलान्यणुगुणशिक्षाव्रतानि मरणान्ते ।
सल्लेखना च विधिना पूर्णः सागारधर्मोऽयम् ॥ ३ ॥

अर्थ- शङ्कादिक दोषोंसे रहित सम्यग्दर्शन, निरतिचार अणुव्रत, गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत और मरण समयमें विधिपूर्वक सल्लेखना करना, इस प्रकार यह श्रावकका सम्पूर्ण धर्म है ।

मद्यपानसे हानि ।

यदेकबिन्दौ प्रचरन्ति जीवा-
श्चेत्तत् त्रिलोकीमपि पूरयन्ति ।
यद्विक्लवाश्चेममसुं च लोकं
यस्यन्ति तत्कश्यमवश्यमस्येत् ॥ ४ ॥

अर्थ- यदि मद्यकी एक बूंदके जीव फैलें तो वे तीन

तीनों लोकोंको भी पूर्ण कर देते हैं, और जिस मद्यके द्वारा मूर्च्छित हुए पुरुष इसलोकको तथा परलोकको भी बिगाड देते हैं उस मद्यको अपने कल्याणको चाहनेवाला पुरुष अवश्य ही छोडे।

मांस खानेसे हानि।

हिंस्र स्वयम्मृतस्यापि स्यान्श्नन् वा स्पृशन्पलम्।
पक्वापक्वा हि तत्पेश्यो निगोदौघसुत सदा॥ ५॥

अर्थ—अपने आप मर हुए जीवोंके भी मासको खाने वाला अथवा छूनेवाला पुरुष हिंसक होता है क्योंकि पके अथवा कच्चे दोनो ही प्रकारके मासके छोटे २ टुकडेखंड सदैव अनंत निगोदिया जीवोंको उत्पन्न करनेवाले होते हैं।

मधु (शहद) के दोष

मधुकृद्व्रातघातोत्थं मध्वशुच्यपि बिन्दुश.।
खादन् बध्नात्यघ सप्त ग्रामदाहाहसोऽधिकम्॥ ६॥

अर्थ—मधुको करनेवाले प्राणियोंके समूहके नाशसे उत्पन्न होनेवाली, और अपवित्र केवल एक बूंद भी मधुको खानेवाला पुरुष मात ग्रामोंके जलानेके पापसे अधिक पापको बाधता है।

मक्खन (नवनीत) के दोष।

मधुवन्नवनीत च मुञ्चेत्तत्रापि भूरिश।
द्विमुहूर्तात्परं शश्वत्संसजन्त्यगिराशय॥ ७॥

अर्थ–धार्मिक पुरुष मधुकी तरह मक्खनको भी छोड़े, क्योंकि मक्खनमें भी दो मुहूर्तके बादमें निरंतर बहुतसे प्राणियोंके समूह उत्पन्न होते रहते हैं।

पंच उदुम्बर फल के दोष

पिप्पलोदुम्बरप्लक्ष वटफल्गुफलान्यदन् ।
हन्त्यार्द्राणि त्रसान् शुष्काण्यपि स्वं रागयोगतः ॥८॥

अर्थ–गीले अथवा सूखे भी पीपर, ऊमर, पाकर बड़ तथा कठूमर इन पाँच उदम्बर आदि फलोंको खानेवाला पुरुष त्रस जीवोंको और रागके सबबसे अपनी आत्माको भी नष्ट करता है।

श्रावकके अष्ट मूलगुण

मद्योदुम्बरपञ्चकामिषमधुत्यागा कृपा प्राणिनां ।
नक्तं भुक्तिविमुक्तिराप्तविनुतिस्तोयं सुवस्त्रस्रुतम् ॥
एतेऽष्टौ प्रगुणा गुणा गणधरैरागारिणां कीर्तिता ।
एकेनाप्यमुना विना यदि भवेद् भूतो न गेहाश्रमी ॥ ९ ॥

अर्थ–मद्य, पाँच उदुम्बर, माँस और मधुका त्याग, जीवोंपर दया, रात्रिभोजनत्याग, आप्तस्तुति, और छानकर पानी पीना ये श्रावकोंके आठ मूलगुण गणधरोंने बताये हैं। ये सभी गुण श्रावकमें रहना चाहिये। इनमेंसे यदि एक भी गुण न हो तो वह श्रावक नहीं हो सकता।

पूजामें द्रव्य चढ़ानेका लौकिक फल

वार्धारा रजसः शमाय पदयो सम्यक्प्रयुक्तार्हत ।
सद्गन्धस्तनुसौरभाय विभवाच्छेदाय सन्त्यक्षता ॥
यष्टु: स्रग्दिविजस्रजे चरुरुमास्वाम्याय दीपस्त्विषे ।
धूपो विश्वदृगुत्सवाय फलमिष्टार्थाय चार्घाय स. ॥१०॥

अर्थ–पूजन करनेवालेकी श्री अर्हन्त भगवानके दोनों चरणकमलोंमें विधिपूर्वक चढ़ाई गई जलकी धारासे पापोंकी शान्ति, उत्तम चन्दनसे शरीरकी सुगंधि, अक्षतसे विभूति निरंतर बने रहनेकी, पुष्पसे स्वर्गीय मन्दारवृक्षकी पुष्पमालाकी, नैवेद्यसे लक्ष्मीके स्वामीपनेकी, दीपसे कान्तिकी, धूपसे उत्कृष्ट सौभाग्यकी, फलसे मनोवाञ्छित फलकी और अर्घसे संसारमें विशेष मान तथा प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है।

पूजाका लोकोत्तर फल

चैत्यादौ न्यस्य शुद्धे निरुपरमनिरौपम्यतत्तद्गुणौघ
श्रद्धानात्सोऽयमर्हन्निति जिनमनघैस्तद्विधोपाधिसिद्धैः ।
नीराद्यैश्चारुकाव्यस्फुरदनणुगुणग्रामरज्यन्मनोभि–
र्भव्योऽर्चन् दृग्विशुद्धिं प्रबलयतु यया कल्पते तत्पदाय॥११

भावार्थ–भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे दर्शनविशुद्धिकी प्राप्ति और उसके प्रतापसे कालान्तरमें तीर्थङ्कर पदवीकी प्राप्ति होती है।

श्रुतपूजक परमार्थसे जिनपूजक ही है

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जसा जिनम् ।
न किञ्चिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयोः ॥ १२ ॥

अर्थ—जो पुरुष भक्तिपूर्वक शास्त्रकी पूजा करते हैं वे पुरुष परमार्थरीतिसे जिनेन्द्रभगवानकी पूजा करते हैं क्योंकि सर्वज्ञदेव, शास्त्र और परमात्मामें कुछ भी अन्तर नहीं है ऐसा कहते हैं। अर्थात् भक्तिभावसे जिनवाणीकी पूजाका आदरभाव रखना ही सच्ची जिनपूजा है। कारण, आप्तपर मेष्ठीने परमार्थसे जिन और जिनवाणीमें अन्तर नहीं बताया है।

ज्ञान और तप पूज्य हैं

ज्ञानमर्च्यं तपोऽङ्गत्वात्तपोऽर्च्यं तत्परत्वतः ।
द्वयमर्च्यं शिवाङ्गत्वात्तद्वन्तोऽर्च्या यथागुणम् ॥ १३ ॥

अर्थ—अनशनादिक तपोंका कारण होनेसे ज्ञान पूज्य है, तप ज्ञानके माहात्म्यका बढ़ानेवाला होनेसे पूज्य है तथा मोक्षके कारण होनेसे दोनों पूज्य हैं और अपनेर गुणोंके अनुसार ज्ञानसे युक्त, तपसे युक्त तथा ज्ञान और तप दोनोंसे युक्त पुरुष भी उत्तरोत्तर अधिक पूज्य हैं।

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय—वृत्तपञ्चनमस्कृतिः ।
कोऽहं को मम धर्मः किं व्रतं चेति परामृशेत् ॥ १४ ॥

—अर्थ—ब्राह्म मुहूर्तमें उठ करके पढ़ा है पंच नमस्कार मंत्रको जिसने ऐसा श्रावक, मैं कौन हूँ, मेरा कौनसा धर्म है, और मेरा क्या व्रत है इस प्रकारसे चिन्तवन करे।

श्रीमंदिरजीमें निषिद्ध कर्म

मध्ये जिनगृहं हासं विलासं दुःकथां कलिम्।
निद्रां निष्ठ्यूतमाहारं चतुर्विधमपि त्यजेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—श्रावक मंदिरजीमें हँसीको, चित्तको कलुषित करनेवाली शृंगारकी चेष्टाएँ काम क्रोधको बढ़ानेवाली कथाएँ, कलहको, निद्राको, थूकना आदि और चारों प्रकारके आहारको न करे।

आत्महितकारी फुटकर पद्य

प्रशमका लक्षण

रागादिषु च दोषेषु चित्तवृत्तिनिवर्हणम्।
तं प्राहुः प्रशमं प्राज्ञाः समस्तव्रतभूषणम् ॥ १ ॥

अर्थ—तत्त्वज्ञानी पुरुष रागद्वेषादिक दोषोंमें चित्तके नहीं जानेको प्रशम कहते हैं और यह प्रशम सब व्रतोंका भूषण है।

संवेगका लक्षण

शारीरमानसागन्तुवेदनाप्रभवाद्भयात्।
स्वप्नेन्द्रजालसंकल्पाद्भीतिः संवेग उच्यते ॥ २ ॥

अर्थ-शारीरिक रोगादिरूप व्याधिसे, मानसिक चिंतारूप आधिसे और आगतुक आकस्मिक दु खोंसे उपन्न होनेवाले तथा स्वप्न और इन्द्रजालके समान अस्थिर संसारसे भय होनेको संवेग कहते हैं।

अनुकम्पाका लक्षण

सत्त्वे सर्वत्र चित्तस्य दयार्द्रत्वं दयालवः ।
धर्मस्य परमं मूलं मनुकम्पा प्रचक्षते ॥ ३ ॥

अर्थ-सम्पूर्ण प्राणियोंपर चित्तकी दयार्द्रताको दयालु मुनि (श्रीगुरु) अनुकम्पा कहते हैं और यह अनुकम्पा ही धर्मका मुख्य कारण है।

आस्तिक्यका लक्षण

आप्ते श्रुते व्रते तत्त्वे चित्तमास्तिक्यसंयुतम् ।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं युक्तं युक्तिधरेण वा ॥ ४ ॥

अर्थ-सर्वज्ञ, शास्त्र, व्रत, और सात तत्त्वोंमें अस्तित्व बुद्धि रखनेको आस्तिक पुरुष अथवा युक्तिधर परीक्षाप्रधानी पुरुष आस्तिक्य कहते हैं।

अन्यायोपार्जित धनकी दशा

अन्यायोपार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥ ५ ॥

अर्थ-अन्यायसे उपार्जन किया गया धन अधिकसे

अधिक दश वर्ष तक ही ठहरता है। ग्यारहवें वर्षमें वह सब मूलसहित ही नष्ट हो जाता है।

निंदा करनेका फल

परपरिभवपरिवादा-दात्मोत्कर्षाच्च बध्यते कर्म।
नीचैर्गोत्रं प्रतिभवमनेकभवकोटिदुर्मोचम्॥ ६॥

अर्थ–दूसरेका तिरस्कार तथा उसकी निंदा करनेसे और अपनी प्रशंसा करनेसे प्रत्येक भवमें नीचगोत्रकर्मका बंध होता है। नीचगोत्रकर्मका बंध करोड़ भवोंमें भी छूटना बड़ा ही कठिन है।

अविरोध भावसे त्रिवर्ग पालन न करनेका फल।

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च।
स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥ ७॥

अर्थ–परस्परमें अविरोध भावसे धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंका सेवन किये बिना ही जिसके दिन आते तथा जाते रहते हैं वह पुरुष लुहारकी धौंकनीके समान श्वासें लेता हुआ भी मरे हुएके समान है।

सत्संगका फल।

यदि सत्संगनिरतो भविष्यसि भविष्यसि।
अथ सज्जनगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि॥ ८॥

अर्थ–यदि तुम सज्जन पुरुषोंकी संगतिमें लीन रहोगे

तो उसमें भी उत्तम मनुष्यकी गोष्ठीमें पड़कर, उत्तम ज्ञानको प्राप्त करना।

आत्मचरित्रका निरीक्षण

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति ॥ ९ ॥

अर्थ—मनुष्यको प्रतिदिन अपने द्वारा किये गये कार्यों का स्मरण करना चाहिये, और फिर विचार करना चाहिये कि मैंने आज कौनसे कार्य तो पशुओंके समान किये हैं तथा कौनसे कार्य सज्जन पुरुषोंके समान किये हैं।

कृतघ्नता और कृतघ्नताका फल

यदि चेत्तुरेन संसारचक्रस्य कृतघ्नतायां समुपैहि पारम्।
गुणैरपेतोऽप्यखिलैः कृतघ्नः समस्तमुद्वेजयते हि लोकम् ॥१०॥

अर्थ—यदि तुम अपने इस परिवार और समस्त लोगोंको अपने वशमें करना चाहते हो तो सर्वप्रथम कृतज्ञ बनो। क्योंकि सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त भी कृतघ्नी पुरुष समस्त लोगोंको पीडित कर देता है।

दया धारण करनेमें अपूर्व युक्तिका निर्देश

प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वीत मानव ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस प्रकार तुमको अपने प्राण प्रिय हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवोंको भी अपने प्राण प्रिय हैं। इसलिये मनुष्योंको अपने समान ही सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करना चाहिये।

दूसरोंके प्रति उत्तम व्यवहार करो

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ १२॥

अर्थ–धर्मके सारको सुनो तथा सुन करके उसपर विचार करो, क्योंकि सम्पूर्ण धर्मका सार यही है कि जो कार्य अपने प्रतिकूल हैं उन कार्योंको दूसरोंके प्रति मत करो अर्थात् दूसरोंके द्वारा किये गये जिन कार्योंसे तुमको दुःख होता है उन कार्योंको तुम दूसरोंके प्रति भी मत करो।

पांच उदुम्बरफलोंके दोष।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधादिफलेष्वपि।
प्रत्यक्षाः प्राणिनः स्थूलाः सूक्ष्माश्चागमगोचराः॥
समस्तजीवव्यपघातवृत्तिभिर्न जीवैरस्ति मम समानता।
अनन्तजीवव्यपरोपकाणामुदुम्बराहारविलोलचेतसाम्॥ १३॥

अर्थ–इन पाँच उदुम्बरोंमें भी स्थूल प्राणी तो प्रत्यक्ष दीखते हैं। तथा शास्त्रानुसार सूक्ष्मजीव भी पाये जाते हैं। पाँच उदुम्बरोंके खानेकी जिनके चित्तमें लोलुपता है वे

अनन्त जीवोंके वध करनेवाले हैं अत. उनकी सख्यात जीवोंको मारकर आजीविका करनेवाले धीवरोंके साथ भी समानता नहीं है।

जिन धर्मके उपदेश सुननेके पात्र।

अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य।
जिनधर्मदेशनाया भवति पात्राणि शुद्धधिय ॥ १४ ॥

भाव—अनिष्ट, दुस्तर और पापोंके घर जो सप्तव्यसन हैं उनको छोड़कर और अष्ट मूलगुण धारणकर शुद्ध हुई है बुद्धि जिनकी ऐसे गृहस्थ जिनधर्मके उपदेश सुनने के पात्र हैं।

श्रावक का धर्म।

दान पूजा जिन शीलमुपवासश्चतुर्विध।
श्रावकाणा मतो धर्म ससारारण्यपावक ॥ १५ ॥
आराध्यते जिनेंद्रा गुरुषु च विनतिर्धार्मिके प्रीतिरुच्चै.।
पात्रेभ्यो दानमापन्निहतजनकृते तच्च कारुण्यबुद्ध्या ॥
तत्त्वाभ्यास स्वकीयव्रतरतिरमल दर्शन यत्र पूज्य।
तद्गार्हस्थ्य बुधानामितरदिह पुनर्दु.खदो मोहपाश ॥१६॥

अर्थ—पात्रदान जिनपूजा, शील पालना और चार प्रकारका उपवास करना यह ससारका भस्म करनेवाला श्रावकोंका धर्म है। जिस गृहावस्थामें जिनेंद्रकीपूजा, गुरुकी विनय, धार्मिकोंसे गाढ़ी प्रीति, पात्रदान, करुणा

बुद्धि, विपद्ग्रस्तोंकी सहायता, निर्मल सम्यग्दर्शनकी पूजा, तत्त्वाभ्यास और अपने व्रतोंमें अनुराग पाया जाता है वही विवेकियोंका सच्चा गृहस्थाश्रम है और जहाँ यह बातें नहीं हैं तो केवल दुःखद मोहका जाल है, गृहस्थाश्रम नहीं।

—❀— समयसारकलश —❀—

(श्री अमृतचन्द्राचार्य)

एकमेव हि तत्स्वाद्य विपदामपदं पदम् ।
अपदान्येव भासन्ते पदान्यन्यानि यत्पुरः ॥ ७७ ॥

अर्थ—विपदाओंसे रहित एक आत्माके शुद्ध पदका ही स्वाद लेना चाहिये । जिसके सामने और सब पद अयोग्य प्रतिभासित होते हैं ।

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं । विकल्पजालच्युतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४-३॥

अर्थ—जो कोई नयपक्षपात छोड़कर सदैव आत्मस्वरूपमें रत रहते हैं वे ही विकल्पसमूहकी मुक्तिद्वारा शान्त चित्त होते हुए साक्षात् आत्मामृत का पान करते हैं ।

स्वागताछन्द ।

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम् ।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि ॥३०

अर्थ—यह मोह मेरा कुछ भी नहीं है, कुछमी नहीं है। चर्तन्यपने निजानन्द जो चैतन्यका परिणमन उससे परिपूर्ण भावनाका ऐसा मैं इस लोकमें आपहीकरि अपने एक आत्मस्वरूपका अनुभव करूँ। वस्तुतः मैं शुद्ध चैतन्यका समूहरूप तेज पुञ्जका निधि हूँ।

विशेष—मोहके स्थानमें राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन, स्पर्शन ए सोलह पद क्रम क्रमसे रखकर अथवा पुनः पुनः विचार मनन करना चाहिये।

अनुष्टुप् छन्द।

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्मतत्त्वयोः ।
कर्तृकर्मत्वसम्बन्धाभावे, तत्कर्तृता कुतः ॥ ८ ॥

अर्थ—परद्रव्यका और आत्माका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। कर्ताकर्म सम्बन्धके अभावमें परद्रव्यका कर्तापना कैसे सम्भव है? अर्थात् किसी भी प्रकार नहीं।

वसन्ततिलका छन्द।

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म,
जानाति केवलमयं किल तत्स्वभावम्।
जानन्परं करणवेदनयोरभावात्,
शुद्धस्वभावनियतः स हि मुक्त एव ॥ ६ ॥

अर्थ—ज्ञानी न कर्मको कर्ता है और न ही उसका वेदन करता है। मात्र कर्मस्वभावका ज्ञाता है। मात्र ज्ञाता होता हुआ, कर्मकर्तृत्व और कर्म भोक्तृत्वके अभावमें, शुद्धस्वात्मस्वभावमें नियत है। अतः निश्चयसे मुक्त ही है—कर्मोंसे रहित ही है।

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भवमूर्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन,
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥२३-१॥

अर्थ—अरे भाई! किसी तरह हो, मरकरके भी आत्मीकतत्त्वका प्रेमी हो और दो घड़ीके लिये शरीरादि सर्व मूर्तीक पदार्थोंका तू निकटवर्ती पडोसी बन जा; उनको अपनेसे भिन्न जान और आत्माका अनुभव कर। तो तू अपनेको प्रकाशमान देखता हुआ मूर्तीक पदार्थकेसाथ एकताके मोहको झट ही त्याग देगा।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः ॥२-२॥

अर्थ—अरे भाई! वृथा अन्य कोलाहलसे विरक्त हो

... [illegible] विचित्र ... करके ... मानने ... एकत्र आत्मतत्त्व का ... हे ... ऐसे ... द्रव्यकर्मसे पुद्गलसे भिन्न तेज ... की कहाँ प्राप्ति मे होगी? अवश्य होगी।

... अमी रागिणो नित्यमत्ताः ...
... यस्मिन्नपदमपद तद्विबुध्यध्वमन्धाः। ...
... मिदमिद यत्र चैतन्यधातु ...
... शुद्धः शुद्धः स्वरसभरत स्थायिभावत्वमेति ॥६७

... हे ... प्राणियो! अनादि संसारसे लेकर प्रत्येक ... उन्मत्त होते हुए जिस पदमें सो रहे हैं ... है, यह तेरा पद नहीं है ऐसा भले प्रकार ... इधर आ, इधर आ, तेरा पद यह है जहाँ चैतन्य धातुमय आत्मा द्रव्यकर्म व भावकर्म दोनोंसे शुद्ध ... आत्मीकरससे पूर्ण सदा ही विराजमान रहता है।...

... आत्मभावान्करोत्यात्मा परभावान्सदा परः। ...
आत्मैव ह्यात्मनो भावाः परस्य पर एव ते॥११-२॥

अर्थ—आत्मा आत्मभावोंका कर्ता है, पर पदार्थ परभावोंका कर्ता है सदा ही यह नियम है। अत आत्माके जितने भाव हैं वह आत्मरूप ही हैं। परके जितने भाव हैं वे पररूप ही हैं। ...

... आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किं।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥ १७ ३॥

अर्थ–आत्मा ज्ञानमय है, स्वयं [illegible] ज्ञानके सिवाय और क्या करेगा। [illegible] कर्ता है, यह व्यवहारी जीवोंका [illegible] है

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्व [illegible]।
सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ता भवन्त्यज्ञानिन [illegible]॥

अर्थ–ज्ञानीके सब ही भाव [illegible] ज्ञान-मई ही होते हैं और अज्ञानीके [illegible] अज्ञान [illegible] किये हुए अज्ञानरूप ही होते हैं

व्याप्यव्यापकता तदात्मनि [illegible]।
व्याप्यव्यापकभावसम्भव [illegible]॥
इत्युद्दामविवेकघस्मरमहो [illegible]।
ज्ञानीभूय तदा स एव [illegible] पुमान्॥ ३

अर्थ–व्याप्यव्यापकपना [illegible] होता है अतत् स्वरूपमें नहीं होता है। [illegible] भावके सम्भव बिना कर्ताकर्मकी स्थिति कैसी [illegible]? अर्थात् कुछ भी नहीं। ऐसा उदार विवेक [illegible] समस्त [illegible] सभीको ग्रसीभूत करनेका स्वभाव [illegible] ऐसा जो ज्ञान स्वरूप तेजप्रकाश, उसके [illegible] अज्ञानरूपी अंधकारको भेद करके और ज्ञानी [illegible] आत्मा उस समय [illegible] कर्तापनेसे रहित हो जाता है।

भावार्थ—जो सभी अवस्थाओंमें पाया जावे—व्याप्त रहे उसे व्यापक कहते हैं और जो अवस्था विशेषमें पाया जाय उसे व्याप्य कहते हैं। ऐसे द्रव्य व्यापक है और पर्याय व्याप्य है। द्रव्यपर्याय अभेदरूप ही है। जो द्रव्यका आत्मा स्वरूप व सत्ता है वही पर्यायका आत्मा, सो ऐसा व्याप्यव्यापकभाव तत्स्वरूपमें ही होता है, अतत्स्वरूपमें नहीं। विना व्याप्य व्यापक भावके कर्ताकर्मभाव नहीं हो सकता ऐसा जो जानता है वह पुद्गल और आत्माके कर्ताकर्मभाव नहीं जानता है तब वह ज्ञानी होकर कर्ताकर्मभावसे रहित होता है अतः वह ज्ञाता और द्रष्टा ही है।

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं, प्राणाः किलास्यात्मनो ।
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया, नोच्छिद्यते जातुचित् ॥
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो ।
निःशङ्कः सततं स्वयं स सहजं, ज्ञानं सदा विन्दति ॥२७७॥

अर्थ—प्राणोंके वियोगको मरण कहते हैं। निश्चयसे इस आत्माका प्राण ज्ञान है और वह स्वयं ही नित्य है, उसका कभी भी नाश नहीं होता है अतः उसका मरण हो नहीं सकता। तब ज्ञानीको मरणका भय कहाँ? वह सतत निःशङ्क रहता हुआ सदा ही स्वयं अपने सहज ज्ञानका स्वाद लेता है।

न जातु रागादिनिमित्तभाव,-मात्माऽऽत्मनोयाति यथार्ककान्त । तस्मिन्निमित्त परसङ्ग एव, वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ॥ १३८ ॥

अर्थ-यह आत्मा अपनेसे रागादिकके निमित्तभावको कभी भी प्राप्त नहीं होता है, उस आत्मामें रागद्वेषादि विभावोंमें परिणमनेका निमित्त परद्रव्यका सग ही है, जैसे सूर्य कान्तमणि आप ही अग्निरूप परिणमन नहीं करती है, परतु उसमें सूर्यका बिम्ब अग्निरूप होनेके लिये निमित्त है, इसी प्रकार आत्मामें जानना । यह वस्तुका स्वभाव स्वय ही उदयको प्राप्त हो रहा है किसीका किया हुआ नहीं है ।

ज्ञानी करोति न न वेदयते च कर्म,
जानाति केवलमय किल तत्स्वभाव ।
जानन्पर करणवेदनयोरभावा
च्छुद्धस्वभावनियत स हि मुक्त एव ॥६-१०

अर्थ-ज्ञानी न तो स्वतत्र होकर कर्मोंको करता है न उनको वेदता है । केवल उनके स्वभावका ज्ञाता ही है । कर्ता भोक्तापनाके अभावसे मात्र जानता हुआ ज्ञानी अपने शुद्धस्वभावमें नियत है अत निश्चयकरि मुक्त ही है-कर्मोंसे छूटया हुआ ही है ।

भावार्थ—ज्ञानी कर्मका स्वाधीनपनेसे कर्ता भोक्ता नहीं है, केवल ज्ञाता ही है इसलिये शुद्ध स्वभावरूप हुवा मुक्त ही है । कर्मका उदय भी हो तो
कर ...कुछ नहीं, जबतक

कर्म भले ही जोर चला लें परन्तु कर्मका तो निर्मूल नाश करेगा ही।

व्यवहारविमूढदृष्टयः परमार्थं कलयन्ति नो जनाः।
तुषबोधविमुग्धबुद्धयः कलयन्तीह तुषं न तण्डुलम् ॥४९-१०॥

अर्थ—जो जन व्यवहारमें ही मोही बुद्धि हो रहे हैं वे परमार्थको नहीं जानते हैं। जैसे लोकमें जो जन तुसहीके (छिलकेके) ज्ञानमें मोही बुद्धि हैं वे तुस ही को तंदुल मानते हैं। तंदुलको तंदुल नहीं जानते हैं। अर्थात् परमार्थ आत्मस्वरूपको जाने बिना परमार्थ आत्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती जैसे परालके कूटनेवालेको तंदुलकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

विगलन्तु कर्मविषतरुफलानि मम भुक्तिमन्तरेणैव।
संचेतयेऽहमचलं चैतन्यात्मानमात्मानम् ॥ ३७ १० ॥

अर्थ—कर्मरूपी विषवृक्षोंके फल मेरे भोग बिना ही गल जाओ। मैं तो अपने ही निश्चल एक चैतन्यमात्रको ही भोगता हूँ।

उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाङ्के,
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै-
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥ ४ ॥

अर्थ—निश्चयनय और व्यवहारनयके विरोधको मेटनेवाली, 'स्यात्' पदसे अङ्कित जिनवाणीमें जो रमण करते हैं, उनका मिथ्यात्वभाव स्वयं गल जाता है। तब वे शीघ्र ही अतिशय करके परम ज्योतिस्वरूप, प्राचीन, किसी भी खोटी युक्तिसे अखण्डित शुद्ध आत्माका अनुभव कर ही लेते हैं।

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या,
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्प—
मेकोऽस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात् ॥१३॥

अर्थ—शुद्धनयस्वरूप जो शुद्ध आत्माकी अनुभूति है वही ही निश्चय सम्यग्ज्ञानकी सच्ची अनुभूति है, ऐसा ज्ञान करके जब कोई अपने आत्माको अपने आत्मामें धारण करता है तब वहाँ सर्व तरफसे नित्य ही एक ज्ञानघन आत्मा ही स्वादमें आता है।

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था,
ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदासः।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातोः,
क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावम् ॥१५-३॥

अर्थ—अग्नि और जलकी उष्णपणा व शीतपणाकी व्यवस्था

[illegible] भासते नहीं जाती है, लवण और व्यजनके [illegible] जानने ही अलग २ भासता है। यह ज्ञानका [illegible] (जिससे कोधका मैं कर्ता हूँ, इस अज्ञानका [illegible] झलकता है कि मैं क्रोधादिकी कलुपतासे [illegible] आत्मीकरससे निकासरूप होता हुआ चैतन्य [illegible] मात्र हूँ।

[illegible] रूपणार्पितमतेस्तत्त्व समुत्पश्यतो,
[illegible] गत चकास्ति किमपि द्रव्यान्तर जातुचित्।
[illegible] ज्ञेयमवैति यत्तु तदय शुद्धस्वभावोदय,
[illegible] चुम्बनाकुलधियस्तत्त्वाच्च्यवन्ते जना ॥२२-०१

[illegible] आचार्य कहते हैं कि शुद्धनयके निपरूणमें जिसकी बुद्धि लगी हुई है और तत्त्वको अनुभवता है ऐसे पुरुषके एक द्रव्यमें दूसरा द्रव्य कुछ भी कभी भी नहीं प्रतिभासता है। ज्ञान ज्ञेय (जानने योग्य) पदार्थोंको जानता है सो यह ज्ञानके शुद्ध स्वभावका उदय है तब परद्रव्यके ग्रहणके लिये आकुलबुद्धि अज्ञानी जन शुद्धात्माके अनुभवसे क्यों पतन कर रहे हैं? अर्थात् अपने शुद्धज्ञानके प्रकाशका माहात्म्य लखो।

॥ इति ॥

❀ नम प्रवचन साराय ❀

—❀ श्री प्रवचन सार-पद्य ❀—

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन

(हरिगीत)

सुर असुर नरपतिवंद्यने[1], प्रविनष्ट घातिकर्मने ।
प्रणमन करूं हूँ[2] धर्मकर्त्ता तीर्थ श्रीमहावीरने ॥ १ ॥
वली[3] शेष तीर्थंकर अने सौं[4] सिद्ध शुद्धास्तित्वने ।
मुनि ज्ञान दृग[5]-चारित्र-तप-वीर्याचरण संयुक्तने ॥ २ ॥
ते सर्वने साथे तथा प्रत्येकने प्रत्येकने ।
वंदु वली हुं मनुष्य क्षेत्रे वर्तता अर्हंतने ॥ ३ ॥
अर्हंतने श्री सिद्धने य[6] नमस्करण करी ए[7] रीत ।
गणधर अने अध्यापकोने[8] सर्व साधु समूहने ॥ ४ ॥
तसु शुद्ध दर्शन ज्ञान मुख्य पवित्र आश्रम पामीने[9] ।
प्राप्ति करूं हुं साम्यनी, जेनाथी[10] शिवप्राप्ति बने[11] ॥ ५ ॥
सुर असुर मनुजेन्द्रो तणा विभवो सहित निर्वाणनी ।
प्राप्ति करे चारित्रथी जीव ज्ञानदर्शन मुख्य थी ॥ ६ ॥
चारित्र छे[12] ते[13] धर्म छे, जे[14] धर्म छे ते साम्य छे ।
ने[15] साम्य जीवनो मोह क्षोभ विहीन निज परिणाम छे ॥७

---

१ को। २ मैं। ३ अनन्तर। ४ सब। ५ दर्शन। ६ भी। ७ इस। ८ उपाध्यायों को। ९ प्राप्तकरके। १० जिससे। ११ हो। १२ है। १३ यह। १४ जो। १५ और।

[illegible] मा प्रशम [illegible], ते काल तन्मयते कह्यु,
[illegible] तथी प्रशमां प्रणमेल धर्म ज[illegible] जाणवुं ॥८॥
[illegible] शुभ प्रणमता शुभ के अशुभ आत्माजने ।
[illegible] शुद्ध परिणाम स्वभावी होइने[5] ॥ ९ ॥
[illegible] पदार्थ, ने न पदार्थ विण परिणाम छे ।
[illegible] पर्यय स्थित ने अस्तित्व सिद्ध पदार्थ छे ॥१०॥
[illegible] परिणत स्वरूप जीव शुद्धोपयोगी होय तो ।
[illegible] निर्वाण सुख, ने स्वर्ग सुख शुभ युक्त जो ॥११
[illegible] अशुभोदय आत्मा कुनर तिर्यंच ने नारकपणे[10] ।
[illegible] सहस दुःखे पीडित संसारमां अति अति भमे[11] ॥१२
[illegible] आत्मोत्पन्न, विषयातीत, अनुप अनंत ने ।
विच्छेद[12] हीन छ सुख अहो ! शुद्धोपयोग[13] प्रसिद्ध ने ॥१३॥
सुविदित सूत्र पदार्थ, संयम तप सहित वीतराग ने,
सुख दुःखमां सम श्रमणने शुद्धोपयोग जिनो कहे ॥१४॥
जे उपयोग विशुद्ध ते मोहादि घाति रज थकी [illegible]
स्वयमेव रहित थयो थको ज्ञेयान्त ने पामे सही ॥१५॥
सर्वज्ञ, लब्ध स्वभावने त्रिजगेंद्र पूजित ए रीते ।
स्वयमेव जीव थयो थको तेने स्वयंभू जिनो कहे ॥१६॥

१ निस । २ परिणमित हो । ३ अनन्य । ४ हो । ५ [illegible] । ६ होकर । ७ विना । ८ यदि । ९ प्राप्त करता है । १० नारकरूप । ११ भ्रमे । (भ्रमण कर) । १२ बाधारहित । १३ शुद्धोपयोगी को ।

व्ययहीन छे उत्पाद ने उत्पाद हीन विनाश छे ।
तेने ज वली[1] उत्पाद ध्रौव्य विनाशनो समवाय छे ॥१७॥
उत्पाद तेम[2] विनाश छे सौ[4] कोई वस्तु मात्र ने ।
वली[5] कोई पर्यय थी दरेक[6] पदार्थ छे सद्भूत खरे[7] ॥१८॥
प्रक्षीण घाति कर्म, अनहद वीर्य, अधिक प्रकाशने ।
इंद्रिय अतीत थयल आत्मा ज्ञानसौख्ये परिणमे ॥१९॥
कंइ[9] देहगत नथी सुख के नथी दुःख केवलज्ञानीने ।
जेथी अतींद्रियतावह त कारणे ए जाणवो[10] ॥ २० ॥
प्रत्यक्ष छे सौ द्रव्यपर्यय ज्ञान परिणम[11] नारने ।
जाणे नहीं ते तेमने अवग्रह ईहादिक्रिया वडे[12] ॥ २१ ॥
न परोक्ष कंइ पण[3] सर्वत सर्वाक्षगुण समृद्धने ।
इन्द्रिय अतीत सदैव ने स्वयमेव ज्ञान थयेलने ॥ २२ ॥
जीव द्रव्य ज्ञान प्रमाण भाख्यूं[4] ज्ञान ज्ञेयप्रमाण छे ।
ने ज्ञेय लोकालोक तेथी[5] सर्वगत ए[6] ज्ञान छे ॥२३॥
जीव द्रव्य ज्ञान प्रमाण नहि—ए मान्यता छे जेह[7] ने ।
तेना मते जीव ज्ञानथी हीन के अधिक अवश्य छे ॥२४॥
जो हीन आत्मा होय, नव जाणे अचेतन ज्ञान ए ।
ने अधिक ज्ञानथी होय तो वण[1] ज्ञान क्यम जाणे अरे ॥२५

१ और । २ युक्त । ३ उसी प्रकार । ४ सब । ५ तो भी । ६ प्रत्येक । ७ अनन्य । ८ हुये । ९ कुछ । १० जानना । ११ परिणमित होनेवाले को । १२ द्वारा । १३ भी । १४ कहा । १५ इसलिये । १६ १७ जिसकी । १८ बिना ।

... नक्कर ... सौ अर्थ जिनवर प्राप्त छे।
ने। ज्ञान मय न सर्वे अथवा विषय जिनना[2] होई[3] ने ॥२६॥
... ज्ञान ... मा जिनमतें आ मा विना नहि ज्ञान छे,
... ज, जीव ज्ञान छे वा अन्य छे ॥ २७ ॥
... स्वभाव अथवा नयरूप छे ज्ञानी[4] ना।
... ज्ञेयो तणा[5], नहि वर्तता अन्योन्यमा ॥२८॥
... परपविष्ट न, जाणतो जग सर्व ने।
... य ज्ञातमा, ज्यम नेत्र जाणे रूपने ॥ २९ ॥
... स्थित इन्द्रनीलमणि स्वकीय प्रभावडे[6]।
... पापी रह त्यम[7] ज्ञान पण अर्थो विषे ॥ ३० ॥
... था ज्ञानमा, तो ज्ञान सौ गत[8] पण नहि।
... ज्ञान तो क्यम ज्ञानस्थित अर्थो नहि? ॥३१
... ग्रहे, न छोडे, पर रूप नव परिणमे।
... नारो नि शेषे सर्वत ते[11] सर्व ने ॥ ३२ ॥
... जाणे स्वर ज्ञायकस्वभावी आत्मने।
... ऋषियो प्रकाशक लोकना श्रुतकेवली तेने कहे ॥३३॥
पुद्गलस्वरूप वचनोथी जिन उपदिष्ट जे[2] ते[3] सूत्र छे।
छे ज्ञप्ति तेनी ज्ञान, तेने[4] सूत्रनी[15] ज्ञप्ति कहे ॥ ३४ ॥
जे जाणतो ते ज्ञान, नहि जीव ज्ञानथी ज्ञायक बने।
पोते[16] प्रणमतो[17] ज्ञानरूप, ने ज्ञान स्थित सौ[18] अर्थ छे ॥३५॥

१ और। २ जिनेन्द्र देव के। ३ होने से। ४ जैसे। ५ का। ६ द्वारा। ७ वैसे। ८ नहीं। ९ मनगत ? । १० क्या। ११ वे। १२ ... । १३ वह। १४ उसको। १५ श्रुतज्ञान। १६ स्वयं। १७ परिणमता है। १८ सब।

छे ज्ञान तेथी जीव ज्ञेय त्रिधा कहेलु[1] द्रव्य छे।
ए द्रव्य पर ने आतमा, परिणाम संयुक्त जेह छे ॥३६॥
ते द्रव्यना सद्भूत[3] असद्भूत पर्ययो सौ[4] वर्तता।
तत्कालना पर्याय जेम[5], विशेष पूर्वक ज्ञानमां ॥ ३७ ॥
जे पर्ययो अणजात[6] छे वली जन्मीने प्रविनष्ट जे।
ते सौ असद्भूत पर्ययो पण ज्ञानमां प्रत्यक्ष छे ॥३८॥
ज्ञाने अजात विनष्ट पर्यायो तणी[10] प्रत्यक्षता।
नव[11] होय जो[12] तो ज्ञानने ए दिव्य कोण कहे भला ॥३९॥
ईहादि पूर्वक जाणता जे अक्षपतित[13] पदार्थ ने।
तेने परोक्ष पदार्थ जाणवु शक्यना[14] जिनजी कहे ॥ ४० ॥
जे जाणतु अप्रदेशने सप्रदेश, मूर्त अमूर्तने।
पर्याय नष्ट अजातने[15], भाख्यु अतींद्रिय ज्ञान ते ॥ ४१ ॥
जो ज्ञेय अर्थे परिणमे ज्ञाता, न क्षायिक ज्ञान छे।
ते कर्मने ज[16] अनुभवे छे एम जिनदेवो कहे ॥ ४२ ॥
भाख्यां जिने कर्मो उदयगत नियमथी संसारीने।
ते कर्म होतां[18] मोही रागी द्वेषी बंध अनुभवे ॥ ४३ ॥
धर्मोपदेश, विहार, आसन, स्थान[19] श्रीअर्हंतने।
वर्ते सहज ते कालमां मायाचरण ज्यम नारीने ॥४४॥

१ कहा गया । २ जो । ३ विद्यमान अविद्यमान । ४ समस्त । ५ सदृश । ६ अनुत्पन्न । ७ अथवा । ८ पर्यायें । ९ भी । १० की । ११ न । १२ यदि । १३ इन्द्रियगोचर । १४ अशक्य । १५ अनुत्पन्न को । १६ ही । १७ ऐसा । १८ होने से । १९ ठहरना । २० जैसे ।

... पुण्यफल ... अर्हंत, न अर्हंतकिरिया उदयिकी।
मोहादि था विरहित तेथी ते क्रिया क्षायिक गणी ॥४५॥
... निज भाव थी जो शुभ अशुभ बने नहि।
... संसार ने समार पण वर्ते नहि? ॥४६॥
... अवतमान विचित्र विषम पदार्थ ने।
... जाणतु ते ज्ञान क्षायिक जिनकह ॥४७॥
... युगपद त्रिकालिक त्रिभुवनस्थ पदार्थ ने।
... एक पण नहि द्रव्य जाणतु शक्य छे ॥४८॥
एक द्रव्य अनत पर्यय[6] तेम द्रव्य अनत ने।
युगपद न जाणे जीव, तो ते कम जाणे सर्वने? ॥४९॥
जो ज्ञान'नानी' नु उपजे क्रमश अरथ[8] अवलवी[9] ने।
तो नित्य नहि, क्षायिक नहि ने सर्वगत नहि ज्ञान ए॥५०॥
नित्य विषम,[10] विधविध,[11] सकलपदार्थगण सर्वत्रनो,
जिनज्ञान जाणे युगपदे, महिमा अहो ए ज्ञाननो ॥५१॥
ते अर्थरूप न परिणमे जीव नव ग्रह नव उपजे।
सौ अर्थ न जाणे छेना[12] तेथी अबधक जिन कह ॥५२॥
अथान् ज्ञान अमूर्त, मूर्त, अतींद्रिने ऐन्द्रिय[13] छे,
छे सुख पण एवुज[14] त्यां परधान[15] जे ते ग्राह्य छे ॥५३॥

१ औदयिक। २ जीव समूह को। ३ सपूर्ण। ४ सर्वत। ५ पर्यायसहित। ६ अनत पर्याय वाला। ७ के। ८ अर्थ। ९ सहायता। १० असमान जातीय। ११ अनेक प्रकारक। १२ तोभी। १३ ऐन्द्रियक। १४ ऐसा ही। १५ प्रधान (उत्तम)।

देखे अमूर्तिक, मूर्तमाय[1] अतींद्रिय ने प्रच्छन्न ने।
ते-सर्वने-पर-के स्वकाय ने, ज्ञान ते प्रत्यक्ष छे[2]॥ ५४ ॥
पोते[2] अमूर्तिक जीव मूर्त-शरीरगत ए मूर्त थी।
कदी[3] योग्य मूर्त अवग्रही जाणे कदीक[4] जाणे नहीं ॥५५॥
रस गंध, स्पर्श वली[5] वरण ने शब्द जे पौद्गलिक ते।
छे इन्द्रिय विषयो, तेमने य न इन्द्रियो युगपद ग्रहे॥५६॥
ते इन्द्रियो परद्रव्य, जीवस्वभाव भाखी न तेमने,
तेनाथी जे उपलब्ध ते प्रत्यक्ष कई[7] रीत जीवने ॥५७॥
अर्थो तणुं[8] जे ज्ञान परत थाय[9] तेह परोक्ष छे,
जीवमात्रथी ज जणाय जो, तो ज्ञान ते प्रत्यक्ष छे ॥५८॥
स्वयमेव जात, समत अर्थ अनंतमा विस्तृत ने।
अवग्रह-ईहादि रहित, निर्मल ज्ञान सुख एकान्त छे ॥५९॥
जे ज्ञान 'केवल'[11] तेज सुख, परिणाम पण वली तेज छे।
भाख्यो न तेमा खेद[12] जेथी घातिकर्म विनिष्ट छे ॥६०॥
अर्थान्तगत छे ज्ञान, लोकालोक, विस्तृत दृष्टि छे।
छे नष्ट,सर्व अनिष्ट ने जे इष्ट ते सौ प्राप्त छे ॥ ६१ ॥
सुणी 'घातिकर्मविहीननुं सुख सौ ,सुखे उत्कृष्ट छे',।
श्रद्धे न तेह,अभव्य छे, ने भव्य ते समत करे ॥ ६२ ॥

१ मूर्तिक को भी (मूर्तपदार्थों को भी)। २ स्वयं। ३ कभी। ४ कदाचित्। ५ तथा। ६ भी। ७ किसप्रकार। ८ से। ९ होवे। १० समस्त, अखंड। ११ मात्र अथवा केवलज्ञानात्मक। १२ आकुलता। १३ वे। १४ स्वीकार करते हैं।

[illegible] पीडित वर्ते सहज[1] इन्द्रिय वडे,[2]
[illegible] दु:ख तेथी रम्य विषयोमां रमे ॥६३॥
[illegible] जेमने,[4] दु:ख छे स्वाभाविक तेम[5] ने,
[illegible] स्वभाव तो व्यापार नहि विषयो विषे ॥६४॥
[illegible] इष्ट विषयो पामीने,[6] निज भावथी ।
[illegible][7] स्वयमेव सुखरूप थाय, देह थतो[8] नथी॥६५
[illegible] देह करे नहि सुख देहीने ।
[illegible] विषयवश स्वयमेव आत्मा सुख वा दु:ख थाय छे॥६६
जो दृष्टि प्राणीनी तिमिरहर तो कार्य छे नहि दीपथी;
[illegible], स्वय सुख परिणमे, विषयो करे छे शुं[11] तहीं?[12]॥६७
[illegible] आतमा स्वयमेव भास्कर उष्ण, देव, प्रकाश छे,
स्वयमेव लोके सिद्ध पण स्वयं[14] ज्ञान, सुख ने देव छे ॥६८
गुरु-देव यतिपूजा विषे वळी दान ने सुशील विषे ।
जीव रक्त[15] उपवासादिके, शुभ उपयोग स्वरूप छे। ६९।
शुभयुक्त आत्मा देव वा[16] तिर्यंच वा मानव बने ।
ते पर्यये तावत्समय इन्द्रिय सुख विधविध[17] लहे ॥७०॥
सुरनेय सौख्य स्वभावसिद्ध[18] न सिद्ध छे आगमविषे ।
ते देहवेदन थी पीडित रमणीय विषयो मां रमे ॥७१॥

१ स्वाभाविक । २ द्वारा । ३ नहीं । ४ जिसको । ५ उसको । ६ प्राप्त करके । ७ परिणमता है । ८ होता । ९ आत्माको । १० जहां । ११ क्या । १२ वहां । १३ जैसे । १४ वैसे । १५ आसक्त, लवलीन, आरूढ । १६ अथवा । १७ विविध । १८ स्वाभाविक, आत्मीक ।

तिर्यंच नारक सुर नरो ... गत दुःख अनुभवे ।
तो जीवनो उपयोग ए शुभ अशुभ कई रीति छे ॥७२॥
चक्री अने देवेन्द्र शुभ उपयोग मूलक भोगथी ।
पुष्टि करे देहादिनी सुखी सम दीसे[2] अभिरत रही ॥७३॥
परिणामजन्य अनेक विध जो पुण्यनु अस्तित्व छे ।
तो पुण्य ए[3] देवान्त जीवने विषयतृष्णोद्भव करे ॥ ७४ ॥
ते उदित तृष्णा जीवो दुःखित तृष्णा थी विषयिक[4] सुखने ।
इच्छे अने आमरण दुःखसंतप्त तेने भोगवे ॥ ७५ ॥
परयुक्त, बाधासहित खंडित, बंधकारण, विषम छे ।
जे इन्द्रियो थी लब्ध ते सुख ए रीते दुःख ज खरे ॥७६॥
नहि मानता-ए रीत पुण्ये पापमां न विशेष छे।
ते मोहथी आच्छन्न घोर अपार संसार भमे[6] ॥ ७७ ॥
विदितार्थ[7] ए रीत, रागद्वेष लहे[8] न जे द्रव्यो विषे ।
शुद्धोपयोगी जीव ते क्षय देहगत दुःखनो करे ॥ ७८ ॥
जीव छोडी पापारंभने शुभचरितमां उद्यत भले ।
जो नव तजे मोहादिने तो नव लहे शुद्धात्मने ॥ ७९ ॥
जे जाणतो अर्हंतने गुण, द्रव्य ने पर्यय पणे ।
ते जीव जाणे आत्मने तसु[10] मोह पामे लय खरे[11] ॥८०॥

१ किस । २ मालूम पडे । ३ वह । ४ विषयजन्य । ५ मरण तक । ६ भ्रमण करता है । ७ स्वरूप जानकर । ८ करे । ९ नहीं । १० उसका । ११ अवश्य ।

द गा-त रही र आनम्वरूप मम्यक् पामीने।
नो [illegible] पग्हिर तो पामतो शुद्धात्मने । ८१ ॥
[illegible] तमा तो करी नाश त ज [illegible]।
[illegible] सघ उर्यो, निवृत्त थया, नमु तेमने ।८२॥
[illegible] मूढ़ [illegible] जीवने, ते मोह छे।
[illegible] रागी द्वेषी बहु क्षोभित बने ॥ ८३ ॥
[illegible] रागरूप या द्वेष परिणत जीवने।
[illegible] थाय बंध, तेथी सर्व ते क्षययोग्य छे ॥ ८४ ॥
[illegible] अयथाग्रहण, करुणा मनु ने तिर्यंचमां।
[illegible] वली मग,–लिंग [illegible] आ मोहना ॥८५॥
[illegible] वड प्रत्यक्षआदिथी जाणतो जे अर्थ ने।
तनु मोह पामे नाश निश्चय, शास्त्र समध्ययनीय छे ॥८६॥
द्रव्यो गुणो ने पर्ययो सौ अर्थ सज्ञा थी कह्या।
गुण पर्ययो नो आत्मा छे द्रव्य जिन उपदेशमा ॥ ८७ ॥
जे पामी जिन उपदेश हणतो रागद्वेष विमोहने।
ते जीव पामे अल्पकाले सर्व दुःख विमोक्षने ॥ ८८ ॥
जे ज्ञानरूप निज आत्मने, परने वली निश्चय वडे।
द्रव्यत्वथी संबद्ध जाणे मोह नो क्षय ते करे। ८९ ॥

१ प्राप्त करके । २ प्राप्त करता हूं । ३ ऐसा हुआ । ४ पर द्रव्या दिका म । ५ विषय, अनेकप्रकार का । ६ अन्यथा ग्रहण, (विपरीत श्रद्धा) । ७ प्रीत्याप्रीतपरिणाम । ८ अध्ययन करनेयोग्य, मननीय । ९ स्वरूप, सत्त्व, समूह । १० नष्ट करवा, क्षय करवा । ११ स्वयोग्य द्रव्यत्व से ।

तेथी यदि जीव इच्छतो निर्मोहिता निज आत्मने ।
जिन मार्ग थी द्रव्यो महीं जाणो स्व परने गुण वडे[2]॥९०
श्रामण्यमा सत्तामयी सविशेष आ द्रव्यो तणी ।
श्रद्धा नहि, ते श्रमण ना, तमाथी धर्मोद्भव नहि ॥ ९१ ॥
आगम विषे कौशल्य[3] छे, ने मोहदृष्टि विनष्ट छे ।
वीतराग-चरितारुढ छे, ते मुनि महात्मा 'धर्म' छे ॥९२॥

ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन ।

छे अर्थ द्रव्यस्वरूप, गुण-आत्मक कह्या छे द्रव्य ने ।
वली द्रव्य गुण थी पर्ययो, पर्यायमूढ परसमय[4] छे॥९३॥
पर्याय मा रत जीव जे ते 'पर समय' निर्दिष्ट छे ।
आत्मस्वभावे स्थित जे ते 'स्वक समय' ज्ञातव्य छे ॥९४॥
छोड्या विना ज स्वभावने उत्पाद व्यय ध्रुव युक्त छे।
वली गुण ने पर्यय सहित जे 'द्रव्य' भाख्यु तेहने ॥९५॥
उत्पाद ध्रौव्य विनाशथी, गुणने विविध पर्यायथी ।
अस्तित्व द्रव्यनु सर्वदा जे, तेह द्रव्यस्वभाव[6] छे ॥ ९६ ॥
विधविध लक्षणोनु सरव गत[7] 'सत्त्व' लक्षण एक छे ।
ए धर्म ने उपदेशता[8] जिनवरवृषभ निर्दिष्ट छे ॥ ९७ ॥
द्रव्यो स्वभावे सिद्ध ने 'सत्'-तत्त्वत श्री जिनो कहे ।
ए सिद्ध छे आगम थकी[9], माने न ते परसमय छे ॥ ९८ ॥

१ स । २ द्वारा । ३ प्रवीणता । ४ मिथ्या दृष्टि । ५ सम्यग्दृष्टि। ६ द्रव्यत्व । ७ सर्वगत । ८ उपदेष्टा । ९ द्वारा, से ।

... ते उत्पत्ति तेथी 'सत्' सौद्रव्य छे।
... विनाशयुत परिणाम द्रव्यस्वभाव छे ॥९९॥
... नहि, सहार सर्ग विना नहि।
सर्ग ध्रौव्य पदार्थ विण वर्ते नहि ॥१००॥
... उत्पाद ने सहार वर्त पर्यय।
... ते नियमथी, सर्व ते ही द्रव्य छे ॥ १०१ ॥
... नाशसहित अर्थ सह समवेत छे।
... आ द्रव्य निश्चय, तेथी ए त्रिक द्रव्य छे। १०२
... अन्य पर्यय अन्य को विणसे वली।
... नो नथी नष्ट के उत्पन्न द्रव्य नथी तहीं ॥१०३॥
... स्वय दरव गुणथी गुणांतर परिणमे।
... थी वली द्रव्य न कया छे सर्वगुणपर्यायने ॥ १०४ ॥
जो द्रव्य होय न सत् ठरे ज असत बने कयम द्रव्यए ?
या भिन्न ठरतुं सत्तथी। तेथी स्वय ते सत्त छे ॥ १०५ ॥
जिन वीरनो उपदेश एम — पृथक्त्व भिन्नप्रदेशता।
अन्यत्व जाण अतत्पणु, नहि ते—पणे तएक क्या ? ॥१०६
'सत् द्रव्य' 'सत् पर्याय', 'सत् गुण'—स वनो विस्तार छे।
नथी ते पण अन्योन्य तह अतत्पणु ज्ञातव्य छे ॥१०७॥

---

१ व्यय। २ उत्पाद। ३ श्रौर। ४ पर्यायमं। ५ अयात्मक। ६ बौद्ध। ७ तथा। ८ सत्सामान्य। ९ निश्चित होवे। १० ऐसा। ११ सदरा।

स्वरूपे नथी जे द्रव्य ते गुण, गुण ते नहि द्रव्य छे ।
आने अतत्पणु[1] जाणजु, न अभावे, भारयु जिने॥१०८॥
परिणाम द्रव्यस्वभाव जे, ते गुण 'सत्' अविशिष्ट छे ।
द्रव्यो स्वभावेस्थित सत छे'–ए ज आ उपदेश छे॥१०९।
पर्याय के[2] गुण एवु कोई न द्रव्य विण विश्वे दीसे ।
द्रव्यत्व छे वली भाव, तथी द्रव्य पोते[3] सत्त छे ॥ ११० ॥
आवु[4] दरव द्रव्यार्थ पर्यायार्थथी निजभाव मा ।
सद्भाव असमद्भावयुत उत्पादने पामे सदा ॥ १११ ॥
जीव परिणमे तथी नरादिक ए थशे, पण ते–रूपे ।
शु छोडतो द्रव्यत्वने ? नहि छोडतो क्यम अन्य ए ॥ ११२॥
मानव नथी सुर, सुर पण नहि मनुज के नहि सिद्ध छ ।
ए रीत नहि होतो थको[5] क्यम[6] ते अनन्यपणु धरे?॥११३
द्रव्यार्थिके बधु द्रव्य छे, ने तज पर्यायार्थिके ।
छे अन्य, जेथी[7] ते समय तद्रूप होई अनन्य छे ॥ ११४॥
अस्ति, तथा छे नास्ति, तेम ज द्रव्य अणवक्तव्य[9] छे ।
वली उभय को[10] पर्याय थी, वा अन्यरूप कथाय[11] छे ।
नथी 'आज[12]' एवो[13] कोइ ज्या किरिया स्वभावनिपन्न[1] ।
किरिया नथी फलहीन, जो निष्फल धरम उत्कृष्ट छे॥११६

१ अन्योन्याभाव । २ अथवा । ३ स्वत त्रय । ४ एसा ।
५ कैसे । ६वा । ७कैसे, क्यों । ८ जिससे । ९अवक्तव्य
११ कहा जाता । १२ यही । ऐसा । १४ निपन्न ।

~रभाव थी निज जीवद्रव्य स्वभावने ।
तर्यंच देव, मनुष्य वा नारक करे ॥११७॥
~ तरनी जीव नामकर्म निपन्न छे ।
परिणमन थी ज स्वभावलब्धि[1] नतेमने॥११८
~ विज्ञान नश भग नभव मय जगे[2] ।
~ ~ श ~ नजी उत्पनाश विभिन्न छे ॥११९॥
~ ~ व स्थिर ध्रुव न कोई छे ससार मां ।
~ ना ~गश करता द्रव्य केरी छे क्रिया ॥ १२० ॥
कर्मे मले ~ जीव कर्म सयुत पामतो परिणामने ।
~ ~ ~ बनाय छे, परिणाम तेथी कर्म छे ॥ १२१ ॥
परिणाम पोते जीव छे ने छे क्रिया ए जीव मयी ।'
किरिया गणी[4] छे कर्म, ते थी कर्मनो कर्ता नथी ॥१२२॥
जीव चेतना रूप परिणमे, वली चेतना त्रिविधा गणी ।
ते ज्ञानविषयक, कर्मविषयक, कर्म फलविषयक थही॥१२३॥
छे 'ज्ञान' अर्थविकल्प, ने जीवथी कराय 'कर्म' छे ।
~ते छे अनेक प्रकारनु, 'फल' सौख्य अथवा दुःख छे॥१२४
परिणाम आत्मक जीव छे, परिणाम ज्ञानादिक बने ।
तेथी करमफल, कर्म तेमज ज्ञान आत्मा जाण जो ॥१२५॥

---

१ पराजित । २ स्वरूप प्राप्ति । ३ लोकमें । ४ मानीगई ।
५ किया जाता ।

'कर्ता, करम, फल, करण जीव छ [illegible],
मुनि अन्य रूप नव परिणमे, प्राप्ति [illegible] ॥१२८॥
छे द्रव्य जीव, अजीव, चित [illegible] छे।
पुद्गल प्रमुख जे छे अचेतन द्रव्य [illegible] ॥१२७॥
आकाशमा जे[3] भाग धर्म अधर्म [illegible] छे।
जीव पुद्गलोथी युक्त छे त [illegible] ॥१२८॥
उत्पाद, व्यय, ने ध्रुवता [illegible]।
परिणाम[4] द्वारा, भेद या सघात [illegible] ॥१२९॥
जे लिंगथी द्रव्यो महीं जीव [illegible] जणाय छे।
ते जाण मूर्त अमूर्त गुण [illegible] ॥१३०॥
गुण मूर्त इन्द्रियग्राह्य ते पुद्गल [illegible]।
द्रव्यो अमूर्तिक जेह तेना गुण [illegible] ॥१३१॥
छे वर्ण तेम ज गध वली [illegible]।
अतिसूक्ष्मथी पृथ्वी सुधी, [illegible] विविध छे ॥१३२॥
अवगाह गुण आकाशनो, [illegible] धर्म नो।
वली स्थानकारणतारूपी गुण [illegible] अधर्म नो ॥१३३॥
छे काल नो गुण वर्तना [illegible] जीवमा।
ए रीत मूर्ति विहीनना गुण [illegible] ॥१३४॥

---

१ एसा। २ चैतन्य[illegible]। [illegible]। ३ [illegible]
४ मध्य, में।

→२,ण्र पन्लराप र्म अधर्म वली आकाशने ।
ग्र ~ प्रत्येक, नहि वर्ने प्रदेशो कालने ॥ १३५ ॥
~ ~ आम लोक अधर्म धर्म थी व्याप्त छे ।
प्र ~ काल, ने जीव पुद्गलो त शेष छे ॥ १३६ ॥
। ~ प्रदश, ने रीत शेष द्रव्य प्रदश छे ।
~ गाणु नडे उद्भव प्रदश तणो[1] बने ॥ १३७ ॥
~ ग अप्रदेश एक पदश परमाणु यदा[2] ।
~ पण्य तणो प्रदश अतिक्रमे वर्ते तदा[3] ॥ १३८ ॥
~ दान, अतिक्रमण मम छे 'ममय', त पूर्वापरे ।
~ अर्थ छ ते काल छे, उत्पन्नध्वसी 'समय' छे ॥१३९॥
आकाश जे अणु-व्याप्य, 'आमप्रदश'[4] मना तेह ने ।
ते एक सौं[5] परमाणु ने अवकाश दान समर्थ छे ॥१४०॥
वर्ते पदशो द्रव्यने, जे एक अथवा न वने ।
बहु वा असख्य, अनत छे, वली होय समयो कालने । १४१
एक ज ममयमा ध्वम ने उत्पाद नो सद्भाव छे ।
जो कालने तो काल तेह स्वभाव ममवस्थित छे॥ १४२ ॥
प्रत्येक ममये जन्म ध्रौव्य विनाश अथा कालने ।
वर्त सरवदा, आ ज वम कालाणु नो मद्भाव छे ॥१४३॥

१ आकाश । २ था । ३ जव । ४ तव । ५ आकाश प्रदेश । ६ सव । ७ ध्रुव । ८ मात्र ।

जे अर्थने न बहु प्रदेश, न एक वा परमार्थथी ।
ते अर्थ जाणो शून्य केवल अन्य जे अस्तित्वथी ॥१४४॥
सप्रदेश अर्थोथी समाप्त समग्र लोक सुनित्य छे ।
तसु जाणनारो जीव प्राण चतुष्क थी संयुक्त जे ॥१४५॥
इन्द्रियप्राण, तथा वली बलप्राण, आयुप्राणने ।
वली प्राण श्वासोच्छ्वास ए सौ जीव केरा[2] प्राण छे ॥१४६॥
जे चार प्राणे जीवतो पूर्वे, जीवेछे, जीवशे[3] ।
ते जीव छे, पण प्राण तो पुद्गल दरव निष्पन्न छे ॥१४७॥
मोहादिकर्म निबंधथी[4] सबन्धपामी प्राण नो ।
जीव कर्मफल उपभोग करता बंध पामे कर्म नो ॥१४८॥
जीव मोहद्वेष वडे करे बाधा जीवो ना प्राण ने ।
तो बंध ज्ञानावरण आदिक कर्म नो ते थाय छे ॥ १४९ ॥
कर्मे मलिन जीव त्यां लगी प्राणो धरे छे फरी[5] फरी ।
ममता शरीरप्रधान विषये ज्यां लगी छोडे न हि ॥१५०॥
करी इन्द्रियादिक विजय ध्यावे आत्मने उपयोगने ।
ते कर्मथी रंजित नहि, क्यम प्राण तेने अनुसरे ? ॥१५१॥
अस्तित्व निश्चित अर्थनो को अन्यअर्थ उपजतो ।
जे अर्थ तेपर्याय छे, ज्यां भेद संस्थानादि नो ॥ १५२ ॥

१ निश्चय से । २ के । ३ जीवित रहेगा । ४ सबन्ध ।
५ पुन पुन, बारबार ।

जिस ... ... दय वडे ।
छ ... ... रागिष्ट मस्थानादिके[1] । १५३॥
... रागपणे त्रिविकल्पने ।
... मोह परद्रव्ये लह ॥१५४॥
..., उपयोग दर्शन ज्ञान छे ।
... शुभ वा अशुभरूप होय छे ॥१५५॥
..., स..य थाय पुण्य तणो तहीं ।
..शुभथी, ... उभय नहि सचय नहि॥१५६॥
... अर्ह, ... सिद्धने, अणगार[2] ने ।
... भक्ति, उपयोग छे शुभ तेहने ॥ १५७ ॥
... ... युत, विषय कषाये मग्न जे ।
... उन्मार्गपर, उपयोग तेह अशुभ छे ॥ १५८ ॥
...स्थ परद्रव्य थतो अशुभोपयोग रहितने ।
शुभमा अयुक्त, हुं ध्याउं छु निज आत्मने ज्ञानात्मने॥१५९
हुं देह नहि, वाणी न मन नहि, तेमनु[3] कारण नहि ।
कर्ता न, कारयिता न, अनुमता हुं कर्ता नो नहि ॥१६०॥
मन, वाणी तेमज देह पुद्गलद्रव्य रूप निर्दिष्ट छे ।
ने तेह पुद्गलद्रव्य बहु परमाणुओ नो पिंड छे ॥ १६१ ॥
हुं पौद्गलिक नथी, पुद्गलो में पिंड रूप कर्यो नथी[4] ।
तेथी नथी हुं देह वा ते देहनो कर्ता नथी ॥ १६२ ॥

१ आकृति, आकार । २ निर्ग्रन्थ । ३ उनका । ४ नहीं ।

परमाणु जे अप्रदेश, तेम प्रदेशमात्र, अशब्द छे ।
ते स्निग्ध रुक्ष बनी प्रदेशद्वयादित्व अनुभवे ॥ १६३ ॥
एकांशथी आरंभी ज्यां अविभाग अंश अनंत छे ।
स्निग्धत्व वा रूक्षत्व ए परिणाम थी परमाणुने ॥१६४॥
हो स्निग्ध अथवा रूक्ष अणु परिणाम सम वा विषम हो ।
बंधाय जो गुणद्वय अधिक, नहि बंध होय जघन्यनो ॥१६५
चतुरंश को स्निग्धाणु सह द्वय अंशमय स्निग्धाणुनो ।
पंचांशी अणु सह बंध थाय त्र्यंशमय रुक्षाणु नो ॥१६६॥
स्कन्धो प्रदेशद्वयादियुत, स्थूल सूक्ष्म ने साकार जे ।
ते पृथ्वी-वायु-तेज जल परिणामथी निजथाय छे ॥ १६७ ॥
अवगाढ गाढ भरेल छे सर्वत्र पुद्गलकाय थी ।
आलोक बादर सूक्ष्मथी, कर्मत्वयोग्य अयोग्यथी ॥ १६८ ॥
स्कंधो करम ने योग्य पामी जीवना परिणाम ने ।
कर्मत्वने पामे, नहि जीव परिणमावे तेमने ॥ १६९ ॥
कर्मत्व परिणत पुद्गलोना स्कन्ध ते ते फरीफरी ।
शरीरो बने छे जीवने, संक्रान्ति[1] पामी देहनी ॥ १७० ॥
जे देह औदारिक, ने वैक्रिय तैजस देह छे ।
कार्मण अहारक देह जे, ते सर्व पुद्गलरूप छे ॥ १७१ ॥
छे चेतनागुण गंध-रूप रस शब्द व्यक्ति[2] न जीवने ।
वली लिंगग्रहण नथी अने संस्थान भाख्युं न तेहने ॥१७२॥

१ परिवर्तन । २ अभिव्यक्ति, प्रकटपना ।

* गाथ रूपादि गुणयुत मूर्तने ।
– । ?, प' पुद्गल कर्म ने ?।। १७३ ॥
। रूपादिगु गुणद्रव्यनु ।
। जीत रहितने पण मूर्तनु ॥ १७४ ॥
। ज्ञान उपयोग आत्मक जीव जे ।
* म... परिणमे त बध छ ॥ १७५ ॥
। सन ताण विषयगत अर्थ ने ।
* उपरागा तनी कर्म बधन ते नहे ॥ १७६ ॥
स आत्मा तणो न स्पर्श सह पुद्गलतणो ।
। ५ ' अवगाह, तेने बध उभयात्मक कणो ॥१७७॥
अ छ ते जीव, जीवप्रदेशमा आवे अने ।
पुद्गलसमूह रह यथोचित, जाय छे, बधाय छे ॥ १७८ ॥
जीव रक्त बाघे कर्म, रागरहित जीव मुकाय छे ।
-आ जीव केरा बधनो सक्षेप निश्चय जाणजो ॥ १७९ ॥
परिणाम थी छे बध राग विमोह-द्वेषथी युक्त जे ।
छे मोह द्वेष अशुभ, राग अशुभ वा शुभ होय छे ॥१८०॥
पर माही शुभपरिणाम पुण्य, अशुभ परमां पाप छे ।
निजद्रव्य गत परिणाम समये दु ख क्षय नो हेतु छे॥१८१

/ कैसे, किसप्रकार । २ विविध अनेकप्रकार । ३ आत्मा
४ योग्य । ५ छोड़ना ।

स्थावर अने त्रस पृथ्वीयादिक जीवकाय कहल[1] छे ।
ते जीवथी छे अन्य तेमज जीव तेथी अन्य छे ॥ १८२ ॥
परने स्वने नहि जाणतो ए रीत पामी स्वभावने ।
ते 'आहु, आमुज' एम अध्यवसान[2] मोह थकी करे ॥१८३॥
निज भाव करतो जीव छे कर्ता खरे निज भावनो ।
पण ते नथी कर्ता सकल पुद्गल दरवमय भावनो ॥१८४॥
जीव सर्वकाले पुद्गलो नी मध्यमा वर्ते भले ।
पण नव ग्रहे न तजे, करे नहि जीव पुद्गलकर्मने॥ १८५ ॥
ते हाल[3] द्रव्य जनित निजपरिणाम नो कर्ता बने ।
तेथी ग्रहाय अने कदापि मुकाय छे कर्मा वडे ॥ १८६ ॥
जीव रागद्वेषथी युक्त ज्यार परिणामे शुभ अशुभमा ।
ज्ञानावरण इत्यादि भावे कर्म धूलि प्रवेश त्या ॥ १८७ ॥
सप्रदेश जीव समये कषायित मोहरागादि वडे ।
सबन्ध पामी कर्मरजनो बधरूप कथाय छे ॥ १८८ ॥
-आ जीव केरा बधनो सक्षेप निश्चय भाखियो[6] ।
अर्हतदेवे योगीने, व्यवहार अन्य रीते कह्यो । १८९ ॥
'हुं आ अने आ मारु' ए ममता न देह धने तजे ।
ते छोडी जीव श्रामण्यने[4] उन्मार्ग नो आश्रय करे ॥१९०॥

१ कहे गये । २ परिणाम । ३ [illegible] ।
५ अभी । ६ कहागया है, निर्दिष्ट किया है । [illegible]
श्रमणताको ।

हुं पर नहीं ... ज्ञानकेवल एक हुं।
जे एम ... ते ध्याता बने ॥ १९१ ॥
ए जीव ... इन्द्रिय अतीत महार्थ छे।
मानुं ... रहित, जीव शुद्ध निश्चल ध्रुव छे ॥१९२॥
तास्मी ... शत्रु मित्रो जनो अरे!
जीवने ... उपयोग आत्मक जीवछे ॥१९३
... निज आत्मने।
... ते मोहग्रंथि क्षयकरे ॥ १९४ ॥
हणी ... समसुख दुःख जे।
जीव ... सौख्य अक्षयने लहे ॥१९५॥
जे मोह ... विषय निरक्त थई, मन रोकीने।
आत्मस्व ... स्थित छे ते आत्मने ध्यानार छे ॥१९६।
शा ... ध्यावे श्रमण, जे नष्टघातिकर्म छे।
प्र ... पदार्थ ने ज्ञेयान्त प्राप्तनि शंक छे? ॥१९७॥
बाधारहित ... आत्मा सपूर्ण सुख ज्ञानाढ्य जे।
इन्द्रिय अतीत अनिद्र ते ध्यावे परम आनंदने ॥ १९८ ॥
श्रमणो, जिनो, तीर्थंकरो आ रीत सेवी मार्ग ने।
सिद्धि वर्या, नमुं तेमने निर्वाण ना ते मार्ग-ने ॥१९९॥

---

१ होकर। २ समूह। ३ नष्टकर। ४ होकर। ५ ध्यान करने वाला, ध्याता। ६ किम। ७ अनिंद्रिय। ८ प्राप्ति की।

એ રીત તેથી આ ।ા નાણીને ।
નિર્મમપણે રહ્યા નુ છું હું મમત્વને ॥૨૦૦

૩—ચરણાત્ નક ચૂલિકા ।

એ રીત પ્રણમી ઉપમ મુનિને ફરી ફરી ।
શ્રામણ્ય અંગીકાર મલાપ જો દુ:ખમુક્તિ ની ॥૨
બંધુ જનોની વિ પુત્ર વડીલો થી છૂટી ।
દગ જ્ઞાન તપ ચારિત્ર વીર્યાચાર અંગીકૃત કરી ॥ ૨૦૨ ॥
'મુજ ને ગ્રહો' પ્રણતવડ, અનુગૃહીત થાય ગણી વડે
વયરૂપ કુળ વિશિષ્ટ યોગી, ગુણાઢ્ય ને મુનિઇષ્ટ જે ॥૨૦૩
પરનો ન હું પર ન મુજ, મારું નથી કંઈ પણ જગે ।
એ રીત નિશ્ચિત ન જિતેંદ્રિય સાહજિકરૂપ ધરવને ॥૨૦૪॥
જન્મ્યાપ્રમાણે રૂપ, લુંચનકેશનું, શુદ્ધત્વને ।
હિંસાદિથી શૂન્યત્વ, દેહ અસંસ્કરણ લિંગ છે ॥૨૦૫॥
આરંભ મૂર્છાશૂન્યતા ઉપયોગ યોગ વિશુદ્ધતા ।
નિરપેક્ષતા પરથી જિનોદિત મોક્ષકારણ લિંગ" આ॥૨૦૬॥
ગ્રહી પરમગુરુ દીધેલ લિંગ નમસ્કરણ કરી તેમને ।
વ્રત ને ક્રિયા સૂણી, થઈ ઉપસ્થિત, થાય છે મુનિરાજ એ॥૨૦૭

१ निममत्व । २ गुरुजनो, पुत्र आदि । ३ विनययुक्त प्रणाम करके । ४ आचार्य । ५ गुणसमृद्ध । ६ कुल । ७ यथाजातरूप धर जन्मसमय के सरीखा रूपधारी अर्थात् निग्रन्थ । ८ निर्ग्रन्थ, दिगम्बर । ९श्रृंगार नहीं करना, वस्त्राभूषण युक्त न करना । १०जिनेन्द्र निरूपित । ११ चिह्न, कारण । १२ ग्रहण कर । १३ दिये गये

[illegible] [illegible], [illegible], अणचेल[1] इन्द्रियरोधन,
[illegible] [illegible] भोजन भूशयनस्थिति भोजन ।२०८
[illegible] [illegible] नथा निनदेनथीप्रज्ञप्तछे ।
[illegible] [illegible] छे [illegible]पस्थापक थाय छे ॥ २०९ ॥
[illegible] [illegible] तेगुरु जाणना ।
[illegible] [illegible] शेष मुनि निर्यापका[3] ॥ २१० ॥
[illegible] [illegible] कायनी चेष्टाविषे ।
[illegible] [illegible] क्रिया कर्तव्य छे, ते साधुने ॥ २११ ॥
[illegible] मुनि, श्रमण व्यवहार निज्ञ कने[4] जई ।
[illegible] दोष आलोचन करो, श्रमणोपदिष्ट करे विधि ।२१२॥
[illegible] पारत्यागी सदा अधिवास अगर विवास[5] मां ।
मुनिराज विहरो सर्वदा थईछेदहीन श्रामण्यमां ॥ २१३ ॥
जे श्रमण ज्ञान दृगादिक प्रतिबद्ध[6] विचरे सर्वदा ।
ते प्रयत मूलगुणो विषे, श्रामण्य छे परिपूर्ण त्यां ॥२१४॥
मुनि क्षपण[7] मांहीं, निवासस्थान, विहार वा भोजनमहीं ।
उपधि श्रमण विकथा नहीं प्रतिबंधने इच्छे नहीं ॥२१५॥
आसन शयन गमनादिक चर्या प्रयत्न विहीनजे ।
ते सातत्यी हिंसा सदा मतानसाहिनी[8] श्रमण ने ॥ २१६ ॥

---

[1] दिगम्बरत्व । [2] दतौन । [3] नियामक, उपदेश आदि से मार्गमें दृढ करनेवाले । [4] निकट । [5] एकलविहारी, गुरुसे अलग रहकर । [6] युक्त । [7] उपवास । [8] मन लगानेकी । [9] सर्वदा, सतत ।

जीवो मरो जीव,यत्नहीनआचार त्यां हिंसा नक्की[1] ।
समिति-प्रयत्नसहितने नहि बंध हिंसा मात्रथी ॥ २१७ ॥
मुनि यत्न हीन आचार रत छकायनो हिंसक कह्यो ।
जलकमलवत् निर्लेप भाख्यो, नित्य यत्न सहित जो॥२१८॥
दैहिक क्रिया थकी जीव मरता बंध थाय न थाय छे ।
परिग्रह थकी ध्रुव बंध,तेथी समस्त छोडयो योगी ए।२१९॥
निरपेक्षत्याग[3] न होय तो नहि भावशुद्धि भिक्षु ने ।
ने भावमां अविशुद्ध ने क्षय कर्म नो कई[4] रीत बने॥२२०॥
आरंभ, असंयम अने मूर्छा न त्यां एक्यम बने ?
पर द्रव्यरत जे होय ते कइ रीत साधे आत्म ने ॥२२१॥
ग्रहणे विसर्गे सेवता नहि छेद जे थी थाय छे ।
ते उपधि सह वर्तो भले मुनि काल क्षेत्र विजाणीने ॥२२२॥
उपधि अनिंदितने, असंयत जन थकी अप्रार्थ्यने,
मूर्छादिजननरहितने ज ग्रहो श्रमण, थोडो भले॥२२३॥
क्यम अन्य परिग्रह होय ज्यां कही देहने परिग्रह अहो ।
मोक्षेच्छु ने देहेय निष्प्रतिकर्म[7] उपदेशे जिनो ॥२२४॥
जन्म्या प्रमाणे रूप भाख्युं उपकरण जिन मार्गमां ।
गुरुवचन ने सूत्राध्ययन, वळी विनय पण उपकरणमां॥२२५॥

१ निश्चित । २ से द्वारा । ३ प्रयोजन रहित । ४ किस प्रकार । ५ जानकर । ६ अप्रार्थनीय ७ निर्पेक्षता, निर्ममत्व ।

आहार मा निषेध ने परलोक-अप्रतिबद्ध छे।
राग भाग रहित ते थी युक्त आ'र' विहारी छे ॥२२६॥
आत्मा अनेषण ते य तप, तत्सिद्धिमा उद्यत रही।
रागे भगा भिक्षा वली तेथी अनाहारी मुनि ॥ २२७ ॥
केवलमगार मुनि स्थाय 'मारु न' जाणी वण-प्रतिकर्म छे।
निज शक्तिना गोपन विना तप साथ तन योजेल छे॥२२८॥
आहार ते एक ज उणोदर ने थाय उपलब्ध छे।
भिक्षा वड, दिवसे, रसेच्छाहीन वर्ण-मधुमास छे ॥ २२९ ॥
वृद्धत्व, बालपणा विषे, ग्लानत्व, श्रांतदशा विषे।
चर्या चरो निजयोग्य, जे रीत मूलछेद न थायछे ॥ २३० ॥
जो देश काल तथा क्षमा श्रम उपधि ने मुनि जाणीने।
वर्ते अहारविहारमा तो अल्प लेपी श्रमण ते ॥ २३१ ॥
श्रामण्य ज्या ऐकाग्र्य, ने ऐकाग्र्य वस्तुनिश्चये।
निश्चय बने आगम वडे, आगमप्रवर्तन मुख्य छे ॥ २३२ ॥
आगमरहित ज श्रमण ते जाणे न परने आत्मने।
भिक्षु पदार्थ अजाण ते क्षय कर्मनो कइ रीति करे? ॥ २३३॥
मुनिराज आगमचक्षु ने सौ भूत इन्द्रिय चक्षु छे।
छे देव अवधिचक्षु ने सर्वत्र चक्षु सिद्ध छे ॥ २३४ ॥

१ आहार। २ आहारेच्छासे रहित। ३ बिना, रहित। ४ रहित। ५ रागीपना, व्याधियुक्तता। ६ सहनशक्ति। ७ विचार, मनन। ८ प्राणी।

सौ चित्र[1] गुण पर्याय युक्त पदार्थ आगमसिद्ध छे।
ते सर्व ने जाणे श्रमण ए दर्शी ने आगम वडे ॥२३५॥
दृष्टि न आगमपूर्विका न जीवने संयम नहीं।
-ए सूत्र केरु छे वचन, मुनि कम होय असंयमी? ॥२३६॥
सिद्धि नहीं आगमथकी, श्रद्धा न जो अर्थो तणी। -
निर्वाण नहीं अर्था तणा श्रद्धावी, जो संयम नहीं ॥ २३७॥
अज्ञानी जे कर्मो खपाव लक्ष कोटि भवो वडे।
ते कर्म ज्ञानी त्रिगुप्त बस उच्छ्वास मात्र थी क्षय करे ॥२३८
अणु मात्र पण मूर्छा तणो सद्भाव जो देहादि के।
तो सर्व आगमधर[2] भल पण नव लहे सिद्धत्वने ॥ २३९ ॥
जे पंचसमित, त्रिगुप्त इन्द्रिनिरोधी विजयी कषायनो।
परिपूर्ण दर्शन ज्ञानथी, ते श्रमण ने संयत कह्या ॥ २४० ॥
निंदा प्रशंसा, दुःख सुख, अरि बंधुमां ज्यां साम्यछे।
वली लोष्ट-कनके, जीवित मरणे साम्यछे ते श्रमण छे। ४१
दृग, ज्ञानने चारित्र, त्रयमां युगपद आरूढ जे।
तेने कह्यो ऐकाग्र्यगत, श्रामण्य त्यां परिपूर्ण छे॥ ४२ ॥
परद्रव्य ने आश्रय श्रमण अज्ञानी पामे मोह ने।
वा रागने वा द्वेषने, तो विविध बांधे कर्म ने॥ २४३॥

---

१ अनन्त प्रकारके। २ वा, गण, रहा गया। समस्त शास्त्रों का ज्ञाता। ४ प्राप्त होता है।

नहि मुग्ध, न [illegible] राग द्वेषरत नहि अर्थोविषे ।
[illegible] नी मतिमान ए विविध कर्मो क्षय करे ॥ २४४ ॥
[illegible] छे, शुभ युक्त पण शासने कह्या ।
शुद्धोपयोगी [illegible] छे निराश्रव शेष सास्रव जाणवा ॥ २४५ ॥
[illegible] वत्सलत्व विषे ने भक्ति अर्हतादि के ।
[illegible] होय जो श्रामण्य मां तो चरण ते शुभयुक्त छे ॥ २४६ ॥
[illegible] वंदन, नमन, अनुगमन अभ्युत्थान ने ।
[illegible] विश्रमण छे न निंदित रागयुत चर्या विषे ॥ २४७ ॥
उपदेश दर्शन ज्ञान नो, पोषण ग्रहण शिष्यो तणुं ।
भाख्यां जिनपूजा तणो वर्तन तु जाण सराग नु ॥ २४८ ॥
[illegible] जीवकाय विराधना उपकार जे नित्ये करे ।
चउ विध साधु संघ ने, ते श्रमण रागप्रधान छे ॥ २४९ ॥
वैयावृत्त उद्यत श्रमण षट्काय ने पीडा करे ।
तो श्रमण नहि पण छे गृही, ते श्रावकों नो धर्म छे ॥ २५० ॥
छे अल्प लेप [illegible] दर्शन ज्ञान परिणत जैन ने ।
निरपेक्षता पूर्वक करो उपकार अनुकंपा वडे ॥ २५१ ॥
आक्रान्त देखी श्रमण ने श्रम, रोग वा भूख प्यास थी ।
साधु करो सेवा स्वशक्ति प्रमाण ए मुनिराजनी ॥ २५२ ॥
सेवा निमित्ते रोगी बालक वृद्ध-गुरु श्रमणो तणी ।
लौकिकजनो सह वात शुभ-उपयोगयुत निंदित नथी ॥ २५३ ॥

१ का । २ विना, रहित । ३ सेवा, सुश्रुषा । ४ वा भा । [illegible] द्वारा ।

आ शुभ चर्या श्रमणने, वली मुख्य होय गृहस्थ ने।
तेना[1] वडे ज गृहस्थ पामे मोक्षसुख उत्कृष्टने ॥ २५४॥
फल होय छे विपरीत वस्तुविशेष थी शुभ रागने।
निष्पत्ति[3] विपरीत होय भूमि विशेषथी ज्यम बीज ने ॥२५५॥
छद्मस्थ अभिहित ध्यान दाने व्रत नियम पठनादि के।
रत जीव मोक्ष लहे नहि बस भाव शातात्मक लहे ॥ २५६॥
परमार्थ थी अनभिज्ञ, विषयकषाय अधिक जनो परे।
उपकार सेवा दान सव कुदेवमनुजपणे फले ॥ २५७ ॥
'विषयो कषायो पापछे' जो एम निरूपण शास्त्र मां।
तो केम तत्प्रतिबद्ध पुरुषो होय रे निस्तारका[4] ॥ २५८ ॥
ते पुरुष जाण सुमार्ग शाली, पाप-उपरम जेह ने।
समभाव ज्यां सौ धार्मिके, गुणसमूह सेवन जेह ने ॥२५९
'अशुभोपयोग रहित श्रमणो शुद्ध वा शुभयुक्त जे।
ते लोकने तारे, अने तद्भक्त पामे पुण्यने ॥ २६० ॥
प्रकृत वस्तु देखी अभ्युत्थान आदि क्रिया थकी।
वर्तो श्रमण पछी वर्तनीय गुणानुसार विशेष थी ॥२६१॥
गुणथी अधिक श्रमणो प्रति सत्कार अभ्युत्थान ने।
अंजलिकरण, पोषण, ग्रहण सेवन अहीं उपदिष्ट छे ॥२६२॥

१ एसरे । २ ही । ३ फल । ४ पार करने ।

न [illegible] प्रासा संयम ज्ञान तप समृद्ध ने ।
[illegible] ध्यान सदा साधु ए स्तत्य छे ॥ २६३ ॥
[illegible] सूत्र संयम युक्त पण साधु नहीं ।
[illegible] पदार्थ जो श्रद्धे नहि ॥ २६४ ॥
[illegible] दृष्ट्या ने ने द्वेषथी निंदा करे ।
[illegible] क्रिया विष, ते नाश चरण तणो करे ॥२६५
[illegible] वांछता 'हुं पण श्रमण छुं' मद करे ।
[illegible] गुण अधिकपाम, अनंत संसारी बने ॥ २६६ ॥
[illegible] गुण हीनगुण प्रति वर्ते यदि विनयादि मां ।
[illegible] चरित्र थी उपयुक्त मिथ्याभाव मां ॥२६७॥
[illegible] शमितकषाय, अधिक तपी भले ।
पण ते नथी संयत यदि छोडे न लौकिक संगने ॥ २६८ ॥
निग्रंथ रूप दीक्षा वडे संयम तपे संयुक्त ने ।
लौकिक कह्यो ते ने य जो छोडे न ऐहिक[2] कर्मने ॥ २६९ ॥
तथी श्रमण ने होय जो दुःखमुक्ति केरी भावना ।
तो नित्य वसवु समान अगर विशेष गुणीना संगमां ॥२७०
समयस्थ हो पण सेवी भ्रम अयथाग्रहे जे अर्थ ने ।
अत्यन्त फल समृद्ध भावी कालमा जीव ते भमे ।२७१॥
अयथाचरण हीन, सूत्र अर्थ सुनिश्चयी उपशांत जे ।
ते पूर्ण साधु अफल[3] आ संसार मां चिर नहि रहे ॥२७२॥

१ प्रणाम । २ सांसारिक । ३ निस्सार, फलरहित ।

जाणी यथार्थ पदार्थ ने, तजी संग अंतर्बाह्य ने।
आसक्त नहि विषयो विषे जे 'शुद्ध' भाख्या तमने ॥२७३॥

रे! शुद्ध ने श्रामण्य भाख्युं, ज्ञानदर्शनशुद्धने।
छे शुद्ध ने निर्वाण, शुद्ध ज सिद्ध प्रणमुं तेहने ॥२७४॥

साकार अण आकार चर्यायुक्त आ उपदेशने।
जे जाणतो ते अल्प काल सारप्रवचननो लहे ॥२७५॥



शुद्धाशुद्धि पत्र



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६	१७	चिताचिह्न	चित्तचिह्न
७	१०	पासअनादिविधा	पासअनादिअविद्या
७	२१	भव्योंको	भव्यादि
१२	१०	ना	न न,
१४	१५	कोट	कोटि
१६	१	देख	देव
१६	१२	दुरसत	दरसत
१७	२	सुजत	सुमत
१८	१२	भक्त	भक्ति
२०	१४	अपने	अपनी
५८	१४	कवि	कविस्वरूप
७२	१४	आपके जन्म लेते ही लोकमें सुखादि गुणोंकी बढ़वारी होजानेसे	अनन्तज्ञानादि गुणोंका अभिनंदन करनेके कारणसे
८०	१४	हेयोपादेयके ज्ञानसे शून्य	×
८१	१९	धार्मिक क्रियाकाण्डरूप	तप आदि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
८१	२०	करनेकी	करनेके
८१	२१	इच्छासे	आशयसे
८८	३	सदैव परिणामोंको निर्मल करनेमें	शुभ परिणामोंको
१४२	४	विषयमें	विषयके
१४४	३	सुख	दुख
१४५	६	तजि	चखि
१४८	६	सफ्ल	सकल
१५०	११	गि नै	गिनै
१५९	१०	ज्ञाना	ज्ञान
१६५	१५	साफ़	साफी
१६५	१६	ज्ञारी	उधारी
१८९	८	सुमती हित	सुमतिहि
१९९	२१	कलैर	करलै
२०७	७	सरत्र	सर्वत्र
२३२	१८	दर्शननमयो	दर्शनमयी
२५०	१२	निस	नाहि जिस
२५२	५	घन	धन
२६६	१०	जत्र गुरु	जत्र
२७१	६	समैय	समै
२८४	१२	लाहि	लहि
३०६	१६	धिग्धिगिद	धिग्धिगिम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३१३	१२	उसमे	उसके
३१८	७	रागादिविकारोंमे	अन्यभावोंसे
३२२	६	निमित्तकारणसे	प्रत्ययभावसे
३५१	२	रहत न यहै	रहत यहै
३५१	४	होत न यहै	होत यहै
३५१	६	निमल	निर्फल
३५२	९	साघो	साधो
३५८	९	भोगबघनकी	भोगबधनकी
३९९	२	सइमे	इससे
४७९	११	बद्	बध
५१६	६	लाकाऽल कमान	लोकालोकमान
५३६	८	एक चेतना	दर्शनचेतना और ज्ञानचेतना
५४२	१	शत्रु मित्र	शरीर
५४२	४	धान्यादिका त्याग	धान्यादिका मोह त्याग
५४८	६	थिररूप आलम्बन	थिररूप अपने अभेद स्वरूपका आलबन
५४८		पदार्थोंके असली	पदार्थोंको जानकर अपने असली
५८६	१५	एव	एव
५९५	५	भावसें	भ्यावतें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६०१	३	कहा	कहा
६०१	१६	चरणानुयोगादिक	करणानुयोगादिक
६०२	१७	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०२	१६	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०३	१	निर्विकल्परूप ज्ञेयकौं	ज्ञेयकौं निर्विकल्प
६०४	९	उद्यमका	उद्यममें
६०४	१६	स्वसुरूपविषैं	स्वस्वरूपविषैं
६१६	६	क्रोधाग्नि	शुभाशुभ
६३३	१०	मरूयो	भाख्यो
६७६	१५ १६	साथ रागभाव करते हुए स्पर्शनेको	
७२६	५	पिप्पलोदुम्बरलक्ष	पिप्पलोदुम्बरप्लक्ष
७२८	१४	अनशनादिक तपोंका	स्वरूपरमणतारूपी तपका
७३०	१८	वि दशावर्त्तानि	वित्त दशावर्त्तानि
७३४	१७	तद्रूप्यस्य	ताद्रूप्यस्य
७३६	११	भिदस्तमो	भिदस्तमो
७४४	१५	परद्रव्यको ग्रहणके लिये	परद्रव्यके स्पर्शनेका



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६०१	२	कहा	कहा
६०१	१६	चरणानुयोगादिक	करणानुयोगादिक
६०२	१७	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०२	१९	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
६०३	१	निर्विकल्परूप ज्ञेयकों	ज्ञेयकों निर्विकल्परूप
६०४	९	उद्यमका	उद्यममें
६ ४	१६	स्वसुरुपाविषैं	स्वस्वरूपविषैं
६१९	६	क्रोधाग्नि	शुभाशुभ
६२२	१०	भरयो	भाल्यो
६७६	१५, १६	साथ रागभाव करते हुए	स्पर्शनेको
७२६	५	पिप्पलोदुम्बरल्पक्ष	पिप्पलोदुम्बरप्लक्ष
७२८	१४	अनशनादिक सपोंका	स्वरूपरमणतारूपी तपका
७३०	१८	वि दशावत्तपाणि	वित्त दशावर्पाणि
७३४	१७	तद्गास्थ्य	ताद्गार्हस्थ्य
७३९	११	भिंदुस्तमो	भिंदुस्तमो
७४४	१५	परद्रव्यको ग्रहणके लिये	परद्रव्यके स्पर्शनेको

